CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वि०-229
(9)

उच्च न्यायालय निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन

प्रधान सम्पादक	जुलाई-अगस्त-सितम्बर,	सम्पादक
जगत नारायण	1983 (III)	हेतराम बाल्मीकि

Recd 6/8/85

नि० प० 1983

विधि साहित्य प्रकाशन,
विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग) भारत सरकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वि०-२५१ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नामानुसार अनुक्रमणिका

जुलाई-अगस्त-सितम्बर, 1983 (भाग III)

अपर आय-कर आयुक्त, मध्य प्रदेश, भोपाल **बनाम** मैसर्स अग्रवाल टिम्बर एण्ड बांस कं०, सतना (The Additional Commissioner of Income-tax, M. P., Bhopal *Vs.* M/s. Agarwal Timber and Bans Co., Satna) मध्य प्रदेश—456

अर्स्टवाइल नेशनल फिटनैस कोर एम्प्लाईज एसोसिएशन, मध्य प्रदेश और अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य (Erstwhile National Fitness Corps Employees Association, M. P. and others *Vs.* Union of India and others) मध्य प्रदेश—374

आयकर आयुक्त, जबलपुर **बनाम** कारेलाल कुंदनलाल न्यास, सागर (Commissioner of Income-tax, Jabalpur *Vs.* Karelal Kundanlal Trust, Sagar) मध्य प्रदेश—472

आयकर आयुक्त, मध्य प्रदेश-2, भोपाल **बनाम** दुर्गा प्रसाद राजाराम आढ़तिया (Commissioner of Income Tax, Madhya Pradesh-II, Bhopal *Vs.* Durgaprasad Rajaram Aratiya) मध्य प्रदेश—358

इन्दिरा काटन मिल्स प्रा० लि० **बनाम** मैसर्स रकेचा एंड कं० (Indra Cotton Mills Pvt. Ltd. *Vs.* M/s. Rakecha and Co.) मद्रास—139

एच० जी० कृष्णारेड्डी एण्ड कंपनी **बनाम** एम० एम० थिमैयाह और एक अन्य (H. G. Krishna Reddy & Company *Vs.* M. M. Thimmaiah and another) मद्रास—162

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऐस्बेस्टॉस सीमेंट लि० और एक अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य (Asbestos Cement Ltd. and another *Vs.* Union of India and others) मध्य प्रदेश–388

चिरंजीलाल फूलचन्द और एक अन्य **बनाम** घनश्यामदास शर्मा और अन्य (Chironjilal Phulchand & another *Vs.* Ghanshyam Das Sharma and others) मध्य प्रदेश–419

छगनलाल मूलचन्द जैन **बनाम** नारायण जगन्नाथ सिंह (Chhaganlal Mulchand Jain *Vs.* Narayan Jagannath Singh) मुम्बई–102

जगदीश बाबूलाल और अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (Jagdish Babulal and others *Vs.* State of Madhya Pradesh) मध्य प्रदेश–340

दिल्ली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स कं० लि०, कोटा **बनाम** राजस्थान राज्य बिजली बोर्ड और अन्य (Delhi Cloth & General Mills Co. Ltd., Kota *Vs.* Rajasthan State Electricity Board and others) राजस्थान–411

नव भारत राइस एण्ड जनरल मिल्स (मैसर्स) **बनाम** राजस्थान राज्य और अन्य (M/s. Naw Bharat Rice & General Mills *Vs.* State of Rajasthan and others) राजस्थान–457

नामदार खान **बनाम** बीबनबी (Namdar Khan *Vs.* Bibnabi) मुम्बई–132

प्रह्लाद **बनाम** राजस्व बोर्ड और अन्य (Prahlad *Vs.* Board of Revenue and others) राजस्थान–351

बाबूलाल **बनाम** राज्य (Babu Lal *Vs.* State) राजस्थान–372

बाम्बे स्कूटर्स, छिन्दवाड़ा **बनाम** कलक्टर, छिन्दवाड़ा और एक अन्य (Bombay Scooters, Chhindwara *Vs.* Collector, Chhindwara and another) मध्य प्रदेश–402

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बिलियन प्लास्टिक्स प्रा० लि० (मैसर्स) **बनाम** डाईज एण्ड कैमिकल कर्मकार संघ और अन्य (M/s. Billion Plastics P. Ltd., *Vs.* Dyes & Chemical Workers Union and others) मुम्बई–117

मध्य प्रदेश राज्य **बनाम** जीवन मथुरा प्रसाद (The State of Madhya Pradesh *Vs.* Jiwan Mathura Prasad) मध्य प्रदेश–347

महेश मेडिकल और जनरल एजेंसीज (मैसर्स) **बनाम** विक्रय कर आयुक्त, मध्य प्रदेश (M/s. Mahesh Medical & General Agencies *Vs.* The Commissioner of Sales Tax, M. P.) मध्य प्रदेश–364

राज्य **बनाम** मूलचन्द (State *Vs.* Moolchand) राजस्थान–448

रूपा और अन्य **बनाम** कांजी और अन्य (Roopa and others *Vs.* Kanji and others) राजस्थान–469

रेस्टोरेंट ली, जगदलपुर और अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य और अन्य (Restaurant Lee, Jagdalpur and others *Vs.* State of M. P. and others) मध्य प्रदेश–435

श्री बी० एन० घिल्डियाल **बनाम** भारत संघ और अन्य (Shri B. N. Ghildyal *Vs.* Union of India and others) हिमाचल प्रदेश–131

श्री राम **बनाम** हुआ बाई और अन्य (Shree Ram *Vs.* Hua Bai and others) राजस्थान–380

संदीप खन्ना **बनाम** प्रथम सिविल न्यायाधीश वर्ग I, ग्वालियर और अन्य (Sandeep Khanna *Vs.* First Civil Judge, Class I, Gwalior and others) मध्य प्रदेश–466

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषयानुसार अनुक्रमणिका

जुलाई-अगस्त-सितम्बर 1983भाग III)

आय-कर अधिनियम, 1961

--धारा 41 (2)—यदि किसी भागीदारी फर्म ने भागीदारी फर्म से निवृत्त भागीदारों को उनके हिस्से की रकम के बराबर फर्म की किसी आस्ति का आबंटन कर दिया है तो ऐसी स्थिति में उक्त धारा के अधीन उस आस्ति को लाभ के रूप में निर्धारण हेतु विचार में नहीं लिया जाएगा —उस आस्ति पर लाभ के रूप में कर का निर्धारण नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसे संव्यवहार में विक्रय नहीं हुआ था।

मध्य प्रदेश—456

—धारा 160 और 161 (1)—न्यास विलेख में वर्णित न्यासियों को कतिपय जंगम और स्थावर संपत्तियां हस्तांतरित किया जाना—प्रत्येक हिताधिकारी की आय के अंश के बारे में प्रबंध न्यासी पर अलग निर्धारण किया जाना चाहिए—व्यक्तियों के संगम की प्रास्थिति में न्यास पर निर्धारण नहीं किया जा सकता—ऐसा निर्धारण विधि के अनुसार कायम नहीं रखा जा सकता।

मध्य प्रदेश—472

—धारा 184 (i)—भागीदारी फर्म में अप्राप्तवयों का भागीदारी के फायदों में सम्मिलित किया जाना—भागीदारी विलेख में प्राप्तवय होने पर पूर्ण भागीदार बन जाने और भागीदारों को होने वाली हानि में अप्राप्तवय के अंश विनिर्दिष्ट न किया जाना—रजिस्ट्रीकरण चालू रखने से इनकार करना न्यायसंगत है।

मध्य प्रदेश—358

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955

—धारा 2 और 3 सहपठित संविधान, 1950 अनुच्छेद 19 (1) (छ)—संविधान में अन्तर्विष्ट नीति निदेशक तत्वों का लक्ष्य समतावादी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समाज की स्थापना है, जिससे संविधान के ढांचे के अन्तर्गत कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सके। यदि अधिरोपित निर्बन्धन राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के अनुरूप हैं, तो वे, कायम रखे जाने होंगे, क्योंकि वे लोक हित में और स्पष्टतः युक्तियुक्त हैं। युक्तियुक्त निर्बंधनों को विभेदकारी नहीं माना जा सकता।

राजस्थान–457

एम० पी० एन्टरटेनमेंट ड्यूटी ऐक्ट, 1936 (मध्य प्रदेश मनोरंजन शुल्क, अधिनियम, 1936 (1936 का अधिनियम सं० 30)

--धारा 2 (ख) और 3--भोजनालयों में वीडियो कैसिट रिकार्डर और टेलीविजन की सहायता से चलचित्रों के प्रदर्शन हेतु इनके स्वामियों द्वारा ग्राहकों से पृथक रूप से राशि न लेकर चाय काफी या अन्य खाद्य पदार्थ में सम्मिलित करके लेने से वे उक्त अधिनियम के उपबंधों से नहीं बच सकते यद्यपि यह प्रश्न तथ्य विषयक प्रश्न है।

मध्य प्रदेश–435

खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954

--धारा 7 (1), 20 और नियम 47 सपठित खाद्य अपमिश्रण नियमावली नियम 49 (1) (2) (3)—वह आधार, जिस पर अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन आरम्भ किया जाता है, परिवाद में ठीक-ठीक और स्पष्ट रूप से वर्णित किया जाना चाहिए। संबंधित प्राधिकारी की लिखित सम्मति के बिना अपराध की बाबत कोई भी अभियोजन संस्थित नहीं किया जा सकता। यदि मुख्य चिकित्सा और स्वास्थ्य अधिकारी लोक विश्लेषक की राय के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए मंजूरी दे देता है किन्तु केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक की राय से लोक विश्लेषक की राय की पुष्टि नहीं होती, तो इस आधार पर संस्थित अभियोजन, मंजूरी में वर्णित आधार से भिन्न आधार पर संस्थित किए जाने के कारण, विधिमान्य नहीं होगा।

राजस्थान–372

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973

—धारा 125 (3) स्पष्टीकरण :—भरण-पोषण के लिए पत्नी का आवेदन करना—पति द्वारा दूसरा विवाह कर लेने पर प्रथम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पत्नी उसके साथ रहने के लिए बाध्य नहीं है--अपना भरणपोषण करने में असमर्थ पत्नी का भरण-पोषण करने के लिए पति बाध्य है ।

मुम्बई–132

--धारा 167 (2) परन्तुक (क)--जमानत के लिए आवेदन--90 दिन की संगणना करने में गिरफ्तार किए जाने की तारीख अपवर्जित की जाएगी ।

मध्य प्रदेश–340

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971

--धारा 2 (क) और 10--अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के लिए दण्डित करने की शक्ति--उच्च न्यायालय को सिविल और आपराधिक दोनों प्रकार के अवमान के लिए दण्ड देने की शक्ति प्राप्त है ।

मध्य प्रदेश–466

--धारा 10 और उच्च न्यायालय द्वारा न्यायालय अवमान अधिनियम के अधीन विरचित मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय प्रक्रिया संबंधी नियमावली का नियम 7--सिविल अवमान--अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अवमानकर्ता को यह समाधान करने का अवसर दिया जाना कि उसने अधीनस्थ न्यायालय का अवमान नहीं किया और किए गए निर्देश में उच्च न्यायालय द्वारा यह विनिश्चय करना कि अवमानकर्ता के अपराध का संज्ञान किया जाए या नहीं--इस प्रक्रिया से अवमानकर्ता को अपना पक्ष दो बार प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त होता है कि उसने न्यायालय का अवमान नहीं किया है--उक्त नियम विधिमान्य है ।

मध्य प्रदेश–466

परिसीमा अधिनियम, 1963

--धारा 5, सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908--आदेश 22, नियम 9--पुनरीक्षण न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय के विवेकाधिकारजन्य आदेश में हस्तक्षेप उस दशा में अवश्य करेगा जब उसका प्रयोग विधि के सुस्थिर सिद्धांतों की अवज्ञा में किया जाए--परिसीमा अधिनियम की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धारा 5 के अर्थान्तर्गत पर्याप्त हेतुक वह होता है जो संवद्ध पक्षकार की शक्ति में न हो एवं वह उसकी उपेक्षा अकर्मण्यता अथवा असद्भाव का प्रतिफल न हो।

राजस्थान-469

प्राइज चिट्स एण्ड मनी सरकुलेशन स्कीम्स (बैनिंग) ऐक्ट, 1978 [इनामी चिट और धन परिचालन स्कीम्स (प्रतिषेध) अधिनियम, 1978]

—धारा 2(क) (ग) और धारा 3 सपठित मध्य प्रदेश लाटरी (नियंत्रक तथा कर) अधिनियम, 1973 की धारा 2(1) (क) 6 और धारा 7—एक सौ सदस्यों का समूह वनाकर और ऐसे समूह के प्रत्येक सदस्य से सदस्यताशुल्क के रूप में 5 रुपये प्रतिमास तथा अभिदाय के रूप में 180 रुपये प्रतिमास का संग्रहण करना तथा संगृहीत इस धन का लाट या ड्रा द्वारा समूह के किसी सदस्य को 30 मास के लिए प्रत्येक मास इनाम के रूप में प्रयोग करना उक्त अधिनियम में परिभाषित प्राइज चिट के अन्तर्गत आने के कारण इसे किसी भी प्रकार पारम्परिक चिट नहीं माना जा सकता परिणामत: इस प्रकार की प्राइज चिट चलाना उक्त धारा 3 का अतिलंवन करना है।

मध्य प्रदेश-402

—धारा 3 और मध्य प्रदेश लाटरी (नियंत्रण तथा कर) अधिनियम, 1973 की धारा 9—यदि कलक्टर ने स्कीम की अनुज्ञप्ति को इस आधार पर रद्द कर दिया है कि स्कीम राज्य अधिनियम के अधीन लाटरी नहीं है वलिक केन्द्रीय अधिनियम के अधीन प्राइज चिट है तो ऐसी दशा में कलक्टर को स्कीम के प्रोन्नायक द्वारा किए गए संग्रहण का प्रतिदाय करने का निदेश देने की अधिकारिता नहीं है

मध्य प्रदेश—402

बाम्बे रैंट्स, होटल एण्ड लाजिंग हाउस रेट्स कन्ट्रोल ऐक्ट (मुम्बई होटल और बासा किराया दर नियंत्रण अधिनियम), 1947

—धारा 12(3)(क)—उक्त, धारा, के अनुसार, यदि मकान-मालिक ने किराए की वकाया की, मकान का कब्जा प्राप्त करने सहित किराएदार को सूचना की तामील की है तो ऐसी स्थिति में किराएदार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मानक किराए संबंधी विवाद तब तक नहीं उठा सकता जब तक कि उसने सूचना की प्राप्ति की तारीख से एक मास के अन्दर इस प्रयोजन हेतु आवेदन फाइल न कर दिया हो।

मुम्बई–102

भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899

—धारा 33(1) और 38(2)—दस्तावेज के परिबद्ध कर लिए जाने तथा उसके संबंध में स्टाम्प कलक्टर को रिपोर्ट प्रस्तुत कर दिए जाने के बाद स्टाम्प कलक्टर के लिए केवल यही रास्ता शेष रह जाता है कि वह इस अधिनियम के अन्य उपबन्धों के अनुसार कार्रवाई करने के लिए अग्रसर हो – इस आधार पर, कि परिबद्ध दस्तावेज असफल हो गई है अथवा किसी अन्य प्रयोजन के लिए और आवश्यक नहीं रही है, यह कहना न्यायोचित नहीं है कि उस पर न्यून संदत्त स्टाम्प शुल्क की वसूली करना उचित अथवा वैध नहीं है।

मध्य प्रदेश– 347

मध्य प्रदेश लाटरी (नियंत्रण तथा कर) अधिनियम, 1973

—धारा 9—केन्द्रीय अधिनियम के अधीन लाटरी, जो प्राइज चिट है की बाबत अनुज्ञात अनुज्ञप्ति की दशा में उक्त धारा 9 लागू होगी तथा अनुज्ञप्ति के रद्दकरण की विधिमान्यता पर आपत्ति नहीं की जा सकती और इसके साथ साथ यदि कलक्टर ने अनुज्ञप्ति रद्द करने में अनुज्ञप्तिधारी को सुनवाई का अवसर नहीं दिया है किन्तु रिट पिटीशन में उच्च न्यायालय ने सुनवाई का पूर्ण अवसर प्रदान कर दिया है तो ऐसी स्थिति में सुनवाई का और अवसर प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

मध्य प्रदेश–402

मध्य प्रदेश सामान्य विक्रय कर अधिनियम, 1958 (1979 के अधिनियम द्वारा यथासंशोधित)

—धारा 16—उक्त धारा का प्रयोजन और विधिमान्यता—धारा 16 उन व्यापारियों को अनुतोष प्रदान करती है जिन्होंने अधिनियम में धारा 7ख के अन्तःस्थापन से पूर्व जारी की गई अधिसूचनाओं के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वारा उत्पन्न भ्रमात्मक धारणा के अधीन, विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह नहीं किया था —धारा विधिमान्य है ।

मध्य प्रदेश—364

मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट [मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियमन) अधिनियम], 1952 (1952 का अधिनियम सं० 17)

—धारा 2(क) और 3—वीडियो कैसिट रिकार्डर का टेलीविजन के पर्दे पर चलचित्रों के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसिटों को चलाना उक्त अधिनियम की धारा 2(क) में दी गई "सिनेमेटोग्राफ" (चलचित्र) की परिभाषा के अन्तर्गत आने के कारण भोजनालयों में इस प्रकार के चलचित्रों का प्रदर्शन तब तक प्रतिषिद्ध है जब तक कि ऐसे स्थानों पर इनके प्रदर्शन के लिए उक्त अधिनियम के अन्तर्गत अनुज्ञप्ति प्राप्त न कर ली गई हो ।

मध्य प्रदेश—435

—धारा 3 सपठित संविधान, 1950 की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 32—वीडियो कैसिट रिकार्डर और टेलीविजन की सहायता से भोजनालयों में चलचित्रों का प्रदर्शन उक्त प्रविष्टि 32 में आए हुए "चलचित्र" शब्द की परिधि के अन्तर्गत आने के कारण उक्त अधिनियम के विनियमनकारी उपबंधों द्वारा शासित होगा ।

मध्य प्रदेश—435

—धारा 5(ख)—उक्त अधिनियम की धारा 5(ख) के अधीन अनुज्ञापन प्राधिकारी से अनुज्ञप्ति मंजूर करने से पूर्व इस बात पर विचार करने की अपेक्षा की जाती है कि वह यह देखे कि जनता की सुरक्षा हेतु पर्याप्त रूप से पूर्वावधानियां बरती गई हैं या नहीं यही बात भोजनालयों पर भी लागू होती है ।

मध्य प्रदेश—435

महाराष्ट्र रिकोगनीशन आफ ट्रेड यूनियन एण्ड प्रिवेंशन आफ अनफेयर लेबर प्रैक्टिसेज ऐक्ट (महाराष्ट्र व्यवसाय संघ मान्यकरण और अनुचित श्रम व्यवहार निवारण अधिनियम), 1971

—धारा 30(2) और इसकी सूची III की मद सं० 1—उक्त धारा के अधीन प्रथमदृष्टया जब तक न्यायालय इस निष्कर्ष

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर नहीं पहुंच जाता कि हड़ताल या तालाबंदी अनुचित श्रम व्यवहार के कारण है तब तक किसी प्रकार का अन्तरिम अनुतोष मंजूर नहीं कर सकता और चूंकि अधिनियम की उक्त अनुसूची की मद सं० 1 का यथावत् रूप से अर्थान्वयन किए जाने के कारण इसके अन्तर्गत केवल वे ही हड़ताल आती हैं जो अधिनियम के उपबंधों के अन्तर्गत अवैध समझी जाती हैं।

मुम्बई–117

राजस्थान अभिधृति अधिनियम, 1955

—धारा 19, 114, 115 सहपठित राजस्थान भूराजस्व अधिनियम, 1956 धारा 114, 132, 140 और राजस्थान भूराजस्व (भू-अभिलेख) नियमावली, 1957 नियम 64-89 और 335(ख)—खसरा गिरदावरी को केवल प्रशासनिक सामग्री देने के लिए ही तैयार किया जाती है और यद्यपि वह 'अधिकारों के अभिलेख के तैयार किए जाने के लिए सुसंगत हो सकता है, वह, स्वतः, राजस्व विधि के अधीन 'अधिकारों के अभिलेख' का भाग नहीं हो सकता ; तथा उसमें की गई प्रविष्टि से राजस्व विधि के अधीन कोई विधिक अधिकार सर्जित नहीं होता है ।

राजस्थान–351

राजस्थान कृषि उपज विपणन अधिनियम, 1961

—धारा 4 सपठित धारा 14—धारा 4 तथा धारा 14 के संहत पुनर्विलोकन से यह दर्शित होता है कि जब धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी कर दी जाए और किसी क्षेत्र को मंडी क्षेत्र घोषित कर दिया जाए तो अधिनियम की धारा 14 के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त किए बिना किसी कृषि उपज का क्रय अथवा विक्रय नहीं किया जा सकता—धारा 4 की उपधारा (2) का स्पष्टीकरण केवल कृषि उपज के उत्पादक को न कि किसी अन्य को छूट प्रदान करता है ।

राजस्थान–448

राजस्थान परिसर (किराए और बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम, 1950

—धारा 13, 19(क) और 19(घ) सपठित सम्पत्ति अंतरण अधिनियम, 1882, धारा 112 तथा संविदा अधिनियम, 1872;

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धारा 23—उक्त धाराओं का समन्वित अर्थान्वयन यह है कि मकान-मालिक उस फायदे को अधित्यजित कर सकता है जो अधिनियम की धारा 13(4) का अनुपालन न किए जाने के कारण उसे उद्भूत हो क्योंकि उससे किसी लोक नीति का उल्लंघन नहीं होता और उक्त धारा 13(4) मकान-मालिक के ही फायदे और संरक्षण के लिए बनाई गई है।

राजस्थान–380

लाइसेंसिंग आफ वायरलैस रिसीविंग एपेरेटस रूल्स, 1965 और इण्डियन वायरलैस टेलीग्राफी (पजेशन) रूल्स, 1965

——वाणिज्यिक अनुज्ञप्ति वीडियो कैसिट रिकार्डर और टेलीविजन पर चलचित्रों के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसिटो को चलाने के लिए अनुज्ञात नहीं करती परिणामतः भोजनालय के स्वामी अपने-अपने भोजनालयों में इन कैसिटों को वीडियो कैसिट रिकार्डर और टेलीविजन पर प्रदर्शित नहीं कर सकते।

मध्य प्रदेश–435

विद्युत प्रदाय अधिनियम, 1948

—धारा 49——ईंधन अधिभार सारतः अतिरिक्त या अधिक भार है और उसकी परिधि उसके नाम के कारण सीमित नहीं की जा सकती है। प्रत्येक अधिभार अतिरिक्त है और इस प्रकार वह टैरिफ का भाग है। यदि ईंधन अधिभार की दरें ईंधन समायोजन खण्ड में अन्तर्विष्ट फार्मूला के अनुसार निकाली जाती हैं तो यह नहीं कहा जा सकता है कि बिजली बोर्ड को एक वर्ष के पश्चात् या अधिक से अधिक अगले वर्ष की समाप्ति से पूर्व ईंधन अधिभार की अन्तिम दरें निकालने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। फार्मूला के प्रत्येक संघटक को तैयार करने में बोर्ड द्वारा प्रस्तुत विभिन्न आंकड़ों के संबंध में पूर्ण अभिलेख देखना न तो साध्य है और न वह लोकहित में ही है और न ही पिटीशनरों को ऐसा कोई विधिक अधिकार प्राप्त है अपरंच, फार्मूला तैयार करने में किसी अवैध बाह्य विचारणा को सम्मिलित करने से पूर्ण कार्यवाही अवैध घोषित नहीं की जा सकती। केवल उस बाह्य विचारण का अपवर्जन ही पर्याप्त होगा

राजस्थान–411

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963

—धारा 16 सपठित संविदा अधिनियम, 1872 धारा 10—मूल्यार्थ सम्पत्ति क्रय करने वाले क्रेता के तौर पर अपीलार्थी को किसी संविदा के अस्तित्व में रहने की जानकारी न होना—अपीलार्थी मूल्यार्थ सद्भावी क्रेता है—उक्त धारा 16 प्रतिषेधात्मक है—अपीलार्थी क्रय की गई सम्पत्ति के लिए हकदार है ।

मद्रास–162

शब्द और पद

—अधित्यजन (वेवर)—अधित्यजन में किसी ज्ञात अधिकार अथवा वचन का स्वैच्छिक त्याग अथवा किसी कार्य से अभिव्यक्त या विवक्षित मुक्ति विवक्षित है । तब तक कोई भी अधित्यजन नहीं हो सकता है, जब तक कि संबंधित व्यक्ति को उसके अधिकार के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं दे दी जाती और वह ऐसे अधिकार की पूरी जानकारी रखते हुए साशय उसका परित्याग नहीं करता ।

राजस्थान–380

संविदा अधिनियम, 1872

—धारा 10 सपठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963, धारा 16 और 25—सम्पूरित संविदा की कसौटी—करार की शर्त के इस उपबंध से कि यदि 45 दिन के भीतर संव्यवहार पूरा नहीं किया जा सकता हो तो द्वितीय प्रत्यर्थी 12% ब्याज की दर से अग्रिम रकम वापस कर सकेगा—द्वितीय प्रत्यर्थी अग्रिम की रकम वापस कर देता है—करार में सौदेबाजी के सम्पूर्ण निबंधन अंतर्विष्ट नहीं थे—पक्षकार सुझावों और प्रतिसुझावों के संबंध में केवल बातचीत ही कर रहे थे और वाद के संबंध में उनमें मतैक्य नहीं हुआ था—करार का सम्पूरित संविदा होना आशयित नहीं था ।

मद्रास–162

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

--धारा 23 सपठित राजस्थान परिसर (किराए और बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम, 1950 धारा 13,19(क) और 19(घ) तथा सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 धारा 112—उक्त धाराओं का समन्वित अर्थान्वयन यह है, कि मकान मालिक उस फायदे को अधित्यजित कर सकता है, जो अधिनियम की धारा 13(4) का अनुपालन न किए जाने के कारण उसे उद्‌भूत हो क्योंकि उससे किसी लोकनीति का उल्लंघन नहीं होता और उक्त धारा 13(4) मकान—मालिक के ही फायदे और संरक्षण के लिए बनाई गई है ।

राजस्थान–380

संविधान, 1950

--अनुच्छेद 14,16 और 39(घ)--केन्द्रीय सरकार के भूतपूर्व नेशनल डिसिप्लिन स्कीम अनुदेशकों को मध्य प्रदेश राज्य सेवा में आमेलित करने के पश्चात यदि उन्हें राज्य काडर के व्यायाम अनुदेशकों के वेतनमान से कम वेतनमान दिया जाता है, जब कि दोनों के द्वारा किए जाने वाले कार्य को प्रकृति समान है, तो ऐसी स्थिति में ऐसा किया जाना अनुच्छेद 39(घ) के उपबंधों के प्रतिकूल होगा जो अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करने की कोटि में जाएगा ।

मध्य प्रदेश–374

--अनुच्छेद 16 सपठित केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 1965—नियम 23 (IV) सीधी भर्ती के रूप में लोक सेवा आयोग द्वारा वर्ग I पद पर चयन न किया जाना सरकार को कोई अपील न किया जाना अपील उक्त नियम 23 (iv) के अधीन प्रोन्नति के मामले में अधिक्रमण के विरुद्ध अपील का उपबंध किया गया है, और ऐसी अपील केवल उसी दशा में कायम रखी जा सकेगी जब अपीलार्थी को प्रोन्नति कोटे से वर्ग I में प्रोन्नति के बारे में विचार किया जाता है और उसके कनिष्ठ उसका अधिक्रमण करते हैं ।

हिमाचल प्रदेश–131

—अनुच्छेद 19(1)(छ) सहपठित आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955, धारा 2 और 3--संविधान में अन्तर्विष्ट नीति निदेशक तत्वों का लक्ष्य समतावादी समाज की स्थापना है, जिससे संविधान के ढांचे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के अन्तर्गत कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सके । यदि अधिरोपित निर्बन्धन राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के अनुरूप है, तो वे, कायम रखे जाने होंगे, क्योंकि व लोक हित में और स्पष्टतः युक्तियुक्त हैं । युक्तियुक्त निर्बन्धनों कों कों विभेदकारी नहीं माना जा सकता ।

राजस्थान–457

—अनुच्छेद 226—उक्त अनुच्छेद के अधीन उच्च न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलम्ब लेने का अधिकार ऐसी स्थिति में अस्वीकृत नहीं किया जा सकता, यदि पक्षकारों के बीच किए गए करारों से संविधान के किसी उपबंध का उल्लंघन होता है या उनसे नैसर्गिक न्याय के किसी सिद्धान्त का उल्लंघन होता है या वे विधि के कानूनी उपबंधों के विरुद्ध हैं ।

राजस्थान–411

—अनुच्छेद 226—अपीलार्थी का संघ लोक सेवा आयोग द्वारा हिमाचल प्रदेश वन सेवा वर्ग II के लिए चयन किया जाना और उस सेवा में स्थानापन्न रूप से नियुक्त किया जाना—बाद में भारतीय वन सेवा वर्ग I सीधी भर्ती कोटे के लिए संघ लोक सेवा आयोग द्वारा अपीलार्थी सहित हिमाचल प्रदेश वन सेवा वर्ग II अधिकारियों का साक्षात्कार किया जाना और अपीलार्थी के बैच के साथियों का चयन किया जाना—अपीलार्थी द्वारा अपने चयन न किए जाने के बारे में सरकार को अभ्यावेदन किया जाना और हिमाचल प्रदेश के उप-राज्यपाल द्वारा उनको नामंजूर किया जाना—विलम्ब और गफलत के कारण 13 वर्ष के पश्चात अपीलार्थी द्वारा न्यायालय का द्वार खटखटाना—किसी विधि या नियम के अधीन प्राधिकारियों को अभ्यावेदनों को करने के लिए कोई उपबन्ध न होना विशेषतः जब ऐसे प्राधिकारी अनुतोष मंजूर करने के लिए सक्षम नहीं है—ऐसे अभ्यावेदनों को फाइल करने के लिए स्पष्टीकरण का दिया जाना—विलम्ब और गफलत को न्यायालय द्वारा माफ न किया जाना—अभ्यावेदनों का बारबार किया जाना विलम्ब का स्पष्टीकरण नहीं होगा और न्यायालय विलम्बित और पुराने दावों पर विचार नहीं करेगा ।

हिमाचल प्रदेश–131

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

—सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 32 सपठित मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट [मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियमन) अधिनियम], 1952 (1952 का अधिनियम सं० 17) की धारा 3—वीडियो कैसिट रिकार्डर और टेलीविजन की सहायता से भोजनालयों में चलचित्रों का प्रदर्शन प्रविष्टि 32 में आए हुए "चलचित्र", शब्द की परिधि के अन्तर्गत आने के कारण उक्त अधिनियम के विनियमनकारी उपबंधों द्वारा शासित होगा ।

मध्य प्रदेश—435

सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882

—धारा 112 सपठित राजस्थान परिसर (किराए और वेदखली का नियंत्रण) अधिनियम, 1950 धारा 13, 19 (क) और 19(घ) तथा संविदा अधिनियम, 1872, धारा 23—उक्त धाराओं का समन्वित अर्थान्वयन यह है कि मकानमालिक उस फायदे को अधित्यजित कर सकता है, जो अधिनियम की धारा 13(4) का अनुपालन न किए जाने के कारण उसे उद्भूत हो क्योंकि उससे किसी लोक नीति का उल्लंघन नहीं होता और उक्त धारा 13 (4) मकानमालिक के ही फायदे और संरक्षण के लिए बनाई गई है ।

राजस्थान—380

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

—धारा 20—वाद संस्थित किए जाने के संबंध में न्यायालय की अधिकारिता—जब पक्षकार विधिपूर्वक यह संविदा करते हैं कि किसी विवाद के संबंध में विशिष्ट न्यायालय को अधिकारिता होगी तो ऐसा अनुबंध उस न्यायालय की अधिकारिता को नहीं छीन सकता जिसे स्वीकार्यतः अधिकारिता प्राप्त है—यह निस्संदेह सत्य है कि साधारणतः न्यायालयों को पक्षकारों के बीच हुए करार का सम्मान करना चाहिए किन्तु न्यायालय प्रत्येक मामले में ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है—न्यायालय न्याय करने की शक्ति से वंचित नहीं हो जाते हैं ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय धारा 115 के अधीन स्तक्षेप कर सकता है ।

मद्रास—139

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

—आदेश 20, नियम 12 और धारा 151—न्यायालय किराएदार को बेदखल करने के लिए किए गए वाद को खारिज करते हुए वाद लाए जाने की तारीख से डिक्री दिए जाने की तारीख तक किराए की डिक्री मंजूर करने के लिए सक्षम है।

मध्य प्रदेश—419

—आदेश 22, नियम 9, सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963—धारा 5—पुनरीक्षण न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय के विवेकाधिकारजन्य आदेश में हस्तक्षेप उस दशा में अवश्य करेगा जब उसका प्रयोग विधि के सुस्थिर सिद्धांतों की अवज्ञा में किया जाए—परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अर्थान्तर्गत पर्याप्त हेतुक वह होता है जो संबद्ध पक्षकार की शक्ति में न हो एवं वह उसकी उपेक्षा अकर्मण्यता अथवा असदभाव का प्रतिफल न हो।

राजस्थान—469

सीमा शुल्क अधिनियम, 1962

—धारा 57 और 58—प्राइवेट भाण्डागार का अनुज्ञापन—किसी भाण्डागारण स्टेशन पर किसी सार्वजनिक भाण्डागार के नियत न होने की स्थिति में अनुज्ञापन प्राधिकारी इस आधार पर, कि किसी अन्य भाण्डागारण स्टेशन पर सार्वजनिक भाण्डागार में निक्षेप—सुविधाएं उपलब्ध हैं, किसी प्राइवेट भाण्डागार के लिए, अनुज्ञप्ति संबंधी आवेदन को नामंजूर, अथवा उसके लिए अनुज्ञप्ति को निरस्त, अथवा अनुज्ञप्ति का नवीकरण करने से इंकार नहीं कर सकता।

मध्य प्रदेश—388

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विनिश्चय कर सकता है। इससे पूर्व कि ऐसे किसी आदेश को निर्णय कहा जाए ऐसे निर्णय का सम्बद्ध पक्षकार पर प्रतिकूल प्रभाव प्रत्यक्षतः और तुरन्त न कि अप्रत्यक्ष या दूरस्थ रूप से पड़ना चाहिए।"

विद्वान् न्यायाधीश ने विभिन्न उदाहरण दिए और इस बात का संकेत करने की सावधानी भी बरती है कि दिए गए उदाहरण दृष्टान्त स्वरूप हैं सर्वांगीण नहीं। अन्य बातों के साथ-साथ विद्वान् न्यायाधीश ने **टी० वी० तुलजाराम राव बनाम एम० के० आर० वी० अलगप्पा चेट्टियार**[1] वाले मामले में मुख्य न्या० सर व्हाइट द्वारा अधिकथित निम्नलिखित जांचों का अनुमोदन किया है अर्थात् यह कि निर्णय माने जाने के लिए अन्तर्वर्ती आदेश में उस समय जब कि यह आदेश किसी आनुषंगिक कार्यवाही में या स्वयं वाद में या कार्यवाहियों के किसी भाग में विवादास्पद प्रश्नों का विनिश्चय करता हो, अन्तिमता के लक्षण और आवश्यक बातें होनी चाहिएं।

14. न्या० सेन ने यह मत व्यक्त किया कि "किस प्रकार का आदेश खण्ड 15 के अर्थान्तर्गत निर्णय होगा यह बात प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर तथा पारित किए गए आदेश की प्रकृति और स्वभाव पर आधारित होगी ·····। मेरी राय में लैटर्स पेटेण्ट के खण्ड 15 में यथा अनुध्यात निर्णय की सर्वांगीण या व्यापक परिभाषा उचित रूप से नहीं दी जा सकती, अतः इस बात का स्मरण करना बुद्धिमानी होगी कि स्वयं लैटर्स पेटेण्ट में ही निर्णय शब्द की कोई परिभाषा नहीं दी गई। इस अभिव्यक्ति का आवश्यक रूप से प्रत्येक विशिष्ट मामले में ही अर्थान्वयन या निर्वचन किया जाएगा। तथापि, यह कहना निरापद होगा कि यदि कोई आदेश ऐसा है जो स्वयं वाद की विषय-वस्तु में के किसी विवाद को या उसके किसी भाग का अन्तिम रूप से अवधारण करता है या उसका न्यायालय की अधिकारिता के प्रश्न पर या परिसीमा के प्रश्न पर वही प्रभाव होता है तो ऐसा आदेश सामान्यता लैटर्स पेटेण्ट के खण्ड 15 के अर्थान्तर्गत 'निर्णय' होगा। किन्तु यह न समझा जाए कि मैं यह कह रहा हूं कि अन्य प्रकार का कोई आदेश लैटर्स पेटेण्ट के खण्ड 15 के अर्थान्तर्गत ऐसा 'निर्णय' नहीं हो सकता जो इसके उपबंधों के अन्तर्गत अपीलीय हो।

1 आई० एल० आर० 35 मद्रास 1.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

15. उपरोक्त विनिश्चय में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित जांचों को लागू करने पर हमारा मत यह है कि प्रस्तुत अपील कायम रखी जा सकती है। प्रत्यर्थियों ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन वाद संस्थित करने के लिए मंजूरी हेतु आवेदन फाइल किया है जिसका अपीलार्थियों द्वारा विरोध किया जा रहा है। इस प्रश्न का विनिश्चय कि क्या प्रत्यर्थियों द्वारा प्राथित वाद संस्थित करने के लिए इजाजत दी जा सकती है, मंजूरी को लागू होने वाले सिद्धान्तों के लागू करने के आधार पर किया जाएगा। अपीलार्थियों को इस बात की अनुज्ञा दी गई है कि वे प्रत्यर्थियों की प्रतिपरीक्षा कर सकें। उच्चतम न्यायालय ने 1982 की विशेष इजाजत के लिए किए गए पिटीशन सं० 6040 को खारिज करते हुए अपने आदेश में यह मत व्यक्त किया कि प्रति परीक्षा मंजूरी के प्रश्न पर और मंजूरी को लागू होने वाले सिद्धान्त तक ही सीमित होगी। अपीलार्थियों ने यह पक्षाधार लिया है कि प्रत्यर्थियों का थानुथी न्यास में स्वयं का कोई हित नहीं है, यह की वे प्रतिनिधि की हैसियत में वाद नहीं ला रहे हैं और यह कि वे अधिकांशतः अपने पिता बी०आर० आदित्यन के हाथों में कठपुतली हैं। इस दलील को साबित करने के लिए अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थियों की प्रभावी रूप से प्रतिपरीक्षा करने के लिए प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए वादपत्र की प्रति में सूचीबद्ध किए गए दस्तावेज़ों का निरीक्षण करना चाहा है। जब अपीलार्थियों को इस बात की अनुज्ञा दे दी गई है कि वे प्रत्यर्थियों की प्रतिपरीक्षा कर सकें तब वे उन दस्तावेजों को प्रस्तुत किए जाने के लिए विवश कर सकते हैं जो न्यायालय के समक्ष विवाद्यक का न्यायनिर्णयन करने के लिए आवश्यक हैं। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 का उद्देश्य उन प्रश्नों का, जो लोक प्रशासन से, धार्मिक या पूर्त न्यासों से तथा उन न्यासियों के विरुद्ध जिनका कर्त्तव्य ऐसे न्यासों का प्रशासन करना है, अयुक्तिमान् व्यक्तियों द्वारा विविध और तंग करने वाले वाद फाइल करने से रोकने से संबंधित है, अवधारण करने के प्रयोजन के लिए विशेष प्रकार की कार्यवाहियों का उपबंध करने के लिए आशयित हैं। वाद मुख्य रूप से जनसाधारण की ओर से किसी लोक अधिकार को प्रमाणित करने के लिए होना चाहिए किन्तु निजी अधिकारों का अतिलंघन इस धारा की परिधि से बाहर है। इस कारण निश्चित रूप से इस धारा में यह उपबंध किया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया है कि वाद न्यायालय की इजाज़त से ही संस्थित किया जा सकता है। अपीलार्थियों को प्रतिपरीक्षा करने का अधिकार देने का उद्देश्य अपीलार्थियों को अपने इस पक्षकथन को न्यायोचित बनाने में समर्थ करने के लिए है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन वाद संस्थित करने के लिए मंजूरी को लागू होने वाले सिद्धांतों को साबित करने के आधार पर प्रत्यर्थियों को कोई इजाज़त नहीं दी जा सकती। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन आवेदन की प्रभावी प्रतिरक्षा के लिए तथा प्रत्यर्थियों की प्रतिपरीक्षा करने के लिए उन्हें दिए गए अवसर का प्रभावी रूप से प्रयोग करने के लिए भी अपीलार्थी दस्तावेज़ों का निरीक्षण करने के हकदार हैं, यह कि उनके लिए इस दलील को साबित करना आवश्यक है कि प्रत्यर्थी अपने पिता के हाथों की कठपुतली हैं, यह कि वास्तव में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन इजाज़त के लिए आवेदन संस्थित करने के पीछे वास्तविक रूप से पिता ही है और यह कि प्रत्यर्थी न तो लोक का प्रतिनिधित्व करते हैं और न ही उनका न्यास में कोई हित है। चूंकि जिस आदेश के विरुद्ध अपील की गई है, उसमें वादियों द्वारा अवलम्ब लिए गए दस्तावेज़ों का निरीक्षण करने के लिए अनुज्ञा प्रदान करने हेतु अपीलार्थियों द्वारा किए गए निवेदन को नकार दिया गया है अतः यह समझा जाना चाहिए कि इसका अपीलार्थियों पर प्रत्यक्ष और तुरन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जिस आदेश के विरुद्ध अपील की गई है उसमें न केवल प्रत्यर्थियों की प्रभावी रूप से प्रतिपरीक्षा करने के लिए अपीलार्थियों को मंजूर किए गए मूल्यवान अधिकार पर प्रतिकूलतः प्रभाव पड़ा है बल्कि उनके प्रति घोर अन्याय हुआ है क्योंकि उनका पक्षकथन यह है कि यदि उन्हें इन दस्तावेजों का निरीक्षण करने के लिए अनुज्ञात कर दिया जाता है तो वे इस बात को साबित करने में समर्थ हो सकेंगे कि ये दस्तावेज़ प्रत्यर्थियों को केवल उनके पिता द्वारा हस्तगत किए गए थे और यह कि प्रत्यर्थियों को थानुथी न्यास की बाबत कोई प्रत्यक्ष जानकारी या सूचना नहीं है। अतः हमारा यह मत है कि जिस आदेश के विरुद्ध अपील की गई है, उसमें अन्तिमता के गुण और लक्षण हैं और यह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन प्रत्यर्थियों द्वारा प्रारम्भ की गई कार्यवाहियों के एक महत्वपूर्ण पहलू का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विनिश्चय करता है। हमने **टी० वी० तुलजाराम राव बनाम एम० के० आर० वी० अलगप्पा चेट्टियार**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित और **शाह बाबूलाल खीमजी बनाम जयाबेन डी० कानिया**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुमोदित की गई जांचों को पहले ही उद्धृत कर दिया है अर्थात् यह कि निर्णय होने के लिए अन्तर्वर्ती आदेश में, या तो उस समय जब कि आदेश आनुषंगिक कार्यवाही में या स्वयं वाद में या कार्यवाहियों के किसी भाग में विवादास्पद प्रश्न का विनिश्चय करता हो, अन्तिमता के गुण और विशेष बातें निहित होनी चाहिएं। श्री यू० एन० आर० राव ने हमारा ध्यान **टी० वी० तुलजाराम राव** बनाम **एम० के० आर० वी० अलगप्पा चेट्टियार**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित जांचों में से, जिन्हें **शाह बाबूलाल खीमजी** बनाम **जयाबेन डी० कानिया**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय में उद्धृत किया गया है, एक जांच की ओर आकृष्ट किया है अर्थात् न्यायालयों को विचारण न्यायाधीश को पर्याप्त अवसर देना चाहिए और यह उपधारणा करनी चाहिए कि ऐसे किसी वैवेकिक आदेश को, जिसे वह पारित करता है, तब तक सही माना जाना चाहिए जब तक कि यह स्पष्ट रूप से विधितः गलत न हो या घोर या सारवान् अन्याय कारित न करता हो। हमारा यह मत है कि इस मामले में अपीलार्थियों को वादपत्र में उपाबद्ध सूची में की दस्तावेज़ों का निरीक्षण करने का अवसर देने से इन्कार करने के कारण उनके प्रति घोर और सारवान् अन्याय हुआ है। इस दृष्टिकोण से हमारा यह मत है कि विद्वान् न्यायाधीश का आदेश लैटर्स पेटेण्ट के खण्ड 15 के अर्थान्तर्गत निर्णय है और यह कि यह अपील कायम रखी जा सकती है। हम प्रारम्भिक आक्षेप को उलटते हैं।

16. श्री यू० एन० आर० राव ने मुख्य रूप से इस तर्क पर जोर दिया की प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थियों के विरुद्ध इस प्रकार का कोई वाद संस्थित नहीं किया है, यह कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11 नियम 14 केवल उन वादों को और उसके पक्षकारों को लागू होगा, अतः अपीलार्थी सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92

---

[1] आई० एल० आर० 35 मद्रास 1.

[2] (1981) 4 एस० सी० सी० 8.

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के अधीन इजाज़त प्राप्त होने से पूर्व दस्तावेज़ों का निरीक्षण करने की मांग करने के अधिकारी नहीं हैं और यह कि वाद प्ररूपिकतः संस्थित किया गया है। हम प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल की इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 में यह कहा गया है कि महाधिवक्ता या न्यास में हित रखने वाले ऐसे दो या अधिक व्यक्ति जिन्होंने (न्यायालय की इजाज़त) अभिप्राप्त कर ली है, ऐसा वाद चाहे वह प्रतिविरोधात्मक हो या नहीं, आरम्भिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय में या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त सशक्त किए गए किसी अन्य न्यायालय में, जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर न्यास की सम्पूर्ण विषय-वस्तु या उसका कोई भाग स्थित है, खण्ड (क) से लेकर (ज) तक में उल्लिखित अनुतोषों में से किसी अनुतोष के लिए डिक्री अभिप्राप्त कर सकते हैं। आरम्भिक अधिकारिता नियमावली (ओरीजिनल साइड रूल्स) के आदेश 3 नियम 1 में यह व्यादिष्ट किया गया है कि वाद संस्थित करने के लिए इजाज़त हेतु आवेदन के साथ आशयित वाद में वादपत्र या उसकी प्रति साथ होनी चाहिए। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 की स्कीम यह है कि वाद सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के उपबंधों के अनुरूप फाइल किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में न्यायालय का स्वयं का यह समाधान हो जाना चाहिए कि क्या वे व्यक्ति जो इजाज़त चाह रहे हैं न्यास में हित रखते हैं, और न्यास लोक न्यास है और क्या इस बात को समझने के लिए प्रथमदृष्टया आधार है कि न्यास का भंग किया गया है और क्या वादपत्र में प्रार्थित अनुतोष सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के खण्ड (क) से (ज) तक में उल्लिखित अनुतोषों के अन्तर्गत आता है। इस आधार पर विचार करने के पश्चात् वादपत्र आवश्यक रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन वाद फाइल करने के लिए इजाज़त हेतु किए गए आवेदन का भाग है। इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है जैसा कि श्री वसन्त पाई ने संकेत किया है कि जब एक बार न्यायालय द्वारा इजाज़त दे दी जाती है तब इजाज़त अभिप्राप्त करने वाले व्यक्तियों के लिए यह सम्भव नहीं है कि वे न्यायालय की मंजूरी के बिना वाद फाइल करने वाले पक्षकारों के नामों में परिवर्तन कर सकें या वाद की सारवान् प्रकृति में परिवर्तन कर सकें या वाद को विस्तृत कर सकें।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हमारी राय में इस वाद के बारे में यह समझा जाएगा कि यह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन इजाजत के लिए दिए गए आवेदन के फाइल किए जाने के साथ प्रारम्भ हुआ है। परिणामत: दस्तावेज़ों के प्रस्तुत किए जाने और निरीक्षण किए जाने से सुसंगत आरंभिक अधिकारिता नियमावली या सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध कार्यवाहियों को लागू होंगे।

17. आरम्भिक अधिकारिता नियमावली के आदेश 1 नियम 3 में यह कहा गया है कि नियमावली द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से उपबंधित विस्तार के सिवाय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के उपबंध सभी कार्यवाहियों को लागू होंगे। इसमें आगे यह कहा गया है कि इसके परिशिष्ट III में उल्लिखित नियम और प्ररूप तथा सभी पूर्ववर्ती नियम और प्ररूप एवं सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध जहां तक कि ऐसे उपबंध नियमों और प्ररूपों से असंगत हैं, निरसित और अतिष्ठित कर दिए गए हैं तथा उसमें उल्लिखित नियम, आदेश और प्ररूप इनके बदले में लागू होंगे। आदेश 1 नियम 4(12) में अभिवचन को परिभाषित किया गया है जिसमें वादपत्र, लिखित कथन, जवाब में किया गया कथन, पिटीशन, विशेष मामला अपील का ज्ञापन और आक्षेपों का ज्ञापन सम्मिलित हैं। आदेश 2 नियम 1 में यह कहा गया है कि वाद न्यायालय में या ऐसे अधिकारी को जिसे मुख्य न्यायाधीश इस निमित्त नियुक्त करे, वादपत्र पेश करके प्रारम्भ किया जाएगा। अन्य सभी कार्यवाहियां पिटीशन द्वारा तब तक प्रारम्भ की जाएंगी जब तक कि इन नियमों द्वारा या किसी विशेष अधिनियम के अधीन विरचित नियमों द्वारा अन्यथा उपबंधित न किया जाए। आदेश 3 नियम 1 में यह कहा गया है कि न्यायालय में वाद संस्थित करने की इजाजत के लिए आवेदन न्यायाधीश द्वारा जारी किए गए ऐसे समन द्वारा किया जाएगा जिसका शीर्षक "आशयित वाद के मामले में" होगा, तथा यह प्रतिवादी के निवास स्थान और उसके पेशे का कथन करने वाले शपथपत्र द्वारा समर्थित होगा तथा न्यायालय में वाद संस्थित करने का कारण भी देना होगा। आशयित वाद में आवेदन के साथ वाद पत्र या उसकी प्रति होगी। आदेश 4 नियम 1 में यह कहा गया है कि "वाद रजिस्ट्रार को इसके परिशिष्ट II के प्ररूप 5 में वादपत्र, जिसमें संहिता द्वारा विहित विशिष्टियां अन्तर्विष्ट होंगी, रजिस्ट्रार को देते हुए संस्थित किया जाएगा। लेखाओं विषयक कथन और ऐसे किसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दस्तावेज़ का जिस पर वादी ने अवलम्ब लिया है, वादपत्र में उल्लेख नहीं किया जाएगा किन्तु इसके प्रति संक्षेप में निर्देश किया जाएगा । वादपत्र के पाद-टिप्पण में उसके साथ प्ररूप 11 में फाइल किए गए दस्तावेजों की ऐसी सूची होगी जो वादी द्वारा या उसके अधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षरित होगी अथवा यथा पूर्वोक्त हस्ताक्षरित यह कथन होगा कि इसके साथ कोई दस्तावेज फाइल नहीं की गई है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7, नियम 14(2) में उल्लिखित दस्तावेज़ों की सूची फाइल करना आवश्यक नहीं होगा ।"

सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14 में निम्नलिखित कहा गया है :—

(1) जहां वादी अपने कब्जे या शक्ति में की दस्तावेज़ के आधार पर वाद लाता है, वहां वादपत्र उपस्थित किए जाने के समय वह उसे न्यायालय में पेश करेगा और उसी समय दस्तावेज़ को या उसकी प्रति को वादपत्र के साथ फाइल किए जाने के लिए परिदत्त करेगा ।

(2) जहां वह अपने दावे के समर्थन में साक्ष्य के रूप में किन्हीं अन्य दस्तावेजों पर निर्भर करता है (चाहे वे उसके कब्जे या शक्ति में हों या न हों) वहां वह ऐसी दस्तावेज़ों को ऐसी सूची में प्रविष्ट करेगा जो वादपत्र में जोड़ी जानी है या वादपत्र के साथ उपाबद्ध की जानी है ।"

18. आदेश 7, नियम 14 में दो प्रकार की दस्तावेज़ों के प्रति निर्देश किया गया है अर्थात् (1) ऐसी दस्तावेजें जिनके आधार पर वादियों ने वाद फाइल किया है और (2) ऐसी दस्तावेजें जिन पर वादियों ने अपने दावे के समर्थन में साक्ष्य के रूप में निर्भर किया है । पूर्ववर्ती दशा में वे वादपत्र सहित दस्तावेज़ प्रस्तुत करने के लिए व्यादिष्ट हैं तथा पश्चात्वर्ती दशा में उन्हें दस्तावेज़ों को ऐसी सूची में प्रविष्ट करना होता है जो वादपत्र के साथ जोड़ी जाती है या उपाबद्ध की जाती है ।

19. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11 नियम 15 में निम्नलिखित कहा गया है :—

"वाद का हर पक्षकार किसी भी ऐसे अन्य पक्षकार को, जिसके अभिवचनों या शपथपत्रों में किसी दस्तावेज़ के प्रति निर्देश

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया गया है, या जिसने अपने अभिवचनों से उपाबद्ध किसी सूची में किसी दस्तावेज की प्रविष्टि की है, किसी भी समय यह सूचना देने का हकदार होगा कि वह कोई ऐसी दस्तावेज ऐसी सूचना देने वाले पक्षकार या उसके प्लीडर के निरीक्षण के लिए पेश करे और उसे या उन्हें उसकी प्रति लेने दे और ऐसी सूचना का अनुपालन न करने वाला कोई भी पक्षकार उसके पश्चात् ऐसी किसी भी दस्तावेज को ऐसे वाद में अपनी ओर से साक्ष्य में देने के लिए तब तक स्वतंत्र नहीं होगा जब तक कि वह न्यायालय का यह समाधान न कर दे कि वह वाद में प्रतिवादी है और ऐसी दस्तावेज का संबंध केवल उसके अपने हक से है या उसके पास कोई ऐसा अन्य हेतुक या प्रतिहेतु था जिसे न्यायालय ऐसी सूचना का अनुपालन न करने के लिए पर्याप्त समझे, जिस दशा में न्यायालय खर्चों और अन्य बातों के बारे में ऐसे निबन्धनों पर जो न्यायालय ठीक समझे, उसे साक्ष्य में रखे जाने के लिए अनुज्ञा दे सकेगा।"

20. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11 नियम 15 में आए हुए "या जिसने अपने अभिवचनों से उपाबद्ध किसी सूची में किसी दस्तावेज की प्रविष्टि की है" शब्द 1976 के संशोधन अधिनियम सं० 104 द्वारा अन्तःस्थापित किए गए हैं।

21. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 11 नियम 18 निम्न प्रकार है:—

"(1) जहां वह पक्षकार जिस पर नियम 15 के अधीन सूचना की तामील की गई है, निरीक्षण के लिए समय की ऐसी सूचना देने का लोप करता है या निरीक्षण करने देने पर आक्षेप करता है या अपने प्लीडर के कार्यालय से भिन्न स्थान पर निरीक्षण कराने की प्रस्थापना करता है वहां न्यायालय निरीक्षण चाहने वाले पक्षकार के आवेदन पर ऐसे स्थान में और इस प्रकार जो न्यायालय ठीक समझे, निरीक्षण के लिए आदेश कर सकेगा:

परन्तु जब और जहां तक न्यायालय की यह राय है कि वाद के ऋजु निपटारे के लिए या खर्चों में बचत करने के लिए यह आवश्यक नहीं है तब और वहां तक ऐसा आदेश नहीं किया जाएगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(2) उन दस्तावेज़ों को छोड़कर जो उस पक्षकार के अभिवचनों, विशिष्टियों या शपथपत्रों में निर्दिष्ट हों जिसके विरुद्ध आवेदन किया गया है या उसके दस्तावेज़ों संबंधी शपथपत्र में प्रकट की गई हों, दस्तावेज़ों के निरीक्षण के लिए कोई भी आवेदन ऐसे शपथपत्र पर आधारित होगा जो यह दर्शित करता हो कि वे दस्तावेजें कौन सी हैं जिनका निरीक्षण किया जाना है, यह कि आवेदन करने वाला पक्षकार उनका निरीक्षण करने के लिए हकदार है और यह कि वह दूसरे पक्षकार के कब्जे या शक्ति में हैं। जब और जहां तक न्यायालय की यह राय है कि वाद के ऋजु निपटारे के लिए या खर्चों में बचत करने के लिए यह आवश्यक नहीं है तब और वहां तक न्यायालय ऐसी दस्तावेज़ों के निरीक्षण के लिए ऐसा आदेश नहीं करेगा।"

22. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11, नियम 15 के संशोधन की इसलिए आवश्यकता पड़ी क्योंकि इस प्रश्न पर कि क्या वादपत्र में उपाबंध दस्तावेज़ों की सूची अभिवचनों का भाग है, विभिन्न उच्च न्यायालयों की राय में मतभेद था। **रामनाथन बनाम अन्नामलाई**[1] वाले मामले में यह प्रश्न उठा था कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11 नियम 15 में प्रयुक्त "के प्रति निर्देश" अभिव्यक्ति जैसी कि यह मूलतः थी, "वादपत्र के साथ उपाबद्ध सूची में की गई प्रविष्टि" अभिव्यक्ति के समतुल्य है और यह भी कि क्या दस्तावेज़ों का निरीक्षण लिखित कथन फाइल करने से पूर्व भी मंजूर किया जा सकता है। न्या० करगेनवन ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :—

"आदेश 7 नियम 14 को आदेश 11, नियम 15 के साथ पढ़ने का युक्तियुक्त तरीका यह अभिनिर्धारित करना है कि क्या अभिव्यक्ति 'के प्रति निर्देश' 'सूची में की गई प्रविष्टि' के समतुल्य है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रयोजन के लिए सूची के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि यह वादपत्र का भाग है जिसका उदाहरण सम्पत्ति विषयक अनुसूची है। इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि नियम 14 आदेश 7 का शीर्षक 'वे दस्तावेज़ों

---

[1] ए० आई० आर० 1931 मद्रास 825.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिन पर वादपत्र में निर्भर किया गया है' है जो व्यक्त किए गए इस मत का समर्थन करता है।"

विद्वान् न्यायाधीश के समक्ष उठाई गई इस दलील की बाबत कि आदेश 11 नियम 18 में न्यायालय को दस्तावेज़ों के निरीक्षण के लिए की गई प्रार्थना को मंजूर करने या इनकार करने का विवेकाधिकार दिया गया है और यह कि वादी के लिए यह अनुचित होगा कि उसके दस्तावेज़ों का निरीक्षण प्रतिवादी के लिखित कथन फाइल करने से पूर्व अनुज्ञात कर दिया जाए, विद्वान् न्यायाधीश ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :--

> "मेरा निष्कर्ष यह है कि यद्यपि न्यायालय को आदेश 11, नियम 18(1) के परन्तुक के निबन्धनों तक ही सीमित विवेकाधिकार है तथापि इस सामान्य आधार पर कि लिखित कथन फाइल करने से पूर्व ऐसा नहीं चाहा गया है, निरीक्षण करने से इनकार करने के विवेकाधिकार का प्रयोग करना उचित नहीं होगा।"

23. उपर्युक्त विनिश्चय के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया जाना है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 11 नियम 15 तथा इसका आदेश 11 नियम 18 इस मामले को लागू होते हैं।

24. इस बात का पुनः स्मरण किया जा सकता है कि 1976 में संशोधन से पूर्व इस बात की बाबत राय में भिन्नता थी कि क्या न्यायालय अभिवचनों से उपाबद्ध किसी सूची में प्रविष्ट किए गए दस्तावेज़ों का निरीक्षण करने का आदेश दे सकता है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है **रामनाथन बनाम अन्नामलाई**[1] वाले मामले में न्या० करगेनवन ने यह मत अपनाया था कि सूची को वादपत्र का भाग समझा जाना चाहिए। किन्तु अब यह संविवाद सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11 नियम 15 के संशोधन द्वारा निश्चित कर दिया गया है अब यह वाद के प्रत्येक पक्षकार को इस बात के लिए समर्थ बनाता है कि वह किसी ऐसे अन्य पक्षकार को, जिसने अपने अभिवचनों के साथ उपाबद्ध किसी सूची में किसी दस्तावेज़ की प्रविष्टि की है, सूचना दे, ऐसी सूचना देने वाले पक्षकार के या उसके प्लीडर के निरीक्षण के लिए उस दस्तावेज़ को प्रस्तुत करे तथा उसे या उन्हें उसकी प्रतियां लेने दे।

[1] ए० आई० आर० 1931 मद्रास 825

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

25. यह उपधारणा करते हुए भी कि वाद का प्रारम्भ नहीं हुआ है, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन वाद फाइल करने की इजाज़त के लिए किसी पक्षकार द्वारा फाइल किए गए आवेदन के बारे में यह कहा जा सकता है कि यह सिविल कार्यवाही है तथा सिविल प्रक्रिया संहिता में वादों से उपबंधित प्रक्रिया का वहां तक अनुसरण किया जाएगा जहां तक कि इसे उन कार्यवाहियों पर लागू किया जा सके। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 141 निम्न प्रकार है :—

> "उस प्रक्रिया का जो वादों के विषय में इस संहिता में उपबंधित है, सिविल अधिकारिता वाले किसी भी न्यायालय में की सभी कार्यवाहियों में वहां तक अनुसरण किया जाएगा जहां तक वह लागू की जा सके।
>
> स्पष्टीकरण : इस धारा में 'कार्यवाही' शब्द के अन्तर्गत आदेश 9 के अधीन कार्यवाही है किन्तु इसके अन्तर्गत संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन कार्यवाही नहीं है।"

जहां तक कोई कार्यवाही सिविल अधिकारिता वाले न्यायालय में की कार्यवाही है, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 141 में यह व्यादिष्ट किया गया है कि वादों की बावत संहिता में उपबंधित प्रक्रिया का वहां तक अनुसरण किया जाएगा जहां तक कि इसे लागू किया जा सके। श्री यू० एन० राव ने यहां तक तर्क पेश किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 141 सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन फाइल किए गए किसी आवेदन पर लागू नहीं होगी अतः यह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन वाद फाइल करने की इजाज़त के लिए फाइल किए गए आवेदन को लागू नहीं हो सकती। हम विद्वान काउन्सेल द्वारा दी गई इस दलील से सहमत नहीं हैं। हमारा निष्कर्ष स्पष्टीकरण द्वारा समर्थित है जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि "कार्यवाहियां" अभिव्यक्ति के अंतर्गत आदेश 9 के अधीन कार्यवाहियां भी हैं किन्तु इसके अंतर्गत भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन की कोई कार्यवाही नहीं आती। हमारा यह मत है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 141 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन फाइल की गई सभी कार्यवाहियों को भी लागू होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

26. **रामचन्द्र** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में यह प्रश्न उद्भूत हुआ था कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के उपबंध सामान्यत: ऐसी कार्यवाही को लागू होंगे जो सिविल न्यायालय के समक्ष हो और जो दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 146(1) के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए निर्देश से उद्भूत हुई हो। उच्चतम न्यायालय ने इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप में दिया। उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 146 (1) के अधीन निर्देश पर की गई कार्यवाही, में जिसे सिविल न्यायालय द्वारा ग्रहण किया गया है, मूल कार्यवाही न होने के कारण सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 141 के उपबंध लागू नहीं होते अत: सिविल प्रक्रिया संहिता के वे उपबन्ध, जो वाद से सम्बन्धित हैं, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 146 (1) के अधीन उसे निर्देश पर सिविल न्यायालय द्वारा ग्रहण की गई कार्यवाही पर लागू नहीं होते मुन्शी **राम** बनाम **बनवारी लाल** वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के प्रति निर्देश करते हुए उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया:--

> "इस प्रकार हाल ही में इस न्यायालय ने मुन्शी राम बनाम बनवारी लाल, (ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 903) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि माध्यस्थम अधिनियम 1940 की धारा 41 के अधीन तथा सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 141 के अधीन भी वह न्यायालय, जिसके समक्ष माध्यस्थम अधिकरण द्वारा दिया गया पंचाट फाइल किया गया है, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 3 के अधीन पक्षकारों के विवाद में उनके समझौते को अनुज्ञात करने के लिए उसके निबन्धनों के अनुसार डिक्री पारित करने के लिए सक्षम है। यद्यपि इस मामले का विवेचन नहीं किया गया है तथापि इस न्यायालय ने इस मत के आधार पर कार्य किया है कि धारा 141 में आई हुई 'सिविल कार्यवाही' अभिव्यक्ति वाद की तरह या संरक्षक आदि नियुक्त करने के लिए किए गएं आवेदन की तरह की मूल कार्यवाही तक सीमित नहीं है वरन् यह ऐसी कार्यवाही को भी लागू होती है जो मूल कार्यवाही नहीं है।

---

1. ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 1888.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस तरह यद्यपि हम यह कहते हैं कि इस मामले में इस बात पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या सिविल न्यायालय के समक्ष की कार्यवाही धारा 141 द्वारा यथाअनुध्यात सिविल कार्यवाही है या नहीं तथापि यह कहने के लिए पर्याप्त नजीर है कि यह सिविल कार्यवाही है।"

27. उपरोक्त विनिश्चय से पूर्व जो कुछ भी सदेह था अब इस संदेह को उक्त विनिश्चय द्वारा तय कर दिया गया है कि धारा 141 में आए हुए "सिविल कार्यवाहियां" शब्द आवश्यक रूप से किसी वाद या संरक्षक आदि को नियुक्त करने के लिए किए गए आवेदन की भांति की मूल कार्यवाही तक ही सीमित नहीं है, किन्तु यह उन सभी कार्यवाहियों को लागू होती है जो मूल कार्यवाहियां नहीं है।

28. **एम० एल० सेठी** बनाम **आर० पी० कपूर** वाले मामले में उच्चतम न्यायालय से इस प्रश्न पर विचार करने की अपेक्षा की गई थी कि क्या दस्तावेजों के प्रकटीकरण से सम्बन्धित आदेश 11 नियम 12 के उपबन्ध आदेश 33 के अधीन की कार्यवाहियों को लागू होंगे। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आदेश 11 नियम 12 के उपबंध लागू होंगे। **विजय प्रताप सिंह** बनाम **डकहरन नाथ सिंह**[2] वाले मामले में दिए गए अपने स्वयं के विनिश्चय का अनुसरण करते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह मत अपनाया कि वाद उस समय से आरम्भ होगा जब कि अकिंचन के रूप में वाद फाइल करने की अनुज्ञा हेतु आवेदन उपस्थित किया जाता है जैसा कि आदेश 33 द्वारा अपेक्षित है अतः आदेश 11 नियम 12 के उपबन्ध, जो दस्तावेजों के प्रकटीकरण से सम्बन्धित हैं, आदेश 33 के अधीन की कार्यवाहियों को शब्दश: लागू होंगे। इस विषय पर आंग्ल विधि के प्रति निर्देश करते हुए उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :—

"इंग्लैण्ड की सुप्रीम कोर्ट में किसी ऐसे 'वाद हेतुक' या किसी ऐसे 'विषय' में जिसको सुप्रीम कोर्ट के नियम लागू

---

1. ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 2379.
2. ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 941.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होते हैं प्रकटीकरण का आदेश दिया जाता है और 'वादहेतुक' के अन्तर्गत वादी और प्रतिवादी के बीच कोई कार्रवाई, वाद या अन्य मूल कार्यवाही है। सामान्यतया प्रकटीकरण विशुद्धता दाण्डिक कार्यवाहियों के सिवाय सभी कार्यवाहियों में अनुदत्त किया जाता है तथा सिविल कार्यवाहियों में वहां अनुदत्त किया जाता है जहां कि कार्रवाई समपहरण या किसी शास्ति को प्रवर्तित करने के लिए मात्र साबित करने हेतु की जाती है। (हाल्सबरीज लाज आफ इंग्लैण्ड, जिल्द 12, पृ० 2)। यह अभिनिर्धारित करने का कोई कारण नहीं है कि यदि खर्चे बचाए जा सकें तो आदेश 33 के अधीन कार्यवाहियों में की प्रक्रिया का आश्रय लिया जाना महत्वपूर्ण नहीं है।"

29. इस दलील के संबंध में कि प्रकटीकरण के लिए किए गए आवेदन में प्रकट किए जाने के लिए चाहे गए दस्तावेजों को विनिर्दिष्ट न किया गया है, उच्चतम न्यायालय ने पुनः निम्नलिखित मत अपनाया है:

"हम यह समझते हैं कि उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में गलती पर है कि चूंकि प्रकटीकरण के लिए किए गए आवेदन में प्रकट किए जाने वाले दस्तावेज़ों को विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है निचले न्यायालय ने प्रकटीकरण का आदेश देने में अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में अवैध रूप से कार्य किया है। सामान्यतया पक्षकार ऐसे सभी दस्तावेजों का निरीक्षण करने का हकदार होता है जो स्वयं अनन्य रूप से अन्य पक्षकार के पक्षकथन का या हक का साक्ष्य नहीं होता। यदि कोई पक्षकार विरोधी पक्षकार के कब्जे में के दस्तावेजों का निरीक्षण करना चाहता है तो वह उन दस्तावेजों का तब तक निरीक्षण नहीं कर सकता जब तक कि अन्य पक्षकार उन्हें प्रस्तुत न करे। अतः जो पक्षकार निरीक्षण करना चाहता है उसे विरोधी पक्षकार से यह अपेक्षा करनी चाहिए कि वह दस्तावेज प्रस्तुत करे। और कोई पक्षकार ऐसा कैसे कर सकता जब तक कि उसे यह पता न हो कि कौन-कौन से दस्तावेज़ विरोधी पक्षकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के कब्जे या शक्ति में हैं। दूसरे शब्दों में प्रकटीकरण चाहने वाले पक्षकार को जब तक यह पता न हो कि विरोधी पक्षकार के कब्जे या अभिरक्षा में कौन-कौन से ऐसे दस्तावेज़ हैं जो विवादास्पद प्रश्न पर प्रकाश डाल सकते हैं तब तक उसके लिए विनिर्दिष्ट दस्तावेजों के प्रकटीकरण की मांग करना संभव नहीं है।"

30. इसके पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11, नियम 12 के प्रति निर्देश करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने पुन: निम्नलिखित कहा:—

"जब नियम के अधीन न्यायालय प्रकटीकरण का आदेश देता है तब विरोधी पक्षकार दस्तावेजों के संबंध में शपथपत्र देने के लिए बाध्य होता है और यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह आदेश 11 के नियम 21 में विनिर्दिष्ट शास्तियों के अधीन होगा। दस्तावेज़ विषयक शपथपत्र में उन सभी दस्तावेजों को उपवर्णित किया जाएगा जो कार्यवाहियों में के प्रश्न के विषय से संबंधित उसके कब्जे या शक्ति में हैं या रहे हैं। ऐसे दस्तावेजों के बारे में जो उसके कब्जे या शक्ति में नहीं हैं किन्तु उसके कब्जे या शक्ति में रहे हैं उनके बारे में उसे इस बात का कथन करना चाहिए कि उन दस्तावेजों का क्या हुआ और किन व्यक्तियों के कब्जे में वे दस्तावेज़ हैं जिससे कि विरोधी पक्षकार उस व्यक्ति से जिसके कब्जे में वे हैं उनको प्रस्तुत कराने में समर्थ हो सकें। [सिविल प्रक्रिया संहित, 1908 के परिशिष्ट (ग) का प्ररूप सं० 5 देखिए]। शपथपत्र द्वारा दस्तावेजों को प्रकट करने के पश्चात् उससे यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह उन दस्तावेजों को जो उसके कब्जे में हैं और जो सुसंगत हैं निरीक्षण के लिए प्रस्तुत करे". . . . .

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"हम यह भी नहीं समझते हैं कि उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही है कि जिन दस्तावेज़ों को प्रकट करने का आदेश दिया गया था वे जांच के लिए सुसंगत नहीं थे। प्रकट करने के लिए चाहे गए दस्तावेज़ों का किसी जांच या कार्यवाही में साक्ष्य में ग्राह्य होना आवश्यक नहीं है। यह पर्याप्त है यदि दस्तावेज़ विवादग्रस्त विषय पर प्रकाश डालने के प्रयोजन के लिए सुसंगत है। प्रत्येक दस्तावेज़ जो मामले पर किसी प्रकार का प्रकाश डालता हो कार्यवाहियों में विवादास्पद विषय से संबंधित दस्तावेज़ होती है, चाहे यह साक्ष्य में ग्राह्य न हो। दूसरे शब्दों में, यद्यपि कोई दस्तावेज साक्ष्य में अग्राह्य हो सकती है तथापि इसमें ऐसी सूचना अन्तर्विष्ट हो सकती है जो या तो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः प्रकटीकरण चाहने वाले पक्षकार को अपने पक्षकथन को अग्रसर करने में या अन्य पक्षकार के पक्षकथन को नुकसान पहुंचाने में समर्थ बना सके या जिससे जांच की जा सकती है और जिसका दोनों में से एक परिणाम हो सकता है। इस संदर्भ में "दस्तावेज़" शब्द के अन्तर्गत ऐसी कोई भी बात आती है जो लिखित या मुद्रित हो किन्तु इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि किस पदार्थ पर लेखन या मुद्रण अन्तःस्थापित या मुद्रित किया गया है। हम यह समझते हैं कि वे दस्तावेज़ जिनका प्रकट किया जाना चाहा गया है प्रत्यर्थी के न्यायालय फीस का संदाय करने के साधनों पर प्रकाश डालता है और इस तरह यह सुसंगत है।"

31. हमारी राय में इस विनिश्चय में यहां तक कह दिया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 33 के अधीन की कार्यवाही में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11 के उपबन्ध लागू होंगे। यदि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11 के उपबन्ध लागू किए जाते हैं तो न्यायालय विरोधी पक्षकार के कब्जे में के दस्तावेजों को प्रकट करने का आदेश दे सकता है चाहे प्रकटीकरण चाहने वाला पक्षकार दस्तावेजों की प्रकृति को विनिर्दिष्ट न करे। प्रकटीकरण का आदेश ऐसे दस्तावेजों की बाबत भी दिया जा सकता है जो साक्ष्य में अग्राह्य हों परन्तु सुसंगत हों। इस मामले में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रभेद करने का इस आधार पर प्रयत्न किया गया था कि यह विनिश्चय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 33 से संबंधित है और यह कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 33 के अधीन वाद के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि इसका प्रारम्भ हो गया है। हम अपना यह मत पहले ही व्यक्त कर चुके हैं कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन की कार्यवाही में भी वाद के बारे में यह समझा जाना चाहिए; कि यह आवेदन के फाइल किए जाने के साथ प्रारम्भ हो गया है। अन्यथा भी हम यह अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 141 के अर्थान्तर्गत कार्यवाही होगी अतः सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 11 के उपबंध लागू होंगे। अतः हमारा यह मत है कि अपीलार्थी उनके द्वारा यथा अपेक्षित दस्तावेजों का निरीक्षण करने के हकदार हैं।

32. श्री यू० एन० आर० राव द्वारा जो अन्य तर्क प्रस्तुत किया गया है वह यह है कि अभिवचन शपथपत्र को अपवर्जित करता है। इस दलील में कोई गुणता नहीं है। मूल शाखा नियमावली (ओरिजनल साइड रूल्स) के अनुसार अभिवचन की परिभाषा के अन्तर्गत शपथपत्र भी हैं।

33. उपरोक्त के अतिरिक्त भी सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अन्तर्गत आवेदन के साथ वादपत्र या वादपत्र की प्रति होनी चाहिए। श्री यू०एन०आर० राव की इस दलील में कि इस मामले में केवल वादपत्र की प्रति ही फाइल की गई है कोई सार नहीं है। वादपत्र या इसकी प्रति के बिना न्यायालय इस प्रश्न पर विचार नहीं कर सकता कि क्या मंजूरी को लागू होने वाले सिद्धांतों के अनुसार मंजूरी दी जाए या नहीं। इस प्रश्न का कि मंजूरी दी जाए या उससे इन्कार किया जाए केवल वादपत्र में किए गए अभिकथनों के प्रति निर्देश के आधार पर ही निश्चित किया जा सकता है। इन परिस्थितियों में वादपत्र के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि यह मंजूरी के लिए फाइल किए गए उसी आवेदन का एक भाग है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

34. इसी प्रकार श्री यू० एन० आर० राव की इस दलील में भी कोई गुणता नहीं है कि अपीलार्थियों का निवेदन केवल शपथपत्र पर प्रत्यर्थियों की प्रतिपरीक्षा करना ही है। प्रतिपरीक्षा के लिए आवेदन का सार तथा साथ ही साथ उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया अन्तिम आदेश अपीलार्थियों को अपना पक्षकथन साबित करने के लिए समर्थ बनाता है, यदि वे यह सबित करने के लिए समर्थ हैं कि आवेदन मंजूर नहीं किया जा सकता क्योंकि यह मंजूरी को लागू होने वाले सिद्धान्तों की जांच पर खरा नहीं उतरता।

35. इसके अतिरिक्त इस मामले का एक और यह पहलू भी है कि दस्तावेज वादपत्र के साथ न केवल सूचीबद्ध किए गए हैं वरन् अपीलार्थियों को उनकी प्रतियां देने की भी मंजूरी दी गई है।

36. अतः हमारा यह मत है कि अपीलार्थी दस्तावेजों का निरीक्षण करने तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन आवेदन के आवश्यक प्रयोजन के विस्तार तक प्रतिपरीक्षा करने के लिए उनका प्रयोग करने के हकदार हैं। अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल ने इस बात को भी स्पष्ट किया है कि अपीलार्थी वादपत्रों की गुणता के आधार पर प्रत्यर्थियों की प्रति परीक्षा नहीं करना चाहते वरन् मंजूरी को लागू होने वाले सिद्धांतों के संबंध में पक्षकारों की दलीलों के सीमित प्रयोजन के लिए ही करना चाहते हैं।

37. अतः हम विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा किए गए आदेश को अपास्त करते हैं और इस अपील को मंजूर करते हैं, किन्तु इन परिस्थितियों में खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

अपील मंजूर की गई।

बंसल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नि० प० 1983 : मद्रास—139

इन्दिरा काटन मिल्स प्रा० लि० बनाम मैसर्स रकेचा एण्ड कं०
(Indra Cotton Mills Pvt. Ltd. *Vs.* M/s. Rakecha and Co.)

तारीख 23 दिसम्बर, 1982

[न्या० स्वामीकन्नू]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 20—वाद संस्थित किए जाने के संबंध में न्यायालय की अधिकारिता—जबकि पक्षकार विधिपूर्वक यह संविदा करते हैं कि किसी विवाद के संबंध में विशिष्ट न्यायालय को अधिकारिता होगी तो वह अनुबंध, उस न्यायालय की अधिकारिता को नहीं छीन सकता जिसे स्वीकारतः अधिकारिता प्राप्त है—यह निस्संदेह सत्य है कि साधारणतः न्यायालयों को पक्षकरों के बीच हुए करार का सम्मान करना चाहिए किन्तु न्यायालय प्रत्येक मामले में ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है न्यायालय न्याय करने की शक्ति से वंचित नहीं हो जाते हैं ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय धारा 115 के अधीन हस्तक्षेप कर सकता है ।

पुनरीक्षण पिटीशनर सूती धागा बनाने का कार्य करता है । पिटीशनर के साथ प्रत्यर्थी सं० 1 के अभिकर्ता के माध्यम से 16-4-1977 को इन्दिरा सूती धागे की 25 पेटियां (प्रत्येक पेटी में 100 किलोग्राम धागा और 148 रुपये का प्रति पांच किलोग्राम की दर से जिसमें विक्रय-कर और उत्पाद-शुल्क सम्मिलित नहीं थे) बेचने के लिए संविदा की । पिटीशनर के पास पूर्व संव्यवहार की बाकी रकम 7,500 रुपये को अग्रिम धन-राशि के रूप में लेने के लिए निदेश दिया और प्रथम प्रत्यर्थी ने माल को प्रेषित करने के लिए कहा तथा माल को मैसर्स प्रकाश रोड लाइन्स या इन्टरवेज ट्रांसपोर्ट (प्रत्यर्थी सं० 2) के माध्यम से प्रेषित करने के लिए निदेश दिया । पुनः 18-4-1977 को अन्य और 25 पेटी उसी क्वालिटी के सूती धागे की 25 पेटी और अन्य समतुल्य कीमत पर खरीदने के लिए एक संविदा प्रथम प्रत्यर्थी ने पुनरीक्षणकर्ता के साथ की । इसमें भी प्रथम प्रत्यर्थी ने पुनरीक्षण पिटीशनर को 7,500 रुपये की रकम को अग्रिम राशि में समायोजन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करने के लिए निदेशित किया। इस प्रकार प्रथम प्रत्यर्थी ने 15,000 रूपये की अग्रिम राशि का भुगतान किया था और यह माना गया था कि दोनों संविदाओं में माल का परिदान क्रोम्पेट में मिल से किया जाना चाहिए था। प्रथम प्रत्यर्थी के संविदा के ज्ञापन तरीख 18-4-1977 द्वारा इसकी पुष्टि होती थी। संविदा के अनुसार पारेषित परिमाणों को 19-4-1977 को द्वितीय प्रत्यर्थी के माध्यम से प्रेषित कर दिया गया। सभी धागे की 50 पेटियों का परिदान द्वितीय प्रत्यर्थी को क्रोम्पेट पर कर दिया गया था। सुविधा की दृष्टि से 10 मांगदेय ड्राफ्ट और एक बीजक तैयार किया गया था जिससे कि प्रथम प्रत्यर्थी माल को छुड़ा सके और वह यूनाइटेड कमर्शियल बैंक के द्वारा प्रेषित किए गए थे। प्रथम प्रत्यर्थी को प्रत्यर्थी सं० 2 से बीजक में बाकी राशि अदा करके और बैंक से बिल तथा संदाय करके माल को छुड़ाना था। इसी बीच यह ज्ञात हुआ कि द्वितीय प्रत्यर्थी के कर्मचारी ने आपराधिक न्यास भंग कर दिया था और परेषित परिमाण की 50 पेटियों का आपराधिक दुर्विनियोग किया था। अन्वेषण के बाद पुलिस ने माल बरामद कर लिया और उसे द्वितीय प्रत्यर्थी के हक में निर्मुक्त कर दिया। प्रथम प्रत्यर्थी ने समय के अन्दर उस दस्तावेज़ का संदाय नहीं किया। बैंकर्स ने पिटीशनर से ब्याज के लिए दावा किया। पिटीशनर ने 9-5-1977 को यह कथन करते हुए कि यदि माल का संदाय नहीं किया गया हो तो नुकसानी प्रथम प्रत्यर्थी से वसूल की जाएगी, एक द्रुतगामी तार दिया। दलाल ने भी माल के छुड़ाने के लिए इत्तिला दे दी थी। द्वितीय प्रत्यर्थी ने 6-6-1977 को इत्तिला दी थी कि माल उनके भिवन्डी गोदाम पर उपलब्ध है। इसके बाद पिटीशनर का अभिकर्ता मुम्बई गया और उसे मालूम हुआ कि परेषित परिमाण की सभी 50 पेटियाँ परिदान के लिए तैयार हैं। इसके बाद पिटीशनर ने 8-6-1977 को प्रथम प्रत्यर्थी को एक नोटिस दिया कि वह बैंक से दस्तावेज को छुड़ा ले अन्यथा इसके असफल रहने पर पिटीशनर माल को खुले बाजार में बेचने के लिए और प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा जिसे होने वाले नुकसान का दावा करने के लिए मजबूर होगा। इसी बीच यूनाइटेड कमर्शियल बैंक ने पिटीशनर को यह इत्तिला दी कि प्रथम प्रत्यर्थी ने दस्तावेज वापस नहीं किए हैं इसलिए वह ब्याज और कमीशन को वादी के खाते में उसके नाम डीबट रहे थे। पिटीशनर

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ने प्रत्यर्थियों को उनके काउन्सेल के माध्यम से पत्र भेजा और तब पिटीशनर माल को खुले बाजार में 141 रुपये के 5 किलोग्राम की दर से बेचने के लिए मजबूर हुआ और पिटीशनर ने द्वितीय प्रत्यर्थी को डैमरेज चार्ज का भुगतान किया। इसलिए प्रथम प्रत्यर्थी 9,460.79 रुपये की धन-राशि का भुगतान करने के लिए जिम्मेदार है। पिटीशनर के अनुसार वाद का हेतुक क्रोम्पेट में उत्पन्न हुआ था जहां पर कि 16 और 18 अप्रैल, 1977 को द्वितीय प्रत्यर्थी को माल का परिदान किया गया था जब प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा 19 अप्रैल, 1977 को संविदा की गई थी। जब माल का द्वितीय प्रत्यर्थी को क्रोम्पेट तम्बारम फरेका सैदापेट ताल्लुक पर परिदान किया गया जो विचारण न्यायालय की अधिकारिता में था, इसीलिए पिटीशनर ने नुकसान की वसूली के लिए क्रोम्पेट के उप न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया। दोनों प्रत्यर्थियों ने विचारण न्यायालय के समक्ष यह दलील दी कि विचारण न्यायालय को वाद का विचारण करने की कोई अधिकारिता नहीं थी। वादी की तरफ से प्रदर्श–1 दलाल द्वारा पिटीशनर को भेजा गया 16-4-1977 का पत्र, प्रदर्श-2 समतुल्य दस्तावेज तारीख 18-4-1977 के साथ फाइल किया गया। पिटीशनर द्वारा प्रत्यर्थी को 16,66,726.20 रुपये के लिए दिया गया बीजक सं० 18/77–78 प्रदर्श क–3 और द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा दी गई माल की परेषित परिमाण प्रति प्रदर्श क–4 भी फाइल की गई। प्रत्यर्थियों की ओर से द्वितीय प्रत्यर्थी की माल परेषित परिमाण टिप्पणी प्रदर्श–ख फाइल की गई। पिटीशनर की तरफ से कम्पनी का वादी साक्षी–1 के रूप में परीक्षण किया गया। प्रत्यर्थियों की तरफ से किसी साक्षी का परीक्षण नहीं किया गया था। विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय को वाद का विचारण करने के लिए कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं थी और पिटीशनर को वादपत्र को समुचित न्यायालय के समक्ष उपस्थित करने के लिए वापस कर दिया और अभिनिर्धारित किया कि चैंगलपत्तू के उप न्यायालय को वाद के विचारण के लिए अधिकारिता प्राप्त नहीं हो सकती। इन दोनों निर्णयों से व्यथित होकर पिटीशनर ने इस न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण फाइल किया है। उच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए मुख्य प्रश्न यह है कि क्या निचले दोनों न्यायालयों द्वारा यह अभिनिर्धारित करना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सही है कि केवल मुम्बई के न्यायालयों को ही प्रश्नगत विवाद को सुनने के लिए अधिकारिता प्राप्त है ।

अभिनिर्धारित--पुनरीक्षण मंजूर किया गया ।

प्रदर्श ख-1 में निस्संदेह इस आशय का मुद्रित परिवर्णन है कि वादी पुनरीक्षण पिटीशनर और द्वितीय प्रतिवादी, यहां पर द्वितीय प्रत्यर्थी, के बीच में संव्यवहार के संबंध में मुम्बई के न्यायालय को ही अधिकारिता प्राप्त होगी लेकिन यह अभिनिर्धारित करने के लिए आधार नहीं लिया जा सकता कि उस न्यायालय को जिसमें वाद प्रस्तुत किया गया था, कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं थी। अभिकथनों तथा वादी साक्षी के साक्ष्य के साथ-साथ प्रदर्श क-1 और प्रदर्श क-2 की अंतर्वस्तु से यह ज्ञात होता है कि अधिकारिता से संबंधित प्रश्न की विवेचना करने के उद्देश्य के लिए संव्यवहार वास्तव में कोम्पेट में हुआ था । प्रदर्श क-3 वादी कंपनी का 1,66,726.20 रुपये के लिए प्रथम प्रत्यर्थी को दिया गया बीजक सं० 18/77-78 है। प्रदर्श क-4 द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा दी गई माल की परेषिती प्रतिलिपि है। जब इस स्तर पर पूरे मामले को देखा जाता है तो वादी साक्षी-1 के मौखिक साक्ष्य के साथ दस्तावेजी साक्ष्य, प्रदर्श क-1 से लेकर क-4 तक, और प्रदर्श ख-1 जो अभिलेख पर उपलब्ध है, के अलावा बिना और किसी साक्ष्य के यह दिखाई देता है कि माल को वास्तव में यहां पर द्वितीय प्रत्यर्थी के माध्यम से संविदा के अनुसार कोम्पेट परेषित किया गया था जो वादी कंपनी का स्थान है और उस संव्यवहार में दलाल ने यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी के अभिकर्ता के रूप में कार्य किया। यद्यपि इस तथ्य को प्रथम प्रत्यर्थी के द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन में पूर्ण रूप से स्वीकार किया है लेकिन फिर भी साक्ष्य पर वास्तव में विस्तारपूर्वक विचार करते समय इस विषय पर और विवेचना करने के लिए अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य, अर्थात् प्रदर्श क-1 से क-4 की अंतर्वस्तु के साथ-साथ वादी साक्षी-1 के मौखिक साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि केवल कोम्पेट का न्यायालय ही है, अर्थात् विचारण न्यायालय जिस में सही रूप से वाद संस्थित किया गया है, वह ही सही वाद-स्थल है। न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में किसी संविदा की वजह से ऐसा नहीं है जो उत्पन्न हो सकती है लेकिन दूसरी तरफ केवल कतिपय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुद्रित शब्द हैं, अर्थात् "मुम्बई अधिकारिता के अधीन" जो प्रदर्श ख-1 के ऊपरी भाग पर उपलब्ध है जिस पर अधिकारिता निचले दोनों न्यायालयों ने इस निषकर्ष पर पहुंचने के लिए अवलंब लिया है कि यह सिर्फ मुम्बई के न्यायालय हैं जिन में वाद प्रस्तुत करना चाहिए था न कि चैंगलपत्तू का उप-न्यायालय। केवल सिविल प्रक्रिया संहिता के सुसंगत उपबंध ही नहीं बल्कि सभी निर्णयों में उपलब्ध विनिश्चयाधार जिन पर निचले दोनों न्यायालयों ने विचार किया था और उनके प्रति व्यापक रूप में निर्देश किया है, इससे यह स्पष्ट स्थापित होता है कि उनके द्वारा निकाला गया निष्कर्ष गलत है। विधि स्थिर नहीं है लेकिन उसमें गतिशीलता है क्योंकि यह समाज के विकास के अनुरूप बदलती रहती है। उच्च न्यायालय का यह पक्का विचार है कि निचले दोनों न्यायालयों ने अधिकारिता के प्रश्न पर सही और उचित रूप से विवेचना नहीं की है और इसलिए पुनरीक्षण के अधीन आदेश में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के उपबंधों के अधीन हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है। (पैरा 9 और 19)

		पैरा
[1979]	1979-II एम० एल० जे० 377 : रिनाउन विस्कुट कम्पनी **बनाम** कमल नाथन् (Renown Biscuit Co. *Vs.* Kamalanathan);	10,18
[1978]	1978-II एम० एल० जे० 355 : सवानी ट्रांसपोर्ट प्रा० लि० **बनाम** चिन्नास्वामी मुदालियार एंड कंपनी (Savani Transport Pvt. Ltd. *Vs.* Chinnaswami Mudaliar and Co.);	18
[1975]	ए० आई० आर० 1975 गुजरात 72 : मैसर्स स्नेहल कुमार साराभाई **बनाम** आर्थिक परिवहन संघ और अन्य (M/s. Snehal Kumar Sarabhai *Vs.* M/s. Economic Transport Organisation and others); और	10

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[1974] 1974-II एम० एल० जे० 431 : एस० एन०सी० सन्दुरायन बनाम तिनतूती विद्युत आपूर्ति कंपनी लि० (S.N.C. Shandurain *Vs.* Tin-Tuti Electric Supply Company Limited) निर्दिष्ट किए गए। 13

सिविल पुनरीक्षण अधिकारिता : 1982 का सिविल पुनरीक्षण पिटीशन सं० 105.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन पिटीशन।

पिटीशनर की ओर से ... श्री सी० रामनाथन्

प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से ... श्री डी० धर्मचन्द

न्या० स्वामीकन्नू

यह पुनरीक्षण पिटीशन वादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की जो कि 1976 के अधिनियम 104 द्वारा संशोधित की गई है, धारा 115 के अन्तर्गत निचले अपील न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के सही होने के बारे में आक्षेप करने के लिये फाइल किया गया है, जिसने इस मुद्दे पर यह अभिनिर्धारित किया है कि क्या उप-न्यायालय, चेंगलपत्तू को इस वाद का विचारण करने की अधिकारिता थी जैसी कि पुनरीक्षण पिटीशनर के द्वारा दलील दी गई थी कि विचारण न्यायालय के आदेश की पुष्टि करते हुए जो ऐसे ही प्रभाव का था उक्त न्यायालय को कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं थी। पुनरीक्षण पिटीशनर ने प्रत्यर्थी 1 व 2 से नुकसानी के रूप में 9,460.79 रु० वसूल करने के लिए यह अभिकथन करते हुए वाद प्रस्तुत किया है कि प्रथम प्रतिवादी इसमें प्रथम प्रत्यर्थी ने मद्रास के निवासी दलाल के० पी० शाह, के माध्यम से 16.4.77 को 605 धुने हुए इन्दिरा सूती तागे की 25 पैटियां प्रत्येक पेटी में 100 कि० ग्रा० तागा 148 रु० का 5 कि०ग्रा० की दर पर जिसमें मिल विक्रय कर और उत्पाद शुल्क सम्मिलित नहीं था खरीदने के लिए पुनरीक्षण पिटीशनर के साथ संविदा की कि वादी यहां पुनरीक्षण पिटीशनर के पास पूर्वसंव्यवहार की बाकी रकम 7,500 रुपये को अग्रिम धन राशि के रूप में लेने के लिए निदेश दिया और प्रथम प्रत्यर्थी ने माल को प्रेषित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करने के लिए कहा तथा माल को मैसर्स 'प्रकाश रोड लाइन्स' या 'इन्टर-वेज ट्रांसपोर्ट' यहां द्वितीय प्रत्यर्थी के माध्यम से प्रेषित करने के लिए निदेश दिया। पुनः 18-4-1977 को उसी क्वालिटी के इन्दिरा सूती धागे की 25 पेटी और अन्य समतुल्य कीमत पर खरीदने के लिए एक संविदा प्रथम प्रत्यर्थी ने यहां पुनरीक्षण पिटीशनर के साथ की। इसमें भी प्रथम प्रत्यर्थी ने पुनरीक्षण पिटीशनर को एक और 7,500 रुपये की रकम् को अग्रमराशि में समायोजन करने के लिए निदेशित किया जो यहां पुनरीक्षण पिटीशनर के पास एक और संव्यवहार में पड़ी थी। इस प्रकार प्रथम प्रत्यर्थी ने 15,000 रुपये की अग्रिम राशि का भुगतान किया था और यह माना गया था कि दोनों संविदाओं में माल का परिदान क्रोमपेट में मिल से किया जाना चाहिये था। प्रथम प्रत्यर्थी के संविदा के ज्ञापन तारीख 18-4-77 द्वारा इसकी पुष्टि होती थी। संविदा के अनुसार परेषित परिमाणों को 19 4-1977 को द्वितीय प्रत्यर्थी के माध्यम से प्रेषित कर दिया गया। सभी धागे की 50 पेटियों का परि-दान द्वितीय प्रत्यर्थी को क्रोमपेट में कर दिया गया था। सुविधा की दृष्टि से 10 मांगदेय ड्राफ्टस और एक बीजक तैयार किया गया जिससे कि प्रथम प्रत्यर्थी माल को छुड़ा सके और वे युनाइटेड कर्मशियल बैंक के द्वारा प्रेषित किए गए थे। माल का बीमा भी कर दिया गया था और इस तथ्य की सूचना प्रथम प्रतिवादी यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी को दे दी गई थी। प्रथम प्रतिवादी यहां पर प्रत्यर्थी को प्रत्यर्थी 2 से बीजक में बाकी राशि अदा करके और बैंक से बिल का संदाय करके माल को छुड़ाना था। इसी बीच यह ज्ञात हुआ कि द्वितीय प्रतिवादी के एक कर्मचारी ने अपराधिक न्याय भंग कर दिया था और परेषित परिमाण की 50 पेटियों का अपराधिक दुर्विनियोग किया था। अन्वेषण के बाद पुलिस ने माल को बरामद कर लिया और तत्पश्चात उसे द्वितीय प्रत्यर्थी के हक में निर्मुक्त कर दिया। प्रथम प्रतिवादी, यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी ने समय के अन्दर उस दस्तावेज का संदाय नहीं किया। बैंकर्स ने वादी, यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर से ब्याज के लिए दावा किया। पुनरीक्षण पिटीशनर ने 9-5-77 को यह कथन करते हुए कि यदि माल का संदाय नहीं किया गया हो, तो नुकसान प्रथम प्रत्यर्थी से वसूल किया जायेगा, एक द्रुतिगामी तार दिया। दलाल के० पी० शाह ने भी माल के छुड़ाने के लिए इत्तला दे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दी थी । प्रथम प्रत्यर्थी ने एक तार भेजा कि मांग देय ड्राफ्ट सं० 68 का ही केवल संदाय किया गया है और द्वितीय प्रतिवादी यहां पर द्वितीय प्रत्यर्थी से माल प्राप्य नहीं हुआ है । यह बात द्वितीय प्रत्यर्थी की जानकारी में लादी गयी थी और द्वितीय प्रत्यर्थी ने 6-6-1977 को इत्तिला दे दी थी कि माल उनके भिवन्डी गोदाम पर उपलब्ध है। द्वितीय प्रत्यर्थी ने यह सूचना दी थी कि माल एक दाण्डिक मामले में अन्तर्ग्रस्त है और माल पुलिस की अभिरक्षा में है और उन्हें वे छुड़ाने की कोशिश कर रहे हैं। इसके बाद पुनरीक्षण पिटीशनर का अभिकर्ता मुम्बई गया और उसे मालूम हुआ कि परेषित परिमाण की सभी 50 पेटियां परिदान के लिये तैयार हैं । इसके बाद पुनरीक्षण पिटीशनर ने 8-6-1977 को प्रथम प्रत्यर्थी को एक नोटिस दिया कि वह बैंक से दस्तावेज को छुड़ा ले अन्यथा इसके असफल रहने पर वादी, यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर, माल को खुले बाजार में बेचने के लिए और प्रथम प्रत्यर्थी के द्वारा उसे होने वाले नुकसान का दावा करने के लिए मजबूर होगा । प्रथम प्रत्यर्थी ने यह अभिकथन करते हुए टेलीग्राम दिया कि द्वितीय प्रत्यर्थी ने मांगदेय ड्राफ्ट्स से 63 का भुगतान करने के बाद भी लारी रसीद सं० 6170 के अन्तर्गत माल की 5 पेटियों का परिदान नहीं किया है । इसी बीच युनाइटेड कमर्शियल बैंक ने पुनरीक्षण पिटीशनर को यह इत्तिला दी कि प्रथम प्रत्यर्थी ने दूसरे दस्तावेज वापस नहीं किए हैं इसलिए वे ब्याज और कमीशन को वादी के खाते में उसके नाम डाल रहे हैं । इसलिये पुनरीक्षण पिटीशनर ने मुम्बई स्थित डिपो को माल छुड़ाने के लिए व उसे खुले बाजार में बेचने के लिए इत्तिला दी जब तक कि प्रथम प्रत्यर्थी 45 पेटियों की बकाया राशि का भुगतान नहीं करता है । प्रथम प्रत्यर्थी ने इस अनुरोध का अनुपालन नहीं किया । बैंककारों ने जी० सी० नोटस, मांगदेय (ड्राफ्टस) को वापस कर दिया और ब्याज तथा कमीशन प्रभार के 4642 रु० 30 पैसे पुनरीक्षण पिटीशनर ने प्रथम प्रत्यर्थी के लिए एक नोटिस भेजा और उसका उत्तर प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा भेज दिया गया । पुनरीक्षण पिटीशनर माल को एक बार वापस लेने के लिए और उनका मुद्रांकित पेटियों में परिदान करने के लिए जिम्मेदार नहीं था । पुनरीक्षण पिटीशनर ने प्रत्यर्थियों को उनके काउन्सेल के माध्यम से नोटिस भेजे और तब पुनरीक्षण पिटीशनर माल को खुले बाजार में 141 रु० के 5 कि. ग्रा. की दर से बेचने के लिए मजबूर हुआ और पुनरीक्षण पिटीशनर ने द्वितीय प्रत्यर्थी को डेमरेज चार्ज

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का भुगतान किया । इसलिए प्रथम प्रत्यर्थी 9460 रु० 79 पैसे की धनराशि का भुगतान करने के लिए जिम्मेदार है और द्वितीय प्रत्यर्थी, क्योंकि उसने अपने कर्मचारियों का आचरण स्वीकार किया है, 9460 रु० 79 पैसे की कथित रकम की प्रतिपूर्ति पुनरीक्षण पिटीशनर को करने के लिए जिम्मेदार हैं । पुनरीक्षण पिटीशनर के अनुसार वाद का हेतुक क्रोमपेट में उत्पन्न हुआ था जहां पर कि 16 और 18 अप्रैल, 1977 को द्वितीय प्रत्यर्थी को माल का परिदान किया गया था जब प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा 19 अप्रैल, 1977 को संविदा की गई थी, जब माल का द्वितीय प्रतिवादी यहां पर द्वितीय प्रत्यर्थी को क्रोमपेट तम्बारम फरिका सैदापेट ताल्लूक पर परिदान किया गया जो विचारण न्यायालय की अधिकारिता में था और तत्पश्चात् 22.7.1977 तक जब प्रथम प्रतिवादी ने दस्तावेजों का संदाय नहीं किया था और 24.7.1977 को जब कि पुनरीक्षण पिटीशनर ने क्रोमपेट में माल को खुले बाजार में बेचा था । द्वितीय प्रत्यर्थी को तारीख 19.4.1977 को विचारण न्यायालय की अधिकारिता के अन्तर्गत माल का परिदान किया गया । इसलिए वाद चलने योग्य है ।

3. दोनों प्रथम व द्वितीय प्रतिवादी यहां पर प्रथम और द्वितीय प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष अलग-अलग लिखित कथन फाइल किये । दूसरी चीजों के साथ, दोनों प्रत्यर्थियों ने आगे यह दलील दी कि विचारण न्यायालय को वाद का विचारण करने की कोई अधिकारिता नहीं थी ।

4. विचारण न्यायालय ने यह विवाद्यक विरचित किया कि कथित न्यायालय को वाद का विचारण करने का कोई अधिकार क्यों नहीं है और उसी को प्रारम्भिक विवाद्यक के रूप में लिया । वादी की तरफ़ से प्रदर्श-1 आर्ट शिल्क और तागे के वणिक, विनिर्माता, प्रतिनिधि, निर्यातकर्ता और आयातकर्ता रासप्पा चेत्ती गली, मद्रास-3 के.पी. शाह द्वारा वादी यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर को भेजा गया 16,4.1977 का पत्र प्रदर्श 2 समतुल्य दस्तावेज तारीख 18.4.1977 के साथ फ़ाइल किया गया । वादी कम्पनी का प्रथम प्रतिवादी कम्पनी को 166,726 रु० 20 पैसे के लिए दिया गया बीजक सं० 18177.78 प्रदर्श-क-3 और द्वितीय प्रतिवादी द्वारा दी गयी माल परेषित परिमाण प्रति प्रदर्श क-4 भी फाइल की गई । प्रतिवादियों यहां पर प्रत्यर्थियों की तरफ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से द्वितीय प्रतिवादी यहां पर द्वितीय प्रत्यर्थी इन्टरवेज ट्रांसपोर्ट्स, नागपुर की माल परेषित परिमाण टिप्पणी प्रदर्श ख-1 तारीख 19-4-1977 फ़ाइल की गई। पुनरीक्षण पिटीशनर की तरफ़ से कम्पनी का वादी साक्षी 1 के रूप में परीक्षण किया गया। प्रत्यर्थियों की तरफ़ से किसी साक्षी का परीक्षण नहीं किया गया। जैसा कि ऊपर अभिकथन किया गया है, विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय को वाद का विचारण करने के लिए कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं थी और वादी यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर को वाद-पत्र को समुचित न्यायालय के समक्ष उपस्थित करने के लिए वापस कर दिया।

5. विचारण न्यायालय के उपरोक्त निर्णय से व्यथित होकर वादी पुनरीक्षण पिटीशनर ने निचले अपील न्यायालय के समक्ष एक अपील प्रस्तुत की। निचले अपील न्यायालय ने इस बिन्दु पर कि क्या चेंगलपत्तू के उप-न्यायालय को वाद का विचारण करने की अधिकारिता प्राप्त थी जैसा कि पुनरीक्षण पिटीशन द्वारा प्रति विरोध किया गया, अधिनिर्धारित किया कि चेंगलपत्तू के उप-न्यायालय को वाद के विचार के लिए अधिकारिता प्राप्त नहीं हो सकती और इस प्रकार अपील खारिज कर दी गई। विचारण न्यायालय के उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर वादी यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर, ने यह सिविल पुनरीक्षण प्रेषित किया है और अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रतिविरोध किया कि निचले दोनों न्यायालयों को देखना चाहिए था कि दलाल के० पी० शाह द्वारा संविदा को अन्तिम रूप दिया गया और प्रदर्श-क-1 के प्रेषित करने से पहले पक्षों की जिम्मेदारियां सुस्पष्ट कर दी गयीं थी और कथित दस्तावेज का कोई मुद्दा संविदा का भाग नहीं हो सकता और निचले दोनों ही न्यायालयों को देखना चाहिए था कि वाद का विचारण करने के लिए सक्षम दोनों न्यायालयों में से किसी एक न्यायालय की अधिकारिता को अलग करने की दलील, इस आधार पर कि वाद के हेतुक का कोई भी भाग उस न्यायालय की अधिकारिता के अन्तर्गत उत्पन्न नहीं हुआ जहां पर कि वाद को वास्तव में फाइल किया गया था, अधिकारिता की कमी की दलील से भिन्न थीं।

6. इस पुनरीक्षण पिटीशन में, द्वितीय प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व किसी भी काउन्सेल द्वारा नहीं किया गया। आज भी जब इस पुनरीक्षण पिटीशन के संबंध में पुकारा गया है और सुना गया है, द्वितीय प्रत्यर्थी अनुपस्थित है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

7. पुनरीक्षण पिटीशनर के विद्वान काउन्सेल ने अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रतिविरोध किया कि प्रथम प्रत्यर्थी की दलील अधिकारिता के न होने के संबंध में थी और इस सम्बन्ध में कोई भी विशिष्टियां नहीं दी गई है कि द्वितीय प्रत्यर्थी के द्वारा अधिकारिता के के सम्बन्ध में कोई दलील नहीं उठाई गयी। इस सम्बन्ध में यहां यह टिप्पणी करना सुसंगत है कि द्वितीय प्रतिवादी-द्वितीय प्रत्यर्थी के लिखित कथन में अधिकारिता के इस आशय के सम्बन्ध में दलील है, लेकिन फिर भी वह उचित शब्दों में अभिव्यक्त नहीं की गई है। द्वितीय प्रतिवादी-द्वितीय प्रत्यर्थी के लिखित कथन का सुसंगत भाग इस प्रकार है :

> "इस बात का प्राख्यान किया जाता है कि इस प्रतिवादी सं० 2 के विरुद्ध वाद का विचारण करने के लिए इस न्यायालय को कोई अधिकारिता नहीं है चूंकि नुकसानी के बारे में भी कोई वाद हेतुक इस न्यायालय की अधिकारिता में उत्पन्न नहीं हुआ।"

8. विचार के लिए मुद्दा यह है कि क्या अधिकारिता से संबंधित प्रश्न का ठीक रूप से अधिमूल्यन किया गया है और निचले अपील न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया है चूंकि इसने विचारण न्यायालय द्वारा किए गए अवलोकन की कि इस न्यायालय को कोई अधिकारिता नहीं है पुष्टि की है।

9. वादी यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर के विद्वान काउन्सेल ने अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी है कि प्रदर्श ख-1 में निस्संदेह इस प्रभाव का मुद्रित परिवर्णन है कि वादी पुनरीक्षण पिटीशनर और द्वितीय प्रतिवादी यहां पर द्वितीय प्रत्यर्थी के बीच में संव्यवहार के सम्बन्ध में मुम्बई के न्यायालय को ही अधिकारिता प्राप्त होगी, लेकिन वह स्वयं यह अभिनिर्धारित करने के लिए आधार नहीं लिया जा सकता कि उस न्यायालय को जिसमें वाद प्रस्तुत किया गया था को कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं थी। दूसरे शब्दों में वादी यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर के विद्वान काउन्सेल ने इस प्रभाव की दलील दी है कि पक्षों के बीच में दस्तावेज में मुद्रित खण्ड के अस्तित्व से यह निश्चित होता है कि कौन से न्यायालय को उनके बीच में किसी भी विवाद को तय करने की अधिकारिता है, ठोस आधार नहीं हो सकता जिस पर अधिकारिता से सम्बन्धित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बिन्दु निर्धारित किया जा सके। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 20 और 21 के अन्तर्गत एक न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों का पूर्णरूप से प्रयोग करने के लिए न्यायालय को अभिवचनों में दिए गए अभिकथनों को गणना में लेते हुए ठीक और उचित निष्कर्ष पर पहुंचना होता है, न कि इससे कि न्यायालय द्वारा स्थान निर्धारित करने के लिए उसमें निहित सुविवेक को मुद्रित खण्ड पर पूर्ण रूप से निर्भर रहना होता है।

10. इस मामले में पुनरीक्षण पिटीशनर के विद्वान काउन्सेल श्री सी रामनाथन ने यह दलील प्रस्तुत की कि **रिनाउन बिस्कुट कम्पनी बनाम कमलनाथन**[1] में न्या० इस्माइल जैसे वे उस समय थे, के द्वारा अपनाया गया मत इस सामान्य सिद्धान्त से अधिक सामजस्य रखता है बजाय उस विधि के जो गतिहीन नहीं है बल्कि गतिशील है और न्यायालय में निहित सुविवेक का इस तरीके से प्रयोग करना चाहिए जो समाज की उन्नति के लिए उपयुक्त हो। इस सम्बन्ध में श्री रामनाथन ने उपरोक्त निर्देशित निर्णय के निम्नलिखित उद्धरण के प्रति निर्देश किया है: "निम्नलिखित तथ्यों पर कोई विवाद नहीं है: (1) मुम्बई स्थित न्यायालय को अधिकारिता है क्योंकि पिटीशनर और प्रतिवादी मुम्बई में निवास करते है। (2) कोयम्बटूर स्थित न्यायालय को अधिकारिता है क्योंकि वाद के हेतुक का एक भाग वहां उत्पन्न हुआ है। (3) दोनों पक्ष, उनके बीच में हुए करार के खण्ड 13 में सहमत हुए हैं कि मुम्बई शहर के न्यायालयों के सिवाय किसी भी न्यायालय को उस विवाद को जो उनके बीच में उदभूत हो, निर्धारित करने की अधिकारिता नहीं होगी। इस प्रकार के संदर्भ में, निस्सन्देह सामान्य नियम यह है कि वादी प्रत्यर्थी को मुम्बई के न्यायालय में वाद फाइल करना होगा। फिर भी **मं० स्नेहल कुमार साराभाई बनाम आर्थिक परिवहन संघ और अन्य**[2] में गुजरात उच्च न्यायालय ने एक नया रास्ता बनाया है। निर्णय के पैरा 3 में यह कहा गया था—"जबकि पक्षकार विधिपूर्वक यह संविदा करते हैं। कि किसी विवाद के सम्बन्ध में विशिष्ट न्यायालय को अधिकारिता होगी तो वह अनुबन्ध, हालांकि वैध है, उस न्यायालय की अधिकारिता को नहीं छीन सकता जिसे स्वीकारतः अधिकारिता प्राप्त हो। इस प्रकार छीनने वाला

1. 1979-II एम० एल० जे० 377.

2. ए० आई० आर० 1975 गुजरात 72.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खण्ड संविदा के पक्षकारों के विरुद्ध विबन्ध के रूप में लागू हो सकता है। इससे न्यायालय के हाथ बंध नही जाते हैं और वे न्याय करने की शक्ति से वंचित नहीं हो जाते हैं। यह निस्सन्देह सत्य है कि साधारणतः न्यायालयों को पक्षकारों के बीच हुए करार का सम्मान करना चाहिये जो उनके दिमागों के मिलन से और सुविधा के विचार से उत्पन्न होता है, लेकिन न्यायालय प्रत्येक मामले में ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है। ऐसे मामले में जैसा कि वर्तमान मामले में है, जहां दावा 1207 रुपये 92 पैसे का है, पक्षकारों के बीच संविदा में सन्निहित अनुबंध की वजह से वादी को कलकत्ता जाने के लिए बाध्य करना, न्याय देने से मना करना है। इस प्रश्न के लिए एक नया दृष्टिकोण अपनाना ठीक है क्योंकि वंचित करने वाला खण्ड उत्पीड़न के इंजिन के रूप में परिचालित करने के लिए न्याय के उद्देश्य को विफल करने के लिए साधन के रूप में सुविचारित है क्योंकि वर्तमान मामले के समान मामले में वादी के लिए 1208 रुपये की छोटी सी रकम को वसूल करने के लिए कलकत्ता तक के पूरे रास्ते जाना दमनात्मक होगा। यात्रा और मुकदमेबाजी के खर्चे अन्तर्ग्रस्त रकम से बहुत अधिक होंगे, और एक अधिकारयुक्त दावेदार क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के वास्ते अन्तर्ग्रस्त रकम से अधिक खर्चे सहन करने की बजाय अपने दावे को छोड़ने के लिए बाध्य हो जाऐगा। इस पृष्ठभूमि में यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या न्यायालयों में से एक की अधिकारिता को अवरुद्ध करने वाला अनुबन्ध अपवर्जित न्यायालय की वाद के विचारण करने की शक्ति को छीन लेता है। इस प्रकार का अनुबन्ध विधिक और पक्षकारों पर आबद्धकर हो सकता। फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि यह न्यायालय की अपनी अधिकारिता से निर्निहित करता है। वादी इस बात पर बल नहीं दे सकता कि अनुबन्धित न्यायालय के अलावा अन्य न्यायालय को वाद का विचारण करना चाहिए। लेकिन न्यायालय अपनी तरफ से अनुबन्ध से बंधा हुआ नहीं है। अपवर्जित न्यायालय द्वारा अनुबन्ध को छोड़ा जा सकता है जिसको अन्यथा अधिकारिता प्राप्त है यदि अन्तर्ग्रस्त रकम सहित विद्यमान परिस्थितियों पर विचार करते हुए यह दमनात्मक माना जाता है। "गुजरात उच्च न्यायालय के इस निर्णय का ही जिला मुन्सिफ ने वर्तमान मामले में अनुसरण किया है। जैसे ही यह निर्णय उद्धृत किया गया था, मैंने पिटीशनर के विद्वान काउन्सेल से मेरी जानकारी के लिए कोई भी नजीर या सिद्धान्त जो गुजरात उच्च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय के निर्णय को गलत साबित करता हो, पेश करने के लिए कहा। एक स्थगन लेने के बाद भी विद्वान काउन्सेल उस प्रभाव के लिए कोई भी नजीर या सिद्धान्त मेरे समक्ष पेश करने में सफल नहीं हुए थे। उसने जो भी दलील दी, वह यह है कि न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया है जब पक्षकार विधि में प्राप्त अधिकारिता को अपवर्जित करने और दूसरे न्यायालय जिसे भी अधिकारिता प्राप्त है में अधिकारिता निहित करने के लिए सहमत हुए थे, तब पक्षकारों को सिर्फ उसी न्यायालय में जाना चाहिए। लेकिन वह सिद्धान्त ऐसा नहीं है जिसे गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्देशित नए दृष्टिकोण को गलत करने वाला कहा जा सकता है। यदि प्रत्येक नए दृष्टिकोण को केवल इस आधार पर कि यह नया है, अप्रसन्नता प्रकट की जाए, तो यह न तो उन्नति होगी और न विकास होगा। इन परिस्थितियों के अधीन गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णय के प्रत्यक्ष विरुद्ध कोई नजीर नहीं है। मैं इसका अनुसरण करने में कोई भी न्यायोचित्य नहीं पाता हूं।" ऊपर उद्धृत न्या० इस्माइल के निर्णय में न्या० इस्माइल जैसे वह उस समय थे ने आगे यह मत व्यक्त किया कि मामले को दूसरे दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता था कि उस मामले में क्या अन्तर्ग्रस्त था, कोयम्बटूर के जिला मुन्सिफ के न्यायालय के सम्बन्ध में अधिकारिता की पूर्ण कमी नहीं थी। लेकिन दोनों पक्षों के बीच में की गई संविदा के लिए कोई भी विवाद नहीं था कि सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत कोयम्बटूर के विद्वान् जिला मुन्सिफ को अधिकारिता होगी क्योंकि वाद के हेतुक का एक भाग उसकी अधिकारिता के अन्दर उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार के संदर्भ में, न्या० इस्माइल जैसे वे तब थे के मतानुसार जब वादी मुम्बई के न्यायालय में वाद फाइल करने के लिए विवश होता है, यह इसलिए नहीं था कि कोयम्बटूर के न्यायालय को विधि में अधिकारिता प्राप्त नहीं थी किन्तु पक्षकारों ने अपने बीच एक ऐसी संविदा की है, वे संविदा की शर्तों को मानने के लिए मजबूर थे। न्या० इस्माइल ने उस मामले में, यह अभिनिर्धारित किया कि अन्तर्ग्रस्त रकम को ध्यान में रखते हुए और मुम्बई तथा कोयम्बटूर के बीच की दूरी को ध्यान में रखते हुए, यह न्याय को असफल बनाने के बराबर होगा यदि वादी को छोटी सी रकम को वसूल करने के लिए वाद प्रस्तुत करने के उद्देश्य से मुम्बई जाने के लिए मजबूर किया जाए। इसलिए गुजरात उच्च न्यायालय का निर्णय शुद्ध न होते हुए भी, न्या० इस्माइल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के मतानुसार जैसे वे तब थे, विद्वान जिला मुन्सिफ द्वारा यह निर्धारित करना गलत था कि उसे वाद को विचारण करने की अधिकारिता प्राप्त थी । यद्यपि वे (न्या० इस्माइल) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन इस न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करते हुए उस निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य नहीं थे ।

11. इस वर्तमान मामले में, वादी-पुनरीक्षण पिटीशनर के विद्वान काउन्सेल श्री सी० रामनाथन ने बलपूर्वक यह दलील दी कि किसी भी दस्तावेज में कहीं भी यह अनुबन्ध नहीं है जो विवाद के स्थान या न्यायालय जिसमें वाद प्रस्तुत करना था के प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष प्रदर्श के रूप में फाइल किया गया हो । जहां तक दस्तावेज प्रदर्श 1 जो पुनरीक्षण पिटीशनर और द्वितीय प्रत्यर्थी के बीच में किया गया था का सम्बन्ध है यह अनुरोध किया गया है कि मुम्बई अधिकारिता के अधीन प्रदर्श ख 1 के प्रथम पृष्ठ के ऊपरी भाग पर मुद्रित शब्द किसी भी तरह विचारण न्यायालय जिसे समुचित व पर्याप्त अधिकारिता प्राप्त थी, की अधिकारिता को नहीं छीनते हैं; इस सम्बन्ध मे वह स्पष्ट करते हैं कि वादी साक्षी 1 ने विनिर्दिष्टतः यह अभिवचन किया है कि वादी यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर और यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी के बीच हुए करार के अनुसार 16-4-1977 को कोमपेट पर सूत की 25 पेटियों को परेषित किया गया था और यह कि 18-4-1977 को सूत की 25 पेटियों के दूसरे परेषित परिमाण का भी द्वितीय प्रत्यर्थी की तरफ से परिवहन के लिए उपलब्ध वाहनों के माध्यम से प्रथम प्रतिवादी को परेषण किया गया था वादी साक्षी 1 के अनुसार यह 19-4-1977 को था कि सूत जो चुराया गया था, पुलिस की मदद से बरामद हुआ था और परेषित करने के लिए तैयार था और उस तरीके से भी, वास्तव में वाद हेतुक विचारण न्यायालय की अधिकारिता में कोमपेट में उत्पन्न हुआ था । इस सम्बन्ध में पुनरीक्षण पिटीशनर के विद्वान काउन्सेल ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 के प्रति निर्देश किया है जो इस प्रकार है :—

"(1) अधिकारिता के बारे में आक्षेप—वाद लाने के स्थान के सम्बन्ध में कोई भी आक्षेप किसी भी अपील या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तब तक अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसा आक्षेप प्रथमबार के न्यायालय में यथासंभव सर्वप्रथम अवसर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर और उन सभी मामलों में, जिनमें विवाद्यक स्थिर किए जाते हैं, ऐसे स्थिरीकरण के समय या उसके पहले न किया गया हो और जब तक कि उसके परिणामस्वरुप न्याय की निष्फलता न हुई हो।

2. किसी न्यायालय की अधिकारिता की धन सम्बन्धी परिसीमा के आधार पर उसकी सक्षमता के बारे में कोई आक्षेप किसी अपील या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तब तक अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसा आक्षेप प्रथम बार के न्यायालय में यथासंभव सर्वप्रथम अवसर पर और उन सभी मामलों में जिनमें विवाद्यक स्थिर किए जाते हैं, ऐसे स्थिरीकरण के समय या उसके पहले न किया गया हो और जब तक कि उसके परिणामस्वरूप न्याय की निष्फलता न हुई हो।

3. किसी निष्पादन-न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के आधार पर उसकी सक्षमता के बारे में कोई आक्षेप, अपील या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तब तक अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसा आक्षेप निष्पादन-न्यायालय में यथासंभव सर्वप्रथम अवसर पर न किया गया हो और जब तक कि उसके परिणामस्वरूप न्याय की निष्फलता न हुई हो।"

श्री सी० रामानाथन के मतानुसार यह सही है कि वर्तमान मामले में, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा आक्षेप यथसंभव सर्वप्रथम अवसर पर किया गया था और फिर भी सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 21 (1) के अन्तर्गत जो भी सुस्थापित किया गया है, वह यह है कि चेंगलपत्तू के विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा वादग्रहण करने से न्याय की निष्फलता होगी।

12. इस सम्बन्ध में पुनरीक्षण पिटीशनर के विद्वान काउन्सेल श्री रामानाथन एस० एन० सी० सन्दराइन बनाम हिन्द तुती विद्युत आपूर्ती कम्पनी लि०[1] में प्रकाशित निर्णय को निर्देशित करते हैं। उक्त निर्णय में न्यायालय ने पृष्ठ 434 (पैरा 4) में यह मत व्यक्त किया है:—

"किन्तु अपीलार्थी के विद्वान काउन्सेल श्री टी० राघवन द्वारा उठाया गया अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि मद्रास में संबंधित माल के क्रयों और विक्रयों के सम्बन्ध में उत्पन्न विवाद को निर्धारित करने के लिए अधिकारिता निहित करने के लिए विशेष रूप से पक्षकारों ने संविदा की है, तूतीकोरिन में न्यायालय को वाद का निपटारा व इस पर निर्णय देने की बिल्कुल भी

1. 1974-II एम० एल० जे० 431.

अधिकारिता प्राप्त नहीं है। संविदा का सुसंगत भाग जो पक्षकारों के बीच में तय की गई विक्रय की शर्तों में प्रतिबिम्बित है, इस प्रकार है।

"सभी संव्यवहार मद्रास अधिकारिता के अधीन हैं। विक्रय के करार में इस प्रकार के विशेष खण्ड के आधार पर यह दलील दी गयी थी कि तूतीकोरिन के न्यायालय सहित सभी न्यायालयों की अधिकारिता का अपवर्जन है और इस प्रकार यह निर्णय जिसके विरुद्ध अपील की गई है, अकृत है तथा बिना अधिकारिता के है। हमारे समक्ष जो अनुरोध किया गया था, वह यह है कि जब पक्षकार विशेष रूप से सभी मामलों के मद्रास में निर्णय किए जाने के लिए सहमत थे, तो वादी के लिए तूतीकोरिन में न्याय-यालय को चुनने के लिए कोई विकल्प नहीं बचता है यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों के अन्तर्गत यह अन्यथा सक्षम न्यायालय हो सकता था क्योंकि वह संविदा के पालन का स्थान है। दूसरी ओर श्री एम० आर० नरायणस्वामी ने यह दलील दी कि विशेष खण्ड, जैसा ऊपर दिया है, के कारण सिर्फ़ तूतीकोरिन का न्यायालय ही वाद को ग्रहण करने के लिए सक्षम न्यायालय है किन्तु जब प्रतिवादी ने स्वयं उक्त न्यायालय की अधिकारिता के लिए अनुरोध किया था और गुणागुण के आधार पर विचारण के लिए चला गया, अब वह इस न्यायालय में अधिकारिता के प्रश्न को उठाने और गुणागुण के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए सुविचारित निर्णय को प्रभावहीन बनाने से निवारित है।"

पुनरीक्षण पिटीशनर के विद्वान काउन्सेल श्री सी० रामनाथन ने अनुरोध किया है कि सभी संव्यवहार वास्तव में क्रोम्पेट में ही हुए थे और के० पी० शाह ने प्रथम प्रत्यर्थी के अभिकर्ता के रूप में कार्य किया था और इस प्रकार जब पुनरीक्षण पिटीशनर और यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी के बीच में हुई मूल संविदा पर नुकसान की वसूली के लिए यह वाद

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फ़ाइल किया गया है, प्रदर्श ख1 के प्रथम पृष्ठ में मुद्रित शब्दों की विद्यमानता का कोई महत्व नहीं होगा क्योंकि यह सिर्फ़ द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा प्रथम प्रत्यर्थी को इसके माध्यम से मुम्बई माल के परिवहन के लिए जारी की गई परेषितो का पो है । अधिकारिता के सम्बन्ध में यह पुनरीक्षण पिटीशनर और प्रथम प्रत्यर्थी के बीच में कोई संविदा नहीं है । दूसरे शब्दों में, पुनरीक्षण पिटीशनर और यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी के बीच में स्थान के संबंध में जिसमें वाद संस्थित करना था, यदि उनके बीच में संव्यवहारों के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न हो जाए, कोई करार नहीं था। इसलिए वादी, यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर के विद्वान काउन्सेल श्री सी० रामानाथन द्वारा यह दलील दी गई कि वादपत्र में विशेष रूप से कथन किया गया है कि वादी, यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर और प्रथम प्रत्यर्थी के बीच इसके अभिकर्ता के० पी० शाह के माध्यम से संविदा सिर्फ़ कोम्पेट में ही हुई थी और इसलिए विचारण न्यायालय उपयुक्त और उचित वाद-स्थल है जिसमें हेतु को प्रस्तुत करना था और तदनुसार, सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों के अनुसार वह उचित रूप से संस्थित किया गया था ।

13. दूसरी तरफ़ प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि यद्यपि द्वितीय प्रत्यर्थी के लिए अभिवयन करना उसके क्षेत्र में नहीं है जो इस न्यायालय के समक्ष इस कार्यवाही में अनुपस्थित रहता है, फ़िर भी यह बताना उसका कर्त्तव्य है कि लिखित कथन में अधिकारिता के संबंध में उठाई गई एक विनिर्दिष्ट दलील है और इससे अधिक यह है कि जब **सबानी ट्रांसपोर्ट प्रा० लि० बनाम चिन्नास्वामी मुदालियार**[1] में विनिश्चयाधार को **एस० एन० सी० सन्दुराइन बनाम तिरुतूती विद्युत आपूर्ति कं० लि०**[2] के विनिश्चयाधार के साथ-साथ गणना में लिया गया है। इस से यह स्पष्ट हो जाएगा कि यह केवल मुम्बई न्यायालय जिसका सहारा वाद को प्रस्तुत करने के लिए यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर द्वारा लेना चाहिए था, क्योंकि यह सिर्फ़ मुम्बई स्थित न्यायालय की अधिकारिता के अन्तर्गत प्रथम प्रतिवादी यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी कारबार कर रहा है, उसके कथनानुसार इस संबंध में यह बताना भी सुसंगत है कि प्रदर्श ख-1 में

1 1978-II एम० एल० जे० 335.
2 1974-II एम० एल० जे० 431.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विनिर्दिष्ट रूप से किसी विवाद के लिए मुम्बई के न्यायालयों की अधिकारिता का उल्लेख है।

14. वर्तमान मामले में यह एक सामान्य आधार है कि वास्तव में 140121.03 रुपए की कीमत का संव्यवहार यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर और प्रथम प्रत्यर्थी के बीच हुआ था और यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी की तरफ से संविदा भंग होने के कारण हुए नुकसान के लिए है। वादी के अनुसार यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी से उक्त नुकसान को वसूल करने के लिए, यह वाद प्रस्तुत किया गया था और द्वितीय प्रत्यर्थी को भी वाद में पक्षकार बनाया गया है क्योंकि यह प्रथम प्रत्यर्थी का वाहक था। किन्तु यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान काउन्सेल ने निवेदन किया है कि वाद में यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी की तरफ से फ़ाइल किए गए लिखित कथन में यह प्रतिवाद उठाया गया है कि वास्तव में प्रथम प्रत्यर्थी की तरफ से कोई नुकसान नहीं पहुंचाया गया और वास्तव में जब माल को इस तरह से पैक किया गया था जिससे वह विक्रय वस्तु के रूप में प्रयोग के योग्य सूत के बाजार में बेचने के योग्य नहीं रहा, उनके पास चुप रहने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था। दूसरे शब्दों में, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फ़ाइल किए गए लिखित कथन में उठाए गए प्रतिविरोध को न्यायिक चुनौती से होकर अभी गुजरना बाकी है कि प्रथम प्रत्यर्थी यह साबित करने के लिए कि यह वाद के दावे के लिए जिम्मेदार नहीं है, अपने साक्षियों की परीक्षा करेगा।

15. प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से, यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान काउन्सेल द्वारा प्रथम प्रतिवादी के लिखित कथन के निम्नलिखित लेखांश की तरफ इशारा किया गया है :—

> "यह प्रतिवादी वादपत्र के पैरा 8 और 9 में वर्णित अभिकथनों का प्रत्याख्यान करता है तथा यह कथन करता है कि वादी और प्रथम प्रतिवादी के बीच में हुआ पत्राचार इस लिखित कथन का अनिवार्य भाग समझा जा सकता है। यह प्रतिवादी इन अभिकथनों का प्रत्याख्यान करता है कि डेमरेज चार्ज के 7,200 रुपए अदा करने के बाद वादी ने माल को खुले बाजार में बेच दिया और 1,41,998 रुपए 68 पैसे की राशि वसूल कर ली। वादी ने तारीख और उस पार्टी का वर्णन नहीं किया है जिसे माल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बेचा गया था यह प्रतिवादी इन अभिकथनों का प्रत्याख्यान करता है कि वादी ने कथित 24,460 रुपए 79 पैसे नुकसान उठाया है। इसलिए यह प्रतिवादी वादी को किसी भी धन राशि को अदा करने के लिए जिम्मेदार नहीं है, वादी को इस प्रतिवादी द्वारा अदा की गई अग्रिम धनराशि के 15,000 रुपयों की कटौती करने का कोई अधिकार नहीं है। यह प्रतिवादी कोई भी राशि वाद-पत्र के पैरा 9 में वर्णित वादी को अदा करने के लिए जिम्मेदार नहीं है 9,460 रु० 79 पैसे की राशि का तो प्रश्न नहीं उठता है। यह प्रतिवादी अभिकथित रकम को अदा करने के लिए जिम्मेदार नहीं क्योंकि इस प्रतिवादी की तरफ़ से कोई गलती नहीं हुई है। यह प्रतिवादी इन अभिकथनों का प्रत्याख्यान करता है कि द्वितीय प्रतिवादी इस प्रतिवादी का अभिकर्ता है। इस प्रतिवादी ने द्वितीय प्रतिवादी का नाम अपने अभिकर्ता के रूप में नहीं दिया है। इसलिए यह भी कथन किया जाता है कि 19-4-1977 को इस प्रतिवादी ने द्वितीय प्रतिवादी के माध्यम से कोम्पेट में माल प्राप्त किया था।"

16. यहां पर इस सम्बन्ध में द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा अपने लिखित कथन के पैरा 5 में उठाए गए प्रतिविरोध का वर्णन करना सुसंगत है, जो इस प्रकार है :—

"वाद-पत्र के पैरा सं० 7 के सम्बन्ध में—वादपत्र के पैरा 7 में अभिकथनों जो प्रतिवादी सं० 1 से सम्बन्धित होने के कारण, यह प्रतिवादी जानकारी की कमी के आधार पर उनका प्रत्याख्यान करता है। इस बात का समर्थन करना असत्य है कि प्रतिवादी सं० 2 ने 5 पेटियों का माल परिदत्त नहीं किया था। यह निवेदन किया गया है कि प्रतिवादी सं० 1 ने सभी माल की डिलीवरी को लेने के लिए जानबूझ कर सभी दस्तावेजों को वापस नहीं लौटाया था। यह प्रतिवादी सं० 1 की तरफ से उपेक्षा और लापरवाही है जो दस्तावेजों के सम्यक् रूप से लौटाने के पश्चात् माल को लेने में असफल रहा है जिससे नुकसान हुआ है। वाद-पत्र के पैरा 7 में दर्शाए गए दावे की विशिष्टियों का प्रत्याख्यान किया गया है। वास्तव में प्रतिवादी सं० 2 के कारण

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वादी को कोई नुकसान नहीं हुआ है । इस पैरा के अन्य अभिकथनों का प्रत्याख्यान किया है और वादी पर इनको साबित करने का दुर्भर दायित्व है ।"

यहां यह उल्लिखित करना सुसंगत है कि प्रथम प्रतिवादी यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन के पैरा 6 में निम्नलिखित दलीलें दी गई हैं :—

"यह प्रतिवादी आगे कथन करता है कि जब वे उपरोक्त 5 पेटियों के माल की डिलीवरी लेने के लिए गए, इस प्रतिवादी (प्रथम प्रतिवादी) को द्वितीय प्रतिवादी के द्वारा सूचना दी गई कि पेटियों को खुले और वियोजित अवस्था में परिदत्त किया जाएगा, जैसा कि न्यायालय के निमुक्ति आदेश में वर्णित है जिसके अन्तर्गत पेटियां और उनके माल के नमूने न्यायालय में विचारण के लिए रखे जाने थे । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मुद्रा बंद पेटियों की मिल की मूल पैकिंग नष्ट हो गई थी जिससे माल बाजार में बिकने को अयोग्य हो गया । इसलिए इस प्रतिवादी ने वादी को सूचित किया और उनसे पैकेटों में बंद बगैर मुद्रा से मुद्रांकित हालत में माल का परिदान करने के लिए कहा था ।"

17. अभिवचनों के उपर्युक्त भागों को साक्ष्य की विवेचना करने के लिए उद्धृत किया गया जो वादी साक्षी-1 व दस्तावेजों द्वारा, जो विचारण न्यायालय के समक्ष अधिकारिता से संबंधित प्रश्न की विवेचना के लिए फाइल किए गए थे, ज्ञात हुआ था ।

18. देश की प्रक्रिया सम्बन्धी विधि अर्थात् सिविल प्रक्रिया संहिता में यह निर्धारित किया गया है कि जहां पर वाद हेतु उत्पन्न हो या जहां प्रतिवादी निवास करता हो, वहां वाद संस्थित किया जा सकता है जो केवल व्यथित व्यक्ति द्वारा होता है । पक्षकारों के बीच में स्थान जहां पर वाद संस्थित किया जाना है से सम्बन्धित संविदा के सम्बन्ध में **एस० एन० सी० सन्दुराइन वनाम तिन-तूटी विद्युत आपूर्ति कं० लि०,**[1] **रिनाउन बिस्कुट कम्पनी** वनाम **कमलनाथ**[2] **और सवानी ट्रांसपोर्ट प्रा० लि०** वनाम **चिन्नास्वामी मुदलियार और कं०**[3] वाले मामलों में संप्रकाशित

1. 1974-II एम० एल० जे० 431.
2. 1979-II म० एल० जे० 377.
3. 1978-II एम०एल० जे० 335.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्णयों में अधिकारिता से सम्बन्धित सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों की विवेचना करने के लिए काफी ज्ञानवर्धक सामग्री है ।

19. जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, विचार के लिए प्रश्न यह है कि क्या निचले दोनों ही न्यायालयों द्वारा यह निर्धारित करना सही है कि केवल मुम्बई के न्यायालयों को ही प्रश्नगत विवाद को सुनने के लिए अधिकारिता प्राप्त है अर्थात, वादी यहां पर पुनरीक्षण पिटीशनर द्वारा चेंगलपत्तू के उप-न्यायालय में प्रस्तुत किए गए वाद में अन्तर्ग्रस्त विवाद । जैसा पहले देखा जा चुका है, अभिकथनों तथा वादी साक्षी के साक्ष्य के साथ-साथ प्रदर्श क-1 और क-2 की अन्तर्वस्तु से यह ज्ञात होता है कि अधिकारिता के सम्बन्धित प्रश्न की विवेचना करने के उद्देश्य के लिए संव्यवहार वास्तव में क्रोम्पेट पर हुआ था । प्रदर्श-क-3 वादी कम्पनी का 1,66,726 रुपए 20 पैसे के लिए प्रथम प्रतिवादी कम्पनी को दिया गया बीजक सं० 18/77-78 है । प्रदर्श क-4 द्वितीय प्रतिवादी द्वारा दी गई माल की परेषिती प्रतिलिपि है । जब इस स्तर पर पूरे मामले को देखा जाता है तो, वादी साक्षी 1 के मौखिक साक्ष्य के साथ दस्तावेजी साक्ष्य प्रादर्श क-1 से क-4 तक और प्रदर्श ख-1 जो अभिलेख पर उपलब्ध है, के अलावा बिना और किसी साक्ष्य के यह दिखाई देता है कि माल को वास्तव में यहां पर द्वितीय प्रत्यर्थी के माध्यम से संविदा के अनुसार क्रोम्पेट पर परेषित किया गया था जो वादी-कम्पनी का स्थान है और उस संव्यवहार में एक के० बी० शाह ने यहां पर प्रथम प्रत्यर्थी के अभिकर्ता के रूप में कार्य किया, यद्यपि इस तथ्य को प्रथम प्रत्यर्थी के द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन में पूर्ण रूप से स्वीकार किया है । लेकिन फिर भी साक्ष्य पर वास्तव में विस्तारपूर्वक विचार करते समय इस विषय पर और विवेचना की जाएगी । लेकिन इस स्तर पर यह अभिनिर्धारित करना पर्याप्त है कि अधिकारिता से सम्बन्धित प्रश्न की विवेचना करने के लिए अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य, अर्थात् प्रदर्श क-1 से क-4 की अन्तर्वस्तु के साथ-साथ वादी साक्षी 1 के मौखिक साक्ष्य से यह स्पष्टतः स्थापित होता है कि केवल क्रोम्पेट का न्यायालय ही है, अर्थात् विचारण न्यायालय जिसमें सही रूप से वाद संस्थित किया गया है, वह ही सही वाद-स्थल है । न्यायालय की अधिकारिता के सम्बन्ध में किसी संविदा की वजह से ऐसा नहीं है जो उत्पन्न हो सकती है । लेकिन दूसरी तरफ केवल कतिपय मुद्रित शब्द हैं, अर्थात् "मुम्बई अधिकारिता के अधीन" जो प्रदर्श

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ख-1 के ऊपरी भाग पर उपलब्ध है जिस पर अधिकार निचले दोनों न्यायालयों ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अवलम्ब लिया है कि यह सिर्फ मुम्बई के न्यायालय हैं जिनमें वाद प्रस्तुत करना चाहिए था न कि चेंगलपत्तू का उप न्यायालय/केवल सिविल प्रक्रिया संहिता के सुसंगत उपबन्ध ही नहीं बल्कि सभी निर्णयों में उपलब्ध विनिश्चयाधार जिन पर निचले दोनों न्यायालयों ने विचार किया था और उनके प्रति व्यापक रूप में निर्देश किया हैं । इससे यह स्पष्टतः स्थापित होता है कि उनके द्वारा निकाला गया निष्कर्ष गलत है । **एस० एन० सी० सन्दुराइन** बनाम **तिल-तूती विद्युत आपूर्ति कं० लि०**[1] में संप्रकाशित निर्णय के विनिश्चयाधार को दिमाग में रखते हुए जहां इस न्यायालय की न्यायपीठ ने **रिनाउन बिस्कुट कम्पनी** बनाम **कमलनाथन**[2] में न्या० इस्माईल जैसे वे उस समय थे द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण और इस प्रश्न पर महत्वपूर्ण निर्णयज विधि को निगमित किया है जो इस सिद्धांत पर आधारित है कि विधि स्थिर नहीं है लेकिन उसमें गतिशीलता है क्योंकि यह समाज के विकास के साथ अनुरूप बदलती रहती है । इस न्यायालय का यह पक्का विचार है कि निचले दोनों न्यायालयों ने अधिकारिता के प्रश्न की सही और उचित रूप से विवेचना नहीं की है और इसलिए पुनरीक्षण के अधीन आदेश में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के उपबन्धों के अधीन हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है ।

20. परिणामस्वरूप पुनरीक्षण मंजूर किया जाता है और अभिलेख विचारण न्यायालय को भेजे जाते हैं जो वाद को फाइल कर लेगा और इसके द्वारा विरचित अन्य विवाद्यकों के सम्बन्ध में विचारण करेगा और जल्दी से जल्दी जैसे संभव हो इसका निपटारा करेगा। खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं होगा ।

21. द्वितीय प्रतिवादी यहां पर द्वितीय प्रत्यर्थी इस सिविल पुन-रीक्षण पिटीशन में कार्यवाही के दौरान अनुपस्थित रहा है, यद्यपि इस तथ्य के सम्बन्ध में उसे दोनों विचारण न्यायालय और निचले अपील न्यायालय में अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर मिला था ।

रा०/मि० ——— पुनरीक्षण मंजूर किया गया ।

[1] 1974-II एम० एल० जे० 431.

[2] 1979-II एम० एल० जे० 437.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नि० प० 1983 : मद्रास—162

एच० जी० कृष्ण रेड्डी एण्ड कंपनी बनाम एम० एम० थिमैयाह और एक अन्य
(H.C. Krishna Reddy & Company *Vs.* M.M. Thimmaiah and another)

तारीख 24 जनवरी, 1983

[मु० न्या० के० बी० एन० सिंह और न्या० पद्मनाभन]

संविदा अधिनियम, 1872, धारा 10 सपठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963, धारा 16 और 25—सम्पूरित संविदा की कसौटी—करार की शर्त के इस उपबंध से कि यदि 45 दिन के भीतर संव्यवहार पूरा नहीं किया जा सकता हो तो द्वितीय प्रत्यर्थी 12% ब्याज की दर से अग्रिम रकम वापस कर सकेगा—द्वितीय प्रत्यर्थी अग्रिम की रकम वापस कर देता है—करार में सौदेबाजी के सम्पूर्ण निबंधन अंतर्विष्ट नहीं थे—पक्षकार सुझावों और प्रतिसुझावों के संबंध में केवल बातचीत ही कर रहे थे और बाद के संबंध में उनमें मतैक्य नहीं हुआ था—करार का सम्पूरित संविदा होना आशयित नहीं था।

2. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963, धारा 16 सपठित संविदा अधिनियम, 1872, धारा 10— मूल्यार्थ सम्पत्ति क्रय करने वाले क्रेता के तौर पर अपीलार्थी को किसी संविदा के अस्तित्व में रहने की जानकारी न होना—अपीलार्थी मूल्यार्थ सद्भावी क्रेता है— उक्त धारा 16 प्रतिषेधात्मक है—अपीलार्थी क्रय की गई सम्पत्ति के लिए हकदार है।

द्वितीय प्रत्यर्थी ने प्रथम प्रत्यर्थी के पक्ष में 3,000 रुपए के लिए एक रसीद प्रदर्श पी-1, निष्पादित की। रसीद में यह वर्णित था कि प्रथम प्रत्यर्थी के पक्ष में द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा वादगत सम्पत्ति के विक्रय के लिए 1 लाख 22 हजार 5 सौ रुपए की करारित राशि के लिए 3,000 रुपए की राशि प्राप्त की जा रही थी। प्रथम प्रत्यर्थी के अधिवक्ता द्वारा हक विलेख के संक्रात किए जाने की तारीख से 45 दिन के भीतर विक्रय पूरा किया जाना था, अन्य बातों के साथ उस में एक खण्ड इस प्रभाव का भी था कि द्वितीय प्रत्यर्थी को विक्रय के लिए रसीद की तारीख से 15 दिन के भीतर स्टाम्प पेपर पर नियमित संविदा निष्पादित करनी चाहिए और यदि उक्त संव्यवहार 45 दिन की अवधि के भीतर पूरा नहीं किया जाता है तो द्वितीय प्रत्यर्थी को उक्त तारीख से 12% प्रति वर्ष ब्याज की दर सहित अग्रिम राशि वापस कर देनी चाहिए। द्वितीय प्रत्यर्थी ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुमोदन और हस्ताक्षर के लिए विक्रय प्रारूप करार प्रथम प्रत्यर्थी को फरवरी, 1974 में भेजा। द्वितीय प्रत्यर्थी ने प्रथम प्रत्यर्थी को कतिपय संशोधन सुझाते हुए प्रथम प्रत्यर्थी को विक्रय का प्रारूप करार वापस कर दिया। पत्रकारों के बीच कुछ पत्र-व्यवहार हुआ। इसके पश्चात् द्वितीय प्रत्यर्थी के काउन्सेल ने प्रथम प्रत्यर्थी के काउन्सेल को यह वर्णित करते हुए एक पत्र लिखा कि द्वितीय प्रत्यर्थी विक्रय की संविदा को चालू बनाए रखना नहीं चाहता है। उसने 13,000 रुपए की राशि भी लौटा दी जो विक्रय प्रतिफल पर अग्रिम के तौर पर प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा संदत्त की गई थी। प्रथम प्रत्यर्थी ने यह वाद फाइल किया और द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा उससे किए गए विक्रय के करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए प्रार्थना की। द्वितीय प्रत्यर्थी ने अपनी प्रतिरक्षा में यह दलील दी कि प्रथम प्रत्यर्थी और उसके बीच वादांतर्गत सम्पत्ति के विक्रय के लिए संपूरित कोई संविदा नहीं थी। प्रदर्श पी-1 रसीद से अपने आप में संपूरित संविदा गठित नहीं होती है। किन्तु उसमें विक्रय के लिए लिखित करार अनुध्यात है। द्वितीय प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन है कि उसने प्रथम प्रत्यर्थी को यह सूचित किया था कि वह युक्तियुक्त समय के भीतर अच्छा हक नहीं दे सकता और यदि प्रथम प्रत्यर्थी कुछ समय इंतजार करेगा और अपने ऋणों के संदाय के लिए राशि और देगा तो वह विक्रय संव्यवहार संपूरित कर लेगा या वह संविदा को रद्द की गई संविदा मान सकेगा। प्रथम प्रत्यर्थी द्वितीय प्रत्यर्थी के निबंधनों से सहमत नहीं था। अतः द्वितीय प्रत्यर्थी ने करार रद्द कर दिया। अपीलार्थी ने अपनी प्रतिरक्षा में यह कहा था कि उसने वादांतर्गत सम्पत्ति सद्भाव से और मूल्यवान प्रतिफल के लिए क्रय की थी। क्रय करते हुए उसे यह ज्ञात नहीं था कि प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 के बीच विक्रय के लिए वैध संविदा अस्तित्व में थी और यह भी ज्ञात नहीं था कि संपूरित संविदा भी अस्तित्व में थी। अपीलार्थी ने आवश्यक राशि का संदाय करके विक्रय विलेख के अधीन विक्रय संव्यवहार संपूरित कर लिया और उक्त दस्तावेज को विक्रय विलेख के रूप में रजिस्ट्रीकृत करवा लिया। अपीलार्थी ने आगे यह वर्णित किया कि प्रथम प्रत्यर्थी को इस तथ्य की जानकारी थी कि द्वितीय प्रत्यर्थी से सम्पत्ति क्रय करने वाला है फिर भी उसने अपीलार्थी को सम्पत्ति क्रय करने से नहीं रोका। वह मूल्यार्थ सद्भावी क्रेता है। अपीलार्थी ने यह दलील दी कि अपने आचरण से प्रथम प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को द्वितीय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रत्यर्थी से सम्पत्ति क्रय करने की इजाजत दी और अपीलार्थी को विक्रय के लिए अभिकथित करार की कोई सूचना नहीं दी। विचारण न्यायाधीश को यह ज्ञात हुआ कि प्रथम प्रत्यर्थी के पक्ष में विक्रय के लिए संपूरित संविदा थी और उक्त संविदा विधिमान्य थी और द्वितीय प्रत्यर्थी पर आबद्धकर थी। उसे यह भी ज्ञात हुआ कि प्रथम प्रत्यर्थी विनिर्दिष्ट अनुपालन के अनुतोष के लिए हकदार था और यह कि विक्रय के लिए करार की सूचना के बिना अपीलार्थी मूल्यार्थ सद्भावी क्रेता नहीं था। विद्वान न्यायाधीश ने प्रथम प्रत्यर्थी के पक्ष में तथा अपीलार्थी और द्वितीय प्रत्यर्थी के विरुद्ध विक्रय के लिए उक्त संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए एक डिक्री पारित कर दी। अत: प्रस्तुत अपील की गई है। दोनों पक्षों की ओर से विद्वान काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों को ध्यान में रखते हुए इस अपील में अवधारण के लिए निम्नलिखित मुद्दे उद्भूत होते हैं—(1) क्या [illegible] 1 और 2 के बीच संपूरित संविदा अस्तित्व में थी जो प्रथम प्रत्य[illegible] अनुरोध करने पर विनिर्दिष्ट रूप से प्रवृत्त की जा सकती थी। (2) क्या प्रथम प्रत्यर्थी संविदा के अपने भाग का अनुपालन करने के लिए तैयार और रजामंद है और क्या वह उसके द्वारा अभिकथित विक्रय के लिए संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री प्राप्त करने के लिए हकदार है और क्या द्वितीय प्रत्यर्थी अपील में इस आधार पर आक्षेप करने के लिए हकदार है। (3) यह धारणा करने पर कि प्रत्यर्थी सं० 1 और 2 के बीच संविदा अस्तित्व में थी, क्या प्रथम प्रत्यर्थी इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए संविदा को प्रवृत्त कराने के लिए निर्हकित होगा कि उसने 13,000 रुपए की अग्रिम के रूप में दी गई राशि को वापस प्राप्त कर लिया था। (4) क्या अपीलार्थी प्रत्यर्थी सं० 1 और 2 के बीच विक्रय के लिए अभिकथित संविदा की सूचना के बिना मूल्यार्थ सद्भावी क्रेता है।

अभिनिर्धारित — अपील मंजूर की गई।

यदि कोई दस्तावेज जो दो पक्षकारों द्वारा निष्पादित की जाती है और जिसका अवलम्ब संविदा गठित करने वाली दस्तावेज के तौर पर किया जाता है और उसमें पक्षकारों के बीच का नियमित करार निष्पादित किया जाना अनुध्यात है तो यह अर्थान्वयन की बात है कि क्या अतिरिक्त करार निष्पादित किया जाना सौदे के निबंधन की एक शर्त है या क्या वह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पक्षकारों की इच्छा के बारे में केवल अभिव्यक्ति मात्र है जिस रीति से कि मूल करार का पालन किया जाना चाहिए। पूर्ववर्ती मामले में कोई प्रवर्तनीय संविदा नहीं हो सकती जब तक शर्त पूरी नहीं कर दी जाती है या इस प्रकार की विधि संविदा करने को मान्यता नहीं देती है। पश्चात्-वर्ती करार के तैयार किए जाने का तथ्य इस बात का साक्ष्य हो सकता है कि पूर्ववर्ती बात चीत करार की कोटि में नहीं थी। किन्तु केवल यह तथ्य कि व्यक्ति यह चाहते हैं कि प्ररूपिक करार कर लिया जाए तो इससे यह प्रतिपादना साबित नहीं होती है कि उन्हें पूर्ववर्ती करार से आबद्ध नहीं किया जा सकता। जब कोई इस प्रकार की लिखित दस्तावेज होती है जिसके पश्चात् पत्र व्यवहार के माध्यम से और अधिक बातचीत बाद में होती है तो इस बात का पता लगाने के लिए सम्पूर्ण पत्र व्यवहार को भी देखना होता है कि क्या सम्पूरित संविदा हुई थी या नहीं। क्या प्रदर्श पी-1 से कोई संपूरित संविदा गठित हुई थी या नहीं। प्रदर्श पी-1 रसीद स्वयं ही उसमें वर्णित निबन्धनों और शर्तों के अधीन दी गई है। उसमें यह वर्णित है कि विक्रय प्रथम प्रत्यर्थी के अधिवक्ता द्वारा हक संक्रांत करने की तारीख से 45 दिन के भीतर पूर्ण हो जाएगा। द्वितीय प्रत्यर्थी को प्रदर्श पी-1 की तारीख से पहले 13 वर्ष की कालावधि के लिए विल्लंगम् प्रमाणपत्र पेश करना होगा और साथ ही अपने भाई के दावे की तुष्टि के लिए प्रमाणपत्र प्राप्त करना होगा। द्वितीय प्रत्यर्थी को सभी करों और अन्य लोक मांगों के संदाय के लिए रसीदें भी पेश करनी होंगी। प्रदर्श पी-1 के खण्ड 6 में यह बात स्पष्ट रूप से वर्णित है कि यदि संव्यवहार उक्त 45 दिन की अवधि के भीतर या बढ़ाए गए समय के भीतर किसी कारण से पूरा नहीं होता है या पूरा नहीं किया जा सकता हो तो द्वितीय प्रत्यर्थी प्रदर्श पी-1 की तारीख से 12 % व्याज की दर से अग्रिम रकम लौटाएगा। प्रदर्श पी-1 के खण्ड 7 में वर्णित है कि द्वितीय प्रत्यर्थी विक्रय का नियमित करार प्रदर्श पी-1 की तारीख से 15 दिन के भीतर स्टाम्प पेपर पर निष्पादित करेगा। यद्यपि निस्संदेह प्रदर्श पी-1 में प्रतिफल रकम विनिर्दिष्ट है और बेची जाने वाली सम्पत्ति भी विनिर्दिष्ट है फिर भी प्रदर्श पी-1 का परिशीलन करने से यह प्रभाव पड़ता है कि स्टाम्प पेपर पर विक्रय का नियमित करार प्रदर्श पी-1 की तारीख से 15 दिन के भीतर निष्पादित किया जाना होगा और यह कि उक्त परिवर्तन प्रदर्श पी-1 के अधीन के पक्षकारों के बीच बातचीत की एक शर्त है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसके अतिरिक्त प्रदर्श पी-1 के खण्ड 6 से द्वितीय प्रत्यर्थी को यह विकल्प प्राप्त होता है कि वह 12 % ब्याज की दर से अग्रिम रकम वापस कर दे जैसा कि उसमें अनुबंधित है, 45 दिन के भीतर संव्यवहार पूरा नहीं किया जा सकता हो। इस सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है कि द्वितीय प्रत्यर्थी ने अग्रिम की रकम वापस कर दी थी और यह कहा था कि वह युक्तियुक्त समय के भीतर संव्यवहार पूरा नहीं कर सकेगा। स्वयं इस खण्ड से ही यह ज्ञात होता है कि प्रदर्श पी-1 का एक सम्पूरित संविदा होना आशयित नहीं था। समस्त दस्तावेजी साक्ष्य का सारांश यह है कि पक्षकारों के बीच में कोई भी संपूरित संविदा अस्तित्त्व में नहीं थी, यह कि प्रदर्श पी-1 इस बात के लिए आशयित नहीं था कि उसमें सौदेबाजी के सम्पूर्ण निबन्धन अंतर्विष्ट हों, यह कि प्रदर्श पी-1 प्रारूप करार द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा स्वीकार नहीं किया गया और उसने उस पर हस्ताक्षर भी नहीं किए और यह कि पक्षकार सुझावों और प्रतिसुझावों के संबंध में केवल बातचीत ही कर रहे थे और वाद के सम्बन्ध में उनमें मतैक्य नहीं हुआ था। (पैरा 9, 19, 21 और 23)

प्रथम प्रत्यर्थी के गवाह के कटघरे में न होने के कारण न्यायाधीश यह निष्कर्ष निकालने में असमर्थ है कि प्रथम प्रत्यर्थी वादी ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16(ग) के अधीन व्यादिष्ट अपने कर्तव्य का निर्वहन किया था जिसके कारण वह विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के लिए हकदार हो गया है। भले ही विद्वान न्यायाधीश के समक्ष वह मुद्दा न उठाया गया हो, फिर भी अपीलार्थी को इस बात का निश्चित रूप से अधिकार है कि वह उक्त प्रश्न न्यायालय के समक्ष उठाए। विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16 (ग) प्रतिषेधात्मक है और लोक कानून द्वारा न्यायालय के ऊपर यह कर्त्तव्य अधिरोपित किया गया है कि संविदा का विनिर्दिष्ट अनुपालन किया जाना ऐसे व्यक्ति के पक्ष में मंजूर नहीं किया जा सकता जब तक कि वह संविदा के अपने भाग के अनुपालन के लिए अपने तैयार रहने और रजामंद रहने का प्रकथन नहीं करता है और उसे साबित नहीं करता है। चूंकि, कानन की यह स्थिति है, अतः न्यायालय का यह कर्तव्य होगा कि वह यह देखे कि वह व्यक्ति जो संविदा को प्रवृत कराना चाहता है, विनिर्दिष्ट अनुताष अधिनियम 1963 की धारा 16 के आज्ञापक उपबंधों को पूरा करता है। यदि शर्तें पूरी नहीं की जाती हैं तो न्यायालय वाद खारिज करने के लिए आबद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। द्वितीय प्रत्यर्थी ने यह पहले ही वर्णित कर दिया था कि उसका आशय विक्रय के लिए प्रारूप करार को निष्पादित करने का नहीं था और यह कि वह संविदा अब अस्तित्त्व में नहीं थी। यह मान लेने पर कि प्रदर्श एफ-1 विक्रय के लिए संपूरित संविदा की कोटि की थी, प्रथम प्रत्यर्थी ने 13,000 रुपए की वापस की गई रकम इस बात की पूर्ण जानकारी होते हुए भी स्वीकार कर ली कि द्वितीय प्रत्यर्थी ने संविदा रद्द कर दी थी। अतः इस संदर्भ में विक्रय की संविदा के अधीन अपने अधिकारों पर "प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना" शब्दों के उपयोग से सशर्त स्वीकृति के इस तथ्य का अल्पीकरण नहीं होता है कि वह द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा संविदा भंग करने के सम्बन्ध में उपमत था। अपीलार्थी को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी कि इस विक्रय की तारीख को कोई अस्तित्त्ववान संविदा थी। इसके विपरीत साक्ष्य द्वारा यह साबित हो गया है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने प्रतिदाय रकम पहले ही वापस ले ली थी और परिणामस्वरूप भले ही वहां विक्रय के लिए वैध और प्रवर्तनीय ऐसी कोई संविदा होती फिर भी उसने संविदा को प्रवृत्त करने के अपने अधिकार का अभित्यजन कर दिया है। अपीलार्थी विक्रय के लिए किसी अस्तित्त्ववान् संविदा के बारे में सूचना दिए बिना मूल्यार्थ सद्भावी क्रेता है (पैरा 30, 36 और 38)

[1955] ए० आई० आर० 1955 कलकत्ता 210 : बैजनाथ **बनाम** क्षेत्र हरि सरकार (Baijnath *Vs.* Kshetra hari Sarkar) 21

अनुसरण किया गया।

[1961] (1961) 3 एस० सी० आर० 813 : गंगा दत्त मोरारका **बनाम** कार्तिक चंद दास (Ganga Dutt Murarka *Vs.* Kartik Chandra Das) 37
से **प्रभेद** बतलाया गया।

[1971] ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 1238 : रमेश चन्द **बनाम** चुन्नी लाल (Ramesh Chandra *Vs.* Chunni Lal); 28

[1968] ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 1028 : के० श्रीरामुलू **बनाम** असवथ नारायण (K. Sriramulu *Vs.* Aswatha Narayana); 18

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1967] ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 308 : गोमती नयाजम पिल्लई **बनाम** पलानी स्वामी नाडार (Gomathinayagam Pillai *Vs.* Palaniswami Nadar); 26

[1960] ए० आई० आर० 1960 कलकत्ता 752 : गोस्थे बिहारी **बनाम** सूर्स एस्टेट्स लिमिटेड (Gosthe Behari *Vs.* Sur's Estates Ltd.); 13

[1954] ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 85 : दुर्गा प्रसाद **बनाम** दीप चंद (Durga Prasad *Vs.* Deep Chand); 15

[1951] ए० आई० आर० 1951 इलाहाबाद 93 : दीप चंद **बनाम** सज्जाद अली खान (Deep Chand *Vs.* Sajjad Ali Khan); 14

[1949] ए० आई० आर० 1949 पी० सी० 297 : शिव प्रसाद सिंह **बनाम** सिरीश चन्द्र (Shiva Prasad Singh *Vs.* Srish Chandra); 30

[1947] (1947) 1 के० बी० 854 : ब्रांका **बनाम** कोबाप्रो (Branca *Vs.* Cobapro); 17

[1946] ए० आई० आर० 1946 पी० सी० पृ० 97 : शंकरलाल नारायणदास मुंडाड **बनाम** न्यू मुफस्सिल कंपनी लिमिटेड (Shankarlal Narayandas Mundade *Vs.* New Mofussil Company Limited); 13

[1945] ए० आई० आर० 1945 पटना 260 : छोटू मिया **बनाम** मुसम्मात सुन्दरी (Chotu Mia *Vs.* Mst. Sundari); 35

[1942] (1942) 2 के० बी० 32 : स्पोटिस्वुड, बल्लानटाइन एण्ड कंपनी लिमिटेड **बनाम** डोरीन एप्लायंसेस लिमिटेड (Spottiswoode, Ballantyne and Company Ltd. *Vs.* Doreen Appliances Ltd.); 36

[1935] ए० आई० आर० 1935 मद्रास 454 : सत्यनारायण **बनाम** वैंकट राममूर्ति (Satyanarayana *Vs.* Venkataramamurthy); 34

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया है कि 'साधारण' शब्द की परिभाषाओं में से एक परिभाषा अधिकांश परिभाषाओं में से अथवा सबसे अधिक संख्या में सामान्य है। अन्य परिभाषा 'जिसका सभी के साथ संबंध हो,' 'सभी के लिये सामान्य हो' है। इसका यह कहते हुए और उदाहरण दिया जा सकता है कि 'किसी ऋणी के लेनदारों की सभा, यदि यह किसी विशेष वर्ग तक ही सीमित है' तो यह सामान्य सभा नहीं है। इसके भली प्रकार से स्वीकार किए गए अर्थ पर ध्यान देते हुए धारा 20(2) में 'साधारण सभा' अभिव्यक्ति सभी पार्षदों की सभा के प्रति निर्देशित की जानी चाहिए न कि पार्षदों के किसी विशेष वर्ग की सभा के प्रति। धारा 20 की उपधारा (2) निर्वाचित पार्षदों तक ही सीमित नहीं है। यह सभी पार्षदों, चाहे वे निर्वाचित हों या चुने गए हों, के कार्यकाल को लागू होती है। यह कार्यकाल निर्वाचन के पश्चात् प्रथम साधारण सभा के लिए नियत की गई तारीख से प्रारम्भ होता है। इस संदर्भ में हमारी राय में साधारण सभा का अर्थ निर्वाचित और चुने गए पार्षदों की उस प्रथम सभा से लगाया जाना चाहिए जो धारा 28 के अधीन की गई है। 'साधारण सभा' अभिव्यक्ति का इस प्रकार निर्वचन नहीं किया जा सकता कि इसका अभिप्राय केवल निर्वाचित पार्षदों की सभा से हो जो पार्षदों का चयन करने के लिए नियम 47 के अधीन की जाती है। नियम 47 के अधीन की गई सभा एक वर्ग सभा होती है। यह साधारण सभा नहीं होती।

9. प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि धारा 20(2) में आए हुए "ऐसा निर्वाचन" शब्द यह दर्शित करते हैं कि उस धारा में निर्दिष्ट साधारण सभा पार्षदों के निर्वाचन के पश्चात् को प्रथम सभा है न कि पार्षदों का चयन किए जाने के पश्चात् की प्रथम सभा। यह दलील दी गई कि यदि विधान-मण्डल का आशय अन्यथा होता तो यह "ऐसा निर्वाचन" शब्द या "ऐसा निर्वाचन और चयन" शब्द प्रयुक्त किए गए होते। यह सत्य है कि प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउन्सेल ने जिन शब्दों का प्रयोग किए जाने का सुझाव दिया है, यदि उनका ही प्रयोग विधान-मण्डल ने किया होता तो तर्क के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहती और यह विषय पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता। किन्तु प्रस्तुत धारा में जिस रूप में शब्दों का प्रयोग किया गया है, इनसे भी हमें किसी प्रकार का कोई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संदेह नहीं रह जाता। इसमें प्रथम साधारण सभा शब्दों पर जोर दिया गया है और चूंकि साधारण सभा का इसके स्वभाव के अनुसार पार्षदों के किसी विशिष्ट वर्ग से अभिप्राय नहीं हो सकता, अतः निर्वाचन के पश्चात् जो प्रथम साधारण सभा की जाती है, वह निर्वाचित पार्षदों द्वारा पार्षदों का चयन किए जाने के पश्चात् धारा 28 के अधीन की जाने वाली सभा है। हमारे द्वारा निकाला गया निष्कर्ष धारा 23 में प्रयुक्त भाषा से भी समर्थित है। इस धारा का शीर्ष "साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सभा" है। यद्यपि इसमें प्रयुक्त अभिव्यक्ति प्रथम सभा है न कि प्रथम साधारण सभा, तथापि इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। अतः धारा 28 में निर्दिष्ट सभा प्रथम साधारण सभा अर्थात् निर्वाचित और चयन किए गए ऐसे पार्षदों की प्रथम सभा है जिनसे निगम का गठन होता है। यही कारण, है कि यह सभा भी धारा 28 में निगम की प्रथम सभा के रूप में निर्दिष्ट की गई है। इसी सभा में यथा गठित निगम कार्य करना प्रारम्भ करता है और इसके बारे में यह कहा जा सकता है कि इसने महापौर और अन्य प्राधिकारियों के निर्वाचन द्वारा अपना पद सम्भाल लिया है। इसके अतिरिक्त यदि हम प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान काउन्सेल की दलील को स्वीकार करते हैं तो यह विषमता उत्पन्न होगी कि चतुर्थ महापौर और उप-महापौर एवं चतुर्थ समितियों की पदावधि निगम को पदावधि के समाप्त होने के साथ समाप्त नहीं होगी। महापौर और उप-महापौर की पदावधि उस सभा की जिसमें उनका निर्वाचन किया जाता है तारीख से, एक वर्ष है। यह धारा 23 में उपबंधित है। इसी प्रकार स्थायी समिति की पदावधि, जैसा कि धारा 38 में उपबंधित है, एक वर्ष है। अतः यदि निगम अर्थात् निर्वाचित और चयन किए गए पार्षदों की पदावधि पार्षदों का चयन करने के लिए निर्वाचित पार्षदों की सभा की तारीख से प्रारम्भ होती है तथा महापौर, उप-महापौर और स्थायी समिति की पदावधि निर्वाचित और चयन किए गए पार्षदों की प्रथम सभा की तारीख से प्रारम्भ होती है तो यह स्पष्ट है कि चतुर्थ महापौर और उप-महापौर एवं चतुर्थ स्थायी समिति की अवधि निगम की पदावधि से संगत नहीं होगी और उनकी पदावधि एक वर्ष से कम होगी जो कि धारा 23 और धारा 38 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के प्रतिकूल होगा। हमारे द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कि धारा 20(2) में निर्दिष्ट प्रथम साधारण सभा वह सभा है जो धारा 28

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के अधीन की जाती है न कि वह सभा है जो नियम 47 के अधीन की जाती है और इससे विषमता का निवारण भी हो जाता है।

10. हमारे द्वारा अपनाए गए मत के अनुसार निगम की पदावधि 27 फरवरी, 1980 से प्रारम्भ हुई है और इसका अवसान 26 फरवरी, 1984 को होगा। आवश्यक रूप से इससे यह परिणाम निकलता है कि धारा 423 के अधीन प्रशासक नियुक्त करने वाली अधिसूचना का सरकार द्वारा जारी किया जाना इस गलत अनुमान के अधीन है कि निगम का विघटन इसकी अवधि के अवसान द्वारा हो गया है।

11. प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान काउन्सेल ने यह भी दलील दी कि चूंकि महापौर और सभी पार्षद इस पिटीशन में सम्मिलित नहीं हुए हैं अतः पिटीशनरों को कोई अनुतोष मंजूर नहीं किया जाना चाहिए। हम इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते। 1983 के प्रकीर्ण पिटीशन सं० 908 में पिटीशनर सं० 1 उप-महापौर है तथा वह स्थायी समिति का अध्यक्ष है। पिटीशनर सं० 2 और 3 निगम के पार्षद हैं। 1983 के प्रकीर्ण पिटीशन सं० 866 में पिटीशनर पार्षद है। पिटीशनर संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता का आश्रय लेने के लिए पर्याप्त हित रखते हैं और उसे हमारी अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए मात्र इस कारण मना नहीं किया जा सकता कि महापौर और सभी पार्षद पक्षकारों के रूप में सम्मिलित नहीं हुए हैं।

12. पिटीशन मंजूर किए जाते हैं। हम यह घोषित करते हैं कि नगर निगम, रायपुर के पार्षदों की पदावधि पदकाल 26 फरवरी, 1984 तक चालू रहेगी। हम 16 मार्च, 1983 को राज्य सरकार द्वारा धारा 423 के अधीन जारी की गई अधिसूचना को, जिसमें निगम को विघटित माना गया है और निगम के लिए प्रशासक नियुक्त किया गया है, अभिखण्डित करते हैं। इन पिटीशनों के खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता।

पिटीशन मंजूर किए गए।

बंसल/मि०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नि० प० 1983 : मध्य प्रदेश--340

जगदीश बाबूलाल और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य
(Jagdish Babulal and others *Vs.* State of Madhya Pradesh)

तारीख, 31 मार्च, 1983

[न्या० सी० पी० सेन]

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973, धारा 167 (2) परन्तुक (क)--जमानत के लिए आवेदन--90 दिन की संगणना करते समय गिरफ्तार किए जाने की तारीख अपवर्जित की जाएगी।

27/28-10-1982 के बीच की रात्रि में एक डकैती की रिपोर्ट पुलिस को प्राप्त होने पर अन्वेषण प्रारम्भ हुआ और प्रस्तुत मामले में 19-11-82 को 12 अभियुक्त गिरफ्तार किए गए। साक्ष्य के अभाव में दो अभियुक्तों को जमानत पर छोड़ दिया गया। 10 आवेदकों में से प्रत्येक से नकद और जेवरात बरामद किए गए। शनाख्त परेड में उन्हें पहचाना गया और बरामद की गई सम्पत्तियां भी पहचान ली गईं। अतः न्यायालय ने 10 आवेदकों के जमानत आवेदन-पत्रों को नामंजूर कर दिया। जमानत आवेदनों के रद्द किए जाने के पश्चात् मामलों में 17-2-83 को चालान फाइल किया था और तब दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन जमानत के लिए नए आवेदन इस आधार पर दिए गए कि चालान इक्कानवें (91वें) दिन को फाइल किया गया था और इस प्रकार वे जमानत पर छोड़े जाने के लिए हकदार हैं। विद्वान अपर सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि चालान नब्वे (90वें) दिन को फाइल किया गया था और इस प्रकार उसने जमानत के आवेदनों को रद्द कर दिया था। प्रस्तुत आवेदनों पर इस आधार पर जोर दिया गया है कि विचारण न्यायालय द्वारा गलत संगणना की गई है और आवेदकों को जमानत पर छोड़ दिया जाना चाहिए क्योंकि चालान इक्कानवें दिन फाइल किया गया था और दूसरी बात यह है कि गुणागुण के आधार पर कहा जाए तो यह है कि शनाख्त परेड करवाने में असम्यक् विलम्ब हुआ था और प्रत्येक आवेदक से धन उद्ग्रहण किए जाने का कोई महत्व नहीं है तथा बरामद किए गए आभूषण सामान्य उपयोग के हैं और उन्हें डकैती से नहीं जोड़ा जा सकता। अतः अभियुक्तों को जमानत पर छोड़ दिया जाए क्योंकि वे पहले ही 4 मास से अधिक समय से निरोध में हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित--आवेदन नामंजूर किए गए ।

यदि गिरफ्तारी की तारीख जो 19-11-1982 है, अपवर्जित की जाती है और चूंकि चालान 17-12-83 को फ़ाइल किया गया था जो 90वां दिन था, तो आवेदक धारा 167 (2) के परन्तुक के अधीन जमानत पर छोड़े जाने के लिए हकदार नहीं हैं। गुणागुण के आधार पर जमानत के लिए उनका आवेदन न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया था और पुनः विचार करने के लिए कोई आधार साबित नहीं किया गया है। इतना कहना ही है पर्याप्त कि प्रस्तुत मामले में इन दस आवेदकों द्वारा 27/28-10-1982 की रात्रि को दो स्थानों पर डकैती करने के संबंध में अन्तर्वलित होने के आरोप को साबित करने के लिए प्रथमदृष्टया सामग्री है । उनकी शनाख्त भी हो चुकी है और प्रत्येक आवेदक से चुराए गए आभूषण भी बरामद हुए हैं।

		पैरा
[1982]	1982 क्रिमिनल लॉ रिपोर्ट 2366 : राज्य (दिल्ली प्रशासन) बनाम रवीन्द्र कुमार [State (Delhi Adm.) *Vs.* Ravindra Kumar];	5
[1982]	1982 एम० पी० एल० जे० 291 = 1982 क्रिमिनल लॉ जर्नल 1186 : उमा शंकर बनाम मध्य प्रदेश राज्य (Umashankar *Vs.* State of M.P.);	5
[1979]	1979 पंजाब लॉ रिपोर्ट्स 67 : राज कुमार बनाम पंजाब राज्य (Raj Kumar *Vs.* State of Punjab);	5
[1976]	1976 क्रिमिनल लॉ रिपोर्ट 212 : एल० आर० चावला बनाम मुरारी (L.R. Chawla *Vs.* Murari);	5
[1976]	आई० एल० आर० 1976 पटना 1021 : राजू उर्फ राज किशोर और एक अन्य बनाम बिहार राज्य और एक अन्य (Raju @ Raj Kishore and another *Vs.* State of Bihar and another);	5
[1970]	ए० आई० आर० 1970 ए० पी० 234 : वी० एस० मेहता वाला मामला (V.S. Mehta's Case);	5

निर्दिष्ट किए गए ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दाण्डिक अधिकारिता : 1983 का प्रकीर्ण दाण्डिक मामला सं० 515.

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 395, 397 और 452 सपठित धारा 149 के अधीन रजिस्ट्रीकृत 1982 के अपराध सं० 112 के विरुद्ध आवेदन।

आवेदक की ओर से ... श्री ए० जी० ढांडे

अनावेदक की ओर से ... श्री एल० जी० सिंह, अपर सरकारी अधिवक्ता

न्या० सी० पी० सेन :

इस आदेश के द्वारा 1983 का प्रकीर्ण दाण्डिक मामला सं० 517 करण सिंह और दो अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य और 1983 का प्रकीर्ण मामला सं० 518 बली राम और एक अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य भी निपटाए जा रहे हैं क्योंकि ये तीनों जमानत से संबंधित आवेदन 1982 के अपराध सं० 112 से उद्भूत होते हैं जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 149 सपठित धारा 395, 397 और 452 तथा आयुद्ध अधिनियम की धारा 27 के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया गया था।

2. 27/28-10-1982 के बीच की रात्रि में खण्डवा जिले में खालवा पुलिस थाने में गांव पडीय में दो डकैतियां पड़ी थीं जिसमें 12 या 13 डकैतों ने भाग लिया था। पहली डकैती भागीरथ प्रसाद के मकान पर पड़ी थी और वहां 6,000 रुपये नकद, सोने के जेवरात जिनका वजन साढ़े पांच तोला था और चांदी के जेवरात लूटे गए थे। दूसरी डकैती मांगीलाल के घर पर पड़ी थी जिसमें 55,000 रुपये और सोने तथा चांदी के जेवरात लूटे गए थे। श्री भागीरथ ने 28-10-1982 को रात्रि में 8 बजकर 15 मिनट पर पुलिस थाने में जो वहां से 25 किलोमीटर दूर है, एक रिपोर्ट दर्ज करवा दी थी। ये 10 आवेदक और दो सहअभियुक्त तोता राम और करण सिंह जो सभी चालपी के निवासी हैं, 19-11-1982 को सायंकाल गिरफ्तार किए गए। प्रत्येक आवेदक के ज्ञापन में नकद और जेवरात बरामद किए गए। उनकी गिरफ्तारी के 15 दिन के पश्चात् उनकी शनाख्त परेड में उन्हें पहचाना गया था और बरामद की गई सम्पत्तियां 29-11-1982 को पहचानी गई थीं। विचारण न्यायालय ने सहअभियुक्त तोता राम की जमानत मंजूर कर दी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

थी क्योंकि डकैती में उसका सक्रिय रूप से भाग लेना प्रथमदृष्टया साबित नहीं हुआ था। उसकी शनाख्त भी नहीं की गई थी। दूसरे अभियुक्त करण सिंह को इस न्यायालय द्वारा 1983 के प्रकीर्ण दाण्डिक मामला सं० 31 में 20-1-1983 को इसी प्रकार के आधारों पर जमानत पर छोड़ दिया गया था। किन्तु इस न्यायालय ने इन 10 आवेदकों के जमानत आवेदन पत्रों को नामंजूर कर दिया था। जमानत आवेदनों के रद्द किए जाने के पश्चात् मामले में 17-2-1983 को चालान फाइल किया गया था और तब दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2) के अधीन जमानत के लिए नए आवेदन इस आधार पर दिए गए थे कि चालान इक्कानवें (91वें) दिन को फाइल किया गया था और इस प्रकार वे जमानत पर छोड़े जाने के लिए हकदार हैं। विद्वान अपर सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि चालान नब्बेवें (90वें) दिन को फाइल किया गया था और इस प्रकार उसने जमानत के आवेदनों को रद्द कर दिया था।

3. प्रस्तुत आवेदनों पर इस आधार पर जोर दिया गया है कि विचारण न्यायालय द्वारा गलत संगणना की गई है और आवेदकों को जमानत पर छोड़ दिया जाना चाहिए क्योंकि चालान इक्कानवें दिन फाइल किया गया था और दूसरी बात यह है कि गुणागुण के आधार पर कहा जाए तो यह है कि शनाख्त परेड करवाने में असम्यक् विलम्ब हुआ था और प्रत्येक आवेदक से धन उदग्रहण किए जाने का कोई महत्व नहीं है तथा बरामद किए गए आभूषण सामान्य उपयोग के हैं और उन्हें डकैती से नहीं जोड़ा जा सकता, अतः अभियुक्तों के जमानत पर छोड़ दिया जाए क्योंकि वे पहले ही 4 मास से अधिक समय से निरोध में हैं।

4. धारा 167 (1) में उपबन्धित है कि जब कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है और अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाता है और यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण पूरा नहीं किया जा सकता है और यह विश्वास करने के आधार हैं कि अभियोग सुआधृत है तो उसे 24 घंटे के अन्दर प्रतिप्रेषण के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना होता है। उपधारा (2) के अधीन मजिस्ट्रेट एक समय में 15 दिन से अधिक न होने वाले प्रतिप्रेषण को मंजूर कर सकता है किन्तु कुल मिलाकर पुलिस अभिरक्षा 15 दिन से अधिक समय के लिए नहीं दी जा सकती।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परन्तुक के अधीन मजिस्ट्रेट 15 दिन से अधिक अवधि के लिए अभियुक्त व्यक्ति के निरोध को प्राधिकृत कर सकता है। यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार अस्तित्व में हैं। किन्तु कोई भी मजिस्ट्रेट इस परन्तुक के अधीन अभियुक्त को अभिरक्षा में 90 दिन से अधिक की कालावधि के लिए रखे जाने के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा जहां कि अन्वेषण मृत्यु, आजीवन कारावास या ऐसे कारावास जो 10 वर्ष से कम की अवधि का न हों, से दण्डनीय अपराध के लिए हो और 90 दिन की कालावधि के समाप्त होने पर अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर छोड़ दिया जाएगा यदि वह जमानत देने के लिए तैयार है।

5. अब इस प्रश्न पर विचार किया जाना है कि इन 90 दिनों की गणना किस प्रकार की जाए। धारा 167(2) के परन्तुक में उपबंधित है कि 90 दिन की कालावधि के बीतने के पश्चात, अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा ही जाना चाहिए यदि चालान फाइल नहीं किया जाता है। संहिता में इस संबंध में कोई उपबन्ध नहीं है कि इस 90 दिन की कालावधि की गणना किस प्रकार की जाएगी। अतः हमें साधारण दण्ड अधिनियम की धारा 9 के प्रति निर्देश करना होगा जिसमें कानूनों के अर्थान्वयन के इस सुस्थापित सिद्धांत को कानूनी मान्यता दी गई है कि मामूली तौर पर समय की संगणना करने में अनुपालन किया जाने वाला नियम प्रथम दिन को अपवर्जित करना और अंतिम दिन को सम्मिलित करना है। इसमें साम्या का सिद्धांत सन्निविष्ट है। इस प्रकार परिसीमा अधिनियम की धारा 12 में उपबंधित है कि वाद, अपील या आवेदन के लिए परिसीमा की कालावधि की संगणना करते समय वह दिन जब से उक्त कालावधि की संगणना की जानी है, अपवर्जित कर दिया जाएगा। इस सिद्धान्त को लागू करते हुए आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के खण्ड न्यायपीठ ने बी० एस० मेहता[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि कारखाना अधिनियम की धारा 106 पर विचार करते समय जिसमें यह उपबन्धित है कि कोई भी न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी भी अपराध का तब तक संज्ञान नहीं करेगा जब तक परिवाद अभिकथित अपराध के बारे में जानकारी की तारीख से 3 मास के भीतर न हुआ हो। "तीन मास के भीतर" से अभिप्रेत है अपराध के होने की निरीक्षक

[1] ए० आई० आर० 1970 ए० पी० 324.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को जानकारी हो जाने के तीस मास के अन्दर। यह निर्वचन कामन विधि एवं परिसीमा अधिनियम के उपबन्धों पर आधारित है और साधारण खण्ड अधिनियम के उपबन्ध के अनुसार जानकारी होने के दिन को अपवर्जित करना होता है अर्थात् निरीक्षण की तारीख और तीन महीनों को तीन कैलेंडर मास के तौर पर संगणित किया जाएगा। इस दृष्टि से सभी अभियोजन समय के भीतर प्रारम्भ किए गए हैं। पटना उच्च न्यायालय के एक खण्ड न्यायपीठ ने **राजू उर्फ राज किशोर और एक अन्य बनाम बिहार राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2) (क) के अधीन विधान-मण्डल का आशय पूरे 60 दिन का था और वह तारीख जिसको अभियुक्त न्यायालय में अभ्यर्पण करता है, धारा में वर्णित 60 दिन की कालावधि की गणना करने में अपवर्जित किया जाएगा और यदि वह तारीख अपवर्जित कर दी जाती है तो यह कहा जा सकता है कि आरोप-पत्र 60वें दिन पेश किया गया और इस प्रकार अभियुक्त को उस आधार पर जमानत पर छोड़े जाने का आदेश नहीं किया जा सकता था। उस मामले में, घटना 3-5-1976 को हुई थी। आवेदक ने न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण 6-5-1976 को किया था और आरोप पत्र 5 जुलाई, 1976 को फाइल किया गया था। ऐसा ही मत दिल्ली उच्च न्यायालय ने **एल० आर० चावला बनाम मुरारी**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित करते हुए अपनाया कि इस धारा के अधीन अभिरक्षा 60 दिन से अधिक की कालावधि के लिए मंजूर नहीं की जा सकती। समय की इकाई के तौर पर एक कैलेंडर दिन एक मध्य रात्रि से दूसरी मध्य रात्रि के बीच का समय है। दो दिनों के कुछ भाग पर विचार करके पूरा एक दिन बनाना सही नहीं है। इस प्रकार वह दिन जब अभिरक्षा मंजूर की जाती है, अपवर्जित नहीं किया जा सकता। उस मामले में गिरफ्तारी की तारीख अपवर्जित की गई थी, किन्तु वह उस दिन से संगणित की गई थी जब प्रतिप्रेषण मंजूर किया गया था। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने **राज कुमार बनाम पंजाब राज्य**[3] वाले मामले में ऐसा ही मत अपनाया

---

1 आई० एल० आर० 1976 पटना 1021.

2 1976 क्रिमिनल ला रिपोर्ट 212.

3 1979 पंजाब ला रिपोर्ट्स 67.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है और यह अभिनिर्धारित किया है कि गिरफ्तारी की तारीख 60 दिन की कालावधि की संगणना करने में अपवर्जित करना होगी। यह वर्णित किया जा सकता है कि ऊपर वर्णित तीन मामलों में धारा 167 के अधीन गिरफ्तारी उक्त धारा के 1978 के संशोधन अधिनियम सं० 45 द्वारा संशोधित किए जाने के पहले की गई थी जिसमें कालावधि 60 दिन से बढ़ाकर 90 दिन की गई है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने **राज्य (दिल्ली प्रशासन) बनाम रवीन्द्र कुमार**[1] वाले मामले में इस बात पर विचार करते हुए कि कब पुलिस अभिरक्षा मंजूर की जा सकती है, यह अभिनिर्धारित किया कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को 24 घंटे के भीतर पेश करना होगा और कुल मिलाकर 15 दिन से अधिक न होने वाली अवधि के लिए पुलिस अभिरक्षा उस समय तत्काल ही प्रारम्भ हो जाती है जब अभियुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है न कि गिरफ्तारी की तारीख से। इस न्यायालय की एक खण्ड न्यायपीठ ने **उमा शंकर बनाम मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में इस बात पर विचार करते समय कि क्या जमानत धारा 167 (2) के अधीन मंजूर की जानी होगी यद्यपि चालान 90 दिन की कालावधि के पश्चात् फ़ाइल किया जाए और 90 दिन की उक्त कालावधि गिरफ्तारी की तारीख को अपवर्जित करते हुए संगणित की जाए। उस मामले में अभियुक्त 18-9-1981 को गिरफ्तार किया गया था प्रतिप्रेषण 22-12-1981 तक मंजूर किया गया था। जमानत का आवेदन 19-12-1981 को पेश किया गया था और चालान भी उसी तारीख को फ़ाइल किया गया था, अतः यह अभिनिर्धारित किया गया कि 90 दिन 17-12-1981 को गिरफ्तारी की तारीख को अपवर्जित करके समाप्त हो गए। ऊपर वर्णित मामलों में अभिव्यक्त मत सही प्रतीत होता है क्योंकि 90 दिन की कालावधि गिरफ्तारी की तारीख को अपवर्जित करके ही अधिक हो सकती है क्योंकि उस दिन को दिन प्रारम्भ होता है और वह 24 घंटे के पश्चात् पूरा हो जाता है।

6. अतः प्रस्तुत मामले में यदि गिरफ्तारी की तारीख जो 19-11-1982 है, अपवर्जित की जाती है और चूंकि चालान 17-12-83 को फाइल किया गया था जो 90वां दिन था तो आवेदक धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन जमानत पर छोड़े जाने के लिए हकदार नहीं है।

[1] 1982 क्रिमिनल ला रिपोर्ट 2366.

[2] 1982 एम० पी० एल० जे० 291 = 1982 क्रिमिनल ला जर्नल 1186.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गुणागुण के आधार पर जमानत के लिए उनका आवेदन इस न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया था और पुनः विचार करने के लिए कोई आधार साबित नहीं किया गया है। इतना कहना ही पर्याप्त है कि प्रस्तुत मामले में इन दस आवेदकों का 27/28-10-1982 की रात्रि को दो स्थानों पर डकैती करने के संबध में अन्तर्वलित होने के आरोप को साबित करने के लिए प्रथमदृष्टया सामग्री है। उनकी शनाख्त भी हो चुकी है और प्रत्येक आवेदक से चुराए गए आभूषण भी बरामद हुए हैं। इस प्रक्रम पर, हम इस प्रश्न पर विचार नहीं कर सकते कि क्या शनाख्त उचित थी या सम्पत्ति की वसूली से आवेदक अपराध से जुड़ते हैं या नहीं। इन सब बातों पर विचारण के समय विचार किया जाएगा।

7. तदनुसार आवेदन नामंजूर किए जाते हैं।

आवेदन नामंजूर किए गए।

सिश्र

नि० प० 1983 : मध्य प्रदेश—347

मध्य प्रदेश राज्य बनाम जीवन मथुरा प्रसाद

(The State of Madhya Pradesh *Vs.* Jiwan Mathura Prasad)

तारीख 5 अप्रैल, 1983

[न्या० जी० एल० ओझा, न्या० जे० एस० वर्मा और न्या० एस० एस० शर्मा]

भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899, धारा 33(1) और 38(2)—दस्तावेज के परिबद्ध कर लिए जाने तथा उसके सम्बन्ध में स्टाम्प कलक्टर को रिपोर्ट प्रस्तुत कर दिए जाने के बाद स्टाम्प कलक्टर के लिए केवल यही रास्ता शेष रह जाता है कि वह इस अधिनियम के अन्य उपबन्धों के अनुसार कार्रवाई करने के लिए अग्रसर हो—इस आधार पर कि परिबद्ध दस्तावेज असफल हो गई है अथवा किसी अन्य प्रयोजन के लिए और आवश्यक नहीं रहा है, यह कहना न्यायोचित नहीं है कि उस पर न्यून संदत्त स्टाम्प शुल्क की वसूली करना उचित अथवा वैध नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नगरपालिक समिति ने अनावेदक को पशुओं के क्रय पर अधिरोपित बाजार-फ़ीस की वसूली का ठेका दिया था। अनावेदक ने ठेके की सम्पूर्ण रकम के स्थान पर एक-तिहाई रकम जमा कराई और शेष रकम के संबंध में एक बंध-पत्र निष्पादित किया और चार व्यक्तियों की जमानतें दीं। इन्हें नगरपालिका समिति के प्रशासक ने स्वीकार कर लिया। स्टाम्प और रजिस्ट्रीकरण निरीक्षक ने उक्त नगरपालिक समिति के कार्यालय का निरीक्षण करते समय इन दस्तावेजों को परिबद्ध कर लिया क्योंकि इन पर कम मूल्य के स्टाम्प लगे थे तथा इनके संबंध में एक रिपोर्ट स्टाम्प कलक्टर को भेज दी। अनावेदक ने स्टाम्प कलक्टर के समक्ष यह दलील दी कि उससे इन दस्तावेजों के संबंध में कोई अतिरिक्त स्टाम्प शुल्क वसूल नहीं किया जा सकता क्योंकि इनका इस्तेमाल साक्ष्य में नहीं किया जाना है। स्टाम्प कलक्टर ने उसके तर्क को स्वीकार नहीं किया और उसका मामला मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी को निर्देशित कर दिया। मुख्य नियंत्रक, राजस्व प्राधिकारी ने अनावेदक के तर्कों को तो स्वीकार नहीं किया परन्तु उसने अपने समक्ष चल रही कार्यवाही के दौरान यह पता चलने पर, कि अनावेदक ने संपूर्ण अपेक्षित रकम का संदाय कर दिया है, यह महसूस करते हुए कि ऐसी दशा में न्यून संदत्त स्टाम्प शुल्क वसूल नहीं किया जा सकता, यह अभिनिर्धारित किया कि उसकी वसूली का औचित्य विधि का एक सारवान् प्रश्न है। अतः उसने यह मामला इस प्रश्न के साथ उच्च न्यायालय को निर्देशित किया है कि क्या किसी ऐसी दस्तावेज पर जो असफल हो गई हो और जिसकी किसी प्रयोजन के लिए और आवश्यकता न रही हो, न्यून-संदत्त स्टाम्प शुल्क की वसूली करना उचित अथवा वैध है ?

अभिनिर्धारित--निर्देशित प्रश्न का उत्तर दिया गया।

भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के उपबंधों में ऐसी कोई भी बात नहीं है जिससे यह द्योतित होता हो कि दस्तावेजों के किसी अन्य प्रयोजन के लिए अथवा किन्हीं कार्यवाहियों में और आवश्यक न रहने की स्थिति में धारा 33 और 38 (2) के अधीन सम्मिलित रूप से की जा रही कार्यवाही समाप्त की जा सकती है। यह स्पष्ट है कि यदि ये दस्तावेजें नगरपालिक समिति के समक्ष पेश किए जाने के समय अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित थीं तो उसके परिणामस्वरूप राजस्व की हानि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हुई थी भले ही इन दस्तावेजों की धारा 33(1) के अधीन किसी सक्षम प्राधिकारी को जानकारी किसी वाद के प्रक्रम पर हुई थी। दस्तावेज के एक बार धारा 33(1) के अधीन परिबद्ध कर लिए जाने तथा उसके संबंध में धारा 38 (2) के अधीन स्टाम्प कलक्टर को रिपोर्ट कर दिए जाने के पश्चात् स्टाम्प कलक्टर से केवल यही अपेक्षा की जाती है कि वह इस अध्याय के अन्य उपबंधों के अनुसार कार्रवाई करने के लिए अग्रसर हो और राजस्व बोर्ड के विद्वान सदस्य द्वारा बताए गए आधार पर कार्यवाहियों को समाप्त करने का कोई उपबंध इस अध्याय में नहीं है। (पैरा 13)

अतः यह प्रश्न कि क्या दस्तावेज असफल हो गई है अथवा किसी अन्य प्रयोजन के लिए आवश्यक नहीं रही है, सुसंगत नहीं है और यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसी दस्तावेज पर न्यून-संदत्त स्टाम्प शुल्क की वसूली करना उचित अथवा वैध नहीं है। (पैरा 14)

		पैरा
[1965]	ए० आई० आर० 1965 मध्य प्रदेश 219 : धनीराम बनाम जनपद सभा (Dhaniram *Vs.* Janapad Sabha);	3
[1965]	1965 एम० पी० एल० जे० 606 : कोमलचन्द जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य (Komalchand Jain *Vs.* State of Madhya Pradesh);	6, 8
[1961]	ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 787 : उत्तर प्रदेश सरकार बनाम राजा मोहम्मद अमीर (Government of Uttar Pradesh *Vs.* Raja Mohammad Amir)	6, 9

से असहमति व्यक्त की गई।

सिविल निर्देश अधिकारिता : 1980 के सिविल प्रकीर्ण मामला सं० 101 और 102.

किसी दस्तावेज पर न्यून-संदत्त स्टाम्प शुल्क की वसूली की वैधता की बाबत भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 57 (1) के अधीन निर्देश।

राज्य की ओर से ... श्री आर० के० वर्मा

विरोधी पक्षकार की ओर से ... श्री वाई० एस० धर्माधिकारी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय का निर्णय न्या० जी० एल० ओझा ने दिया।

न्या० ओझा :

यह और प्रकीर्ण सिविल मामला सं० 102/80 ऐसे दो निर्देश हैं जो निम्नलिखित प्रश्न के उत्तर के लिए मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी, राजस्व बोर्ड, मध्य प्रदेश द्वारा भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 57 (1) के अधीन किए गए हैं :—

> "क्या किसी ऐसी दस्तावेज पर, जो असफल हो गई हो और जिसकी किसी प्रयोजन के लिए और आवश्यकता न रहा हो, न्यून-संदत्त स्टाम्प शुल्क वसूल करना उचित अथवा वैध है ?"

2. बोर्ड के विद्वान सदस्य द्वारा प्रस्तुत मामले का विवरण यह है कि नगरपालिक समिति, शक्ति ने अनावेदक जीवन मथुरा प्रसाद को बाजारों में पशुओं के क्रय पर अधिरोपित बाजार फीस की वसूली का ठेका दिया था। ठेके की रकम 2,05,000/- रुपये थी। अनावेदक जीवन मथुरा प्रसाद ने केवल 68,334/- रुपये की रकम जमा की। 1,36,666/- रुपये की शेष रकम 68,333/ रुपये मात्र की दो समान किस्तों में 1 जनवरी, 1976 और 29 फरवरी, 1976 को जमा कराई जानी थी। अनावेदक जीवन मथुरा प्रसाद ने इस संबंध में एक बंध-पत्र निष्पादित किया और अभैराम, लाल साव, वीरेश कुमार और बहादुर साव उसके प्रतिभू बने। जीवन मथुरा प्रसाद द्वारा निष्पादित बंध-पत्र और उसके द्वारा दी गई जमानतों को प्रशासक, नगरपालिक समिति, शक्ति ने 11-1-1975 को स्वीकार कर लिया था।

3. विलासपुर खंड (डिवीजन) के स्टाम्प और रजिस्ट्रीकरण निरीक्षक ने नगरपालिक समिति, शक्ति के कार्यालय का निरीक्षण करते समय इन दस्तावेजों को परिबद्ध कर लिया क्योंकि इन पर कम मूल्य के स्टाम्प लगे थे। उसके अनुसार, अनावेदक जीवन मथुरा प्रसाद द्वारा निष्पादित दस्तावेज पर 5841/- रुपये के और प्रतिभुओं की दस्तावेजों पर केवल 46/- रुपये के स्टाम्प नहीं लगे थे। इन दस्तावेजों को परिबद्ध करने के पश्चात् उसने भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 38 (2) और धारा 40 के अधीन वसूली और उचित कार्रवाई के लिए एक रिपोर्ट स्टाम्प कलक्टर, शक्ति को भेज दी। अनावेदक ने स्टाम्प

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कलक्टर, अर्थात् उपखंड अधिकारी व स्टाम्प कलक्टर, शक्ति के समक्ष यह तर्क प्रस्तुत करते हुए, कि (1) दस्तावेजों का इस्तेमाल साक्ष्य में नहीं किया जाना है, अतः उनसे कोई अतिरिक्त स्टाम्प शुल्क वसूल नहीं किया जा सकता, और (2) **धनीराम बनाम जनपद सभा**[1] वाले मामले में विनिश्चय को दृष्टि में रखते हुए नगरपालिक समिति पशुओं के विक्रय पर शुल्क अधिरोपित करने के लिए सक्षम नहीं है, अनेक तर्क प्रस्तुत किए। परन्तु, स्टाम्प कलक्टर ने उसके इन तर्कों को स्वीकार नहीं किया। उसने कोई आदेश पारित करने के बजाए भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 56(2) के अधीन मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकारी को एक निर्देश कर दिया।

4. राजस्व बोर्ड के विद्वान् सदस्य, अर्थात् मुख्य नियंत्रक, राजस्व प्राधिकारी, ने भी अपने समक्ष दिए गए समरूप तर्कों का खंडन कर दिया परन्तु इन कार्यवाहियों के चलते रहने के दौरान जब उसे यह पता चला कि अनावेदक जीवन मथुरा प्रसाद ने उस सारी रकम का, जिसका संदाय करने की उससे अपेक्षा की गई थी, संदाय कर दिया है और उसके परिणामस्वरूप ये दस्तावेज असफल हो गई हैं और किसी प्रयोजन के लिए आवश्यक नहीं रही हैं तो उसने यह महसूस किया कि ऐसी दशा में न्यूनसंदत्त स्टाम्प शुल्क वसूल नहीं किया जा सकता। राजस्व बोर्ड के विद्वान् सदस्य ने यह मत व्यक्त किया कि ऐसी स्थिति में इसके संबंध में स्टाम्प शुल्क की वसूली करना उचित अथवा वैध नहीं होगा परन्तु साथ ही उसने यह अभिनिर्धारित करते हुए, कि यह विधि का एक सारवान् प्रश्न है, इस न्यायालय को यह निर्देश भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 57(1) के अधीन किया है।

5. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् उप-महाधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि यदि कोई दस्तावेज साक्ष्य में पेश की जाती है तो वह धारा 33 के अधीन परिबद्ध की जा सकती है। साथ ही वह किसी लोक कार्यालय के किसी भारसाधक व्यक्ति द्वारा उस स्थिति में भी परिबद्ध की जा सकती है जब वह उसके कृत्यों के पालन में उसके समक्ष आती है और बिलासपुर खंड (डिवीजन) के स्टाम्प और रजिस्ट्रीकरण निरीक्षक के ध्यान में ये दस्तावेजें, जिन्हें नगरपालिक समिति के

[1] ए० आई० आर० 1965 मध्य प्रदेश 219 (पूर्ण न्यायपीठ).

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रशासक ने प्रतिगृहीत कर लिया था, उस समय आई थीं जब वह उसके कार्यालय का निरीक्षण कर रहा था। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि जब कोई दस्तावेज धारा 33 (1) के अधीन परिबद्ध कर ली जाती है तो स्टाम्प कलक्टर के लिए इसके अलावा कोई रास्ता नहीं रह जाता कि वह धारा 38 और 40 के अनुसार कार्रवाई करने के लिए अग्रसर हो और भारतीय स्टाम्प अधिनियम में इस मत को, कि इन कार्यवाहियों के दौरान रकम का संदाय कर दिया गया है और दस्तावेज किसी प्रयोजन के लिए और आवश्यक न रहने के कारण असफल हो गई हैं, अतः भारतीय स्टाम्प अधिनियम के इस भाग, अर्थात् अध्याय IV में अनुध्यात कार्रवाई करने की आवश्यकता नहीं है, न्यायोचित ठहराने वाला कोई उपबंध नहीं है।

6. दूसरी ओर, अनावेदक की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउन्सेल ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि जिस अधिकारी, अर्थात् बिलासपुर खंड (डिवीजन) का स्टाम्प और रजिस्ट्रीकरण निरीक्षक, ने दस्तावेजें परिबद्ध की थीं, वह धारा 33 (1) के अधीन प्राधिकृत व्यक्ति नहीं था अतः दस्तावेजों को परिबद्ध करने की उसकी कार्रवाई उचित नहीं थी। विद्वान् काउन्सेल ने अन्य दलीलें देने का भी प्रयत्न किया और यह तर्क प्रस्तुत किया कि यह न्यायालय मुख्य नियंत्रक, राजस्व प्राधिकारी द्वारा कथित मामले के बारे में धारा 58 के अधीन अतिरिक्त विवरण प्राप्त करने की शक्ति का प्रयोग करे। इस संबंध में उसने **उत्तर प्रदेश सरकार बनाम राजा मोहम्मद अमीर**[1] **और कोमलचन्द जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले निर्दिष्ट किए।

7. मुख्य नियंत्रक, राजस्व प्राधिकारी द्वारा प्रस्तुत मामले के विवरण से यह प्रकट होता है कि इस प्रश्न पर विचार नहीं किया गया है कि क्या बिलासपुर खंड (डिवीजन) के स्टाम्प और रजिस्ट्रीकरण निरीक्षक, को जो धारा 33 (1) के अधीन कार्रवाई कर रहा था, दस्तावेज को परिबद्ध करने का प्राधिकार था? यह भी प्रतीत होता है कि मुख्य नियंत्रक, राजस्व प्राधिकारी ने यह निर्देश केवल इस लघु आधार पर किया है कि चूंकि विद्वान् सदस्य ने यह अनुभव किया था कि इन कार्यवाहियों

---

1 ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 787.

2 1965 एम० पी० एल० जे० 606.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के लंबित रहने के दौरान अनावेदक ने बंध-पत्रों के अधीन रकम का संदाय कर दिया है, अतः बंध-पत्रों की किसी अन्य प्रयोजन के लिए और आवश्यकता नहीं रह गई है तथा लघु आधार पर स्टाम्प और रजिस्ट्रीकरण निरीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर स्टाम्प कलक्टर के समक्ष चल रही कार्यवाहियां समाप्त की जा सकती हैं। अतः यह प्रतीत होता है कि अन्य प्रश्नों की चर्चा नहीं की गई है अथवा उन पर विनिश्चय नहीं किया गया है यद्यपि स्टाम्प कलक्टर की मुख्य नियंत्रक, राजस्व प्राधिकारी को प्रेषित रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि बिलासपुर खंड (डिवीजन) के स्टाम्प और रजिस्ट्रीकरण निरीक्षक ने धारा 33(1) के अधीन अधिकारिता का प्रयोग तारीख 4-11-1963 की एक अधिसूचना के अधीन किया था, जिसे स्टाम्प कलक्टर ने मुख्य नियंत्रक, राजस्व प्राधिकारी को निर्देश किए जाने के अपने आदेश में निर्दिष्ट किया है। परन्तु, यह स्पष्ट है कि इस प्रश्न पर मुख्य नियंत्रक, राजस्व प्राधिकारी ने विचार नहीं किया है और इसलिए हमारी राय में हमें ऐसी स्थिति में, जबकि हमें यह निर्देश पूर्वोक्त लघु प्रश्न के आधार पर किया गया है, मुख्य नियंत्रक, राजस्व प्राधिकारी से और विवरण मांगने की आवश्यकता नहीं है।

8. अनावेदक के विद्वान् काउन्सेल ने जिस विनिश्चय, अर्थात् **उत्तर प्रदेश सरकार** बनाम **राजा मोहम्मद अमीर**[1] का अवलम्ब लिया है, वह इस मामले में किसी भी रूप में सहायक नहीं है क्योंकि उसमें यह अधिकथित किया गया है कि यदि स्टाम्प कलक्टर किसी विशेष दस्तावेज के लिए उचित स्टाम्प शुल्क के बारे में अपनी राय देने के लिए भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 31 के अधीन कार्यवाही कर रहा है तो उसे ऐसी कार्यवाही के दौरान धारा 33 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने की छूट नहीं है। उसमें इसी संदर्भ में इस वाक्यांश "उसके कृत्यों के पालन में पेश की जाती है या आ जाती है" पर विचार करके यह मत व्यक्त किया गया था :—

> "अधिनियम की स्कीम से यह दर्शित होता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी लिखत के संबंध में उचित शुल्क के बारे में स्टाम्प कलक्टर की राय मात्र जानने की याचना करता है तो वह ऐसा धारा 31 के अधीन करता है। यदि ऐसी लिखत उचित

---

[1] ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 787.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रूप से स्टाम्पित नहीं होती और उसका निष्पादक उसे प्रभावशील बनाना अथवा साक्ष्य के प्रयोजनार्थ प्रयोग करना चाहता है तो उसे शुल्क की पूर्ति करनी पड़ती है और उसके पश्चात् स्टाम्प कलक्टर उस पर धारा 32 के अधीन पृष्ठांकन करेगा तथा वह प्रारम्भ से ही सम्यकरूपेण स्टाम्पित लिखत के रूप में बरती जाएगी। परन्तु, यदि वह ऐसी लिखत का उस पर संदेय शुल्क के अवधारण के अतिरिक्त, आगे कोई और इस्तेमाल नहीं करना चाहता तो ऐसे अवधारण का कोई परिणाम नहीं होगा और निष्पादित दस्तावेज की स्थिति वही बनी रहती है जो किसी अनिष्पादित और अनस्टाम्पित लिखत की होती है और शुल्क का अवधारण करने के बाद स्टाम्प कलक्टर पदकार्य-निवृत हो जाता है तथा धारा 33 के उपबन्ध किसी भी प्रकार से लागू नहीं होते। धारा 33 के उपबंध तभी लागू होते हैं जब स्टाम्प कलक्टर से उसकी राय मात्र जानने के अतिरिक्त कुछ और भी करने की याचना की जाती है।"

9. प्रस्तुत मामले में **कोमलचन्द जैन** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में संप्रकाशित विनिश्चय भी किसी प्रकार से सहायक नहीं है। उस विनिश्चय में, इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि क्या रजिस्ट्रीकरण प्राधिकारी किसी दस्तावेज के रजिस्ट्रीकरण के बाद सम्पति के मूल्य के संबंध में जांच कर सकता है? प्रकटतः इसका हमारे समक्ष प्रश्न से कोई संबंध नहीं है।

10. यद्यपि राजस्व बोर्ड के विद्वान् सदस्य का यह मत है कि "चूंकि न्यूनतः स्टाम्पित दस्तावेज की किसी अन्य प्रयोजन के लिए और आवश्यकता नहीं है, अतः उसके संबंध में किसी स्टाम्प शुल्क की वसूली करना उचित अथवा वैध नहीं होगा", परन्तु हमें खेद है कि उसने भारतीय स्टाम्प अधिनियम का कोई भी ऐसा उपबंध निर्दिष्ट नहीं किया जिसके आधार पर उसने ऐसी राय कायम की है।

11. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 (1899 का 2) की धारा 33 (1) में यह उपबंधित है :—

"33. लिखतों की परीक्षा और उसका परिबद्ध किया जाना—(1) हर व्यक्ति, जो विधि द्वारा या पक्षकारों की सम्मति

[1] 1965 एम०पी०एल० जे० 606.

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से साक्ष्य लेने का प्राधिकार रखता है, और पुलिस अधिकारी के अलावा लोक कार्यालय का भारसाधक हर व्यक्ति जिसके समक्ष उसकी राय में शुल्क से प्रभार्य कोई लिखत उसके कृत्यों के पालन में पेश की जाती है या आ जाती है, उस दशा में उसे परिबद्ध करेगा जिसमें कि यह प्रतीत होता है कि ऐसी लिखत सम्यक् रूप से स्टाम्पित नहीं है।

परन्तु इस उप-धारा में अन्तर्विष्ट कोई भी बात कलक्टर को किसी ऐसी लिखत को, जो निष्पादित नहीं की गई है, धारा 31 के अधीन उसके समक्ष उस पर प्रभार्य शुल्क के अवधारण के लिए लाई गई है, अथवा किसी ऐसी लिखत को जिससे वह धारा 32 के अधीन पृष्ठांकित करने के लिए प्राधिकृत है, परिबद्ध करने के लिए प्राधिकृत करने वाली नहीं समझी जाएगी।"

इस उपबंध में यह अनुध्यात है कि किसी दस्तावेज की अवेक्षा परिस्थितियों के इन दो विभिन्न समुच्चयों (सेटों) के अंतर्गत की जानी चाहिए: (1) जब दस्तावेज किसी सक्षम प्राधिकारी के समक्ष साक्ष्य में अथवा साक्ष्य लेने के लिए पेश की जाती है, अथवा (2) जब किसी लोक कार्यालय का भारसाधक व्यक्ति उसकी अवेक्षा, जिसका कथन "उसके कृत्यों के पालन में आ जाती है" के रूप में किया गया है, करता है। यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत मामले में बिलासपुर खंड (डिवीजन) के स्टाम्प और रजिस्ट्रीकरण निरीक्षक ने नगरपालिक समिति के प्रशासक द्वारा प्रतिगृहीत इन दस्तावेजों की अवेक्षा नगरपालिक समिति, शक्ति का निरीक्षण करते समय की थी अतः ये दस्तावेजें किसी लोक कार्यालय के भारसाधक व्यक्ति के समक्ष उसके कृत्यों के पालन में आने वाली दस्तावेजों की कोटि में आती हैं और उक्त निरीक्षक ने इन्हें धारा 33 (1) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए परिबद्ध किया था और यही वह बात है जो धारा 33 में अनुध्यात है।

12. मुख्य नियंत्रक, राजस्व प्राधिकारी द्वारा कथित तथ्यों के विवरण से यह स्पष्ट नहीं होता कि जिस समय ये दस्तावेजें परिबद्ध की गई थीं, उस समय वे किसी अन्य प्रयोजन के लिए और आवश्यक नहीं थीं। इसके विपरीत यह प्रतीत होता है कि ये दस्तावेजें पेश की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गई थीं और इन्हें नगरपालिक समिति के प्रशासक ने प्रतिगृहीत किया था। उक्त निरीक्षक ने इन्हें परिबद्ध करने के बाद धारा 38 (2) के अधीन अपनी रिपोर्ट के साथ स्टाम्प कलक्टर को प्रस्तुत कर दिया था। भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 38 में यह उपबन्धित है :—

"38. परिबद्ध की गई लिखतें कैसे निपटाई जाएंगी—(1) जहां कि धारा 33 के अधीन किसी लिखत को परिबद्ध करने वाले व्यक्ति को विधि द्वारा या पक्षकारों की सम्मति से साक्ष्य लेने का प्राधिकार है और ऐसी लिखत को वह धारा 35 द्वारा यथा उपबन्धित किसी शास्ति के या धारा 37 द्वारा यथा उपबन्धित किसी शुल्क के दिए जाने पर साक्ष्य में ग्रहण कर लेता है, वहां वह ऐसी लिखत की अधिप्रमाणीकृत एक प्रति और साथ ही साथ उसकी बाबत उद्गृहीत शुल्क और शास्ति की रकम का कथन करते हुए एक लिखित प्रमाणपत्र कलक्टर को भेजेगा और ऐसी रकम कलक्टर को, या ऐसे व्यक्ति को, जिसे वह इस निमित्त नियुक्त करे, भेजेगा।

(2) अन्य हर मामले में, किसी लिखत को इस प्रकार परिबद्ध करने वाला व्यक्ति उसकी मूल प्रति कलक्टर के पास भेजेगा।"

इस धारा में वह ढंग अनुध्यात किया गया है जिसके अनुसार परिबद्ध दस्तावेजों का निपटारा किया जाएगा। इस धारा के खंड (1) में वे परिस्थितियां वर्णित हैं जिनमें दस्तावेज साक्ष्य में पेश की जाती है और खंड (2) में दूसरी तरह की उस परिस्थिति का वर्णन है जिसमें लोक कार्यालय का भारसाधक व्यक्ति अपने कृत्यों के पालन में अपने समक्ष आने वाली दस्तावेज की अपेक्षा करता है और इसलिए यह स्पष्ट है कि उक्त निरीक्षक ने धारा 38 के खंड (2) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपनी रिपोर्ट धारा 40 और उससे आगे की धाराओं में अनुध्यात आगे की कार्रवाई के लिए स्टाम्प कलक्टर को भेजी थीं। धारा 40, 41 और 42 के उपबंधों और इस अध्याय अर्थात् अध्याय 4 के अन्य उपबंधों में कहीं भी यह व्यवस्था नहीं की गई है कि यदि इन कार्यवाहियों के दौरान दस्तावेज असफल हो गई है अथवा उसकी किसी अन्य प्रयोजन के लिए आवश्यकता नहीं रही है तो धारा 33(1) के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने वाले किसी अधिकारी की धारा 38(2) के अधीन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्टाम्प कलक्टर को प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के आधार पर प्रारम्भ की गई कार्यवाही समाप्त की जा सकती है । अतः यह स्पष्ट है कि बोर्ड के विद्वान् सदस्य ने जो मत अपनाया है वह विधि के अनुसार न्यायोचित नहीं है ।

13. विद्वान उप-महाधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि दस्तावेज को परिबद्ध करने की तारीख ही वह तारीख है जो धारा 38 के अधीन इन कार्यवाहियों के प्रयोजनार्थ सुसंगत होगी । अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित दस्तावेजों के नगरपालिक समिति के कार्यालय में पेश किए जाने और प्रशासक द्वारा प्रतिगृहीत किए जाने की तारीख ही वस्तुतः सुसंगत तारीख होगी । भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के उपबंधों में ऐसी कोई भी बात नहीं है जिससे यह द्योतित होता हो कि इन दस्तावेजों के किसी अन्य प्रयोजन के लिए अथवा किन्हीं कार्यवाहियों में और आवश्यक न रहने की स्थिति में धारा 33 और धारा 38 (2) के अधीन सम्मिलित रूप से की जा रही कार्रवाई समाप्त की जा सकती है । भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के अध्याय 4 की स्कीम उक्त मत को न्यायोचित नहीं ठहराती । यह स्पष्ट है कि यदि वे दस्तावेजें नगरपालिक समिति के समक्ष पेश किए जाने के समय अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित थीं तो उसके परिणामस्वरूप राजस्व की हानि हुई थी भले ही इन दस्तावेजों की धारा 33(1) के अधीन किसी सक्षम प्राधिकारी को जानकारी किसी वाद के प्रक्रम पर हुई थी । परन्तु प्रस्तुत मामले में इन दस्तावेजों के धारा 33(1) के अधीन परिबद्ध कर लिए जाने के बावजूद न तो मुख्य नियंत्रक, राजस्व प्राधिकारी ने और न ही अनावेदक के विद्वान् काउन्सेल ने यह कथन किया है कि इन दस्तावेजों की किसी और प्रयोजन के लिए आवश्यकता नहीं है । धारा 33 (1) के अधीन दस्तावेज के एक बार परिबद्ध कर लिए जाने तथा उसके संबंध में धारा 38(2) के अधीन स्टाम्प कलक्टर को रिपोर्ट प्रस्तुत कर दिए जाने के पश्चात् स्टाम्प कलक्टर से केवल यही अपेक्षा की जाती है कि वह इस अध्याय के अन्य उपबन्धों के अनुसार कार्रवाई करने के लिए अग्रसर हो और राजस्व बोर्ड के विद्वान् सदस्य द्वारा बताए गए आधार पर कार्यवाहियों को समाप्त करने का कोई उपबंध इस अध्याय में नहीं है।

14. अतः हमारी राय में उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर यह है: यह प्रश्न, कि क्या दस्तावेज असफल हो गई है अथवा किसी अन्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रयोजन के लिए आवश्यक नहीं रही है, सुसंगत नहीं है और यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसी दस्तावेज पर न्यून-संदत्त स्टाम्प शुल्क की वसूली करना उचित अथवा वैध नहीं है।

15. जहां तक अन्य दलीलों का सम्बन्ध है यदि मुख्य नियंत्रक राजस्व अधिकारी ने उन मुद्दों का निपटारा न किया हो जिन्हें आवेदक का विद्वान काउन्सेल उठाना चाहता था तो वह उन पर विचार करके उनका विनिश्चय कर सकता है। प्रस्तुत मामले की परिस्थितियों में पक्षकारों को यह निदेश दिया जाता है कि वे अपना-अपना खर्च स्वयं वहन करें।

निर्देशित प्रश्न का उत्तर दिया गया।

अशोक/मिश्र

नि० प० 1983 : मध्य प्रदेश—358

आयकर आयुक्त, मध्य-प्रदेश-2, भोपाल बनाम दुर्गा प्रसाद राजाराम आढ़तिया

(Commissioner of Income Tax, Madhya Pradesh-II, Bhopal Vs. Durgaprasad Rajaram Aratiya)

तारीख 8 अप्रैल, 1983

[मु० न्या० जी० पी० सिंह और न्या० बी० सी० वर्मा]

आयकर अधिनियम, 1961—धारा 184 (7)—भागीदारी फर्म में अप्राप्तवयों का भागीदारी के फायदों में सम्मिलित किया जाना—भागीदारी विलेख में प्राप्तवय होने पर पूर्ण भागीदार बन जाने और भागीदारों को होने वाली हानि में अप्राप्तवय के अंश विनिर्दिष्ट न किया जाना—रजिस्ट्रीकरण चालू बने रखने से इनकार करना न्यायसंगत है।

एक भागीदारी विलेख के द्वारा निर्धारिती फर्म गठित हुई थी और उसमें चार भागीदार तथा तीन अवयस्कों को भी भागीदारी के फायदों में शामिल किया गया था। अप्राप्तवयों ने प्राप्तवय होने पर फर्म के भागीदार बनना चुना। भागीदारी को रजिस्ट्रीकरण के चालू बने रहने के सम्बंध में मंजूरी नहीं दी गई। आयकर अधिकारी ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि भागीदारी लिखत में इस सम्बंध में कोई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपबंध नहीं था कि प्रत्येक अप्रातवय के प्राप्तवय हो जाने पर हानियों का वितरण किस प्रकार होगा यदि प्राप्तवय होने पर वह भागीदार बनना चुनता है। अतः भागीदारी के रजिस्ट्रीकरण का चालू बने रहना मंजूर नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत मामले में आयकर अपील अधिकरण ने विधि के निम्नलिखित प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह निर्देश किया है "क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में आयकर अपील अधिकरण का आयकर अधिकारी को निर्धारिती के रजिस्ट्रीकरण को मंजूर करने के लिए निदेश देना विधि के अनुसार न्याय-संगत था।"

अभिनिर्धारित—निर्देश का उत्तर नकारात्मक दिया गया।

रजिस्ट्रीकरण के चालू बने रहने को केवल इस आधार पर नामंजूर नहीं किया जाएगा कि भागीदारी के फायदों में सम्मिलित अप्राप्तवय प्राप्तवय हो जाने पर भागीदार बन गया है। रजिस्ट्रीकरण से इस आधार पर इनकार किया जाएगा कि भागीदारी विलेख में इस बात का उपबंध नहीं किया गया था कि प्राप्तवय हो जाने पर अप्राप्तवय भागीदार बन जाएगा और उसमें अप्राप्तवय के प्राप्तवय हो जाने पर फायदों और हानियों के वितरण के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है। यह मत बोर्ड द्वारा जारी किए गए परिपत्रों के विपरीत नहीं है। इस आधार पर संबंधित फर्म के रजिस्ट्रीकरण के चालू बने रहने से इन्कार किया जाना उचित ठहराया गया। (पैरा 2 और 3)

		पैरा
	134 आई० टी० आर० 601 : दुर्गाप्रसाद राजाराम आढ़तिया **बनाम** आय-कर आयुक्त (Durgaprasad Rajaram Aratiya *Vs.* Commissioner of Income-tax);	2
[1981]	(1981) 132 आई० टी० आर० 257 : गणेश राइस मिल्स **बनाम** आयकर आयुक्त (Ganesh Rice Mills *Vs.* Commissioner of (Income-tax);	2
[1978]	(1978) 155 आई० टी० आर० 858 : बद्री नारायण काशी प्रसाद **बनाम** अपर आयकर आयुक्त (Badri Narain Kashi Prasad *Vs.* Additional Commissioner of Income-tax);	2

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1972] (1972) 84 आई० टी० आर० 233 (इलाहाबाद); राम नारायण लक्ष्मण प्रसाद बनाम आयकर अधिकारी (Ram Narain Laxman Prasad *Vs.* Income-tax Officer); 2

[1968] (1968) 68 आई० टी० आर० 696 (इलाहाबाद): गणेश लाल लक्ष्मी नारायण बनाम आयकर आयुक्त (Ganesh Lal Laxmi Narain *Vs.* Commissioner of Income-tax); 2

निर्दिष्ट किए गए।

सिविल निर्देश अधिकारिता: 1980 का प्रकीर्ण सिविल मामला संख्या 68.

आय-कर अपील अधिकरण द्वारा किया गया निर्देश।

आवेदक की ओर से .... श्री बी० के० रावत
विरोधी पक्षकार की ओर से .... श्री बी० एल० नेमा

न्यायालय का निर्णय मु० न्या० जी० पी० सिंह ने दिया।

मु० न्या० जी० पी० सिंह:

यह निर्देश आयकर अपील अधिकरण ने किया है। विधि के निम्नलिखित प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह निर्देश किया गया है:

> "क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में आय-कर अपील अधिकरण का आय-कर अधिकारी को निर्धारिती के रजिस्ट्रीकरण को मंजूर करने के लिए निदेश देना विधि के अनुसार न्याय-संगत था?"

2. यह निर्देश निर्धारण वर्ष 1971-72 और 1972-73 से सम्बन्धित है। एक भागीदारी विलेख के द्वारा जो 10 नवम्बर, 1961 को निष्पादित किया गया था, निर्धारिती फर्म गठित हुई थी और उसमें 4 भागीदार थे और 3 अवयस्कों को भी भागीदारी के फायदों में शामिल किया गया था: अप्राप्तवय क्रमश: 4 मई, 1966, 27 मई, 1967 और 21 जुलाई, 1971 को प्राप्तवय हुए और उन्होंने भागीदार बनना चुना। भागीदारी को निर्धारण वर्ष 1967-68, 1968-69 और 1969-70

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के लिए रजिस्ट्रीकरण के चालू बने रहने के सम्बन्ध में मंजूरी नहीं दी गई। इन निर्धारण वर्षों के सम्बन्ध में इस न्यायालय को एक निर्देश किया गया था। इस निर्देश में इस न्यायालय का निर्णय **दुर्गाप्रसाद राजाराम आड़तिया बनाम आय-कर आयुक्त**[1] वाले मामले में संप्रकाशित किया गया है। यह अभिनिर्धारित किया गया कि चूंकि भागीदारी लिखत में इस सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं था कि प्रत्येक अवयस्क के प्राप्तवय हो जाने पर हानियों का वितरण किस प्रकार होगा यदि वयस्क होने पर वह भागीदार बनना चुनता है, अतः भागीदारी के रजिस्ट्रीकरण का चालू बने रहना मंजूर नहीं किया जा सकता। सामान्य अनुक्रम में, उस विनिश्चय का अनुसरण करते हुए हम यह अभिनिर्धारित करते कि अधिकरण ने निर्धारण वर्ष 1971-72 और 1972-73 के लिए रजिस्ट्रीकरण के चालू बने रहने की मंजरी देकर गलत कार्य किया है तथापि अधिकरण ने दो परिपत्रों का अवलम्ब लिया है। उनमें से एक केन्द्रीय राजस्व बोर्ड द्वारा और दूसरा केन्द्रीय प्रत्यक्ष-कर बोर्ड द्वारा जारी किया गया है। पहला परिपत्र 3 जनवरी, 1962 का है। वह इस प्रभाव का है कि जहां भागीदारी के असलीपन के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं है, वहां रजिस्ट्रीकरण केवल इस आधार पर ही नामंजूर नहीं कर दिया जाना चाहिए कि किसी अवयस्क को जिसे भागीदारी के फायदे पहले दिए गए हों और जो प्राप्तवय होने पर पूर्ण भागीदार बन गया है और इस परिवर्तन को प्रभावी करने के लिए कोई नया भागीदारी विलेख तैयार किया गया है जिससे कि इस परिवर्तन को प्रभावी किया जा सके। दूसरा परिपत्र 20 मार्च, 1969 का है उसमें यह वर्णित है कि बोर्ड की यह राय है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया मत विधि का संकुचित दृष्टिकोण है और चालू बने रहने के दावे को केवल इस आधार पर ही नामंजूर नहीं किया जाना चाहिए कि भागीदारी के फायदों के लिए पहले से ही सम्मिलित अप्राप्तवय प्राप्तवय हो जाने पर पूर्ण भागीदार बना दिया गया है और यदि फर्म असली है तो इस परिवर्तन को प्रभावी करने के लिए भागीदारी का कोई नया विलेख तैयार नहीं किया गया है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया मत यह था कि प्रत्येक मामले में जब कोई अप्राप्तवय जो भागीदारी के फायदों के लिए हकदार है, प्राप्तवय हो जाता है और फर्म का भागीदार बना रहना चयन करता है तो फर्म के संविधान में

[1] 134 आई० टी० आर० 601.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिवर्तन होता है और भागीदारी रजिस्ट्रीकरण के चालू बने रहने के लिए हकदार नहीं है। यह मत **गनेश लाल लक्ष्मी नारायण** बनाम **आय-कर आयुक्त**[1] और **राम नारायण लक्ष्मण प्रसाद** बनाम आय-कर अधिकारी[2] वाले मामले में अपनाया गया था। इस दृष्टिकोण से छुटकारा पाने के ख्याल से बोर्ड ने यह परिपत्र 1969 में जारी किया। इन मामलों में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने जो मत अपनाया था, वह **बद्री नारायण काशी प्रसाद** बनाम **अपर आय-कर आयुक्त**[3] वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ द्वारा उलट दिया गया। पूर्ण न्यायपीठ का मत यह है कि यदि भागीदारी विलेख में यह संभाव्यता परिकल्पित है कि अप्राप्तवय, प्राप्तवय हो जाने पर भागीदारी का पूर्ण सदस्य बन जाएगा और उसमें यह उपबन्धित है कि उस दशा में फायदे और हानियों का वितरण किया जाएगा तो फर्म के संविधान में कोई परिवर्तन होगा और भागीदारी रजिस्ट्रीकरण के चालू बने रहने के लिए हकदार होगी। यह मत हमारे उच्च न्यायालय ने **गनेश राइस मिल्स** बनाम **आय-कर आयुक्त**[4] और **दुर्गाप्रसाद राजाराम आढ़तिया** बनाम **आय-कर आयुक्त**[5] वाले मामले में अपनाया था। अब जो मत अभिभावी है, उसे ध्यान में रखते हुए रजिस्ट्रीकरण के चालू बने रहने को केवल इस आधार पर नामंजूर नहीं किया जाएगा कि भागीदारी के फायदों में सम्मिलित अप्राप्तवय, प्राप्तवय हो जाने पर भागीदार बन गया है, रजिस्ट्रीकरण से इस आधार पर इंकार किया जाएगा कि भागीदारी विलेख में इस बात का उपबंध नहीं किया गया था कि प्राप्तवय हो जाने पर अप्राप्तवय भागीदार बन जाएगा और उसमें अप्राप्तवय के प्राप्तवय हो जाने पर फायदों और हानियों के वितरण के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है। यह मत बोर्ड द्वारा जारी किए गए परिपत्रों के विपरीत नहीं है। परिपत्रों में इस बात पर जोर दिया गया है कि रजिस्ट्रीकरण के चालू बने रहने से केवल इस आधार पर ही इन्कार नहीं किया जाना चाहिए कि भागीदारी के फायदों में पहले सम्मिलित किया गया अप्राप्तवय पूर्ण भागीदार बन गया है और उसने उस मत से विचलन किया

---

1 (1968) 68 आई० टी० आर० 696 (इलाहबाद).
2 (1972) 84 आ.ई० टी० आर० 233 (इलाहबाद).
3 (1978) 155 आई०टी० आर० 858.
4 (1981) 132 आई० टी० आर० 257.
5 134 आई० टी० आर० 601.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जो तब इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया था किन्तु जो पूर्ण न्यायपीठ द्वारा उलट दिया गया था। परिपत्रों में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा अपनाए गए मत के विपरीत किसी बात का उपबंध नहीं किया गया है। पूर्ण न्यायपीठ के मत का इस न्यायालय ने ऊपर वर्णित दो मामलों में अनुसरण किया है।

3 अब प्रस्तुत मामले में, रजिस्ट्रीकरण के चालू बने रहने से केवल इस सीधे-सीधे आधार पर ही इनकार नहीं किया जाएगा कि भागीदारी के फायदों में सम्मिलित अप्राप्तवय प्राप्तवय हो जाने पर पूर्ण भागीदार बन गए हैं किन्तु ऐसा इस आधार पर किया जाएगा कि भागीदारी विलेख में ऐसी किसी संभाव्यता के लिए उपबंध नहीं किया गया है और उसमें अप्राप्तवयों के प्राप्तवय होने पर भागीदार बन जाने के पश्चात् भागीदारों को होने वाली हानियों के अंश विनिर्दिष्ट नहीं किए गए हैं। इस आधार पर निर्धारण वर्ष 1967-68, 1968-69 और 1969-70 के निर्धारण वर्षों के लिए उसी फर्म से संबंधित निर्देश में इस आधार पर रजिस्ट्रीकरण के चालू बने रहने से इनकार किए जाने को उचित ठहराया गया था। इस निर्देश में भी वही मत अपनाया जाना चाहिए जो निर्धारण वर्ष 1971-72 और 1972-73 से सम्बन्धित है।

4. ऊपर वर्णित कारणों से हम प्रश्न का उत्तर निम्नानुसार देते हैं:

"आयकर अपील अधिकरण द्वारा आय-कर अधिकारी को यह निदेश देना विधि के अनुसार न्याय-संगत नहीं था कि वह रजिस्ट्रीकरण का चालू बने रहना अनुज्ञात करे।"

इस निर्देश के खर्चों के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं किया जाता है।

मि०

निर्देश का उत्तर नकारात्मक दिया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महेश मेडिकल और जनरल एजेंसी (मैसर्स) बनाम विक्रय-कर आयुक्त, म०प्र०

(M/s. Mahesh Medical & General Agencies *Vs.* The Commissioner of Sales Tax, M.P.)

तारीख 11 अप्रैल, 1983

[मु० न्या० जी० पी० सिंह और न्या० बी० सी० वर्मा]

मध्य प्रदेश सामान्य विक्रय कर अधिनियम, 1958 (1979 के अधिनियम द्वारा यथासंशोधित) धारा 16--उक्त धारा का प्रयोजन और विधिमान्यता--धारा 16 उन व्यापारियों को अनुतोष प्रदान करती है जिन्होंने अधिनियम में धारा 7-ख के अन्तःस्थापन से पूर्व जारी की गयी अधिसूचनाओं के द्वारा उत्पन्न भ्रमात्मक धारणा के अधीन, विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह नहीं किया था--धारा विधिमान्य है ।

पिटीशनर-एजेंसी दवाइयां बेचने का कारबार करती है। जिस पर विक्रय कर संदेय था। 1977 के अधिनियम सं० 23 के द्वारा विक्रय कर अधिनियम में नई धारा 7-ख प्रतिस्थापित की गई जो 1-5-77 से प्रभावी हुई। इस नई धारा 7-ख के अधीन कर का नाम बदल कर विक्रय राशि कर से अधिभार कर दिया गया। विक्रय कर अधिनियम की धारा 12 अधिनियम के अधीन कर के भुगतान से पूर्ण रूप में या आंशिक रूप में छूट देने के लिए सरकार को प्राधिकृत करती है। अधिनियम की धारा 12 के अधीन 28 मार्च, 1969 और 4 मार्च, 1976 की अधिसूचनाओं के द्वारा दवाइयां, मोटर गाड़ी की कमानियों पर कर को 4 प्रतिशत घटा दिया गया था। इससे एक संदेह उत्पन्न हुआ कि क्या ये अधिसूचनाएं और इनके समान अन्य अधिसूचनाएं जो विक्रय कर अधिनियम में धारा 7-ख के अन्तःस्थापन से पूर्व जारी की गई थी, उन उपबंधों के अधीन उदगृहीत विक्रय राशि कर या अधिभार के घटाने को प्रभावित करेंगी। इस कठिनाई को दूर करने के लिए राज्य विधानमंडल ने म०प्र० सामान्य विक्रय कर (संशोधन) अधिनियम, 1979 की धारा 16 को अधिनियमित किया। इन पिटीशनों में पिटीशनरों ने इस धारा की विधिमान्यता पर आक्षेप किया है। न्यायालय के समक्ष मुख्य प्रश्न यह था कि क्या नई धारा 16 अविधिमान्य और अवैध है?

 CC-0. Jammu Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित—पिटीशन खारिज किए गए ।

मध्य प्रदेश सामान्य विक्रय कर (संशोधन) अधिनियम की धारा 16 के मूल खण्ड का प्रभाव यह है कि ये अधिसूचनाएं भूतलक्षी रूप से स्पष्टतः अधिनियम की धारा 6 और 7 के अधीन उद्गृहणीय विक्रय-कर और क्रय-कर को निर्बन्धित करती है तथा उनको स्पष्टतः धारा 7-ख के अधीन उद्गृहणीय विक्रय राशि कर या अधिभार को कम करने के लिए अप्रवर्तनशील बनाती हैं। किन्तु इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इससे ऐसे व्यापारी को परेशानी होगी जिसने विक्रय राशि कर या अधिभार का, इस धारणा पर कीमत के भाग के रूप में संग्रह नहीं किया था कि उपरोक्त कथित अधिसूचनाओं के द्वारा वह कर भी घटा दिया गया था; खण्ड (1) में उपबन्ध बनाए गए हैं कि एक व्यापारी जिसने विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह नहीं किया है, सरकार को उसे अदा करने का जिम्मेदार नहीं होगा। जबकि एक व्यापारी जिसने विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह किया है और इसे सरकार को अदा नहीं किया है, इसे सरकार को अदा करने के लिए जिम्मेदार होगा और इसी तरह एक व्यापारी जिसने विक्रय राशि कर या अधिभार का, संग्रह किया है और इसे सरकार को अदा कर दिया है, ऐसी भुगतान की गयी रकम को वापस प्राप्त करने के लिए दावा करने का हकदार नहीं होगा। खण्ड (2) के द्वारा यह सिद्ध करने का भार कि उसने किसी भी विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह नहीं किया है उसी व्यापारी पर है। (पैरा 3)

धारा 16 के अधीन किया गया वर्गीकरण युक्तियुक्त है और उन व्यापारियों को अनुतोष प्रदान करने के लिए आशयित है जिन्होंने कुछ भ्रमात्मक धारणाओं के अधीन कीमत के भाग के रूप में विक्रय राशि कर या अधिभार को सम्मिलित नहीं किया था इसलिए धारा 16 से अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं होता है और वह विधिमान्य है। (पैरा 7)

	पैरा
(15) एस० टी० सी० 403: अब्दुल कादिर और कं० **बनाम** विक्रय कर अधिकारी (Abdul Quader and Co. *Vs.* Sales Tax Officer);	5

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(40) एस० टी० सी० 497 : जोशी, विक्रय कर अधिकारी बनाम अजीत मिल्स लिमिटेड (Joshi Sales Tax Officer *Vs.* Ajit Mills Ltd.);

आरम्भिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 1982 का प्रकीर्ण पिटीशन सं० 800.

जबलपुर के अतिरिक्त विक्रय कर आयुक्त के पुनरीक्षण मामला सं० 225/आर० एम० एस/79-80 में पारित आदेश तारीख 23-7-80 और मध्य प्रदेश राजस्व बोर्ड, ग्वालियर द्वारा अपील सं० 176/3/80 में पारित आदेश तारीख 21-3-81 को अपास्त करने के लिए किया गया रिट पिटीशन ।

पिटीशनर की ओर से ... श्री एच० एस० श्रीवास्तव

प्रत्यर्थियों की ओर से ... श्री ए० एम० माथुर

न्यायालय का निर्णय मु० न्या० जी० पी० सिंह ने दिया।

मु० न्या० जी० पी० सिंह :

इस आदेश से प्रकीर्ण पिटीशन 539/80, 670/80 और 468/80 का भी निपटारा हो जाएगा। इन पिटीशनों में पिटीशनरों ने मध्य प्रदेश सामान्य विक्रय कर संशोधन अधिनियम, 1979 (1979 का अधिनियम सं० 19) की धारा 16 की विधिमान्यता पर आक्षेप किया है।

2. मध्य प्रदेश विक्रय राशि तथा क्रय राशि पर कर अधिनियम, 1972 (1972 का अधिनियम सं० 8) के द्वारा क्रय कर के समरूप कर का अधिरोपण करने के लिए उपबन्ध किया गया जो विक्रय राशि कर के नाम से जाना जाता है। 1976 के अध्यादेश सं० 4 जिसने 1972 के अधिनियम सं० 8 को भी निरसित कर दिया, के द्वारा धारा 7-ख के अन्तःस्थापन द्वारा 1 मई, 1976 से विक्रय राशि कर म० प्र० सामान्य विक्रय कर अधिनियम, 1958 का एक अंग बन गया। 1977 के अधिनियम सं० 23 के द्वारा विक्रय कर अधिनियम में नई धारा 7-ख प्रतिस्थापित की गई जो 1-5-1977 से प्रभाव में आई। नई धारा 7-ख के अधीन कर की नाम-पद्धति विक्रय राशि कर से अधिभार में बदल दी गई। विक्रय कर अधिनियम की धारा 12, अधिनियम के अधीन कर के भुगतान से पूर्ण रूप में या आंशिक रूप में छूट देने के लिए सरकार को प्राधिकृत करती है। अभिव्यक्ति 'कर' धारा 2 (थ) में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिभाषित की गई है जिसका अर्थ अधिनियम के अधीन देय कर से है। अधिनियम की धारा 12 के अधीन 28 मार्च, 1969 और 4 मार्च, 1976 को जारी की गई अधिसूचना के द्वारा वरक, मोटरगाड़ी की कमानियों और दवाइयों पर कर को 4% घटा दिया गया। इसमें एक संदेह था कि क्या ये अधिसूचनाएं और इनके समान अन्य अधिसूचनाएं जो विक्रय कर अधिनियम में धारा 7-ख के अन्तःस्थापन से पूर्व जारी की गई थीं उन उपबन्धों के अधीन उद्गृहीत विक्रय राशि कर या अधिभार के घटाने को भी प्रभावित करेंगी। इस कठिनाई को दूर करने के लिए राज्य विधायिका ने म० प्र० सामान्य विक्रय कर (संशोधन) अधिनियम, 1979 (1979 का अधिनियम सं० 19) की धारा 16 को अधिनियमित किया। यह इस धारा की विधिमान्यता है जिस पर इन सभी पिटीशनों में पिटीशनरों द्वारा आक्षेप किया गया है।

धारा 16 इस प्रकार है :—

"16. कतिपय मामलों में विक्रय राशि कर और अधिभार का संदाय—इस तथ्य के होते हुए भी कि अभिव्यक्ति 'कर' जैसा कि मूल अधिनियम की धारा 2 खण्ड (क्यू) में परिभाषित किया गया है जो कि 1 मई, 1976 को या उसके बाद लागू थी, के अन्तर्गत यथास्थिति विक्रय राशि कर या अधिभार सम्मिलित है, मूल अधिनियम की धारा 7-ख के अधीन जैसी कि वह थी, समय-समय से, उस कथित तारीख के बाद अनुसूची के खण्ड 'क' में विनिर्दिष्ट अधिसूचनाएं जो उस तारीख के पूर्व जारी की गई थीं किन्तु उस कथित तारीख के बाद प्रभाव में बनी रहीं और खण्ड (ख) में विनिर्दिष्ट अधिसूचना, उसके अन्तर्गत कर में दी गई छूट के उद्देश्य के लिए कथित तारीख से या जारी की गई तारीख से, संशोधित की गई समझी जाएगी जैसा मामला हो यानी 'कर' शब्द के लिए धारा 6 या धारा 7 के अधीन कर शब्द उसमें प्रतिस्थापित किए गए हैं और एतद्द्वारा यह घोषित किया जाता है कि उक्त अधिसूचनाओं में कोई भी बात धारा 7-ख के अधीन, 1 मई, 1976 के बाद किसी भी समय उक्त अधिसूचना के लागू होने के दौरान यथास्थिति विक्रय राशि कर या अधिभार के संदाय से छूट देने वाली नहीं समझी जाएगी, और तदनुसार—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(1) (क) एक व्यापारी जिसने विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह किया लेकिन सरकार को इसे अदा नहीं किया है, इसे सरकार को अदा करने का जिम्मेदार होगा,

(ख) एक व्यापारी जिसने विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह नहीं किया है, सरकार को उसे अदा करने का जिम्मेदार नहीं होगा,

(ग) एक व्यापारी जिसने विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह किया है और उसे सरकार को अदा कर दिया है, उस अदा की गई रकम को वापस प्राप्त करने का इस आधार पर दावा करने का हकदार नहीं होगा कि वह सुसंगत अवधि में उपरोक्त कथित अधिसूचना के अर्थ के द्वारा उसे अदा करने का जिम्मेदार नहीं था।

(2) खण्ड (1) के प्रयोजनों के लिए यह सिद्ध करने का भार कि कोई भी विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह मूल अधिनियम के अन्तर्गत सुसंगत अवधि के दौरान नहीं किया गया था, उस व्यापारी पर होगा।

(अनुसूची धारा 16 देखिए)

मध्य प्रदेश सरकार के पृथक राजस्व विभाग की अधिसूचनाओं की संख्या और तारीख

खण्ड—(क)

क्रम सं०

*   *   *   *

14. 966/655/बी-एस टी, तारीख 28-3-1969

*   *   *   *

23. 913/1358/बी-एस टी, तारीख 4-3-1976

खण्ड (ख)

1. 1855/बी- एस टी, तारीख 25-5-1976

3. यहां पर हमारा धारा 16 की अनुसूची के खण्ड ख में अधिसूचनाओं से कोई संबंध नहीं है जो विक्रय कर अधिनियम में धारा 7-ख के अन्तःस्थापन के बाद जारी की गई थी। यहां पर हमारा संबंध अनुसूची के खंड-क में रखी गई अधिसूचनाओं से है, विशेषतः उनसे है जो क्रम संख्या 14 और 23 पर दी गई हैं और जो धारा 7-ख के अन्तःस्थापन के पहले जारी की गई थी। धारा 16 के मूल खण्ड का प्रभाव यह है कि ये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिसूचनाएं भूतलक्षी रूप से स्पष्टतया विक्रय-कर अधिनियम की धारा 6 और 7 के अधीन उद्ग्रहणीय विक्रय-कर और क्रय-कर को निर्बन्धित करती है तथा उनको स्पष्टत: धारा 7-ख के अधीन उद्ग्रहणीय विक्रय राशि कर या अधिभार को कम करने के लिए अप्रवर्तनशील बनाती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह ऐसे व्यापारी के लिए परेशानी होगी जिसने विक्रय राशि कर या अधिभार का इस धारणा पर कीमत के भाग के रूप में संग्रह नहीं किया था कि उपरोक्त कथित अधिसूचनाओं के द्वारा वह कर भी घटा दिया गया था। खण्ड (1) में उपबंध बनाए गए हैं कि एक व्यापारी जिसने विक्रय राशि या अधिभार का संग्रह नहीं किया है, सरकार को उसे अदा करने का जिम्मेदार नहीं होगा, जबकि एक व्यापारी जिसने विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह किया है और सरकार को इसे अदा नहीं किया है इसे सरकार को अदा करने के लिए जिम्मेदार होगा और इसी तरह एक व्यापारी जिसने विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह किया है और इसे सरकार को अदा कर दिया है, ऐसी भुगतान की गई रकम को वापस प्राप्त करने के लिए दावा करने का हकदार नहीं होगा। खण्ड (2) के द्वारा यह सिद्ध करने का भार कि उसने किसी भी विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह नहीं किया है, व्यापारी पर है।

4. जैसा कि हमारे द्वारा पहले बताया गया है, विक्रय-कर अधिनियम की धारा 12 के अधीन दो अधिसूचनाएं जिनसे इन पिटीशनों में हमारा संबंध है क्रमश: 28 मार्च, 1969 और 4 मार्च, 1976 को धारा 7-ख के अन्त:स्थापन के पूर्व जारी की गई थी। उन अधिसूचनाओं को जारी करने में विक्रय राशि कर या अधिभार को घटाने का इरादा नहीं हो सकता था जो उस समय विक्रय-कर अधिनियम का भाग नहीं था। यद्यपि अधिसूचनाओं में कर का नाम दिए बिना कर की दर 4% की घटी हुई दर को विनिर्दिष्ट किया था। यह प्रकट है कि उनका इरादा धारा 6 और 7 के अधीन विक्रय-कर और क्रय-कर की दर को घटाने का था जो अधिसूचनायें जारी करने के समय केवल प्रभारी धारायें थीं। अधिनियम में धारा 7-ख के अन्त:स्थापन के द्वारा एक नया भार निर्मित किया गया था और यह स्वीकार करना असंभव है कि सरकार का यह इरादा रहा हो कि उसके द्वारा धारा 7-ख के अन्त:स्थापन के पूर्व धारा 12 के अधीन जारी की गई अधिसूचनाएं एक नया भार लादेगीं या घटाने के लिए प्रभावित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करेंगी। लेकिन जैसा कि हमने पहले निर्दिष्ट किया है कि इस बिन्दु पर संभवत: कोई संदेह था और इसलिए यह स्पष्ट करने के लिए, 1979, के अधिनियम के भाग के रूप में संख्या 16 को अधिनियमित किया था, जो पहले से ही अन्तर्निहित था। धारा 16 विधिक स्थिति को स्पष्ट करती है कि खण्ड क में अन्त:स्थापित की गयी अधिसूचनायें, 1-5-76 से अन्त:स्थापित की गयी। धारा 7-ख के अधीन जिम्मेदारी को प्रभावित नहीं करेगी, और कि अधिसूचनाएं धारा 6 और 7 के अधीन देय कर को घटाने में ही सिर्फ लागू होंगी। फिर भी उन मामलों में कठिनाई को दूर करने के लिए जहां पर व्यापारी ने विक्रय राशि-कर या अधिभार का इस भ्रमपूर्ण धारणा के अधीन संग्रह नहीं किया है कि वह अधिसूचनाओं के कारण भी धारा 7-ख के अधीन भुगतान करने का जिम्मेदार नहीं था, धारा 16 यह उपबंधित करती है कि इस प्रकार का व्यापारी सरकार को विक्रय राशि-कर या अधिभार भुगतान करने का जिम्मेदार नहीं होगा। यहां यह विवादास्पद नहीं है कि धारा 7-ख के अधीन उद्गृहीत किया गया विक्रय राशि कर या अधिभार विक्रय कर का अंग नहीं है और राज्य विधान मण्डल सूची-11 की प्रविष्टि 54 के अधीन उस धारा को अधिनियमित करने के लिए सक्षम थी। यह सुस्थापित है कि किसी कर को उद्ग्रहण करते समय विधानमण्डल आनुषंगिक और प्रासंगिक उपबंध बना सकती है। आक्षेपित धारा 16 एक ऐसा उपबंध है और हम इस में किसी प्रकार की कोई अविधिमान्यता नहीं पाते हैं।

5. पिटीशनरों के विद्वान काउंसेल ने यह दलील दी है कि धारा 16 व्यापारियों द्वारा विक्रय राशि-कर या अधिभार के किए गए संग्रह के कर का पता लगाती है जिसका सरकार को भुगतान करने के लिए वे जिम्मेदार नहीं थे। यह बहस धारा 16 के गलत पढ़ने पर की गई है। जैसा कि हमने पहले ही निर्दिष्ट किया है, व्यापारी धारा 7-ख के अधीन विक्रय राशि-कर या अधिभार का भुगतान करने के लिए पहले से ही जिम्मेदार थे। और वह जिम्मेदारी एक मई, 1976 से पहले धारा 12 के अधीन जारी की गई अधिसूचनाओं के द्वारा अप्रभावित थी। धारा 16 इस विधिक स्थिति को स्पष्ट करती है किन्तु उन व्यापारियों को अनुतोष प्रदान करती है जिन्होंने विक्रय राशि कर या अधिभार कर का अधिसूचनाओं के क्षेत्र में एक गलत धारणा के अधीन क्रेताओं से संग्रह नहीं किया था। धारा 16, सिर्फ इसलिए कि एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्यक्ति ने कर का संग्रह किया जिसके लिए वह जिम्मेदार नहीं था, उस पर जिम्मेदारी नहीं डालती। धारा 16 उन व्यापारियों को, जो विक्रय राशि कर या अधिभार कर का सरकार को उसे भुगतान करने के लिए जिम्मेदार थे उसे सरकार को अदा करने के लिए जिम्मेदार बनाती है। यदि उन्होंने क्रेताओं से उसका संग्रह किया था, और उन व्यापारियों को अनुतोष प्रदान करती है जिन्होंने एक गलत धारणा के अधीन कर का संग्रह नहीं किया था। पिटीशनरों के विद्वान काउंसेल ने **अब्दुल कादिर और कं० बनाम विक्रय कर अधिकारी**[1] पर अपनी बहस के समर्थन में विश्वास किया है यह ऐसा मामला था जिसमें कुछ रकम जो व्यापारियों ने कर के रूप में संग्रह की थी, जो कर के रूप में अपरिहार्य नहीं थी, सरकार को भुगतान करने के लिए निदेशित किए गए थे। ऐसे उपबंध को अवैध घोषित किया गया था। जैसा कि ऊपर व्याख्या की गई है, इस वर्तमान मामले में वह रकम जिसे व्यापारी लोगों को धारा 16 के अधीन सरकार को भुगतान करने के लिए निदेशित किया गया है वह यह रकम है जिसके लिए धारा 7-ख के अधीन के वे जिम्मे-दार हैं और यह वह मामला नहीं है जहां पर रकम को सिर्फ इसलिए अदा करने के लिए वे जिम्मेदार बनाए जा रहे हैं कि उन्होंने उसका संग्रह किया था। इसके अतिरिक्त अब्दुल कादिर के मामले में विनिर्णय बाद के **जोशी विक्रय कर अधिकारी बनाम अजीत मिल्स लिमिटेड**[2] में विनिर्णय के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए जिसके द्वारा एक अधिनियमिति की वैधता को कायम रखा गया था जो व्यापारी द्वारा कर के रूप में संग्रह की गई रकम के समपहरण के लिए है जिसे संग्रह करने का वह हकदार नहीं था। धारा 16 जिससे हमारा संबंध है न तो ऐसा उपबन्ध है जो सिर्फ इसलिए एक रकम पर कर लगाता है कि वह संग्रह की गई है, और न ऐसा उपबन्ध है जो व्यापारियों द्वारा अवैध रूप से किये गये संग्रह का समपहरण करने के लिए है। धारा 16 सिर्फ धारा 7-ख के अधीन जिम्मेदारी को धारा 12 के अधीन जारी की गई अधिसूचनाओं को स्पष्ट करते हुए लागू करती है और यह उन व्यापारियों को अनुतोष प्रदान करती है जिन्होंने विक्रय राशि कर या

---

[1] 15 एस० टी० सी० 403.

[2] 40 एस० टी० सी० 497.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिभार का संग्रह नहीं किया है जिसके लिए वे अधिसूचनाओं के प्रभाव के कारण गलत धारणा की वजह से जिम्मेदार थे।

6. तब यह दलील दी गई कि मध्य प्रदेश सामान्य विक्रय-कर अधिनियम के अधीन जैसा कि वह तब प्रभाव में था, कोई भी व्यापारी किसी प्रकार का कर या अधिभार इकट्ठा करने के लिए प्राधिकृत नहीं था और, इसलिए, किसी मामले में भी यह नहीं कहा जा सकता कि किसी व्यापारी ने विक्रय राशि कर या अधिभार की धारा 16(1) (क) या 16(1) (ग) के अर्थ में संग्रह किया था। यह सत्य है कि उस अवधि के दौरान जिनसे इन पिटीशनों में हमारा संबंध है, व्यापारियों को कर वसूल करने के लिए प्राधिकृत करने के लिए कोई भी उपबंध नहीं था। अधिनियम में 1 अक्तूबर, 1978 से प्रभावी अन्त:स्थापित की गयी धारा 45-ख के द्वारा यह प्राधिकार प्रदत्त किया गया था। इस तारीख से पहले व्यापारी कीमत के भाग के रूप में चाहे वह विक्रय-कर, विक्रय राशि कर या अधिभार ही वसूल किया करता था। इस संदर्भ में जिसमें कि शब्द (विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह किया है) धारा 16 में प्रयोग किए गए हैं, उनका मतलब सिर्फ विक्रय राशि कर या अधिभार का कीमत के भाग के रूप में, संग्रह हो सकता है और एक कर के रूप में नहीं क्योंकि कर के रूप में व्यापारी द्वारा कुछ भी वसूल नहीं किया जा सकता था। अगर हम पिटीशनरों के विद्वान काउंसेल द्वारा निवेदन किए गए अर्थ को स्वीकार करते हैं तो इससे धारा 16 मृत धारा बन जाएगी जिससे यह स्पष्ट होता है कि विधानमण्डल का आशय यह कभी नहीं हो सकता था। विधानमण्डल का जो आशय हो सकता है, वह यह है कि यदि किसी व्यापारी ने विक्रय राशि कर या अधिभार को कीमत में जोड़ दिया है और उसे वसूल कर लिया है तो यह अभिनिर्धारित किया जाएगा कि उसने खण्ड (1) (क) और (ग) के अर्थ में विक्रय राशि कर या अधिभार वसूल किया है और वह उसे सरकार को अदा करने के लिए जिम्मेदार होगा। ऐसे मामले में जहां पर व्यापारी ने विशेष रूप से अपने बिलों में विक्रय राशि कर या अधिभार को कीमत के भाग के रूप में वर्णित किया है तो यह स्पष्ट होगा कि उसने उस का संग्रह किया है। तथापि अन्य मामलों में एक व्यापारी यह दिखा सकता है कि उसने सिर्फ उस रकम का संग्रह किया है जो आम तौर पर कीमत के रूप में प्रभारित की जाती है, विक्रय राशि कर या अधिभार के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दायित्व को ध्यान में न रखते हुए संग्रह किया है। यदि वह यह दिखाने में समर्थ है तो यह कहा जाएगा कि उसने धारा 16 के अर्थ में विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह नहीं किया है। तथापि यह सिद्ध करने का दायित्व कि उसने ऊपर दिए गए तरीके में विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह नहीं किया है, उस व्यापारी पर है। यदि वह उस दायित्व को पूरा करने में समर्थ है तो वह किसी भी विक्रय राशि कर या अधिभार को अदा करने का जिम्मेदार नहीं होगा जैसा कि खण्ड (1) (ख) में उपबंधित है।

7. कुछ बहस यह भी की गई थी कि व्यापारियों का इस प्रकार के वर्गीकरण से कि ऐसे व्यापारी जिन्होंने विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह किया था और वे जिन्होंने उसका संग्रह नहीं किया था, संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है। यह विभाजन युक्तियुक्त है और उन व्यापारियों को अनुतोष प्रदान करने के लिए आशयित है जिन्होंने कुछ गलत धारणाओं के अधीन कीमत के भाग के रूप में विक्रय राशि कर या अधिभार को सम्मिलित नहीं किया था। हमारे विचार में धारा 16, अनुच्छेद 14 की अतिक्रमणकारी नहीं है।

8. अन्त में यह अनुरोध किया गया था कि प्रकीर्ण पिटीशनों—800/82, 539/80 और 670/80 में विक्रय-कर प्राधिकारियों ने गलती से यह निष्कर्ष निकाला है कि इन पिटीशनों में पिटीशनरों के द्वारा विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह किया गया था। हमने प्राधिकारियों के द्वारा पारित आदेश का गहनता से अध्ययन किया है। उन्होंने यह निर्धारित करने के लिए निश्चयात्मक कारण दिए हैं कि पिटीशनर यह सिद्ध करने में असफल रहे हैं कि उन्होंने विक्रय राशि कर या अधिभार को कीमत के भाग के रूप में संग्रह नहीं किया था। इन सभी मामलों में संबंधित पिटीशनरों ने कर जमा कर दिया था और विक्रय राशि कर या अधिभार को अदा करने की अपनी जिम्मेदारी को दिखाते हुए विवरणियां (रिटर्न्स) भी प्रस्तुत कर दी थीं। इस परिस्थिति को इस धारणा को बनाने के लिए सही निर्धारित किया गया है कि पिटीशनरों ने कर या अधिभार का संग्रह किया था। प्रत्येक मामले में संबंधित अधिकारियों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष, तथ्यों के निष्कर्ष हैं और प्रकट रूप से कानून की किसी कमी से प्रभावित नहीं हैं। प्रकीर्ण पिटीशन संख्या 468/80

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में एक अपील गुणागुण के आधार पर अभिनिर्धारण के लिए लम्बित है और इस लिए हम यह अभिनिर्धारित करने से विरत रहते हैं कि उस पिटीशन में पिटीशनर ने विक्रय राशि कर या अधिभार का संग्रह किया था या नहीं।

9. सभी पिटीशन असफल रहे हैं और खारिज किए जाते हैं किन्तु खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है। प्रतिभूति की रकमें पिटीशनरों को वापस लौटाई जाएं।

पिटीशन खारिज किए गए।

शर्मा/मि०

नि० प० 1984: मध्य प्रदेश—374

अर्स्टवाइल नेशनल फिटनैस कोर एम्पलाईज एसोसिएशन, मध्य प्रदेश और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य

(Erstwhile National Fitness Corps, Employees Association, M.P. & others *Vs.* Union of India and others)

तारीख 12 अप्रैल, 1983

[न्या० जी० एल० ओझा]

संविधान, 1950, अनुच्छेद 14,16 और 39 (घ)—केन्द्रीय सरकार के भूतपूर्व नेशनल डिसिप्लिन स्कीम अनुदेशकों को मध्य प्रदेश राज्य सेवा में आमेलित करने के पश्चात् यदि उन्हें राज्य काडर के व्यायाम अनुदेशकों के वेतनमान से कम वेतनमान दिया जाता है, जब कि दोनों के द्वारा किए जाने वाले कार्य की प्रकृति समान है, तो ऐसी स्थिति में ऐसा किया जाना अनुच्छेद 39(घ) के उपबंधों के प्रतिकूल होगा जो अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करने की कोटि में आएगा।

यह पिटीशन मध्य प्रदेश में तैनात अर्स्टवाइल नेशनल फिटनैस कोर के कर्मचारी-संघ द्वारा किया गया है। पिटीशनर संघ ने उनकी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सेवाओं के राज्य काडर में विलयन हो जाने के पश्चात् राज्य काडर में व्यायाम शिक्षक के समान वेतनमानों का दावा किया है। पिटीशनर ने यह दलील दी कि भूतपूर्व नेशनल डिसिप्लिन स्कीम अनुदेशकों के वेतनमानों को नियत करते समय राज्य सरकार अर्हता में की उस समानता को क्रियान्वित करने में असफ़ल रही है जिसे इसने मान्यता प्रदान की थी तथा सुसंगत नियमों के अधीन राज्य व्यायाम अनुदेशकों के लिए उपबंधित वेतनमान उन्हें नहीं दिए गए हैं। अतः पिटीशनरों ने यह निवेदन किया कि राज्य सरकार को यह निदेश दिया जाए कि वह पिटीशनरों को उनकी अर्हताओं के अनुसार राज्य सेवाओं में व्यायाम अनुदेशकों को उपलब्ध श्रेणियों में वेतनमान दे। इसके विपरीत प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि चूंकि पिटीशनरों ने उन्हें दी गई घोषणा में के वेतनमानों को स्वीकार करने का करार कर लिया था अतः अब वे यह दलील नहीं दे सकते कि वे राज्य सेवा काडर में उपलब्ध वेतनमान के हकदार हैं। यह बात विवादास्पद नहीं है कि सैण्ट्रल नेशनल डिसिप्लिन स्कीम निदेशकों के राज्य सेवा में विलयन हो जाने के पश्चात् व्यायाम अनुदेशक वही कार्य करता है तथा नेशनल डिसिप्लिन स्कीम के भूतपूर्व अनुदेशक को आबंटित किए गए कार्य और राज्य में व्यायाम अनुदेशक के रूप में अब आबंटित किए गए कार्य या उस व्यायाम अनुदेशक के कार्य में जो मूलतः राज्य काडर से आया है कोई अन्तर है। अतः पिटीशनरों को राज्य काडर के व्यायाम अनुदेशकों के समान वेतन न दिया जाना संविधान के अनुच्छेद 39(घ) के अधीन राज्य के नीति निदेशक तत्वों के प्रतिकूल है जो कि विभेदकारी है जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 में अनुध्यात है। प्रस्तुत मामले में विचारार्थ और अवधारणार्थ प्रश्न यह है कि पिटीशनरों की सेवाओं का राज्य काडर में विलयन हो जाने के पश्चात् और उन्हें राज्य काडर के व्यायाम अनुदेशकों के समान कार्य आबंटित किए जाने पर पिटीशनरों को राज्य काडर में के व्यायाम शिक्षकों के समान वेतन न दिया जाना संविधान के उपबंधों के अनुसार विभेदकारी होने के कारण अवैध है ?

अभिनिर्धारित—पिटीशन मंजूर किया गया।

पिटीशनरों (केन्द्रीय सरकार के अधीन भूतपूर्व नेशनल डिफ़ेंस स्कीम अनुदेशक) को राज्य सेवा में आमेलित करने के पश्चात् और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस तथ्य के बावजूद कि अर्हता विषयक समानता के संबंध में करार कर लिया गया था इन सभी पिटीशनरों (भूतपूर्व नेशनल डिफ़ेंस स्कीम अनुदेशकों) को राज्य काडर के व्यक्तियों को उपलब्ध वेतनमान में राज्य काडर में आमेलित नहीं किया गया वरन् उन्हें एक ऐसे विशेष वेतनमान में आमेलित किया गया जो स्वीकृत रूप से राज्य काडर के व्यायाम अनुदेशकों को उपलब्ध वेतनमान से निम्नतर वेतनमान है। इस बात पर भी विवाद नहीं किया गया है कि भूतपूर्व नेशनल डिफ़ेंस स्कीम अनुदेशक (जो अब व्यायाम अनुदेशक हैं) का कार्य वही है जो उन व्यायाम अनुदेशकों द्वारा किया जाता है जो मूलतः राज्य काडर से आए हैं। अतः यह स्पष्ट है कि उसी कार्य के लिए पिटीशनरों को, जो कि भूतपूर्व नेशनल डिफ़ेंस स्कीम अनुदेशक हैं, उन व्यायाम अनुदेशकों से कम वेतन दिया जाता है जिन्हें स्टेट काडर में रखा गया है इस तरह इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि यह बात संविधान के अनुच्छेद 39(घ) में अन्तर्विष्ट उपबंधों के प्रतिकूल है। (पैरा 16)

पिटीशनरों को उपलब्ध मूल अधिकारों के प्रवंचन में शर्तों का करार करना या उन्हें स्वीकार करना प्रवर्तित नहीं किया जा सकता अतः यह नहीं कहा जा सकता कि संविधान के अधीन पिटीशनर अपने जिस अधिकार के लिए हकदार हैं उस अधिकार से उन्हें मात्र इस कारण इंकार किया जा सकता है क्योंकि उन्हें अजीब स्थिति में रख कर उनसे निम्नतर वेतनमान स्वीकार करने के लिए सहमति ले ली गई थी। अनुच्छेद 39(घ) में सन्निविष्ट सिद्धांतों पर उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधिपतियों द्वारा इस निर्णय में सविस्तार विवेचन किया गया है अतः इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि उनको अपनी घोषणाओं के आधार पर पिटीशनरों को दिया गया वेतनमान ऊपर विवेचित मत के आधार पर कायम नहीं रखा जा सकता। (पैरा 17)

जहां तक ज्येष्ठता का संबंध है इस बात पर विवाद नहीं किया गया है कि सरकार ने इस बात से सहमति व्यक्त की है कि वह कुछ प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सरकार के अधीन की गई सेवाओं पर विचार करेगी अतः यह दलील नहीं दी जा सकती कि ऐसा कोई कानूनी अधिकार है जिसे इस निदेश द्वारा प्रवर्तित किया जा सकता है कि वे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ज्येष्ठता विषयक सभी प्रयोजनों के लिए केन्द्रीय सरकार के अधीन की अपनी सेवाओं पर विचार किए जाने के लिए हकदार होंगे अतः केवल यही कहा जा सकता है कि सरकार इन पिटीशनरों के प्रति न्याय करते हुए उनके ज्येष्ठता विषयक मामले पर भी विचार करेगी । (पैरा 18)

		पैरा
[1983]	[1983] 1 उम० नि० प० 233=ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 879 : रणधीर सिंह बनाम भारत संघ (Randhir Singh *Vs.* Union of India);	14
[1982]	30 जून, 1982 को विनिश्चित 1980 का प्रकीर्ण पिटीशन सं० 693 : टी० जी० एम० पिल्लई और अन्य बनाम भारत संघ (T.G.M. Pillai and others *Vs.* Union of India).	14

वाले मामले निर्दिष्ट किए गए ।

आरम्भिक (सिविल) अधिकारिता : 1979 का प्रकीर्ण पिटीशन सं० 650.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 39(घ) के अधीन किया गया पिटीशन ।

पिटीशनरों की ओर से ... श्री ए० के० चितले

प्रत्यर्थी सं० 1 की ओर से ... सर्वश्री एस० के० सेठ और श्री के० के० अधिकारी

प्रत्यर्थी सं० 2 और 3 की ओर से ... श्री आर० के वर्मा, उप-महाधिवक्ता

न्या० जी० एल० ओझा :

यह पिटीशन पिटीशनरों की ओर से उनकी सेवाओं के राज्य काडर में विलयन हो जाने के पश्चात् व्यायाम शिक्षक के राज्य काडर में समान वेतनमानों का दावा करते हुए किया गया है ।

2. पिटीशनर सं० 1 मध्य प्रदेश में तैनात अर्स्टवाइल नेशनल फिटनैस कोर के कर्मचारियों का संघ है जो सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत संघ है । पिटीशनर सं० 2 उक्त संघ का महासचिव है । पिटीशनर सं० 3 खजानची है और पिटीशनर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सं० 4 संयुक्त सचिव है । पिटीशनर सं० 5 और 6 उक्त संघ के अनेक सदस्यों में से ऐसे दो सदस्य हैं जो वर्तमान में गवर्नमेंट नूतन सुभाष हायर सेकेण्डरी स्कूल, साउथ टी० टी० नगर, भोपाल, महाराजवाड़ा हायर सेकेण्डरी स्कूल, उज्जैन और अन्य संस्थानों में तैनात हैं । यह पिटीशन प्रतिनिधि की हैसियत से फ़ाइल किया गया है और इसमें यह अधिकथित किया गया है कि नेशनल फिटनैस कोर (एन०एफ़०सी०) नेशनल डिसिप्लिन स्कीम (एन०डी०एस०), जो मूलतः 1954 में स्वर्गीय जनरल जे० के० भोंसले की प्रेरणा पर शरणार्थी कैम्पों और कालोनियों में युवा पीढ़ी को अनुशासन में रहने और अभ्यास (ड्रिल) की शिक्षा देने के लिए कार्यक्रम के रूप में पुनर्वास मंत्रालय में मूलतः सृजित की गई थी, उत्तराधिकारी संगठन है । बाद में इस स्कीम को 1958 में शिक्षा मंत्रालय को अन्तरित कर दिया गया था जिससे कि इसे अनेक हाई स्कूलों में बढ़ाया जा सके । इस स्कीम को विद्यालय के स्तर पर ही प्रारम्भ किया गया था जिससे कि अपनी शिक्षा पद्धति को प्रजातंत्र के तौर तरीके से चरित्र का क्रमशः विकास करने के लिए शिक्षा पद्धति में विकास करने के लिए सुसम्बद्ध कार्यक्रम के रूप में प्रारम्भ किया जा सके । यह सुसम्बद्ध कार्यक्रम अनेक कार्यक्रमों जैसे फिजीकल ट्रेनिंग, आक्सीलियरी केडेट कोर और नेशनल डिसिप्लीन स्कीम को प्रतिस्थापित करने के लिए विद्यालय के स्तर पर ही किया गया जो डा० कुंजरू की अध्यक्षता में बनी समिति की सिफ़ारिशों के अनुसरण में नेशनल फिटनैस कोर के रूप में ज्ञात सुसम्बद्ध कार्यक्रम में विकसित हुआ ।

3. पिटीशनरों ने यह अभिकथन किया कि इस सुसम्बद्ध कार्यक्रम का राज्य के शिक्षा सचिवों (स्टेट एजूकेशन सेक्रेटरीज) और लोक शिक्षा के राज्य निदेशकों (स्टेट डायरेक्टर्स आफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन) की फ़रवरी, 1965 में हुई बैठक में विद्यालयों में स्वीकार करने के लिए अनुमोदन किया गया था । यह भी निश्चय किया गया था कि चूंकि राष्ट्रीय अनुशासन स्कीम के शिक्षकों का कार्य राज्य सरकार के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन विद्यालयों में किया जाना है अतः इनका राज्यों में अन्तरण कर दिया जाना चाहिए और राज्य के व्यायाम शिक्षा अध्यापकों के काडर में विलयन कर दिया जाना चाहिए । इन शिक्षकों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के अन्तरण के विषय में चर्चा राज्य शिक्षा के सचिवों और लोक शिक्षा के राज्य निदेशकों की अप्रैल, 1965 में हुई सभा में की गई थी जिसमें इस बात से सहमति प्रकट की गई थी कि ये अन्तरण इस शर्त पर किए जाने चाहिए कि राज्य सरकार इन शिक्षकों को चतुर्थ योजना के दौरान (तत्समय चालू योजना अवधि की पद्धति के अनुसार 1970–71) तक वेतन और भत्तों की पूर्ण रूप से प्रतिपूर्ति करेगी।

4. पिटीशनरों ने यह अभिकथन भी किया कि भारत सरकार द्वारा लेखबद्ध किए गए अन्तरण के निबन्धन और शर्तों में यह परिकल्पित है कि विद्यमान सम्बलम् और केन्द्रीय वेतनमान को इन शिक्षकों के राज्य में अन्तरण किए जाने के पश्चात् संरक्षित किया जाना चाहिए। यह बात राज्य को स्वीकार नहीं हुई क्योंकि उनके अनुसार इन शिक्षकों को केन्द्रीय वेतनमान देना संभव नहीं था और अन्ततोगत्वा यह अभिकथन किया गया कि भारत सरकार ने निम्नलिखित प्रस्ताव करते हुए पुनरीक्षित निबन्धन प्रस्थापित किए हैं :—

(i) यदि कोई शिक्षक राज्य प्राधिकारियों के अन्तर्गत सेवा स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है तो उसे पुनरीक्षित वेतन नियमावली (रिवाइज्ड पे रूल्स) के अन्तर्गत अनुज्ञेय सेवा समाप्ति के फायदे दिए जा सकेंगे और उसकी सेवाएं समाप्त की जा सकेंगी ।

अथवा

(ii) शिक्षक स्थानीय निकायों अथवा सम्बद्ध स्वैच्छिक संगठनों सहित राज्य-प्राधिकार के अधीन उसमें विहित वेतनमान के आधार पर नियोजन स्वीकार कर सकते हैं । इसके पश्चात् भारत सरकार में उसकी सेवाओं के समाप्त किए जाने पर पुनरीक्षित वेतन नियमावली के अधीन अनुज्ञेय सेवा समाप्ति पर फायदों का संदाय करेगी या भारत सरकार शिक्षक को 5 वर्ष की अवधि के लिए राज्य में नियत उसका वेतन और वर्तमान में उसके द्वारा लिए गए वेतन के अन्तर की प्रतिपूर्ति करेगी। शिक्षक को इन दोनों फायदों में से एक फायदा लेने के लिए अपने विकल्प का प्रयोग करने के लिए अनुज्ञात किया जा सकेगा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

5. यह अभिकथन किया गया कि संविवाद को सुलझाने के लिए केन्द्रीय सरकार ने नवम्बर, 1969 में वेतन और भत्तों पर होने वाले सम्पूर्ण व्यय की पूर्ति करने का निश्चय किया और राज्य सरकारों को निम्नलिखित शर्तों का सुझाव दिया :—

(क) राज्य अपेक्षित संख्या में रिक्तियों का सृजन करेंगे और इन शिक्षकों को इन रिक्तियों पर भर्ती करेंगे जिन शिक्षकों को प्राइवेट विद्यालयों में भेजा गया है उन्हें राज्य सरकार से प्रतिनियुक्ति पर माना जाएगा ।

(ख) केन्द्रीय सरकार के अधीन की गई सेवा राज्य के वेतनमान में वेतनवृद्धि की संगणना करने के लिए गिनी जाएगी; और

(ग) राज्य वेतनमान में किसी शिक्षक द्वारा लिए गए वेतन और भत्तों में उसके द्वारा केन्द्रीय सरकार के अधीन अन्तिम रूप से लिए गए वेतन और भत्तों के मुकाबले में कमी का चतुर्थ योजना अवधि के दौरान व्यक्तिगत वेतन के रूप में संदाय किया जाएगा ।

6. चूंकि, इन शर्तों को लागू नहीं किया गया था, अतः इनमें केन्द्रीय सरकार ने निम्नलिखित रूप में पुनः संशोधन किए :—

(क) इन शिक्षकों के वेतन और भत्तों के आधार पर किए गए व्यय की छठवें वित्त आयोग द्वारा अधिनिर्णय दिए जाने तक पूर्ण रूप से पूर्ति करने के लिए; और

(ख) छठवें वित्त आयोग को यह सिफारिश करने के लिए कि इन कर्मचारिवृन्दों के वेतन और भत्ते के व्यय को राज्यों की भावी वित्तीय अपेक्षाओं का निर्धारण करते समय पूर्व-निर्धारित व्यय के रूप में माना जाए ।

(ग) भारत सरकार द्वारा इस बात का भी विनिश्चय किया गया कि यदि इन शिक्षकों के सम्बलम् और भत्तों का निरन्तर संदाय उपरोक्त रीति से सुनिश्चित नहीं किया जा सकता हो तो केन्द्रीय सरकार इन शिक्षकों के सेवा-निवृत्त होने तक इसके उत्तरदायित्व का प्रत्यक्ष रूप से वहन करेगी ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

7. पिटीशनरों ने यह अभिकथन किया कि इन आदेशों के अनुसरण में जिन्हें केन्द्रीय सरकार ने 4 अप्रैल, 1972 को पारित किया था, मध्य प्रदेश सरकार ने 18 जनवरी, 1973 को एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा यह करार पाया गया कि राष्ट्रीय अनुशासन स्कीम शिक्षकों का प्रशासनिक नियंत्रण ग्रहण कर लिया जाए। इस आदेश द्वारा राज्य सरकार ने निर्दिष्ट संख्या से अधिक शिक्षकों के 362 पद और राष्ट्रीय अनुशासन स्कीम के पर्यवेक्षकों, शिक्षक/पर्यवेक्षक निर्दिष्ट संख्या से अधिक 12 पदों का सृजन किया और उन्हें विद्यमान वेतनमानों और संबंधित विषयों में नियत किया।

8. यह अभिकथन किया गया कि केन्द्रीय सरकार के 4 अप्रैल, 1972 के आदेशों को विभिन्न न्यायालयों में चुनौती दी गई और मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर ने 1 मार्च, 1974 के अपने निर्णय द्वारा 4 अप्रैल, 1972 के आदेशों को अभिखण्डित कर दिया और यह अभिकथन किया कि अन्ततोगत्वा नवम्बर, 1975 में केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय अनुशासन स्कीम शिक्षकों का राज्य सरकारों में अन्तरण करने के लिए एक अन्य स्कीम विरचित की है जो सभी राज्य सरकारों के लिए अन्तिम विनिश्चय है। केन्द्रीय सरकार के 20 नवम्बर, 1975 के इस आदेश को पिटीशन के साथ उपाबद्ध किया गया है और यह अभिकथन किया गया है कि इस आदेश में यह उपबंध किया गया है कि उन शिक्षकों की सेवाएं, जिन्होंने अक्तूबर, 1976 तक राज्य सरकार की सेवा किसी भी कारण से, चाहे वे जो हों, स्वीकार नहीं की है, तीन मास की सूचना देकर समाप्त की जाएं। इस प्रयोजन के लिए सूचना 1 अगस्त, 1976 को दी जाएगी। यह अभिकथन किया गया कि मध्य प्रदेश सरकार ने केन्द्रीय सरकार के इस विनिश्चय को स्वीकार किया और उसके अनुसरण में पिटीशनरों सहित राष्ट्रीय अनुशासन स्कीम के उन सभी भूतपूर्व शिक्षकों को चक्र-मुद्रण यंत्र द्वारा छापे गए प्ररूपों में नियुक्ति पत्र भेजे। ये नियुक्ति पत्र इस पिटीशन के साथ उपाबद्ध किए गए हैं। यह भी अभिकथन किया गया कि मानक प्ररूप में नियुक्ति-पत्र जारी करने से पूर्व राष्ट्रीय अनुशासन स्कीम के सभी निदेशकों की घोषणा प्ररूपों पर हस्ताक्षर करने के लिए बुलाया गया था तथा पिटीशनरों ने यह अभिकथन किया कि ये घोषणापत्र अवैध हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

9. नेशनल डिसिप्लिन स्कीम के अनुदेशकों को जारी किये गये नियुक्ति पत्रों से यह बात स्पष्ट रूप से दर्शित हो जाती है कि उन्हें व्यायाम शिक्षा अध्यापकों के काडर में आमेलित किया गया है। पिटीशनरों ने यह अभिकथन किया कि व्यायाम शिक्षा अध्यापकों के उनकी अर्हताओं के आधार पर राज्य में दो वेतनमान विद्यमान हैं; (i) 220-375 रुपये उन अध्यापकों के लिये जिनके पास व्यायाम शिक्षा में प्रमाणपत्र है, और (ii) 280-480 रुपये और 350-600 रुपये उन अध्यापकों के लिये जिनके पास व्यायाम शिक्षा में डिप्लोमा या स्नातक की डिग्री है। पिटीशनरों ने यह अभिकथन किया कि राज्य सरकार का व्यायाम शिक्षा प्रशिक्षण विद्यालय शिवपुरी में है जहां कि उल्लिखित प्रमाणपत्र, डिप्लोमा और डिग्री पाठ्यक्रमों का संचालन किया जाता है।

10. पिटीशनरों की ओर से यह दलील दी गई कि जहां तक नेशनल डिसिप्लिन स्कीम के भूतपूर्व अनुदेशकों का संबंध है वहां तक राज्य व्यायाम शिक्षा अध्यापकों के साथ उनकी अर्हताओं की समानता को केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार दोनों ने 1968 में ही मान्यता प्राप्त प्रदान कर दी थी। समानता के लिये राज्य सरकार की पूर्व सहमति से केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को अधिकथित किया गया है और इन सिद्धान्तों को भारत सरकार द्वारा विभिन्न राज्य सरकारों को 2 नवम्बर, 1968 के परिपत्र द्वारा संसूचित किया गया है। इस परिपत्र में निम्नलिखित उपबंधित हैं:—

> "(1) नेशनल डिसीप्लिन स्कीम के उन सभी अनुदेशकों को, जो स्नातक हैं और जिन्होंने केन्द्रीय सरकार द्वारा नेशनल फ़िटनेस कोर प्रोग्राम के अधीन इस प्रयोजन के लिये विहित परिष्कार-प्रशिक्षण का अनुसरण करते हुए नेशनल डिसीप्लिन स्कीम प्रशिक्षण प्राप्त किया है उन्हें विद्यालयों में नेशनल फ़िटनेस कोर प्रोग्राम के लिये अध्यापकों के रूप में उनकी नियुक्ति के प्रयोजनार्थ व्यायाम शिक्षा में डिप्लोमाधारक स्नातकोत्तर के समान माना जाना चाहिये तथा उन्हें जहां तक वे विद्यालयों से संबंधित हैं व्यायाम शिक्षा के क्षेत्र में पर्यवेक्षणीय नौकरियों के लिये भी समान माना जाना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(2) उन सभी नेशनल डिसीप्लिन स्कीम के अनुदेशकों को, जिन्होंने मैट्रीकूलेशन या हायर सेकेंडरी परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है तथा नेशनल डिसीप्लिन स्कीम प्रोग्राम के अन्तर्गत विहित परिष्कार-प्रशिक्षण का अनुसरण करते हुए नेशनल डिसीप्लिन स्कीम प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है, उन्हें व्यायाम शिक्षा में मैट्रीकुलेशन प्रमाणपत्र धारक के समान माना जाना चाहिये ; और

(3) केवल वे ही नेशनल डिसीप्लिन स्कीम अनुदेशक, जो स्नातक हैं या अवर स्नातक हैं किन्तु जिन्होंने 3 वर्ष की सेवा पूरी कर ली है, ऊपरिनिर्दिष्ट समानता का दावा करने के हकदार होंगे।"

11. यह भी दलील दी गई है कि राज्य सरकार ने भी 26 अप्रैल, 1968 की अपनी अधिसूचना में समानता के सिद्धान्तों को अधिकथित किया है जिसकी प्रति पिटीशनरों द्वारा उपाबद्ध की गई है और यह भी अभिकथन किया गया है कि राज्य सरकार ने बरवाह (मध्य प्रदेश) और सरिसका (राजस्थान) नेशनल फ़िटनैस कोर निदेशालय के केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान द्वारा दिये गये व्यायाम शिक्षा में डिप्लोमा और प्रमाणपत्र को राज्य सरकार के अधीन व्यायाम शिक्षा अध्यापक/विद्यालयों /महाविद्यालयों में व्यायाम अनुदेशकों के पद पर भर्ती के प्रयोजनों के लिये राज्य के व्यायाम शिक्षा के टी०टी० कालेज, शिवपुरी द्वारा दिये गये डिप्लोमा या प्रमाणपत्र के समान मान्यता प्रदान करने का निश्चय किया है। यह अभिकथन किया गया कि नेशनल डिसीप्लिन स्कीम अनुदेशकों ने बिना अपवाद के पूर्वोक्त सरिसका या बरवाह संस्थानों में प्रशिक्षण सफ़लतापूर्वक लिया है तथा अपेक्षित प्रमाणपत्र या डिप्लोमा प्राप्त किया है। पिटीशनरों ने राज्य सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना की प्रति भी उपाबद्ध की है। अतः यह अभिकथन किया गया कि राज्य में केवल राज्य व्यायाम शिक्षा अध्यापक काडर के नाम से ज्ञात एक ही व्यायाम शिक्षा अध्यापक काडर है जिसके सम्बद्ध अध्यापकों की अर्हताओं पर आधारित वेतनमानों की तीन श्रेणियां हैं।

12. यह भी दलील दी गई कि भूतपूर्व नेशनल डिसीप्लिन स्कीम अनुदेशकों को राज्य सरकार में आमेलित कर लिया गया है। लेकिन यह दलील दी गई कि भूतपूर्व नेशनल डिसीप्लिन स्कीम अनुदेशकों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वेतनमानों को नियत करते समय राज्य सरकार अर्हता में की उस समानता को क्रियान्वित करने में असफ़ल रही है जिसे इसने मान्यता प्रदान की थी तथा सुसंगत नियमों के अधीन राज्य व्यायाम अनुदेशकों के लिये उपबन्धित वेतनमान नेशनल डिसिप्लिन स्कीम अनुदेशकों को नहीं दिये हैं । यह दलील दी गई कि नेशनल डिसिप्लिन स्कीम के अधिकांश अनुदेशकों ने 195-330 रुपये की विशेष श्रेणी में सेवा की है जब कि राज्य सरकार में व्यायाम अनुदेशकों के लिये उपलब्ध श्रेणियां 220-375 रुपये; 280-480 रुपये और 350-600 रुपये उपलब्ध हैं। अतः पिटीशनरों ने यह दलील दी कि ऐसा करने में राज्य सरकार ने अपने द्वारा स्वीकृत की गई उस समानता के सिद्धान्त को नहीं माना है तथा उन सिद्धान्तों को भी नहीं माना है जिनके आधार पर नेशनल डिसिप्लिन स्कीम के अनुदेशकों को राज्य सेवा में लिया गया था। अतः पिटीशनरों की ओर से यह दलील दी गई कि राज्य सरकार को यह निदेश दिया जाये कि वह पिटीशनरों (नेशनल डिसिप्लिन स्कीम अनुदेशकों) को उनकी अर्हताओं के अनुसार राज्य सेवाओं में व्यायाम अनुदेशकों को उपलब्ध श्रेणियों के वेतनमान दे।

13. आगे पिटीशनरों के विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि वह उन अनुतोषों पर जोर नहीं दे रहा है जिनका कि केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध पैरा 27(क)(i) और 27(क)(ii) में दावा किया गया है बल्कि वह केवल यह चाहता है कि राज्य सरकार को यह निदेश दिया जाये कि वह राज्य सरकार द्वारा करार पाई गई समानता के आधार पर वेतनमान दे तथा नेशनल डिसिप्लिन स्कीम अनुदेशकों को राज्य काडर में उनकी नियुक्ति की तारीख से राज्य व्यायाम अनुदेशकों के काडर के लिये उपलब्ध वेतनमान में उनकी अर्हताओं के अनुसार रखे ।

14. राज्य सरकार द्वारा फ़ाइल की गई विवरणी और विद्वान उपमहाधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों के अनुसार अधिकांश तथ्य विवादास्पद नहीं है। नेशनल डिसिप्लिन स्कीम अनुदेशकों को राज्य सेवाओं में आमेलित करने पर उन्हें विशेष श्रेणी दिये जाने के लिये मुख्य औचित्य उनकी उस घोषणा को बताया गया जिस पर उन्होंने अपनी नियुक्ति से पूर्व हस्ताक्षर किये थे, अतः यह दलील दी गई कि चूंकि उन्होंने उन्हें

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दी गई घोषणा में के वेतनमानों को स्वीकार करने का करार कर लिया था, अतः अब वे यह दलील नहीं दे सकते कि वे राज्य सेवाओं में उपलब्ध वेतनमान के हकदार हैं। इसके विपरीत पिटीशनरों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि राज्य द्वारा समानता को स्वीकार करने के अतिरिक्त और इन पिटीशनरों को आमेलित करने का करार करने के पश्चात् यह दलील नहीं दी जा सकती कि चूंकि उन्होंने अजीब परिस्थितियों में घोषणा पर हस्ताक्षर किये थे अतः वे उस वेतनमान के हकदार नहीं हैं जो राज्य काडर में व्यक्तियों को उपलब्ध कराये गये हैं। यह भी दलील दी गई कि यह बात विवादास्पद नहीं है। कि सेंट्रल नेशनल डिसिप्लिन स्कीम अनुदेशकों के राज्य सेवा में विलयन हो जाने के पश्चात् व्यायाम अनुदेशक वही कार्य करता है तथा नेशनल डिसिप्लिन स्कीम के भूतपूर्व अनुदेशक को आबंटित किये गये कार्य और राज्य में व्यायाम अनुदेशक के रूप में अब आबंटित किये गये कार्य या उस व्यायाम अनुदेशक के कार्य में जो मूलतः राज्य काडर से आया है कोई अन्तर है और विद्वान काउन्सेल के अनुसार यह संविधान के अनुच्छेद 39(घ) के अधीन राज्य के नीति निदेशक तत्वों के प्रतिकूल है अतः यह विभेदकारी है जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 में अनुध्यात है। अतः यह दलील दी गई कि **रणधीर सिंह बनाम भारत संघ**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधिपतियों द्वारा जैसा कि अधिकथित किया गया है यह न्यायोचित नहीं हो सकता। इस न्यायालय द्वारा **टी० जी० एम० पिल्लई और अन्य बनाम भारत संघ**[2] वाले मामले में दिये गये विनिश्चय का भी आधार लिया गया।

15. पिटीनशरों की ओर से यह दलील भी दी गई कि सेवा-निवृत्ति के फ़ायदों के प्रयोजनार्थ वरिष्ठता की राज्य सरकार द्वारा उस सेवा को जोड़ते हुए पुष्टि कर दी गई है जो केन्द्रीय सरकार के अधीन की गई थी किन्तु ऋजुता की दृष्टि से राज्य सरकार को भी केन्द्रीय सरकार के अधीन उनकी सेवा को जोड़ने के पश्चात् इन सभी पिटीशनरों को मूल वरिष्ठता दी जानी चाहिये।

16. जैसा कि स्पष्ट है इस मामले में अधिक विवाद नहीं है। विवाद केवल यह है कि पिटीशनरों (केन्द्रीय सरकार

[1] [1983] 1 उम नि० प० 233=ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 879.

[2] 30 जून, 1982 को विनिश्चित 1980 का प्रकीर्ण पिटीशन सं० 693.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के अधीन भूतपूर्व नेशनल डिफ़ेंस स्कीम अनुदेशक) को राज्य सेवा में आमेलित करने के पश्चात् और इस तथ्य के बावजूद कि अर्हता विषयक समानता के संबंध में करार कर लिया गया था इन सभी पिटीशनरों (भूतपूर्व नेशनल डिफ़ेंस स्कीम अनुदेशक) को राज्य काडर के व्यक्तियों को उपलब्ध वेतनमान में राज्य काडर में आमेलित नहीं किया गया वरन् उन्हें एक ऐसे विशेष वेतनमान में आमेलित किया गया जो स्वीकृत रूप से राज्य काडर के व्यायाम अनुदेशकों को उपलब्ध वेतनमान से निम्नतर वेतनमान है। इस बात पर भी विवाद नहीं किया गया है कि भूतपूर्व नेशनल डिफ़ेंस स्कीम अनुदेशक (जो अब व्यायाम अनुदेशक हैं) का कार्य वही है जो उन व्यायाम अनुदेशकों द्वारा किया जाता है जो मूलतः राज्य काडर से आये हैं। अतः यह स्पष्ट है कि उसी कार्य के लिये पिटीशनरों को जो कि भूतपूर्व नेशनल डिफ़ेंस स्कीम अनुदेशक हैं उन व्यायाम अनुदेशकों से कम वेतन दिया जाता है जिन्हें स्टेट काडर में रखा गया है। इस तरह इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि यह बात संविधान के अनुच्छेद 39(घ) में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के प्रतिकूल है। अनुच्छेद 39(घ) निम्न प्रकार है :—

> "39(घ) पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिये समान वेतन हो।"

क्या यह विभेद की कोटि में आता है इस बात को उपर्निर्दिष्ट रणधीर सिंह बनाम भारत संघ[1] वाले मामले में स्पष्ट रूप से अधिकथित किया गया है। इस विनिश्चय में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :—

> "उद्देशिका और अनुच्छेद 39(घ) के आधार पर अनुच्छेद 14 और 16 का अर्थान्वयन करने पर हमारी यह राय है कि उससे इन सिद्धान्तों का अर्थ समान कार्य के लिये समान वेतन ही निकलता है और इसे ऐसे पदों को लागू किया जाना चाहिये जो वर्गों पर आधारित नहीं है और जिनके वेतनमान समान नहीं हैं अथवा असमान वर्गीकरण पर आधारित हैं जब कि वे आपसी

1 [1983] 1 उम०नि०प० 233=ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 879.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नियोजक के अधीन समान कार्य करते हैं किन्तु अलग-अलग वेतन प्राप्त करते हैं ।"

अतः यह स्पष्ट है कि पिटीशनरों को इस निम्नतर वेतनमान का दिया जाना स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 14 और 16 के अतिक्रमण की कोटि में आता है।

17. विद्वान उप महाधिवक्ता ने नियुक्ति के समय इन व्यक्तियों द्वारा की गई घोषणाओं का अवलम्ब लिया । लेकिन यह स्पष्ट है कि पिटीशनरों को उपलब्ध मूल अधिकारों के प्रवंचन में शर्तों का करार करना या उन्हें स्वीकार करना प्रवर्तित नहीं किया जा सकता अतः यह नहीं कहा जा सकता कि संविधान के अधीन पिटीशनर अपने जिस अधिकार के लिये हकदार हैं उस अधिकार से उन्हें मात्र इस कारण इन्कार किया जा सकता है क्योंकि उन्हें अजीब स्थिति में रख कर उनसे निम्नतर वेतनमान स्वीकार करने के लिये सहमति ले ली गई थी । अनुच्छेद 39(घ) में सन्निविष्ट सिद्धान्तों पर उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधिपतियों द्वारा इस निर्णय में सविस्तार विवेचन किया गया है अतः इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि उनकी अपनी घोषणाओं के आधार पर पिटीशनरों को दिया गया वेतनमान ऊपर विवेचित मत के आधार पर कायम नहीं रखा जा सकता ।

18. जहां तक ज्येष्ठता का संबंध है इस बात पर विवाद नहीं किया गया है कि सरकार ने इस बात से सहमति व्यक्त की है कि वह कुछ प्रयोजन के लिये केन्द्रीय सरकार के अधीन की गई सेवाओं पर विचार करेगी अतः यह दलील नहीं दी जा सकती कि ऐसा कोई कानूनी अधिकार है जिसे इस निदेश द्वारा प्रवर्तित किया जा सकता है कि वे ज्येष्ठता विषयक सभी प्रयोजनों के लिये केन्द्रीय सरकार के अधीन की अपनी सेवाओं पर विचार किये जाने के लिये हकदार होंगे अतः केवल यही कहा जा सकता है कि सरकार इन पिटीशनरों के प्रति न्याय करते हुए उनके ज्येष्ठता विषयक मामले पर भी विचार करेगी।

19. अतः यह पिटीशन मंजूर किया जाता है और यह निदेश दिया जाता है कि पिटीशनर (भूतपूर्व नेशनल डिफ़ेंस स्कीम अनुदेशक) अपनी शिक्षा संबंधी अर्हताओं के आधार पर तथा अपनी नियुक्ति की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तारीख से सहमत हुए समानता के सूत्र के आधार पर वेतनमानों में रखे जायेंगे और केन्द्रीय सरकार के अधीन उनकी सेवाओं के आधार पर ज्येष्ठता के प्रयोजनों के लिये उनके मामलों पर उचित रूप से और सहानुभूति पूर्वक विचार किया जायेगा। मामले की इन परिस्थितियों में पक्षकारों को अपने-अपने खर्चे वहन करने का निदेश दिया जाता है। पिटीशनरों द्वारा जमा की गई प्रतिभूति रकम का पिटीशनरों को प्रतिदाय किया जायेगा।

बसंल पिटीशन मंजूर किया गया।

नि० प० 1983 : मध्य प्रदेश--388

ऐस्बेस्टोस सीमेंट लि० और एक अन्य बनाम भारत संघ और अन्य
(Asbestos Cement Ltd. and another *Vs* Union of India and others

तारीख 13 अप्रैल, 1983

[मु० न्या० जी० पी० सिंह और न्या० बी० सी० वर्मा]

सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 —धारा 57 और 58— प्राईवेट भाण्डागार का अनुज्ञापन—किसी भाण्डागारण स्टेशन पर किसी सार्वजनिक भाण्डागार के नियत न होने की स्थिति में अनुज्ञापन प्राधिकारी इस आधार पर, कि किसी अन्य भाण्डागारण स्टेशन पर सार्वजनिक भाण्डागार में निःशेष सुविधाएं उपलब्ध हैं, किसी प्राईवेट भाण्डागार के लिए, अनुज्ञप्ति संबंधी आवेदन को नामंजूर अथवा उसके लिए अनुज्ञप्ति को निरस्त, अथवा उसके लिए अनुज्ञप्ति का नवीकरण करने से इंकार नहीं कर सकता।

ऐस्बेस्टास सीमेंट उत्पादों का विनिर्माण करने वाली एक कम्पनी को एक प्राइवेट भाण्डागार रखने की अनुज्ञप्ति सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 58(1) के अधीन 25 मार्च, 1977 को अनुदत्त की गई थी। अनुज्ञप्ति एक वर्ष तक प्रवृत्त रहनी थी परन्तु कम्पनी उसकी शर्तों के खंड 7

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुसार उसके नवीकरण के लिये आवेदन कर सकती थी। केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क सहायक कलक्टर (सतना खंड) ने कम्पनी को दो महीने का नोटिस देकर यह सूचित किया कि इस अवधि की समाप्ति के पश्चात् उसकी प्राइवेट भाण्डागार चलाने की अनुज्ञप्ति निरस्त समझी जायेगी और यदि वह चाहे तो अपना माल भोपाल में क्रियाशील सार्वजनिक भाण्डागार में भाण्डागारित कर सकती है। कम्पनी की इस संबंध में अभ्यापत्ति के उत्तर में सहायक कलक्टर ने एक पत्र द्वारा उसे यह सूचना दी कि सरकार की प्राइवेट भाण्डागार के लिये अनुज्ञप्ति अनुदत्त करने की कोई नीति नहीं है। कम्पनी ने सीमाशुल्क और केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क कलक्टर को इस आशय का पत्र लिखा कि उसे प्राइवेट भाण्डागार चलाने की अनुमति दी जाये। कम्पनी ने एक पत्र निदेशक, केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क और सीमाशुल्क बोर्ड (नई दिल्ली) को लिख कर उससे यह प्रार्थना की कि वह सहायक कलक्टर (सतना) को अनुज्ञप्ति का निरसन संबंधी नोटिस वापस लेने तथा अनुज्ञप्ति का नवीकरण करने का आवश्यक अनुदेश दे। 27 नवम्बर, 1982 को कम्पनी को यह सूचना दी गई कि वह 31 दिसम्बर, 1982 तक प्राइवेट भाण्डागार चलाती रह सकती है। अधीक्षक, केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क, कैमोर ने तारीख 3 दिसम्बर, 1982 के आदेश द्वारा कम्पनी को सूचित किया कि उसके अनुज्ञप्ति के नवीकरण संबंधी आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि प्राइवेट भाण्डागार चलाने की सुविधा समाप्त कर दी गई है। अतः कम्पनी ने उपर्युक्त नोटिस, आदेश और पत्र से व्यथित होकर उच्च न्यायालय में पिटीशन फ़ाइल किया।

अभिनिर्धारित—पिटीशन मंजूर किया गया।

किसी भाण्डागारण स्टेशन पर प्राइवेट भाण्डागार के लिये अनुज्ञप्ति के अनुदान संबंधी आवेदन पर विचार करते समय सीमा शुल्क सहायक कलक्टर को इस बात की जांच करनी आवश्यक है कि किसी सार्वजनिक भाण्डागार में निक्षेप सुविधायें उपलभ्य नहीं हैं। यदि धारा 58 का उचित अर्थान्वयन किया जाये तो इन सुविधाओं की उपलभ्यता के बारे में उस विशेष भाण्डागारण स्टेशन के संदर्भ में विचार किया जाना चाहि जहां प्राइवेट भाण्डागार के लिये अनुज्ञप्ति अनुदत्त की जाने के लिये आवेदन किया गया है। यदि प्राइवेट भाण्डागार के लिये धारा 58 के अधीन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुज्ञप्ति संबंधी कोई आवेदन यह सोचकर नामंजूर कर दिया जाये कि किसी अन्य भाण्डागारण स्टेशन के सार्वजनिक भाण्डागार में निः सुविधायें उपलभ्य हैं तो इसके परिणामस्वरूप धारा 58 एक अप्रचलि विधि बन जायेगी क्योंकि आयात पत्तनों पर, जो कि सभी भाण्डागा स्टेशन भी होते हैं, नियत सार्वजनिक भाण्डागारों में से किसी न कि में ऐसी सुविधायें हमेशा उपलभ्य होंगी । केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क सीमाशुल्क बोर्ड जब धारा 9 के अधीन किसी स्थान को भाण्डागा स्टेशन घोषित कर देता है तो उसके बारे में यह उपधारित किया ज चाहिये कि उसके विचार से वह एक ऐसा स्थान है जहां व्यापार उद्योग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक भाण्डा नियत और प्राइवेट भाण्डागार अनुज्ञप्त किये जा सकते हैं । (पैरा

आक्षेपित नीति का उचित कार्यान्वयन यही होगा कि आन्तरि भागों में भाण्डागारण स्टेशनों पर सार्वजनिक भाण्डागार नियत किये ज और उसके बाद उन स्टेशनों पर प्राइवेट भाण्डागारों के लिये न अनुज्ञप्ति अनुदत्त की जाये और न ही उसका नवीकरण किया जाये, न यह कि किसी भाण्डागारण स्टेशन पर किसी प्राइवेट भाण्डागार के लि अनुज्ञप्ति का अनुदान अथवा उसका नवीकरण करने से उस स्थिति जब वहां कोई सार्वजनिक भाण्डागार न हो, इस आधार पर इंकार दिया जाये कि किसी अन्य भाण्डागारण स्टेशन पर कोई सार्वजनि भाण्डागार विद्यमान है । (पैरा 7)

[1980] (1980) 1 आल ई० आर० 612 (हाउस आफ लार्ड्स) : यूनाइटेड किंगडम एसोसिएशन आफ प्रोफेशनल इंजीनियर्स और एक अन्य बनाम एडवाइजरी, कंसिलिएशन एण्ड आर्बिट्रेशन सर्विस (United Kingdom Association of Professional Engineers and another *Vs.* Advisory, Conciliation and Arbitration Service);

[1975] (1975) 2 आल ई० आर० 916 (हाउस आफ लार्ड्स) फ्लेचर बनाम लंदन (मैट्रोपालिस) लाइसेंसिंग प्लैनिंग कमेटी [Fletcher *Vs.* London (Metropolis) Licensing Planning Committee];

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1974] ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1475 पृ० 1750 : श्री राम शुगर इण्डस्ट्रीज बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य (Shri Ram Sugar Industries *Vs.* State of A.P.); 9

[1971] (1971) 3 डब्ल्यू० एल० आर० 133 (सी०ए०) पृ० 140-141 : सैक्नाटा लि० बनाम नारविच कार्पोरेशन (Saqnata Ltd. *Vs.* Norwich Corpn.); 9

[1970] (1970) आल ई० आर० 165 (हाउस आफ लार्ड्स ब्रिटिश आक्सीजन कं० लि० बनाम मिनिस्टर आफ टैक्नालजी (British Oxygen Co. Ltd. *Vs.* Minister of Technology); 9

[1969] ए० आई० आर० 1969 एस० सी० 707, पृ० 717 : रोहतास इण्डस्ट्रीज लि० बनाम एस० डी० अग्रवाल (Rohtas Industries Ltd. *Vs.* S.D. Agarwal); 8

[1968] (1968) 1 आल ई० आर० 694 (हाउस आफ लार्ड्स) : पैडफीड बनाम मिनिस्टर आफ एग्रीकल्चर, फिशरीज एण्ड फूड (Padfied *Vs.* Minister of Agriculture, Fisheries and Food); 8

[1957] (1957) 1 क्यू० बी० 350 (सी०ए०) : रिजाइना बनाम फ्लिंटशायर काउण्टी कौंसिल काउण्टी लाइसेंसिंग (स्टेज प्लेज) कमेटी एक्सपार्टी बैरेट (Regina *Vs.* Flintshire County Council County Licensing (Stage Plays) Committee Ex parte Barrett); 5, 9

[1947] (1947) 2 आल ई० आर० 680 (सी० ए०) पृ० 682 : ऐसोशिएटेड प्रोविंशियल पिक्चर हाउसेज लि० बनाम वेडनेसबरी कार्पो० (Associated Provincial Picture Houses Ltd. *Vs.* Wednesbury Corpn.); 8

[1919] (1919) 1 के० बी० 176 (सी०ए०) पृ० 184 : आर० बनाम पोर्ट आफ लंदन अथार्टी (R. *Vs.* Port of London Authority); 9

निर्दिष्ट किए गए ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आरम्भिक (सिविल रिट) अधिकारिता: 1982 का प्रकीर्ण पिटीशन सं० 1713.

सीमाशुल्क प्राधिकारियों द्वारा सीमाशुल्क अधिनियम के अधीन जारी किए गए नोटिस और आदेश को अभिखंडित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट पिटीशन।

पिटीशनरों की ओर से ... सर्वश्री एम० सी० भंडारे और आर० के० वर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से ... सर्वश्री ए० एम० माथुर, महाधिवक्ता और एम० वी० तामस्कर, सरकारी अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय मु० न्या० जी० पी० सिंह ने दिया।

मु० न्या० जी० पी० **सिंह :**

इस पिटीशन में पिटीशनर सं० 1 एक ऐसी कम्पनी है जिसका निगमन भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1913 के अधीन हुआ है और पिटीशनर सं० 2 उस कम्पनी का एक शेयर धारक है। कम्पनी अन्य उत्पादों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के ऐस्बेस्टास सीमेंट-उत्पादों का विनिर्माण करती है। कम्पनी तथाकथित उत्पादों के विनिर्माण के लिए कच्चा ऐस्बेस्टास रेशा (अज्वलनशील) इस्तेमाल करती है जिसका विदेश से आयात किया जाता है। कम्पनी के कारखाने मध्य प्रदेश में कैमोर नामक स्थान पर हैं। कम्पनी को कैमोर में एक प्राइवेट बंधपत्राधीन भाण्डागार रखने की अनुज्ञप्ति सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 58 (1) के अधीन 25 मार्च, 1977 को अनुदत्त की गई थी जिसमें आयातित कच्चा ऐस्बेस्टास रेशा अनुज्ञप्ति में वर्णित शर्तों के अधीन शुल्क के संदाय के बिना भंडारित किया गया था। अनुज्ञप्ति एक वर्ष तक प्रवृत्त रहनी थी परन्तु कम्पनी को उसकी शर्तों के खण्ड 7 के अनुसार उसके नवीकरण के लिए आवेदन करने की अनुमति दी गई थी। अनुज्ञप्ति का समय-समय पर नवीकरण कराया गया था और उसका तारीख 1 जनवरी, 1982 से 31 दिसम्बर, 1982 तक की अवधि के लिए अंतिम नवीकरण 24 नवम्बर, 1981 को किया गया था। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क सहायक कलक्टर (सतना खण्ड) ने तारीख 18 सितम्बर, 1982 के एक नोटिस द्वारा, जो अधिनियम की धारा 58 (2) (क) के अधीन जारी किए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाने के लिए आशयित नोटिस था, कम्पनी को लिखित रूप से यह सूचित किया कि उसे दो महीने का नोटिस दिया जा रहा है तथा इस अवधि की समाप्ति के पश्चात उसकी प्राइवेट बंधपत्राधीन भाण्डागार चलाने की अनुज्ञप्ति निरस्त समझी जाएगी। इसी नोटिस द्वारा कम्पनी को यह सूचना दी गई कि भोपाल में एक सार्वजनिक सीमाशुल्क बंधपत्राधीन भाण्डागार ने कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है और वह अपना माल उसमें भाण्डागारित कर सकती है। कम्पनी ने इस पर अभ्यापत्ति की परन्तु सहायक कलक्टर के तारीख 23 सितम्बर, 1982 के पत्र द्वारा उसे यह सूचना मिली कि प्राइवेट बंधपत्राधीन भाण्डागार के लिए अनुज्ञप्ति का अनुदान करने की सरकार की कोई नीति नहीं है। कम्पनी ने 25 सितम्बर, 1982 को सीमाशुल्क और केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क कलक्टर को इस आशय का एक पत्र लिखा कि उसे कैमोर में अपना प्राइवेट बंधपत्राधीन भाण्डागार चलाने की अनुमति दी जाए। कम्पनी ने 5 अक्तूबर, 1982 को इस विषय में एक पत्र निदेशक, केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क और सीमाशुल्क बोर्ड, नई दिल्ली को भी लिखा। इस पत्र में कम्पनी ने निदेशक से यह प्रार्थना की थी कि वह सहायक कलक्टर, सतना को अनुज्ञप्ति का निरसन संबंधी नोटिस वापस लेने तथा उसका नवीकरण करने के आवश्यक अनुदेश दे। 27 नवम्बर, 1982 को कम्पनी को यह सूचना दी गई कि वह 31 दिसम्बर, 1982 तक प्राइवेट बंधपत्राधीन भाण्डागार चलाती रह सकती है। अधीक्षक, केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क, कैमोर ने तारीख 3 दिसम्बर, 1982 के आदेश द्वारा कम्पनी को सूचित किया कि उसके अनुज्ञप्ति के नवीकरण संबंधी आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि प्राइवेट बंधपत्राधीन भाण्डागार चलाने की सुविधा समाप्त कर दी गई है। कम्पनी ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस पिटीशन में यह प्रार्थना की है कि अनुज्ञप्ति के निरसन के संबंध में सहायक कलक्टर का तारीख 18 सितम्बर, 1982 का नोटिस (प्रदर्श-सी) सहायक कलक्टर का तारीख 23 सितम्बर, 1982 का यह संज्ञापित करने वाला पत्र (प्रदर्श-ई), कि सरकार की नीति प्राइवेट बंधपत्राधीन भाण्डागार के लिए अनुज्ञप्ति देने की नहीं है, तथा अधीक्षक केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क, कैमोर का तारीख 3 दिसम्बर, 1982 का यह आदेश (प्रदर्श-जे), कि उसके (कम्पनी के) अनुज्ञप्ति के नवीकरण संबंधी आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता, मंसूख किया जाए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

2. प्रत्यर्थियों की ओर से फाइल की गई विवरणी से अनुज्ञप्ति के निरसन, तथा तारीख 1 अगस्त, 1980 के ट्रेड नोटिस सं० 87/80 कस्टम्स-1, जो उपाबंध आर-1 के रूप में प्रदर्शित किया गया है, में दिए गए नीति विषयक निर्णय के आधार पर उसका (अनुज्ञप्ति का) नवीकरण न किए जाने, का समर्थन होता है। खण्ड 2, जो कि इस नीति विषयक विवरण का सुसंगत खंड है, की भाषा निम्नलिखित है :—

> "तदनुसार यह निर्णय लिया गया है कि व्यापार और उद्योग की आवश्यकताओं, आयात-पत्तनों के सामीप्य और सीमाशुल्क संबंधी विशेषज्ञता को ध्यान में रखते हुए आन्तरिक भागों में प्राइवेट भाण्डागारों के अनुज्ञापन के बजाए चयनित स्थानों पर सार्वजनिक भाण्डागार नियत किए जाएंगे।"

3. संबंधित पक्षकारों द्वारा उठाए गए मुद्दों पर विचार करने से पूर्व सुसंगत कानूनी उपबंधों की अवेक्षा करना उपयुक्त है। सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 2 में परिभाषाएं दी गई हैं। धारा 2 के खंड (43) में "भाण्डागार" की यह परिभाषा दी गई है : "भाण्डागार" से धारा 57 के अधीन नियत कोई सार्वजनिक भाण्डागार या धारा 58 के अधीन अनुज्ञप्त कोई प्राइवेट भाण्डागार अभिप्रेत है। इसी धारा के खंड (45) में "भाण्डागारण स्टेशन" से ऐसा स्थान अभिप्रेत है जो धारा 9 के अधीन भाण्डागारण स्टेशन के रूप में घोषित किया गया हो। केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क और सीमा-शुल्क बोर्ड को धारा 9 के अधीन यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा किन्हीं स्थानों को भाण्डागारण स्टेशन घोषित कर सकता है केवल जहां पर ही लोक भाण्डागार नियत किए जा सकते हैं और प्राइवेट भाण्डागार अनुज्ञप्त किए जा सकते हैं। धारा 57 यह उपबंधित करती है कि किसी भाण्डागारण स्टेशन पर, सीमाशुल्क सहायक कलक्टर सार्वजनिक भाण्डागार नियत कर सकता है जिनमें शुल्क का संदाय किए बिना शुल्क्य माल निक्षेप किए जा सकते हैं। प्राइवेट भाण्डागारों के अनुज्ञापन के संबंध में व्यवहृत धारा 58 की भाषा निम्नलिखित है :—

> "58. प्राइवेट भाण्डागारों का अनुज्ञापन—(1) किसी भाण्डागारण स्टेशन पर, सीमाशुल्क सहायक कलक्टर प्राइवेट भाण्डागारों को अनुज्ञप्ति दे सकता है जिनमें अनुज्ञप्तिधारी द्वारा या उसकी ओर से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आयातित शुल्क्य माल या कोई अन्य आयातित माल, जिनकी बाबत सार्वजनिक भाण्डागार में निक्षेप की सुविधाएं उपलभ्य नहीं हैं, शुल्क का संदाय के बिना निक्षेप किए जा सकते हैं।

(2) सीमाशुल्क सहायक कलक्टर उपधारा (1) के अधीन अनुदत्त अनुज्ञप्ति—

(क) अनुज्ञप्तिधारी को एक मास की लिखित सूचना देकर; या

(ख) यदि अनुज्ञप्तिधारी ने इस अधिनियम या नियमों या विनियमों के किसी उपबन्ध का उल्लंघन किया है या अनुज्ञप्ति की शर्तों में से किसी को भंग किया है तो,

रद्द कर सकता है :

परन्तु खण्ड (ख) के अधीन अनुज्ञप्ति रद्द करने के पहले अनुज्ञप्तिधारी को सुनवाई का उचित अवसर दिया जाएगा।

(3) इस बात की जांच लम्बित रहने के दौरान कि उपधारा (1) के अधीन अनुदत्त अनुज्ञप्ति उपधारा (1) के अधीन अनुदत्त अनुज्ञप्ति उपधारा (2) के खण्ड (ख) के अधीन रद्द की जानी चाहिए या नहीं सीमाशुल्क सहायक कलक्टर अनुज्ञप्ति को निलम्बित कर सकता है।

4. तारीख 2 मार्च, 1977 की अधिसूचना सं० 1/77 (कस्टम्स) द्वारा कैमोर धारा 9 के अधीन भाण्डागारण स्टेशन घोषित किया गया था। उस समय तक भोपाल भाण्डागारण स्टेशन नहीं था। तथापि, वह बाद में भाण्डागारण स्टेशन घोषित कर दिया गया था। धारा 57 के अधीन भोपाल में ऐसा सार्वजनिक भाण्डागार नियत किया गया है। कैमोर अब भी धारा 9 के अधीन एक भाण्डागारण स्टेशन है क्योंकि इसे भाण्डागारण स्टेशन घोषित करने वाली अधिसूचना, जो उस धारा के अधीन जारी की गई थी, अब भी प्रभावी है और अकृत नहीं बनाई गई है।

5. पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल ने हमारे समक्ष यह तर्क प्रस्तुत किया है कि यदि धारा 58 का सही अर्थान्वयन किया जाए तो कम्पनी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को कैमोर में प्राइवेट भाण्डागार के लिए अनुदत्त अनुज्ञप्ति का निरसन नहीं किया जा सकता और उसका नवीकरण करने से इस आधार पर इंकार नहीं किया जा सकता कि वह आयातित कच्चे ऐस्बेस्टास रेशे के भंडारण के लिए कैमोर से 440 किलोमीटर दूर भोपाल में स्थित सार्वजनिक भाण्डागार का उपयोग कर सकती है। विद्वान काउन्सेल का यह तर्क है कि अनुज्ञप्ति का निरसन, अथवा उसका नवीकरण करने से इंकार तभी किया जा सकता था जब कैमोर स्थित किसी सार्वजनिक भाण्डागार में निक्षेप की सुविधाएं उपलभ्य होतीं परन्तु कैमोर से सुदूर स्थित भोपाल जैसे एक अन्य भाण्डागारण स्टेशन पर निक्षेप-सुविधाओं की उपलभ्यता अनुज्ञप्ति का अनुदान करने से इंकार करने का आधार नहीं बनाई जा सकती। विद्वान् काउन्सेल ने यह तर्क भी प्रस्तुत किया कि अधिनियम के उपबंधों के प्रतिकूल कोई नीति नहीं बनाई जा सकती और यदि कोई विधिमान्य सामान्य नीति विद्यमान हो भी, तो भी अनुज्ञप्ति से संबंधित प्रत्येक मामले का विनिश्चय उसके विशेष स्वरूप को ध्यान में रखकर करना आवश्यक है और सीमा शुल्क प्राधिकारी धारा 58 के अधीन अनुज्ञप्ति के अनुदान अथवा नवीकरण के मामले में किसी नीति के आधार पर विचार करने से इंकार नहीं कर सकते। विद्वान काउन्सेल ने **रिजाईना बनाम फ्लिंटशायर काउण्टी कौंसिल काउण्टी लाइसेंसिग (स्टेज प्लेज) कमेटी एक्स-पार्टी बैरेट**[1] वाले मामले में अपील न्यायालय के विनिश्चय का अवलम्ब लिया।

6. पिटीशनरों के विद्वान काउन्सेल ने जो मुद्दे उठाए हैं, उनमें हमारी राय में काफी बल है। हम कह चुके हैं कि कैमोर भाण्डागारण स्टेशन है और वहां धारा 57 के अधीन कोई सार्वजनिक भाण्डागार नियत नहीं किया गया है। किसी भाण्डागारण स्टेशन पर प्राइवेट भाण्डागार के लिए अनुज्ञप्ति के अनुदान संबंधी आवेदन पर विचार करते समय सीमाशुल्क सहायक कलक्टर को इस बात की जांच करनी आवश्यक है कि "किसी सार्वजनिक भाण्डागार में निक्षेप सुविधाएं उपलभ्य नहीं हैं।" यदि धारा 58 का उचित अर्थान्वयन किया जाए तो इन सुविधाओं की उपलभ्यता के बारे में उस विशेष भाण्डागारण स्टेशन के संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए जहां प्राइवेट भाण्डागार के लिए अनुज्ञप्ति अनुदत्त की

---

[1] (1957) 1 क्यू० बी० 350 (सी० ए०)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाने के लिए आवेदन किया गया है। यदि प्राइवेट भाण्डागार के लिए धारा 58 के अधीन अनुज्ञप्ति संबंधी कोई आवेदन यह सोचकर नामंजूर कर दिया जाएगा कि किसी अन्य भाण्डागारण स्टेशन के सार्वजनिक भाण्डागार में निक्षेप-सुविधाएं उपलभ्य हैं, तो इसके परिणामस्वरूप धारा 58 एक अप्रचलित विधि बन जाएगी क्योंकि आयात-पत्तनों पर, जो कि सभी भाण्डागारण स्टेशन भी होते हैं, नियत सार्वजनिक भाण्डागारों में से किसी न किसी में ऐसी सुविधाएं हमेशा उपलभ्य होंगी। केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क और सीमाशुल्क बोर्ड जब धारा 9 के अधीन किसी स्थान को भाण्डागारण स्टेशन घोषित कर देता है तो उसके बारे में यह उपधारित किया जाना चाहिए कि उसके विचार से वह एक ऐसा स्थान है जहां व्यापार और उद्योग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक भाण्डागार नियत और प्राइवेट भाण्डागार अनुज्ञप्त किए जा सकते हैं। यदि किसी विशेष भाण्डागारण स्टेशन पर धारा 57 के अधीन कोई सार्वजनिक भाण्डागार नियत कर दिया गया होगा तो सहायक कलक्टर वहां किसी प्राइवेट भाण्डागार के लिए अनुज्ञप्ति का अनुदान करने से इंकार करेगा बशर्ते कि उसके विचार से सार्वजनिक भाण्डागार की भण्डारण-क्षमता कम न हो अथवा किसी अन्य कारण से उसमें माल भंडारण की सुविधाएं उपलभ्य न हों। परन्तु, किसी भाण्डागारण स्टेशन पर धारा 57 के अधीन किसी सार्वजनिक भाण्डागार के नियत न होने की स्थिति में अनुज्ञापन प्राधिकारी इस आधार पर कि, किसी अन्य भाण्डागारण स्टेशन पर सार्वजनिक भाण्डागार में निक्षेप-सुविधाएं उपलभ्य हैं किसी प्राइवेट भाण्डागार के लिए अनुज्ञप्ति से संबंधित आवेदन को नामंजूर अथवा उसके लिए अनुज्ञप्ति को निरस्त; अथवा उसके लिए अनुज्ञप्ति का नवीकरण करने से इंकार नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, यदि आन्तरिक भाग के किसी ऐसे भाण्डागारण स्टेशन पर जहां कोई सार्वजनिक भाण्डागार नहीं है, किसी प्राइवेट भाण्डागार के लिए आवेदन किया गया है तो सहायक कलक्टर को ऐसे आवेदन को इस आधार पर नामंजूर करने की छूट नहीं होगी कि मुम्बई अथवा कलकत्ता जैसे आयात-पत्तनों पर किसी सार्वजनिक भाण्डागार में आयातित वस्तुओं के निक्षेप की सुविधाएं उपलभ्य हैं। इसी तर्कणा के आधार पर सीमाशुल्क प्राधिकारियों को पिटीशनर-कम्पनी के कैमोर स्थित प्राइवेट भाण्डागार की अनुज्ञप्ति को इस कारण निरस्त करने अथवा उसका नवीकरण करने से इंकार करने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की छूट नहीं थी कि अब भोपाल में एक ऐसा सार्वजनिक भाण्डागार है जहां भण्डारण की सुविधाएं उपलभ्य हैं ।

7. हम तारीख 1 अगस्त, 1980 के ट्रेड नोटिस (उपाबंध-आर-1) में अंतर्विष्ट नीतिविषयक विवरण के खंड (2) को उद्धृत कर चुके हैं। नीति यह है कि व्यापार और उद्योग की आवश्यकताओं, आयात-पत्तनों के सामीप्य और सीमाशुल्क संबंधी विशेषज्ञता को ध्यान में रखते हुए आन्तरिक भागों में प्राइवेट भाण्डागारों के अनुज्ञापन के बजाए चयनित स्थानों पर सार्वजनिक भाण्डागार नियत किए जाएंगे । इस नीति में न तो कोई ऐसी बात है और न ही हो सकती है जो सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 9, 57 और 58 के उपबन्धों के प्रतिकूल हो । इस नीति का उचित कार्यान्वयन यही होगा, कि आन्तरिक भागों में भाण्डागारण स्टेशनों पर सार्वजनिक भाण्डागार नियत किए जाएं और उसके बाद उन स्टेशनों पर प्राइवेट भाण्डागारों के लिए न तो अनुज्ञप्ति का अनुदान किया जाए और न ही उसका नवीकरण किया जाए, न कि यह कि किसी भाण्डागारण स्टेशन पर किसी प्राइवेट भाण्डागार के लिए अनुज्ञप्ति का अनुदान अथवा उसका नवीकरण करने से उस स्थिति में, जब वहां कोई सार्वजनिक भाण्डागार न हो, इस आधार पर इंकार कर दिया जाए कि किसी अन्य भाण्डागारण स्टेशन पर कोई सार्वजनिक भाण्डागार विद्यमान है ।

8. अब यह सुस्थापित हो चुका है कि किसी ऐसे प्राधिकारी को, जिसमें कानूनी विवेकाधिकार निहित होता है, अपनी शक्ति का प्रयोग कानून के उद्देश्य को अग्रसर करने के लिये करना चाहिये, उसे कानून के गलत अर्थान्वियन के अनुसार अग्रसर नहीं होना चाहिये; उसे शक्ति के प्रयोग के लिये सुसंगत बातों पर विचार करना चाहिये; और उसे विसंगत बातों के असर में नहीं आना चाहिए । **ऐसोशिएटेड प्रोविंशियल पिक्चर हाउसेज लि० बनाम वेडनेसबरी कार्पो०**[1] वाले मामले में लार्ड ग्रीन का यह सैद्धान्तिक कथन इस मुद्दे के बारे में एक मार्गदर्शक प्रामाणिक मत है कि "जिस व्यक्ति को कोई विवेकाधिकार प्रदान किया गया है उसे विधि के अनुसार समुचित कार्यवाही करनी चाहिये । वह जिन बातों पर विचार करने के लिये आबद्ध है, उसे

1 (1947) 2 आल ई० आर० 680 (सी० ए०), पृ० 682.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उन पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिये । उसे विसंगत बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिये ।" लार्ड ग्रीन के ये शब्द हाउस आफ लार्ड्स तथा उच्चतम न्यायालय ने सानुमोदन उद्धृत किये हैं [**पैडफील्ड बनाम मिनिस्टर आफ एग्रीकल्चर, फिशरीज एण्ड फूड**[1] **युनाइटेड किंग्डम ऐसोसिएशन आफ प्रोफेशनल इंजीनियर्स और एक अन्य बनाम एडवाइजरी कांसिलिएशन एण्ड आर्बिट्रेशन सर्विस**[2] तथा **रोहतास इंडस्ट्रीज लि० बनाम एस० डी० अग्रवाल**[3]] । प्रस्तुत मामले में सीमाशुल्क प्राधिकारियों ने धारा 58 के अधीन कम्पनी की अनुज्ञप्ति को निरस्त करने तथा उसका नवीकरण करने से इंकार करने में विधि के अनुसार समुचित कार्यवाही नहीं की है क्योंकि उन्होंने उक्त धारा के गलत अर्थान्वियन के अनुसार कार्यवाही की है और इस असुसंगत तथ्य का ध्यान रखा है कि भोपाल में एक सार्वजनिक भाण्डागार है ।

9. इसके अतिरिक्त, ट्रेड नोटिस में दिये गये नीतिविषयक विवरण का अन्धानुकरण करके उन्होंने कम्पनी के अनुज्ञप्ति की निरन्तरता और उसके नवीकरण संबंधी आवेदन की ओर से अपने आंख-कान प्रकट रूप से बंद कर लिये थे । इस संबंध में, कि कानूनी विवेकाधिकार में किसी नीति के अंगीकरण के परिणामस्वरूप किस सीमा तक काट-छांट हो सकती है, मार्गदर्शक सिद्धान्त का कथन **आर बनाम पोर्ट आफ लंदन अथार्टी** वाले मामले में न्यायमूर्ति बैंकेस ने किया था । उनके शब्दों में, "एक ओर ऐसे मामले हैं जिनमें अधिकरण ने अपने विवेकाधिकार का ईमानदारी से प्रयोग करते हुए कोई नीति अंगीकार की है और संबंधित व्यक्ति के आवेदन की सुनवाई करने से इंकार न करके उसे यह सूचना दी है कि उसकी नीति क्या है, तथा वह उसकी सुनवाई करने के पश्चात् अपनी नीति के अनुसार उसके विरुद्ध विनिश्चय करेगा बशर्ते कि उसके मामले में कोई अत्यन्त विशेष बात न हो । यदि नीति का अंगीकरण किन्हीं ऐसे कारणों से किया गया है जिन्हें अधिकरण विधिसम्मत रूप से स्वीकार कर सकता है तो ऐसा मार्ग अपनाये जाने के प्रति कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती । दूसरी ओर ऐसे भी मामले हैं जिनमें अधि-

[1] (1968) 1 आल ई० आर० 694 (हाउस आफ लार्ड्स)
[2] (1980) 1 आल ई० आर० 612 (हाउस आफ लार्ड्स)
[3] ए० आई० आर० 1969 एस० सी० 707, पृ० 17.
[4] (1919) 1 के० बी० 176 (सी०ए०) पृष्ठ 184.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करण ने किसी के भी द्वारा किये गये किसी भी प्रकार के आवेदन की सुनवाई न करने का या तो कोई नियम पारित कर दिया है या इरादा बना लिया है। इन दो बातों के मध्य पूर्ण रूप से अंतर स्थापित करना आवश्यक है।" लार्ड रीड ने यह अंश **ब्रिटिश आक्सीजन कं० लि० बनाम मिनिस्टर आफ टेक्नालाजी**[1] वाले मामले में सानुमोदन उद्धृत किया था। इसे उद्धृत करने के पश्चात् लार्ड रीड ने यह मत व्यक्त किया था कि "सामान्य नियम यह है कि उस व्यक्ति को आवेदन की सुनवाई करने से इंकार नहीं करना चाहिये जिसे किसी कानूनी विवेकाधिकार का प्रयोग करना होता है। मेरे विचार से नीति और नियम में कोई बड़ा अन्तर नहीं है। ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें किसी अधिकारी अथवा प्राधिकारी का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपने समक्ष प्रस्तुत किये गये किसी ऐसे सारवान् युक्तियुक्त तर्क को सुने जिसमें नीति-परिवर्तन का निवेदन किया गया है। प्राधिकारी से यही अपेक्षा की गई है कि वह किसी भी दशा में सुनवाई करने से इन्कार न करे। परन्तु संभवतः किसी मंत्रालय या बड़े प्राधिकरण को पहले वैसे अनेक आवेदनों के संबंध में कार्रवाई करनी पड़ी होगी और उसके बाद वह इस संबंध में प्रायः निश्चित रूप से कोई ऐसी नियमनिष्ठ नीति बनाने के लिये बाध्य हो गया होगा जिसे निःसंकोच नियम कहा जा सके। इस बात के प्रति कोई आपत्ति नहीं हो सकती बशर्ते कि प्राधिकारी हर उस व्यक्ति को सुनने का हमेशा इच्छुक हो जिसके पास कोई नई बात कहने की है—निःसंदेह मेरे कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि ऐसी स्थिति में मौखिक सुनवाई करनी आवश्यक है।" तथापि, यह आवश्यक है कि बनाई गई नीति प्राधिकारी को प्रदत्त कानूनी विवेकाधिकार के संदर्भ में गैरकानूनी या विसंगत न हो [**फ्लेचर बनाम लंदन (मट्रोपौलिस) लाइसैंसिग प्लैंनिग कमेटी**[2]]। संक्षेप में, यदि कोई अनुज्ञापन प्राधिकारी कोई ऐसी सामान्य नीति अंगीकार करता है जो उचित और न्यायसंगत तथा उस कानून के अनुरूप है जिसके अधीन वह कार्य करता है तो कोई आपत्ति नहीं है। ऐसी किसी नीति के एकबारगी अधिकथित कर दिये जाने के पश्चात् संबंधित प्राधिकारी उसे अपने समक्ष आने वाले अलग-अलग मामलों में लागू करने का हकदार हो जाता है। एकमात्र शर्त यह है कि प्राधिकारी नीति को इतनी

---

[1] (1970) 3 आल ई० आर० 165 (हाउस आफ लार्ड्स) पृ० 170.

[2] (1975) 2 आल ई० आर० 916 (हाउस आफ लार्ड्स).

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कठोरता से लागू न करे कि कोई आवेदन, आवेदक को इस संबंध में कारण प्रस्तुत करने का अवसर दिये बिना नामंजूर कर दिया जाये कि नीति में परिवर्तन किया जाना चाहिये अथवा वह उस पर लागू नहीं की जानी चाहिये। [सेक्नाटा लि० बनाम नारविच कार्पो०[1] (लार्ड डेनिंग एम० आर०)] इससे आवश्यक रूप से यह परिणाम निकलता है कि अनुज्ञापन प्राधिकारी को किसी नीति के आधार पर ऐसी दृढ़ता का अनुसरण नहीं करना चाहिये जिसके फलस्वरूप अलग-अलग मामलों के गुणागुण का बलिदान होता है। [रिजाइना बनाम विल्टशायर काउण्टी कौंसिल काउण्टी लाइसेंसिंग (स्टेज प्लेज) कमेटी ऐक्स पार्टी बेरेट[2] (पूर्वकथित) पृ० 368]। उच्चतम न्यायालय ने ये सिद्धान्त श्री राम शुगर इन्डस्ट्रीज बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य[3] वाले मामले में दो के मुकाबले तीन के बहुमत से मान्य ठहराये गये इस शंकास्पद अपवाद के अधीन स्वीकार किये थे कि किसी विशिष्ट मामले में वैवेकिक शक्ति का आयाम इतना विस्तृत हो सकता है कि सक्षम प्राधिकारी व्यक्तियों के किसी विशिष्ट वर्ग के पक्ष में अपने विवेकाधिकार का कभी प्रयोग न करने का कोई निश्चित नियम अंगीकार करने के लिये विवक्षित रूप से हकदार हो जाए। प्रस्तुत मामले में सीमाशुल्क प्राधिकारियों ने न केवल धारा 58 का गलत अर्थान्वियन किया है बल्कि उन्होंने नीति को समझने में भी गलती की है। यदि उन्होंने नीति को सही समझा है तो फिर वह धारा 9, 57 और 58 के संगत नहीं है और इसलिये अविधिमान्य है। प्राधिकारियों को हर दशा में कम्पनी को इस बारे में सुनने के लिये तैयार रहना चाहिये था कि उसका मामला ऐसा था जिस पर तथाकथित नीति लागू नहीं की जानी चाहिये थी। धारा 58 सहायक कलक्टर को इतना व्यापक विवेकाधिकार प्रदान नहीं करती कि वह व्यक्तियों के किसी विशेष वर्ग के पक्ष में अनुज्ञप्ति का कभी अनुदान न करने का निश्चित नियम अंगीकार कर सके। इस प्रकार सीमाशुल्क प्राधिकारियों ने कम्पनी की अनुज्ञप्ति को निरस्त करने तथा उसका नवीकरण करने से इंकार करने में कानून और नीति का गलत अर्थान्वयन किया था और सही सिद्धान्त लागू नहीं किये थे तथा उनकी कार्रवाई मान्य नहीं ठहराई जा सकती।

---

[1] (1971) 3 डब्ल्यू० एल० आर० 133 (सी० ए०), पृ० 140-141.
[2] (1957) 1 क्यू० बी० 350 (सी० ए०).
[3] ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 1745, पृ० 1750.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

10. पिटीशन मंजूर किया जाता है । हम सहायक कलक्टर के तारीख 18 सितम्बर, 1982 के आदेश (प्रदर्श-ई) तथा अधीक्षक, केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क कैमोर के तारीख 3 दिसम्बर, 1982 के आदेश (उपाबन्ध-जे) को मंसूख करते हैं । हम निदेश देते हैं कि प्रत्यर्थी सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 58 के अधीन कम्पनी के अनुज्ञप्ति के नवीकरण संबंधी आवेदन पर विचार करें तथा विधि के अनुसार उसका विनिश्चय एक महीने के भीतर करें । हम यह भी निदेश देते हैं कि प्रत्यर्थी अनुज्ञप्ति के नवीकरण संबंधी आवेदन का निपटारा होने तक कम्पनी को कमोर में प्राइवेट बंधपत्राधीन भाण्डागार की सुविधा देते रहें । पिटीशनर इस पिटीशन के खर्चे प्रत्यर्थी सं० 1, अर्थात् भारत संघ, से प्राप्त करें। प्रमाणित किये जाने पर काउन्सेल की फीस 500.00 रुपये होगी। प्रतिभूति की रकम पिटीशनरों को लौटा दी जाये ।

पिटीशन मंजूर किया गया।

अशोक/मि०

नि० प० 1983 : मध्य प्रदेश—402

बाम्बे स्कूटर्स, छिन्दवाड़ा बनाम कलक्टर, छिन्दवाड़ा और एक अन्य

(Bombay Scooters, Chhindwara *Vs.* Collector, Chhindwara and another)

तारीख, 20 अप्रैल, 1983

[मु० न्या० जी० पी० सिंह और न्या० के० के० अधिकारी]

प्राइज चिट्स एण्ड मनी सरकुलेशन स्कीम्स (बैनिंग) एक्ट [इनामी चिट और धन परिचालन स्कीम (प्रतिषेध) अधिनियम], 1978, धारा 2(क), (ग) और धारा 3 सपठित मध्य प्रदेश लाटरी (नियंत्रण तथा कर) अधिनियम, 1973, धारा 2 (1) (क) 6 और धारा 7—एक सौ सदस्यों का समूह बनाकर और ऐसे समूह के प्रत्येक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सदस्य से सदस्यता शुल्क के रूप में 5 रुपये प्रतिमास तथा अभिदाय के रूप में 180 रुपये प्रतिमास का संग्रहण करना तथा संगृहीत धन का लाट या ड्रा द्वारा समूह के किसी सदस्य को 30 मास के लिए प्रत्येक मास इनाम के रूप में प्रयोग करना——उक्त अधिनियम में परिभाषित प्राइज चिट के अन्तर्गत आने के कारण इसे किसी भी प्रकार पारम्परिक चिट नहीं माना जा सकता——परिणामतः इस प्रकार की प्राइज चिट चलाना उक्त धारा 3 का अतिलंघन करना है।

2. मध्य प्रदेश लाटरी (नियंत्रण तथा कर) अधिनियम, 1973 धारा 9—केन्द्रीय अधिनियम के अधीन लाटरी, जो प्राईज चिट है, की बाबत अनुज्ञात अनुज्ञप्ति की दशा में उक्त धारा 9 लागू होगी तथा अनुज्ञप्ति के रद्दकरण की विधिमान्यता पर आपत्ति नहीं की जा सकती और इसके साथ-साथ यदि कलक्टर ने अनुज्ञप्ति रद्द करने में अनुज्ञप्तिधारी को सुनवाई का अवसर नहीं दिया है किन्तु रिट पिटीशन में उच्च न्यायालय ने सुनवाई का पूर्ण अवसर प्रदान कर दिया है तो ऐसी स्थिति में सुनवाई का और अवसर प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

3. प्राइज चिट्स एण्ड मनी सरकुलेशन स्कीम्स (बैनिंग) ऐक्ट, [इनामी चिट और धन परिचालन स्कीम (प्रतिषेध) अधिनियम], 1978 की धारा 3 और मध्य प्रदेश लाटरी नियंत्रण तथा कर (अधिनियम), 1973 की धारा 9—यदि कलक्टर ने स्कीम की अनुज्ञप्ति को इस आधार पर रद्द कर दिया है कि स्कीम राज्य अधिनियम के अधीन लाटरी नहीं है बल्कि केन्द्रीय अधिनियम के अधीन प्राइज चिट है तो ऐसी दशा में कलक्टर को स्कीम के प्रोन्नायक द्वारा किए गए संग्रहण का प्रतिदाय करने का निदेश देने की अधिकारिता नहीं है।

पिटीशनर एक भागीदारी फ़र्म है। पिटीशनर ने "रमोना स्कूटरेट सेल प्रोमोशन स्कीम" के नाम से ज्ञात एक स्कीम चलाई। इस स्कीम की अनुज्ञप्ति के लिये पिटीशनर ने आवेदन किया जिसके आधार पर छिन्दवाड़ा के कलक्टर ने अनुज्ञप्ति प्रदान की। किन्तु उसने इस अनुज्ञप्ति को इस आधार पर रद्द कर दिया कि पिटीशनर द्वारा चलाई जाने वाली स्कीम लाटरी नहीं है बल्कि इनामी चिट है जो प्राइज चिट्स एण्ड मनी सरकुलेशन स्कीम्स (बैनिंग) ऐक्ट, 1978 के अन्तर्गत आती है। इसके अतिरिक्त 1982 में कलक्टर ने पिटीशनर को यह निदेश दिया कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वह स्कीम के सदस्यों से संगृहीत की गई रकम का उन्हें प्रतिदाय करे। इन आदेशों से व्यथित होकर पिटीशनर ने संविधान के अनुच्छेद 2 के अधीन किये गये प्रस्तुत पिटीशन द्वारा चुनौती दी है।

पिटीशनर की स्कीम का सदस्य बनने के लिये प्रत्येक व्यक्ति सदस्यता फ़ीस के रूप में 5 रुपये का संदाय करना होगा। स्कीम एक समूह में 100 सदस्य हैं। समूह के प्रत्येक सदस्य को 180 रु प्रतिमास का अभिदाय करना होता है। समूह पूर्ण हो जाने के पश्चात सदस्यों की उपस्थिति में प्रतिमास एक भाग्यशाली नम्बर निकाला जाता और यह भाग्यशाली नम्बर जिस व्यक्ति का होता है उसे एक नया स्कूटरेट दे दिया जाता है और उसे इसके पश्चात् 180 रुपये प्रति का संदाय नहीं करना पड़ता। यह स्कीम 30 मास की अवधि तक चलती है। वे सदस्य जो किसी ड्रा में विजयी नहीं होते तथा इस सम्पूर्ण अवधि में मासिक संदाय करते रहते हैं, उन्हें बाद में एक रमोना स्कूटरेट दिया जाता है। प्रथम लाटरी में ही भाग्यशाली नम्बर प्राप्त करने वाले व्यक्ति को केवल 185 रुपये में ही स्कूटरेट प्राप्त हो जाता है जब दूसरी लाटरी में स्कूटरेट प्राप्त करने वाले व्यक्ति को 365 रुपये पड़ते हैं और इसी प्रकार आगे भी। इस स्कूटरेट की फ़ुटकर कीमत लगभग 4,918 रुपये है जब कि पिटीशनर स्कीम के प्रारम्भ में समूह के सदस्यों से 18,500 रुपये संगृहीत करता है और तत्पश्चात उन सदस्यों को छोड़ कर जो मासिक लाटरियों में भाग्यशाली नम्बर के विजयी होते हैं, प्रत्येक मास 180 रुपये प्राप्त करता है। पिटीशनर की ओर से यह दलील दी गई कि उसके द्वारा चलाई गई यह स्कीम केन्द्रीय अधिनियम में यथा परिभाषित प्राइज चिट नहीं है। उसने यह दलील दी कि चूंकि इस स्कीम को राज्य अधिनियम के अधीन कलक्टर द्वारा लाटरी के रूप में अनुज्ञप्ति प्राप्त हो चुकी है, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि यह स्कीम केन्द्रीय अधिनियम के उल्लंघन में होने के कारण अवैध है क्योंकि लाटरी का विषय विनिर्दिष्ट रूप से राज्य अधिनियम के अन्तर्गत आता है। इसके अतिरिक्त पिटीशनर ने यह दलील भी प्रस्तुत की कि कलेक्टर को पिटीशनर द्वारा सदस्यों से संगृहीत की गई रकम का प्रतिदाय करने का निदेश देने की अधिकारिता नहीं है। प्रस्तुत मामले में विचारार्थ और अवधारण के लिए प्रश्न यह है कि क्या पिटीशनर द्वारा चलाई जाने वाली स्कीम ऐसी प्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चिट स्कीम है जो प्राइज चिट्स एण्ड मनी सरकुलेशन स्कीम (बैंनिंग) ऐक्ट, 1978 के अधीन प्रतिषिद्ध है और क्या कलकटर को स्कीम के प्रोन्नायक द्वारा किए गये संग्रहणों का स्कीम के सदस्यों को प्रतिदाय करने का निदेश देने की उस समय अधिकारिता है जब कि स्कीम को चलाने की अनज्ञप्ति दे दी गई हो ।

अभिनिर्धारित ---पिटीशन भागतः मंजूर किया गया ।

पिटीशनर प्रोन्नायक के रूप में 100 सदस्यों के समूह से प्रत्येक सदस्य से 5 रुपये सदस्यता फीस और 180 रुपये अभिदाय के रूप में प्रतिमास संगृहीत करता है और इस प्रकार संगृहीत किये गये धन को लाट या ड्रा द्वारा अवधारित समूह में से किसी सदस्य को 30 मास के लिये प्रत्येक मास इनाम के रूप में स्कूटरेट देने में प्रयोग करता है। यह स्कीम ऐसी पारम्परिक चिट स्कीम नहीं है जो प्राइज चिट की परिभाषा द्वारा स्वीकार की गई है। पिटीशनर की स्कीम पारम्परिक चिट स्कीम नहीं है। पारम्परिक चिट की दशा में इनाम धन के तौर पर होता है न कि वस्तु के रूप में जैसा कि इस मामले में है। इसके अतिरिक्त इनाम सभी अभिदायकों द्वारा प्रत्येक किस्त पर संदत्त या संदेय कुल रकम होती है जिसमें से धारा 2(क) के स्पष्टीकरण में जो "प्राइज अमाउण्ट" को परिभाषित करती है, अनुज्ञात कटौतियां (i) और (ii) घटा दी जाती हैं । पिटीशनर की स्कीम के अन्तर्गत स्कूटरेट का दिया जाना स्पष्टीकरण में यथा अन्तर्विष्ट प्राइज अमाउण्ट की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आता, अतः यह स्कीम पारम्परिक चिट की कोटि में नहीं आ सकती । चूंकि पिटीशनर की स्कीम अधिनियम की धारा 2(ङ) में यथा परिभाषित प्राइज चिट है अतः इसका चलाया जाना धारा 3 के उल्लंघन में है जो स्पष्ट रूप से अवैध है। (पैरा 4)

पिटीशनर की स्कीम में सदस्यों द्वारा टिकट का क्रय नहीं किया जाता । कोई व्यक्ति 5 रुपये की सदस्यता फीस देकर सदस्य बनने का हकदार होता है किन्तु मात्र सदस्यता ही उसे इनाम के अवसरों में भाग लेने के लिये हकदार नहीं बनाती। चाहे इस बात की उपधारणा कर ली जाए कि सदस्यता प्रारूप एक ऐसी दस्तावेज है जो टिकट की परिभाषा के अन्तर्गत आती है। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है इनाम के अवसरों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में भाग लेने के लिये हकदार बनने हेतु सदस्य को 180 रुपये का मासि अभिदान करना होता है। अत: न्यायालय को राय में स्कीम की यह विशेष इसे राज्य अधिनियम में दी गई लाटरी की परिभाषा से बाहर कर है लेकिन इस बात की उपधारणा करते हुए भी कि यह स्की लाटरी की परिभाषा के अन्तर्गत आ सकती है फिर। पिटीशनर को केन्द्रीय अधिनियम में यथा परिभाषित इनामी चि होने के रूप में अनुज्ञात नहीं किया जा सकता क्योंकि वह उस अधिनियम के उपबंधों के अतिलंघन में नहीं चला सकता। इना चिट वास्तव में लाटरी का ही एक रूप है। अनुच्छेद 246 के ख (3) के अधीन राज्य विधानमंडल की शक्ति का उसी अनुच्छेद के ख (1) और (2) के अधीन होने का प्रभाव यह है कि यदि सूची 1 अथ सूची 3 में प्रगणित विषयों में से किसी विषय की बाबत संसद् द्वारा बन गई विधि और सूची 2 में के विषयों में से किसी विषय की बाबत रा विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधि के बीच दोनों के विधिमान्य होते हु भी विरोध है, तो संसद् द्वारा बनाई गई विधि अभिभावी होगी। पिटीशन की स्कीम केन्द्रीय अधिनियम के अधीन इनामी चिट है न कि राज्य अधिनि के अधीन लाटरी। इस निष्कर्ष के आधार पर विरोध का कोई प्रश्न उद्भ नहीं होता। किन्तु इस बात की उपधारणा करते हुए कि पिटीशनर स्कीम राज्य अधिनियम में यथा परिभाषित लाटरी भी है, केन्द्रीय अधिनि में अन्तर्विष्ट प्रतिबंध अभिभावी होगा तथा राज्य अधिनियम के अधी अनुदत्त अनुज्ञप्ति उस प्रतिबंध को नहीं छीन सकती क्योंकि उल्लिखि सिद्धांत के आधार पर विरोध की दशा में केन्द्रीय अधिनियम रा अधिनियम पर अभिभावी होगा। (पैरा 5)

यदि कलकटर ने मध्य प्रदेश लाटरी (नियंत्रण तथा कर) अधिनिय 1973 की धारा 9 के अधीन स्कीम की अनुज्ञप्ति को इस आधार प रद्द कर दिया है कि स्कीम राज्य अधिनियम के अधी लाटरी नहीं है बल्कि केन्द्रीय अधिनियम के अधीन प्राइज चिट है जिस केन्द्रीय अधिनियम की धारा 3 का अतिलंघन होता है तो ऐसी स्थि में उस स्कीम के, जो केन्द्रीय अधिनियम के अतिलंघन में है, प्रोन्नायक द्वा किये गये संग्रहण का प्रतिदाय करने का निदेश देने की कलकटर को कोई शक्ति नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पैरा

[1982] ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 949 : पश्चिम बंगाल राज्य बनाम स्वपन कुमार (State of W. B. *Vs.* Swapan Kumar); 6

[1981] ए० आई० आर० 1981 एस० सी० 504 : श्रीनिवास एण्टर प्राइजेज बनाम भारत संघ (Srinivasa Enterprises *Vs.* Union of India); 5

[1980] 1980 एम० पी० एल० जे० 8 (पूर्ण न्यायपीठ) पृ० 17 18: एम० पी० एस० आर० टी० कारपोरेशन बनाम हीरालाल (M. P. S. R. T. Corporation *Vs.* Heeralal); 5

[1975] ए० आई० आर० 1975 आन्ध्र प्रदेश 50: एल० बी० पैराडाइज लाटरी सैण्टर बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य (L. B. Paradise Lottery Centre *Vs.* State of Andhra Pradesh); 6

[1956] ए० आई० आर० 1956 मुम्बई 1 : मुम्बई राज्य बनाम आर० एम० डी० चमरबगवाला (State of Bombay *Vs.* R. M. D. Chamarbaugwalla); 6

[1927] ए० आई० आर० 1927 मद्रास 583: नारायण आयंगर बनाम वल्लाचामी अम्बलम (Narayana Aiyangar *Vs.* Vallachami Ambalam); 4

निर्दिष्ट किए गए।

आरम्भिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 1982 का प्रकीर्ण पिटीशन सं० 1150. संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन पिटीशन।

पिटीशनर की ओर से ... श्री० के० पी० मुंशी.

प्रत्यर्थियों की ओर से ... श्री एम० वी० तामस्कर, सरकारी अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय मु० न्या० जी० पी० सिंह ने दिया।

मु० न्या० सिंह :

पिटीशनर एक भागीदारी फर्म है। पिटीशनर ने "रमोना स्कूटरेट सेल प्रोमोशन स्कीम" नाम से ज्ञात एक स्कीम चलाई। पिटीशनर ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुज्ञप्ति के लिए आवेदन किया और मध्य प्रदेश लाटरी (नियंत्रण तथा कर) अधिनियम, 1973 की धारा 6 और 7 के अधीन कलक्टर, छिन्दवाड़ा से 1 दिसम्बर, 1981 की तारीख वाली अनुज्ञप्ति सं० 1 पी० एल० सी० डब्लू० ए० अभिप्राप्त की। छिन्दवाड़ा के कलक्टर ने 24 अगस्त, 1982 के आदेश (उपाबंध-डी) द्वारा अनुज्ञप्ति को इस आधार पर रद्द कर दिया कि, जैसा कि स्टेट लाटरीज निदेशक द्वारा निदेशित किया गया है, पिटीशनर द्वारा चलाई जाने वाली स्कीम लाटरी नहीं है बल्कि इनामी चिट है जो प्राइज चिट्स एण्ड मनी सरकूलेशन स्कीम्स (बैनिंग) ऐक्ट, 1978 के अन्तर्गत आती है। अक्तूबर, 1982 में कलक्टर ने एक अन्य आदेश (उपाबंध-ई) पिटीशनर को यह निदेश देते हुए जारी किया कि वह स्कीम के सदस्यों से उसके द्वारा संगृहीत की गई रकमों का प्रतिदाय कर दे। पिटीशनर ने इन आदेशों (उपाबंध-डी और ई) को संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस पिटीशन द्वारा चुनौती दी है।

2. पिटीशनर द्वारा चलाई गई स्कीम की निम्नलिखित विशेषताएं हैं। स्कीम का सदस्य बनने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सदस्यता फीस के रूप में 5 रुपये का संदाय करना होगा। स्कीम के एक समूह में 100 सदस्य होते है। समूह के प्रत्येक सदस्य को 180/- रुपए प्रतिमास का अभिदाय करना होता है। समूह बन जाने के पश्चात सदस्यों की उपस्थिति में प्रत्येक मास एक भाग्यशाली नम्बर निकाला जाता है। जिस व्यक्ति का नम्बर भाग्यशाली होता है वह एक रमोना स्कूटरेट प्राप्त करता है। ऐसे भाग्यशाली सदस्य को न तो कोई मासिक संदाय करना होता है और न ही इसके पश्चात मासिक रूप से निकाले जाने वाले भाग्यशाली नम्बर में वह भाग लेने का हकदार होता है। स्कीम 30 मास की अवधि तक चली है। वे सदस्य जो किसी भी ड्रा में विजयी नहीं होते तथा इस सम्पूर्ण अवधि में मासिक संदाय करते रहते हैं, तत्पश्चात एक रमोना स्कूटरेट प्राप्त करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि इस स्कीम को चलाने वाला अर्थात पिटीशनर स्कीम के प्रारम्भ में एक समूह के सदस्यों से 18,500 रुपये संगृहीत करता है और तत्पश्चात वह प्रत्येक सदस्य से 30 मास तक उन सदस्यों को छोड़ कर जो मासिक लाटरियों में भाग्यशाली संख्या के विजयी होते हैं, प्रत्येक मास 180 रुपये प्राप्त करता है। प्रथम लाटरी में ही भाग्यशाली नम्बर प्राप्त करने वाला व्यक्ति लगभग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

185 रुपये में स्कूटरेट प्राप्त कर लेता है। जो सदस्य दूसरी लाटरी में स्कूटरेट प्राप्त करता है उसे 365 रुपये देने होते हैं और इसी प्रकार आगे भी इस स्कूटरेट की फुटकर कीमत लगभग 4,918 रुपये है।

3. राज्य अधिनियम लाटरी (नियंत्रण तथा कर) अधिनियम, 1973 की धारा 2 (1) (क) में "लाटरी" को परिभाषित किया गया है, जिससे "टिकट खरीदने वाले व्यक्तियों के लिए इनाम के अवसरों में भाग लेने हेतु लाटरी या चांस द्वारा इनामों के वितरण की स्कीम" अभिप्रेत है। धारा 2(1) (च) में "टिकट" को परिभाषित किया है जिससे "किसी लाटरी या प्रस्थापित लाटरी की बाबत ऐसा दस्तावेज अभिप्रेत है जो लाटरी के अवसरों में भाग लेने के लिए किसी व्यक्ति के दावे का साक्ष्य है।" अधिनियम की धारा 3 में केन्द्रीय सरकार और मध्य प्रदेश राज्य सरकार द्वारा संगठित लाटरियों को छोड़ कर सभी लाटरियों को विधि विरुद्ध घोषित किया गया है। धारा 6 में प्राइवेट लाटरियों को अनुज्ञप्तियां प्रदान करने का उपबंध किया गया है। धारा 6 (1) में यह उपबंध किया गया है कि प्राइवेट लाटरी को तब तक विधि-विरुद्ध लाटरी समझा जाएगा जब तक कि उसके चलाने वाले ने उस लाटरी की बाबत अनुज्ञप्ति प्राप्त न कर ली हो। धारा 7 के अधीन कलक्टर अनुज्ञापन प्राधिकारी है। धारा 9 में अनुज्ञप्ति के निलम्बन या रद्द करण के लिए उपबंध किया गया है। मध्य प्रदेश विधानमण्डल ने भी मध्य प्रदेश धन परिचालन स्कीम (प्रतिषेध) अधिनियम, 1975 (1975 का अधिनियम सं० 19) अधिनियमित किया है जिसे केन्द्रीय अधिनियम, प्राइज चिट्स और मनी सरकुलेशन स्कीम्स (बैनिंग) ऐक्ट, 1978 द्वारा निरसित कर दिया गया है। अधिनियम की धारा 3 में यह उपबंध किया गया है कि कोई भी व्यक्ति प्राइज चिट या धन परिचालन स्कीम को न तो चलाएगा और न ही उसका संचालन करेगा और न ही वह ऐसी किसी चिट या स्कीम में सदस्य के रूप में किसी व्यक्ति का नामांकन करेगा या इसमें अन्यथा भाग लेगा या ऐसी किसी चिट या स्कीम के अनुसरण में कोई धन प्राप्त करेगा या भेजेगा। "धन परिचालन स्कीम" "और प्राइज चिट" की परिभाषाएं क्रमशः धारा 2 (ग) और 2(ङ) में अन्तर्विष्ट हैं। यहां हमारा सम्बंध धन परिचालन स्कीम से नहीं है अतः धारा 2 (ग) में की परिभाषा को उद्धृत करना आवश्यक नहीं है। इस मामले के लिए सुसंगत परिभाषा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"प्राइज चिट" की परिभाषा है जो धारा 2(ङ) में अन्तर्विष्ट है। यह परिभाषा निम्नलिखित है :—

*"2(ङ). 'प्राइज चिट' किसी भी नाम से ज्ञात ऐसा कोई संव्यवहार या ठहराव है जिसके अन्तर्गत कोई व्यक्ति प्रोन्नायक, फोरमैन, अभिकर्ता या किसी अन्य हैसियत में अभिदाय या अभिदाय के तौर पर एकमुश्त या किस्तों में या यूनिटों, प्रमाण-पत्र या अन्य लिखतों के विक्रय द्वारा या किसी अन्य तरीके से या सदस्यता फीस या प्रवेश फीस या सेवा प्रभार के रूप में या किसी बचत, पारस्परिक फायदे, मितव्ययिता या किसी नाम से भी ज्ञात किसी स्कीम या ठहराव की बावत धन संगृहीत करता है और इस प्रकार संगृहीत धन का या इसके किसी भाग का या विनियोग से प्रोद्भूत आय का या निम्नलिखित सभी या किसी प्रयोजन के लिए ऐसे धन का अन्य प्रकार से उपयोग करता है अर्थात :—

(i) लाटरी या ड्रा द्वारा या किसी अन्य प्रकार से यथा अवधारित विनिर्दिष्ट अभिदायकों को पाक्षिक या अन्यथा नकद या वस्तु के रूप में इनाम या उपहार देना या प्रदान करना चाहे

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है- -

"2(e). 'Prize chit' includes any transactions or arrangement by whatever name called under which a person collects whether as a promoter, foreman, agent or in any other capacity, monies in one lump sum or in instalments by way of contributions or subscriptions or by sale of units, certificates or other instruments or in any other manner or as membership fees or admission fees or service charges to or in respect of any savings, mutual benefit, thrift, or any scheme or arrangement by whatever name called, and utilises the monies so collected or any part thereof or the income accruing from investment or other use of such monies for all or any of the following purposes, namely:—

(i) giving or awarding periodically or otherwise to a specified number of subscribers as determined by lot, draw or in any other manner, prizes or gifts in cash or in kind, whether or not the recipient of the prize or gift is under

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इनाम या उपहार का प्राप्तिकर्ता ऐसी स्कीम या ठहराव की बाबत कोई आगे और संदाय करने के दायित्वाधीन हो या न हो ;

(ii) अभिदायकों को या उनमें से ऐसे किसी व्यक्ति को जिसने कोई इनाम या उपहार न जीता हो, स्कीम या ठहराव के पर्यवसान पर या उसमें तय की गई अवधि के पर्यवसान पर या के पश्चात बोनस प्रीमियम, ब्याज या किसी भी नाम से ज्ञात अन्य फायदे सहित अभिदाय या अभिदान या संगृहीत अन्य धन का प्रतिदाय किया जाना आता है किन्तु इसके अन्तर्गत परम्परागत चिट नहीं है :"

परम्परागत चिट इनामी चिट की परिभाषा से बाह्य है। परम्परागत चिट को धारा 2(क) में निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है :—

**"2(क) परम्परागत चिट से चिट, चिट फण्ड, कुरी नाम से या किसी अन्य नाम से पुकारा जाने वाला ऐसा संव्यवहार अभिप्रेत है जिसके द्वारा या अधीन चिट का संचालन करने के लिए दायित्वाधीन व्यक्ति विनिर्दिष्ट संख्या के व्यक्तियों के साथ यह करार करता है कि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति एक निश्चित अवधि के लिए पाक्षिक किस्तों के तौर पर धन की निश्चित राशि या

---

a liability to make any further payment in respect of such scheme or arrangement;

(ii) refunding to the subscribers or such of them as have not won any prize or gift, the whole or part of the subscriptions, contributions or other monies collected, with or without any bonus, premium, interest or other advantage by whatever name called, on the termination of the scheme or arrangement, or on or after the expiry of the period stipulated therein, but does not include a conventional chit;"

*"2(a). Conventional chit means a transaction whether called chit, chit fund, kuri or by any other name by or under which a person responsible for the conduct of the chit enters into an agreement with a specified number of persons that every one of them shall subscribe a certain sum of money (or certain quantity of grain instead) by way of periodical instalments for a definite period and that each

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनाज की निश्चित मात्रा) का अभिदाय करेगा और ऐसा प्रत्येक अभिदाता लाटरी या नीलामी या निविदा या चिट करार में यथा उपबंधित किसी अन्य रीति द्वारा अपनी बारी आने पर इनामी रकम प्राप्त करने का हकदार होगा।

स्पष्टीकरण--इस खण्ड में इनामी रकम से किसी भी नाम से पुकारी जाने वाली ऐसी रकम अभिप्रेत है जो सभी अभिदाताओं द्वारा प्रत्येक किस्तपर संदत्त या संदेय कुल रकम में से निम्न कटौती करने के पश्चात प्राप्त हो;

(i) प्रोन्नायक या फोरमैन या अभिकर्ता द्वारा सेवा प्रभार के रूप में प्रभारित कमीशन; और

(ii) अभिदाता द्वारा उसे संदत्त किए जाने वाले अतिशेष के प्रतिफलस्वरूप प्रत्येक किस्त के कुल अभिदान में से ऐसी राशि जिसे छोड़ने का अभिदाता करार करता है।"

4. सर्वप्रथम पिटीशनर के विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि पिटीशनर द्वारा चलाई गई स्कीम सैण्ट्रल ऐक्ट में यथा परिभाषित प्राइज चिट नहीं है। हम इस बात से सहमत नहीं हैं। हमने स्कीम की विशेषताओं को उद्धृत किया है। हमने केन्द्रीय अधिनियम की धारा 2(ङ) में अन्तर्विष्ट "प्राइज चिट" की परिभाषा को भी उद्धृत किया है। परिभाषा के उन भागों को, जो प्रत्यक्ष रूप से लागू नहीं हैं, छोड़ कर धारा 2 (ङ) में यथा परिभाषित प्राइज चिट में ऐसा ठहराव आता है

---

such subscriber shall, in his turn, as determined by lot or by auction or by tender or in such other manner as may be provided for in the chit agreement, be entitled to a prize amount.

Explanation:—In this clause prize amount shall mean the amount, by whatever name called, arrived at by deducting from out of the total amount paid or payable at each instalment by all the subscribers.

(i) the commission charged as service charges as a promoter or a foreman or an agent; and

(ii) any sum which a subscriber agrees to forego, from out of the total subscriptions of each instalment, in consideration of the balance being paid to him."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिसके अधीन कोई व्यक्ति स्कीम के प्रोन्नायक के रूप में अभिदाय या अभिदानों के तौर पर अथवा किसी स्कीम के संबंध में सदस्यता फीस के रूप में धन संगृहीत करता है और इस प्रकार संगृहीत किए गए धन का लाटरी, ड्रा या किसी अन्य रीति में यथा अवधारित नकद या वस्तु के रूप में इनामों को विनिर्दिष्ट संख्या के अभिदायकों को पाक्षिक रूप से देता है। पिटीशनर द्वारा चलाई गई स्कीम इस परिभाषा के अन्तर्गत आती है। पिटीशनर प्रोन्नायक के रूप में 100 सदस्यों के समूह से प्रत्येक सदस्य से 5 रुपये सदस्यता फीस और 180 रुपए अभिदाय के रूप में प्रतिमास संगृहीत करता है और इस प्रकार संगृहीत किए गए धन को लाट या ड्रा द्वारा अवधारित समूह में से किसी सदस्य को 30 मास के लिए प्रत्येक मास इनाम के रूप में स्कूटरेट देने में प्रयोग करता है। यह स्कीम ऐसी पारम्परिक चिट स्कीम नहीं है जो प्राइज चिट की परिभाषा द्वारा स्वीकार की गई है। पारम्परिक चिट की परिभाषा जैसी कि यह धारा 2 (क) में अन्तर्विष्ट है, ऊपर उद्धृत की गई है। यथा परिभाषित पारम्परिक चिट **नारायण आयंगर** बनाम **वल्लाचामी अम्बलम्**[1] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा बताई गई प्रकृति की है। पिटीशनर की स्कीम पारम्परिक चिट स्कीम नहीं है। पारम्परिक चिट की दशा में इनाम धन के तौर पर होता है न कि किस्म के तौर पर, जैसा कि इस मामले में है। इसके अतिरिक्त इनाम सभी अभिदायकों द्वारा प्रत्येक किस्त पर संदत्त या संदेय कुल रकम होती है जिसमें से धारा 2 (क) के स्पष्टीकरण में जो "प्राइज अमाउण्ट" को परिभाषित करती हैं, अनुज्ञात कटौतियां (i) और (ii) घटा दी जाती हैं। पिटीशनर की स्कीम के अन्तर्गत स्कूटरेट का दिया जाना स्पष्टीकरण में यथा अन्तर्विष्ट प्राइज अमाउण्ट की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आता अतः यह स्कीम पारम्परिक चिट की कोटि में नहीं आ सकती। चूंकि पिटीशनर की स्कीम अधिनियम की धारा 2 (ङ) में यथा परिभाषित प्राइज चिट है, अत: इसका चलाया जाना धारा 3 के उल्लंघन में है जो स्पष्ट रूप से अवैध है।

5. इसके पश्चात पिटीशनर की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि चूंकि स्कीम को राज्य अधिनियम

---

1 ए० आई० आर० 1927 मद्रास 583.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के अधीन कलक्टर द्वारा लाटरी के रूप में अनुज्ञप्ति प्राप्त हो चुकी थी अतः यह नहीं कहा जा सकता कि यह केन्द्रीय अधिनियम के उल्लंघन में होने के कारण अवैध है क्योंकि लाटरी का विषय विनिर्दिष्ट रूप से राज्य अधिनियम के अन्तर्गत आता है। यह सत्य है कि पिटीशनर को राज्य अधिनियम के अधीन कलक्टर से 1981 में स्कीम को चलाने से पूर्व अनुज्ञप्ति प्राप्त हो गई थी किन्तु इससे आवश्यक रूप से यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि यह स्कीम अधिनियम में यथा परिभाषित लाटरी है। वस्तुतः कलक्टर को स्टेट लाटरीज के निदेशक द्वारा अनुज्ञप्ति को इस आधार पर रद्द करने के लिए निदेश दिया गया था कि यह स्कीम केन्द्रीय अधिनियम के अधीन इनामी चिट है न कि लाटरी। किन्तु इन नजीरों में व्यक्त की गई राय निश्चायक नहीं है अतः हमें यह देखना है कि क्या पिटीशनर की स्कीम लाटरी है और यदि ऐसा है तो इसका क्या प्रभाव है। हम यह बात पहले ही कह चुके हैं कि पिटीशनर की स्कीम केन्द्रीय अधिनियम में यथा परिभाषित इनामी चिट है। हम राज्य अधिनियम में यथा अन्तर्विष्ट लाटरी और टिकट की परिभाषाओं को भी उद्धृत कर चुके हैं। लाटरी की परिभाषा में इस बात पर जोर दिया गया है कि यह एक ऐसी स्कीम है जिसमें व्यक्ति टिकट के क्रय द्वारा इनाम के अवसरों में भाग लेते हैं। टिकट की परिभाषा के अन्तर्गत ऐसी कोई दस्तावेज है जो लाटरी के अवसरों में भाग लेने के लिए व्यक्ति के दावे का साक्ष्य होता है। अब पिटीशनर की स्कीम में सदस्यों द्वारा टिकट का क्रय नहीं किया जाता कोई व्यक्ति 5 रुपये की सदस्यता फीस देकर सदस्य बनने का हकदार होता है किन्तु मात्र सदस्यता ही उसे इनाम के अवसरों में भाग लेने के लिए हकदार नहीं बनाती। चाहे हम इस बात की उपधारणा कर लें कि सदस्यता प्ररूप एक ऐसी दस्तावेज है जो टिकट की परिभाषा के अन्तर्गत आती है। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, इनाम के अवसरों में भाग लेने के लिए हकदार बनने हेतु सदस्य को 180 रुपये का मासिक अभिदान करना होता है। हमारी राय में स्कीम की यह विशेषता इसे राज्य अधिनियम में दी गई लाटरी की परिभाषा से बाहर कर देती है। लेकिन इस बात की उपधारणा करते हुए भी कि यह स्कीम लाटरी की परिभाषा के अन्तर्गत आ सकती है फिर भी पिटीशनर को केन्द्रीय अधिनियम में यथा परिभाषित इनामी चिट होने के रूप में अनुज्ञात नहीं किया जा सकता क्योंकि वह इसे उस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिनियम के उपबंधों के अतिलंघन में नहीं चला सकता इनामी चिट वास्तव में लाटरी का ही एक रूप है। केन्द्रीय अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन में ऐसा कहा गया है। इसमें प्रयुक्त शब्द "इनामी चिट के अन्तर्गत प्रत्येक प्रकार का ऐसा ठहराव है जिसके अधीन अभिदान, अभिदाय आदि के तौर पर धन संगृहीत किया जाता है और इनाम, (गिफ्ट्स) दी जाती है। इनामी चिट वास्तव में लाटरी का ही एक रूप है।" केन्द्रीय अधिनियम सूची 3 की प्रविष्टि 7 के अधीन अधिनियमित किया गया था और इसकी विधिमान्यता को उच्चतम न्यायालय ने श्रीनिवास एण्टरप्राइजेज बनाम भारत संघ[1] वाले मामले में अनुमोदित किया था यद्यपि इसका लाटरियों पर, जो अनुसूची 2 की प्रविष्टि 34 के अन्तर्गत आने वाला विषय है, आनुषंगिक प्रभाग है। उस मामले में उच्चतम न्यायालय ने भारत संघ द्वारा दी गई इस दलील को स्वीकार किया था कि इस अधिनियम के अधिनियमन द्वारा "संसद कतिपय प्रकार की संविदाओं को निर्बन्धित और प्रतिषिद्ध करना चाहती है क्योंकि इनमें जुए और लाटरी के अपायकर तत्व सन्निहित होते हैं तथा लाटरियों पर इसका आनुषंगिक प्रभाव अधिनियम की शक्तिमत्ता पर प्रभाव नहीं डालता (पृ० 509—510)"। सूची 3 में के विषयों में से किसी विषय की बाबत विधियां बनाने की संसद की शक्ति जो संविधान के अनुच्छेद 246 के खण्ड (2) द्वारा प्रदत्त की गई है, "खण्ड (3) में किसी बात के अन्तर्विष्ट होते हुए भी" है। जो राज्य विधानमण्डल को सूची 2 में के विषयों में से किसी विषय की बाबत विधियां बनाने के लिए अनन्य रूप से शक्ति प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त सूची 2 में प्रगणित विषयों में से किसी विषय पर विधियां बनाने के लिए राज्य विधानमण्डल की शक्ति, जैसी कि यह अनुच्छेद 246 के खण्ड (2) द्वारा प्रदत्त की गई है, उसी अनुच्छेद के खण्ड (1) और (2) के अधीन है जिसके अधीन संसद को सूची में प्रगणित विषयों में से किसी विषय की बाबत विधियां बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है तथा सूची 3 में प्रगणित विषयों में से किसी विषय की बाबत विधियां बनाने की समवर्ती शक्ति प्राप्त है। अनुच्छेद 246 के खण्ड (3) के अधीन राज्य विधानमण्डल की शक्ति का उसी अनुच्छेद के खण्ड (1) और (2) के अधीन होने का प्रभाव यह है कि यदि सूची अथवा सूची 3 में प्रगणित विषयों में से किसी विषय की बाबत संसद

1 ए० आई० आर० 1981 एस० सी० 504.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वारा बनाई गई विधि और सूची 2 में के विषयों में से किसी विषय की बाबत राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाई गई विधि के बीच दोनों के विधिमान्य होते हुए भी विरोध है तो संसद द्वारा बनाई गई विधि अभिभावी होगी। इस प्रकार का विरोध सार और तत्व के सिद्धान्त के कारण सम्भव हो सकता है जो प्रतिद्वन्दी विधानमण्डल के अधिकार क्षेत्र में आनुषंगिक अतिक्रमण अनुज्ञात करता है। (एम० पी० एस० आर० टी० **कारपोरेशन बनाम हीरालाल**[1]) उच्चतम न्यायालय ने केन्द्रीय अधिनियम को इस तथ्य के बावजूद भी विधिमान्य माना कि यह लाटरी के विषय में, जो अनुसूची 2 के अन्तर्गत आ जाता है, आनुषंगिक अतिक्रमण करता है। हम यह पहले ही कह चुके है कि पिटीशनर की स्कीम केन्द्रीय अधिनियम के अधीन इनामी चिट है न कि राज्य अधिनियम के अधीन लाटरी है। इस निष्कर्ष के आधार पर विरोध का कोई प्रश्न उद्भूत नहीं होता। किन्तु इस बात की उपधारणा करते हुए कि पिटीशनर की स्कीम राज्य अधिनियम में यथा परिभाषित लाटरी भी है, केन्द्रीय अधिनियम में अन्तर्विष्ट प्रतिबंध अभिभावी होगा तथा राज्य अधिनियम के अधीन अनुदत्त अनुज्ञप्ति उस प्रतिबंध को नहीं छीन सकती क्योंकि उल्लिखित सिद्धान्त के आधार पर विरोध की दशा में केन्द्रीय अधिनियम राज्य अधिनियम पर अभिभावी होगा।

6. पिटीशनर की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान काउन्सेल ने **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **स्वपन कुमार**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलम्ब लिया। यह एक ऐसा मामला है जो इनामी चिट से संबंधित नहीं था और इस मामले में इनामी चिट की परिभाषा पर भी विचार नहीं किया गया था। इस मामले में प्रश्न यह था कि क्या प्रत्यर्थियों ने केन्द्रीय अधिनियम की धारा 2 (ग) में यथा परिभाषित धन परिचालन स्कीम को उस अधिनियम के उपबंधों के अतिलंघन में चलाया था। प्रस्तुत मामले में हमारा संबंध किसी धन परिचालन स्कीम से नहीं है बल्कि इनामी चिट है। अतः **पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम स्वपन कुमार**[2] वाले मामले में दिया गया विनिश्चय पिटीशनर के लिए

1 1980 एम० पी० एल० जे० 8 (पूर्ण न्यायपीठ) पृ० 17, 18.

2 ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 949

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सहायक नहीं है। विद्वान काउन्सेल ने इस प्रस्थापना के लिए कि भारत सरकार या राज्य सरकार द्वारा संगठित की गई लाटरियों को छोड़ कर सभी लाटरियों के विषय सूची 2 की प्रविष्टि 34 के अन्तर्गत राज्य विधानमण्डल की सक्षमता के भीतर आते हैं **मुम्बई राज्य बनाम आर० एम० डी० चमरबगवाला**[1] और **एल० बी० पैराडाइज लाटरी सैण्टर** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य**[2] वाले मामलों का अवलम्ब लिया। किन्तु यह प्रस्थापना पिटीशनर के लिए सहायक नहीं है क्योंकि जैसा कि हमने पहले ही स्पष्ट कर दिया है, पिटीशनर की स्कीम लाटरी नहीं है और यदि यह लाटरी है भी, तो भी इनामी चिट होने के कारण यह केन्द्रीय अधिनियम के प्रतिबंध के भीतर आती है अतः केन्द्रीय अधिनियम राज्य अधिनियम पर अभिभावी होगा। हमारे द्वारा अपनाया गया यह मत कि विरोध की दशा में केन्द्रीय अधिनियम राज्य अधिनियम पर अभिभावी होगा, न्या० चिन्नप्पा रेड्डी जैसे कि वे उस समय थे, आन्ध्र प्रदेश वाले मामले में व्यक्त किए गए इस मत से समर्थित है कि "सूची में प्रगणित विषयों की बाबत विधियां बनाने के लिए राज्य विधानमण्डल की अन्य शक्ति को सूची 1 और सूची 3 में प्रगणित विषयों की बाबत विधियां बनाने के लिए संसद की शक्ति के अधीन किया गया है।"

7. इसके पश्चात पिटीशनर की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि राज्य अधिनियम के अधीन पहले ही मंजूर की गई अनुज्ञप्ति को रद्द करने में कलक्टर ने नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुसरण नहीं किया है और इस प्रकार रद्द किया जाना राज्य अधिनियम की धारा 9 के खण्डों में से किसी भी खण्ड के अन्तर्गत नहीं आता। अब नैसर्गिक न्याय के संबंध में यह है कि इस बात में कोई संदेह नहीं है कि कलक्टर द्वारा पहले ही मंजूर की गई अनुज्ञप्ति को रद्द करने में उसे पिटीशन की सुनवाई करनी चाहिए किन्तु अब चूंकि हम इस प्रश्न पर कि क्या पिटीशनर की स्कीम केन्द्रीय अधिनियम द्वारा अधिनियमित प्रतिबंध की परिधि के अन्तर्गत आती है या नहीं पूर्ण रूप से सुनवाई कर चुके हैं, अतः पिटीशनर को और अवसर देने का कोई प्रश्न नहीं उठता। इस तर्क की बाबत कि राज्य अधिनियम की धारा 9 लागू नहीं होती यह स्पष्ट है कि यह ऐसा ही है क्योंकि अनुज्ञप्ति को इस आधार

1 ए० आई० आर 1956 बम्बई 1.
2 ए० आई० आर० 1975 आन्ध्र प्रदेश 50.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.
पर रद्द किया गया है कि इसे किसी भी प्रकार मंजूर नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि कलक्टर को ऐसी किसी लाटरी की बाबत अनुज्ञप्ति मंजूर करने की अधिकारिता नहीं है जो इनामी चिट होने के कारण केन्द्रीय अधिनियम की रिष्टि के अन्तर्गत आती है क्योंकि केन्द्रीय अधिनियम के अधीन प्रतिबंध कलक्टर द्वारा मंजूर की गई अनुज्ञप्ति द्वारा हटाया नहीं जा सकता। पिटीशनर के पक्ष में अनुज्ञप्ति मंजूर करने वाला प्रारम्भिक आदेश स्वयं ही अधिकारिता से परे है और कलक्टर ने निदेशक की सलाह पर कार्य करते हुए केवल अनुज्ञप्ति का जिसे उसे मंजूर नहीं करनी चाहिए थी प्रतिसंहरण किया है। ऐसी स्थिति में रद्दकरण की विधिमान्यता स्वयं स्पष्ट है और इस पर आक्षेप नहीं उठाया जा सकता।

8. अन्त में यह दलील दी गई कि कलक्टर को पिटीशनर द्वारा सदस्यों से संगृहीत की गई रकम का प्रतिदाय करने के लिए निदेश नहीं देना चाहिए था। विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि कलक्टर को इस प्रकार की शक्ति नहीं है। हम इस तर्क को स्वीकार करने के लिए बाध्य हैं। पिटीशनर की स्कीम राज्य अधिनियम से बाहर है। सदस्यों से अभिदाय प्राप्त करने और स्कीम चलाने में पिटीशनर ने केन्द्रीय अधिनियम का उल्लंघन किया है। हमें इस बात से अवगत नहीं कराया गया है कि केन्द्रीय अधिनियम के अधीन कलक्टर को इस बात की शक्ति है कि वह ऐसी किसी स्कीम के जो अधिनियम के अतिलंघन में ही चलाने वाले द्वारा किए गए संग्रहणों का प्रतिदाय करने का निदेश दे सके।

9. यह पिटीशन भागतः मंजूर किया जाता है। हम अक्तूबर, 1982 में (उपाबंध ई) जारी किए गए कलक्टर के उस आदेश को जिसके द्वारा उसने पिटीशनर को यह निदेश दिया था कि वह उसके द्वारा संगृहीत किए गए अभिदायों का प्रतिदाय करे, अभिखण्डित करते हैं। अन्य बातों के संबंध में यह पिटीशन असफल होता है और इसे खारिज किया जाता है किन्तु खर्चे की बाबत कोई आदेश नहीं दिया जाता। प्रतिभूति रकम का पिटीशनर को प्रतिदाय किया जाए।

बंसल/मि०

पिटीशन भागतः मंजूर किया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चिरंजीलाल फूलचन्द और एक अन्य बनाम घनश्याम दास शर्मा और अन्य

(Chironjilal Phulchand and another *Vs.* Ghanshyam Das Sharma and others)

तारीख 22 अप्रैल, 1983

[न्या० यू० एन० बछावत और न्या० आर० सी० श्रीवास्तव]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 आदेश 20, नियम 12 और धारा 151--न्यायालय किराएदार को बेदखल करने के लिए किए गए वाद को खारिज करते हुए वाद लाए जाने की तारीख से डिक्री दिए जाने की तारीख तक किराए की डिक्री मंजूर करने के लिए सक्षम है।

वादी-प्रत्यर्थी सं० 1 ने प्रतिवादियों के विरुद्ध मकान की कई आधारों पर बेदखली के लिए वाद फाइल किया। विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि अधिनियम के अधीन बेदखली के लिए कोई आधार साबित नहीं किया गया है अतः विचारण न्यायालय ने सभी प्रतिवादियों के विरुद्ध बेदखली और अन्तःकालीन लाभों के लिए किए गए वाद को खारिज कर दिया और जून, 1967 से 30 नवम्बर, 1969 तक किराए की बकाया और बिजली प्रभार के लिए वाद में डिक्री दे दी। इससे व्यथित होकर वादी-प्रतिवादी सं० 1 ने विचारण न्यायालय द्वारा अपने वाद के अनावश्यक रूप से खारिज किए जाने के विरुद्ध अपील फाइल की। निचले अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय को डिक्री में उपान्तरण कर दिया क्योंकि सभी अन्य बातों में विचारण न्यायालय की डिक्री को कायम रखते हुए इसने वाद की तारीख से डिक्री की तारीख तक किराए की बकाया के लिए वादी के दावे में डिक्री दे दी। दूसरे शब्दों में अन्तिम डिक्री यह है कि वादी के वाद को प्रतिवादी सं० 1 से लेकर 4 तक के विरुद्ध पूर्णतः खारिज कर दिया गया किन्तु वाद की तारीख तक किराए की बकाया तथा डिक्री की तारीख तक वाद के लम्बित रहने के दौरान उपगत किराए के लिए तथा बिजली प्रभार के लिए प्रतिवादी सं० 5 और 6, जोकि इसमें अपीलार्थी हैं, के विरुद्ध डिक्री दे दी। इस तरह अपीलार्थियों ने प्रस्तुत अपील फाइल की जिसमें विचारार्थ और अवधारणार्थ प्रश्न यह है कि क्या बेदखली के वाद में न्यायालय वाद की तारीख से डिक्री की तारीख तक बेदखली के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिए किए गए वाद को खारिज करते हुए किराए की डिक्री मंजूर करने के लिए सक्षम है। चूंकि इस प्रश्न पर दो एकल न्यायपीठों द्वारा दिए गए विनिश्चयों में भिन्नता है। अतः इस प्रश्न को इस न्यायालय के अवधारणार्थ निर्देशित किया गया है।

अभिनिर्धारित—निर्देश का उत्तर सकारात्मक दिया गया।

न्यायालय बेदखली के लिए फाइल किए गए वाद को खारिज करते हुए भी वादकालीन किराए की डिक्री पारित करने के लिए सक्षम है। (पैरा 10)

इस बात का खण्डन नहीं किया जा सकता कि किराएदार पर उस तारीख से किराए का संदाय करने की बाध्यता होती है जिस तारीख को किराया उद्भूत होता है अतः वाद के लम्बित रहने के दौरान यह बाध्यता बनी रहती है। वादी-मकानमालिक के लिए यह वादहेतुक वाद के लम्बित रहने के दौरान उस अवधि के दौरान उपगत किराए के लिए उद्भूत होता है। ऐसी स्थिति में संहिता में किसी प्रतिषेध के अभाव में और चूंकि वादी को अधिकार उद्भूत हो गया है अतः न्यायालय को अधिकारतः भी वादी के अधिकार को प्रवर्तित करना न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करना है। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के अधीन न्यायालय बेदखली के वाद को खारिज करते हुए वादकालीन किराए के लिए डिक्री मंजूर कर सकता है। यह प्रश्न कि क्यां उस किराए के लिए, जिसके लिए वादी को अधिकार है और न्यायालय को उसे मंजूर करने की अधिकारिता भी है, डिक्री इस वाद में मंजूर की जानी चाहिए या नए सिरे से वाद लाया जाना चाहिए, मात्र प्रक्रिया संबंधी प्रश्न है क्योंकि यह सुव्यवस्थित है कि जब कोई विषय किसी कानून के अभिव्यक्त उपबन्धों की परिधि के अंतर्गत नहीं आता तब न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों का न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयोग किया जा सकता है। प्रत्येक न्यायालय का गठन विधि के अनुसार न्याय करने के प्रयोजन के लिए किया जाता है और एक आवश्यक स्वाभाविक परिणाम के रूप में यह समझा जाना चाहिए कि ऐसी शक्ति उस न्यायालय में है और उसके गठन में वे सभी शक्तियां अन्तर्निहित हैं जो उचित कार्य करने के लिए और न्याय के प्रशासन के लिए गलत काम को अकृत करने के लिए आवश्यक हों। (पैरा 11)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पैरा

[1979] 1979 एम० पी० एल० जे० 719 = 1980 जे० एल० जे० 1: वी धनपाल चेट्टियार बनाम यशोधा अम्माल (V. Dhanpal Chettier *Vs.* Yasoda Ammal); 8

[1977] ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 129: गिरधारीलाल (मृत) बनाम हुकम सिंह और अन्य [Girdharilal (dead) by L.Rs. *Vs.* Hukum Singh and others]; 6

का अवलम्ब लिया गया ।

[1971] 1971 एम० पी० एल० जे० 436 = 1971 जे० एल० जे० 102: शंकर सहाय बनाम कानमल और अन्य (Shankar Sahai *Vs.* Kanmal and others) 3

से असहमति प्रकट की गई ।

[1977] ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 2362: चन्द्र कली बनाम जगदीश सिंह (Chander Kali *Vs.* Jagdish Singh); 8

[1976] 1969 की द्वितीय अपील सं० 190, जिसका विनिश्चय 20-9-1976 को किया गया : रानी प्रेमकुमारी और अन्य बनाम रामनाथ (Rani Premkumari and others *Vs.* Ramnath), 3

[1967] 1967 एम० पी० एल० जे० 125: इन्द्रलाल बलकीराम बनाम महंगी बाई इमृतलाल (Inderlal Balkiram *Vs.* Mahngi Bai Imratlal); 9

निर्दिष्ट किए गए ।

सिविल अपीली अधिकारिता : 1981 की द्वितीय अपील सं० 242.

यह द्वितीय अपील 1981 की प्रथम अपील सं० 69ए में 18 नवम्बर, 1981 को जिला न्यायाधीश, ग्वालियर द्वारा पारित डिक्री के विरुद्ध की गई है ।

अपीलार्थियों की ओर से .. श्री आर० ए० रमण

प्रत्यर्थी की ओर से .. श्री के० एस० तोमर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय का निर्णय न्या० यू० एन० बछावत ने दिया।

न्या० बछावत :

यह मामला एकल न्यायपीठ द्वारा निम्नलिखित प्रश्न का निर्देश करते हुए हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है :—

"क्या बेदखली के वाद में न्यायालय वाद की तारीख से डिक्री की तारीख तक बेदखली के लिए किए गए वाद को खारिज करते हुए किराए की डिक्री मंजूर करने के लिए सक्षम है?"

2. प्रस्तुत निर्देश के प्रमुख आवश्यक तथ्य निम्न प्रकार हैं :—

वादी-प्रत्यर्थी सं० 1 ने प्रतिवादियों जिनमें से इस अपील में दो प्रतिवादी अर्थात् प्रतिवादी सं० 5 और 6 अपीलार्थी हैं यह वाद बेदखली और वाद लाए जाने की तारीख से कब्जा दिए जाने की तारीख तक किराए की बकाया, बिजली प्रभार और अन्त:कालीन लाभों के लिए किया है। यह वाद किराएदारी की संविदा के आधार पर फाइल किया गया है। यह बेदखली कई आधारों पर चाही गई है जिनमें एम०पी० एकामोडेशन कन्ट्रोल ऐक्ट, 1961 (मध्य प्रदेश वास सुविधा नियंत्रण अधिनियम, 1961) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 12(1)(क) के अधीन के आधार भी सम्मिलिए हैं किन्तु इनका यहां प्रगणित किया जाना आवश्यक नहीं है। निचले दो न्यायालयों अर्थात् विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि केवल प्रतिवादी सं० 5 और 6 किराएदार हैं और यह कि अधिनियम के अधीन बेदखली का कोई आधार साबित नहीं किया गया है। अत: विचारण न्यायालय ने सभी प्रतिवादयों के विरुद्ध बेदखली और अन्त:कालीन लाभों के लिए किए गए वाद को खारिज कर दिया और जून, 1967 से 30 नवम्बर, 1969 तक किराए की बकाया और 49 रुपये 50 पैसे बिजली के प्रभार के लिए वाद में डिक्री दे दी। इससे व्यथित होकर वादी-प्रतिवादी सं० 1 ने विचारण न्यायालय द्वारा अपने वाद के आंशिक खारिज किए जाने के विरुद्ध अपील फाइल की जैसा कि इसमें इससे पूर्व उपदर्शित किया गया है। निचले अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय की डिक्री में उपान्तरण कर दिया क्योंकि सभी अन्य बातों में विचारण न्यायालय की डिग्री को कायम रखते हुए इसने वाद की तारीख से डिक्री की तारीख तक किराए को बकाया के लिए वादी के दावे में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

डिक्री दे दी। दूसरे शब्दों में अन्तिम डिक्री यह है कि वादी के वाद को प्रतिवादी सं० 1 से लेकर 4 तक के विरुद्ध पूर्णतः खारिज कर दिया गया किन्तु वाद की तारीख तक किराए की बकाया तथा डिक्री की तारीख तक वाद के लम्बित रहने के दौरान उपगत किराएं के लिए और 49 रुपये 50 पैसे बिजली प्रभार के लिए प्रतिवादी सं० 5 और 6 जोकि इसमें अपीलार्थी हैं, के विरुद्ध डिक्री दे दी। इस तरह अपीलार्थियों ने प्रस्तुत अपील फाइल की जिसमें इससे पूर्व पैरा 1 में वर्णित प्रश्न उद्भूत हुआ जिसे इस न्यायपीठ की राय के लिए निर्देशित किया गया है।

3. उपरोक्त प्रश्न पर इस न्यायालय के दो एकल न्यायपीठ विनिश्चयों में भिन्नता है। **शंकर सहाय बनाम कानमल और अन्य**[1] वाले मामले में निम्नलिखित मत अपनाया गया था :—

> "एक अन्य आधार भी है जिस पर निचले न्यायालय की डिक्री को अपास्त किया जाना चाहिए। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है यद्यपि प्रारम्भ में यह वाद बेदखली और किराए की बकाया दोनों के लिए किया गया था किन्तु डिक्री केवल किराए की बकाया के लिए दी गई थी तथा बेदखली के लिए वाद को खारिज कर दिया गया था क्योंकि वादी के बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उसे 4 जून, 1957 के पश्चात् बेदखल करने का कोई अधिकार नहीं है। यह स्थिति होने के कारण वादी वाद फाइल किए जाने की तारीख के पश्चात् किसी भी अवधि के किराए के लिए डिक्री प्राप्त नहीं कर सका था। यह पूर्णतः स्पष्ट है कि किराए की बकाया के लिए किए गए वाद में ऐसे किराए के लिए ही डिक्री पारित की जा सकती है जो वाद लाए जाने की तारीख तक शोध्य हो गया हो। ऐसे भविष्यत् किराए के लिए डिक्री पारित नहीं की जा सकती जो वाद फाइल किए जाने की तारीख से उद्भूत हुआ हो तथा वाद के लम्बित रहने के दौरान भी ऐसा नहीं किया जा सकता। इस मामले में वाद 28 जनवरी, 1957 को संस्थित किया गया था किन्तु 4 जून, 1957 से 31 अक्तूबर, 1963 तक के किराए के लिए डिक्री दी गई थी। यह डिक्री विधि के प्रतिकूल है।"

---

1 1971 एम० पी० एल० जे० 436 = 1971 जे० एल० जे० 102.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रानी प्रेमकुमारी और अन्य बनाम रामनाथ[1] वाले मामले में अपनाया गया मत निम्न प्रकार है :—

"वाद लाए जाने की तारीख तक किराए के लिए दावे की बाबत और उसके पश्चात् स्वीकृत रूप से वादियों ने वादपत्र में वाद की तारीख तक 18 रुपए प्रतिमास की दर से किराए का दावा किया था। उन्होंने वाद लाए जाने की तारीख से कब्जा दिए जाने की तारीख तक के किराए का भी दावा किया था। निचले न्यायालयों ने वाद लाए जाने की तारीख से किराये के दावे को इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि उन्होंने किराए का दावा किया है न कि अन्तःकालीन लाभों का। अतः अन्तःकालीन लाभों के बारे में डिक्री नहीं दी जा सकती। प्रस्तुत मामले में अन्तःकालीन लाभों और किराए के बीच तकनीकी अन्तर होने के बावजूद भी बेदखली के लिए वाद को खारिज कर दिया गया किन्तु वाद लाए जाने की तारीख से किराए के लिए किए गए वादी के दावे को अनुचित नहीं कहा जा सकता।

** ** **

परिणामतः, प्रस्तुत अपील भागतः मंजूर की गई और यह निदेश दिया गया कि वादी निचले न्यायालयों द्वारा डिक्री किए गए वाद की तारीख तक के किराए के लिए हकदार होंगे और डिक्री के अतिरिक्त डिक्री की तारीख तक भविष्यत् किराए के लिए भी हकदार होंगे। किन्तु यदि वादी निष्पादन में भविष्यत् किराए का दावा करते हैं तो उन्हें उनके द्वारा दावा किए गए किराए की मात्रा पर न्यायालय फीस का संदाय करना होगा।"

4. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में आदेश 20, नियम 12 स्थावर सम्पत्ति के कब्जे के लिए वाद में पारित की गई डिक्री और ऐसी सम्पत्ति का कब्जा रखने वाले व्यक्ति के विरुद्ध अन्तःकालीन लाभों की बाबत है। इस नियम का सुसंगत भाग निम्न प्रकार है :—

"12. कब्जा और अन्तःकालीन लाभों के लिए डिक्री—(1) जहां वाद स्थावर सम्पत्ति के कब्जे का प्रत्युद्धरण करने और भाटक या

[1] 1969 की द्वितीय अपील सं० 190 जिसका विनिश्चय 20-9-1976 को किया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तःकालीन लाभों के लिए है वहां न्यायालय ऐसी डिक्री पारित कर सकेगा जो—

(क) सम्पत्ति के कब्जे के लिए हो;

(ख) ऐसे भाटकों के लिए हो जो वाद के संस्थित किए जाने के लिए पूर्व की किसी अवधि में सम्पत्ति पर प्रोद्भूत हुए हों या ऐसे भाटक के बारे में जांच करने का निदेश देती हो ;

(खक) अन्तःकालीन लाभों के लिए हो या ऐसे अन्तःकालीन लाभों के बारे में जांच करने का निदेश देती हो ;

(ग) वाद के संस्थित किए जाने से लेकर निम्नलिखित में से, अर्थात :—

(i) डिक्रीदार को कब्जे का परिदान

(ii) डिक्रीदार को न्यायालय की मार्फत सूचना सहित निर्णीत ऋणी द्वारा कब्जे का त्याग, अथवा

(iii) डिक्री की तारीख से तीन वर्षों की समाप्ति, इनमें से जो भी कोई घटना पहले घटित हो या उस तक के भाटक या अन्तःकालीन लाभों के बारे में जांच का निदेश देती हो ।

** ** ** "

5. पूर्वोक्त उद्धृत नियम के पढ़ने मात्र से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थावर सम्पत्ति के कब्जे के लिए किए गए वाद में न्यायालय, यथास्थिति, उस सम्पत्ति के कब्जे, किराए या अन्तःकालीन लाभों के लिए वाद लाए जाने की तारीख तक डिक्री पारित करने के लिए सक्षम है और डिक्रीधारक से वाद संस्थित किए जाने की तारीख से परिदान किए जाने की तारीख तक के किराए या अन्तःकालीन लाभों की बाबत जांच करने का निदेश दे सकता है । दूसरे शब्दों में भविष्यत् किराए या अन्तःकालीन लाभों सहित सम्पत्ति के कब्जे को प्रोद्धृत करने के लिए किए गए वाद में वाद लाए जाने की तारीख से डिक्री दिए जाने की तारीख तक के लिए किराए की डिक्री सम्पत्ति को प्रोद्धृत करने की डिक्री के आधार पर दी जा सकती है। अब जो प्रश्न उद्भूत होता है वह यह है कि क्या इस आदेश

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और इस नियम का इस प्रकार निर्वचन किया जा सकता है जिससे कि यह अभिप्रेत हो कि वाद संस्थित किए जाने की तारीख से डिक्री दिए जाने की तारीख तक सम्पत्ति के कब्जे के प्रोद्धरण को नामंजूर करने के आधार पर किराए के लिए इसी प्रकार की डिक्री नहीं दी जा सकती। यह एक स्पष्ट स्थिति है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में न तो ऐसा कोई नियम है और न ही ऐसी किसी अन्य विधि को हमारी अवेक्षा में लाया गया है जिसने न्यायालय से यह अपेक्षा की गई हो कि वह वाद संस्थित किए जाने की तारीख से डिक्री दिए जाने की तारीख तक किराए के लिए ऐसी डिक्री देने से इन्कार कर दे जिसका उस समय सम्पत्ति के प्रोद्धरण के लिए किसी वाद में दावा किया गया हो जब कि सम्पत्ति के प्रोद्धरण को नामंजूर कर दिया गया हो।

6. **गिरधारीलाल (मृत) बनाम हुकम सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधिपतियों द्वारा दिए गए विनिश्चय से यह प्रकट होता है कि आदेश 20, नियम 12 में इस प्रकार की डिक्री पारित करने के लिए कोई प्रतिषेध नहीं है। इस अनुमान का मूल्यांकन करने के लिए उस मामले के आवश्यक सुसंगत तथ्यों और नीचे दी गई धृतियों का उल्लेख करना वांछनीय है। यह कहा जा सकता है कि रिपोर्ट में मामले के तथ्यों का वर्णन विस्तारपूर्वक नहीं किया गया है तथापि वाद कब्जे और वादकालीन किराए को वसूल करने के लिए किया गया था तथा कब्जे के लिए किए गए वाद को खारिज कर दिया गया था इस तरह मंजूर किए गए अनुतोष में उल्लिखित कुल तथ्यों के आधार पर यह बात सुस्पष्ट हो जाती है कि उस मामले में वादकालीन किराए के लिए दावा किया गया था।

(6) (i) ऊपरि निर्दिष्ट **गिरधारीलाल बनाम हुकम सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में वादी ने, जो कि रिसीवर था और जिसे विशेष रूप से उस सम्पत्ति के किराएदारों से किराया वसूल करने के लिए नियुक्त किया गया था, वाद फाइल किया था। वाद में चूंकि यह किराए की बकाया के दावे के बारे में निश्चित नहीं था कि किराए की बावत सहमति हो गई थी या यह तय हो गया था अतः उसने अपने दावे को किराए की आनुकल्पिक दर के आधार पर आधारित किया। किराए की बावत की गई आनुकल्पिक प्रार्थनाओं में से

---

[1] ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 129.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एक प्रार्थना यह थी कि यदि यह पाया जाए कि किराए के बारे में सहमति नहीं हुई थी या यह तय नहीं हुआ था तो राजस्थान प्रिमिसेज (कंट्रोल आफ रेंट एण्ड एविक्शन) ऐक्ट, [राजस्थान परिसर (किराए का नियंत्रण और बेदखली) अधिनियम], 1950 की धारा 6 के उपबंधों के अधीन मानक किराया नियत कर दिया जाए। वादी ने वाद के लम्बित रहने के दौरान अनन्तिम रूप से किराए के नियत किए जाने की भी प्रार्थना की और यह निवेदन भी किया कि यदि इस प्रकार नियत किए गए किराए का संदाय नहीं किया जाता है तो प्रतिवादी को परिसर खाली करने का आदेश दिया जाए। प्रतिवादी ने विभिन्न आधारों पर इस वाद में प्रतिवाद किया। इन आधारों में से एक आधार, जो रिपोर्ट से उद्धृत किया गया है, निम्न प्रकार है :—

> "अन्य बातों के साथ-साथ प्रतिवादी ने यह अभिवाक् किया कि उन परिसरों से, जिन्हें होटल चलाने के लिए किराए पर लिया गया था, प्रतिवादी को बेदखली के तौर पर अनुतोष हेतु उचित न्यायालय फीस का संदाय करना चाहिए।"

6(ii) विचारण न्यायालय अर्थात् सिविल न्यायाधीश के न्यायालय ने परिसरों का मानक किराया नियत करने के पश्चात् किराए की बकाया के लिए वाद में डिक्री दी और शेष अनुतोषों के लिए वाद को खारिज कर दिया। उदाहरणार्थ :—

> "सिविल न्यायाधीश ने तकनीकी आक्षेपों को उलटते हुए परिसरों का मानक किराए के रूप में 782 रुपए प्रतिमास किराया नियत करने के पश्चात् किराए की बकाया के रूप में 42,797 रुपए 50 पैसे के लिए डिक्री पारित की। किराए की यह बकाया 5,000 रुपए प्रतिमास की किस्तों में देय थी जो व्यतिक्रम की दशा में 6% प्रति वर्ष ब्याज की दर सहित 1 जून, 1961 से प्रारम्भ होनी थी। वाद में दावा किए गए शेष अनुतोषों के लिए वाद को आनुपातिक खर्चे सहित खारिज कर दिया गया।"

6(iii) सिविल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध रिसीवर और किराएदार द्वारा प्रति अपीलों के आधार पर उच्च न्यायालय ने किराएदार की अपील को खारिज कर दिया किन्तु वादी-रिसीवर की अपील को आंशिक रूप से किराए की बकाया के संबंध में रकम को बढ़ाते हुए अनुज्ञात किया। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी के इन आक्षेपों को उलट

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिया कि वाद के लम्बित रहने के दौरान किराए या अन्तःकालीन लाभों की डिक्री सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 20, नियम 12 के अधीन मंजूर नहीं की जा सकती। इस बात की उच्चतम न्यायालय द्वारा भी पुष्टि की गई है। उदाहरणार्थ :—

"उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अधिनियम की धारा 6 के प्रथम परन्तुक के अधीन यह आधारिक किराया भी है। उच्च न्यायालय ने किराएदार की अपील को खारिज कर दिया किन्तु विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत 42,791 रुपये 50 पैसे के बजाय 75,718 रुपये की डिक्री पारित करते हुए रिसीवर की अपील को भागतः मंजूर किया।

हमारी राय में उच्च न्यायालय ने इस आक्षेप को सही रूप से ही उलट दिया है कि वाद के लम्बित रहने के दौरान किराए या अन्तःकालीन लाभों की डिक्री इस मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 20, नियम 12 के अधीन नहीं दी जा सकती। इस मामले में स्वयं प्रतिवादी ने यह अभिवाक् किया है कि वाद बेदखली के लिए किया गया था जिस पर अतिरिक्त न्यायालय फीस का संदाय किया जाना था। उच्च न्यायालय ने इस बात का संकेत किया कि वादी ने बेदखली के लिए किए गए वाद में अतिरिक्त न्यायालय फीस का संदाय कर दिया है। अतः यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रतिवादी अन्तःकालीन लाभों के दिए जाने की बाबत इस आधार पर आपत्ति नहीं उठा सकता कि न्यायालय के समक्ष बेदखली के लिए वाद फाइल नहीं किया गया था। हम यह समझते हैं कि यह आपत्ति एक बहुत ही तुच्छ आपत्ति है।"

7. उच्चतम न्यायालय के मत के बारे में अपनाए गए हमारे उपरोक्त मत के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम निर्देशित प्रश्न का उत्तर देने के लिए विधिक स्थिति का सविस्तार वर्णन करें। किन्तु हम इस प्रश्न पर कुछ और विचार-विमर्श करना चाहेंगे।

8. इस पर आगे विचार करने से पूर्व वी० धनपाल चैट्टियार बनाम यशोदा अम्माल[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए

[1] (1979) एम० पी० एल० जे० 719 = 1980 जे०एल०जे० 1.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गए विनिश्चय का उल्लेख करना सुसंगत होगा । उक्त मामले में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधिपतियों ने इस अधिनियम सहित विभिन्न राज्यों के किराए संबंधी अधिनियमों के उपबंधों का सर्वेक्षण करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम के उपबंधों के अधीन संविवादात्मक किराएदारी का अवधारण करने के लिए सूचना अनावश्यक है और यह व्यर्थ भी है क्योंकि मकान-मालिक किराएदार की बेदखली इस प्रकार के अवधारण के पश्चात् भी नहीं करा सकता क्योंकि किराएदार इसके पश्चात् भी किराएदार बना रहेगा। किराएदारी की समाप्ति उस दशा में की जाती है जब कि किराए विषयक राज्य-अधिनियम के अधीन किराएदार की बेदखली को सफलता-पूर्वक साबित कर दिया जाता है । हम इस विनिश्चय के सुसंगत भागों को नीचे उद्धृत करना चाहेंगे :—

** ** **

"राज्य के किराए संबंधी किसी भी अधिनियम में उल्लिखित आधार पर बेदखली के लिए वाद संस्थित करने में मकान मालिक की कार्रवाई उसके इस आशय की अभिव्यक्ति के समान होगी कि वह किराएदार को अपने पट्टेदार के रूप में बने रहने देना नहीं चाहता और पट्टाकर्ता और पट्टेदार का विधिपरक संबंध बेदखली का आदेश या डिक्री पारित करने पर समाप्त हो जाएगा । राज्य के विभिन्न किराए संबंधी अधिनियमों के अधीन 'किराएदार' शब्द की विस्तृत परिभाषा के अन्तर्गत किराएदार किराएदार बना रहता है चाहे सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 106 के अधीन विधिमान्य सूचना देते हुए संविदात्मक किराएदारी का अवधारण कर दिया गया हो ।"

** ** **

"यह मकान मालिक को किराएदार से अपना संबंध तोड़ना मात्र उसकी किराएदारी समाप्त करने की सूचना की तामील द्वारा अनुज्ञात नहीं करता । सूचना दिए जाने के बावजूद भी विधि के अनुसार किराएदार बना रहेगा और वह पट्टेदार के उन सभी अधिकारों का उपभोग करता रहेगा और साथ ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साथ विधि के अनुसार सभी दायित्वों के अर्थात् किराए संदाय आदि के लिए दायी समझा जाएगा ।"

पी० धनपाल चेट्टियार बनाम यशोदा अम्माल[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय के आधार पर बेदखली के लिए किए गए वादी-प्रत्यर्थी के वाद को खारिज किए जाने के कारण प्रतिवादी-अपीलार्थी किराएदार द्वारा संविवादात्मक किराएदारी को समाप्त करने के बावजूद भी किराएदार के रूप में बना रहा । दूसरे शब्दों में वाद के लम्बित रहने के दौरान भी प्रतिवादी-अपीलार्थी की हैसियत किराएदार की बनी रही । इसका स्वाभाविक परिणाम यह निकलता है कि किराएदार-प्रतिवादी अपने मकानमालिक-वादी को किराया देने के लिए बाध्य है । इस प्रक्रम पर हम चन्द्र कली बनाम जगदीश सिंह[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय की ओर संकेत करना चाहेंगे जो हमारी राय में इस प्रश्न पर प्रकाश डालता है और हमारे द्वारा अपनाए गए मत की पुष्टि करता है । अधिनियम की धारा 2(i) में दी गई किराएदार की परिभाषा को उद्धृत करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित कहा :—

"पूर्वोक्त परिभाषा के पढ़ने मात्र से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि किराएदार अपनी संविदात्मक किराएदारी के अवधारण के पश्चात् भी वास सुविधा का अप्राधिकृत अधिभोगी नहीं रहता बल्कि किराएदार ही रहता है । दमडीलाल बनाम परसराम (ए०आई०आर० 1976 एस०सी० 2229) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा यह कहा गया है कि इस प्रकार के किराएदार को आसानी से कानूनी किराएदार कहा जा सकता है । आंग्ल विधि से उधार ली गई पूर्वोक्त अभिव्यक्ति समुचित युक्त हो या न हो किन्तु यह निश्चित है कि कोई किराएदार जो अपनी संविदात्मक किराएदारी के अवसान के पश्चात् भी वास सुविधा पर कब्जा बनाए रखता है वह अधिनियम के अर्थान्तर्गत किराएदार है और अपने कब्जे के इस प्रकार अवसान होने पर तब तक दोषपूर्ण नहीं होता जब तक कि बेदखली

---

1. 1979 एम० पी० एल० जे० = 1980 जे० एल० जे० 1.
2. ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 2362.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के लिए डिक्री पारित न कर दी जाए। यदि वह डिक्री पारित होने के पश्चात् भी कब्जा बनाए रखता है तो वह ऐसा वास-सुविधा पर दोषपूर्ण अधिभोगी के रूप में करता है।"

** ** **

"कीकाभाई अब्दुल हुसैन बनाम कमलाकर (1974 एम० पी० एल० जे० 485) वाले मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की न्यायपीठ ने 1961 के अधिनियम के प्रति निर्देश से यह राय व्यक्त की कि यदि कोई व्यक्ति संविदात्मक किराएदारी के अवसान के पश्चात् भी अधिभोग बनाए रखता है तो बेदखली के लिए डिक्री पारित हो जाने पर वह उस वास-सुविधा का अवसान की तारीख से सदोष अधिभोगी हो जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि "पूर्व संबंध" सिद्धान्त के समान सिद्धांत को इस भाव में लागू किया गया है कि यदि बेदखली के लिए कोई डिक्री पारित नहीं की गई है तो उस व्यक्ति के अधिभोग को सदोष नहीं माना जाएगा किन्तु इस प्रकार की डिक्री पारित किए जाने पर उसका कब्जा न केवल डिक्री पारित किए जाने की तारीख से ही सदोष हो जाता है बल्कि इस प्रकार की डिक्री उसके अधिभोग को संविदात्मक किराएदारी के अवसान की तारीख से ही विधिविरुद्ध अधिभोग बना देती है । 1955 के अधिनियम के उपबन्धों के प्रति निर्देश करते हुए चाहे जो कुछ कहा जाए किन्तु हम इससे स्पष्ट है कि 1961 के अधिनियम के प्रति निर्देश से उच्च न्यायालय ने जो विधि प्रतिपादित की है वह सही विधि नहीं है।"

** ** **

"उल्लिखित कारण के आधार पर यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी किराएदार के रूप में 1 जनवरी, 1973 को और से वास सुविधा के अधिभोग में रहे जिसे हम सुविधा के लिए अधिनियम के अधीन कानूनी किराएदार कह सकते हैं । उनका अधिभोग उस समय तक अप्राधिकृत या दोषपूर्ण नहीं था जब तक कि प्रथम अपील न्यायालय ने 11 अगस्त, 1975 को बेदखली की डिक्री पारित नहीं कर दी गई थी । उनका अधिभोग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

केवल उसी तारीख से अप्राधिकृत या दोषपूर्ण हो गया था अत: वे 1 जनवरी, 1973 से प्रारम्भ होने वाली और 10 अगस्त, 1975 को समाप्त होने वाली अवधि के लिए नुकसानी या अन्त:कालीन लाभों का संदाय करने के दायित्वाधीन न है । अत: वाद के संस्थित किए जाने से दो मास पूर्व के में नुकसानी की डिक्री या उसके पश्चात् वाली अवधि के लि नुकसानी की डिक्री को अपास्त किया जाना चाहिए । प्रतिवा अपीलार्थी केवल 11 अगस्त, 1975 से वास सुविधा का कब्जा परिदान करने की तारीख तक 125 रुपये प्रतिमास दर से (नुकसानी की दर को हमारे समक्ष न तो चुनौती गई है और न ही दी जा सकती है) नुकसानी या अन्त:का लाभों का संदाय करने के दायित्वाधीन होंगे ।"

9. हमारे इस मत को कि बेदखली की डिक्री पारित किए तक प्रतिवादी किराएदार, पर अपने मकान मालिक-वादी को किराया की बाध्यता है, अधिनियम की धारा 13(1) में अन्तर्विष्ट उप से अवलम्ब प्राप्त है । इस संबंध में हमारे लिए इस न्यायालय खण्ड न्यायपीठ द्वारा इन्द्रलाल बलकीराम **बनाम** महंगी बाई इमृत वाले मामले में व्यक्त किए गए मत को उद्धृत करना उप होगा जो कि हमारे द्वारा व्यक्त किए गए मत की पुष्टि करता है :

> "धारा 13 का उद्देश्य और प्रयोजन इस निष्कर्ष की भी संकेत करता है कि न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष कि प्रतिवादी किराएदार है धारा 13(1) के प्र के लिए या धारा 13 की विभिन्न उपधाराओं द्वारा इस न्या लय को प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में आवश्यक नहीं है । 13(1) का उद्देश्य किराएदार को उस क्षण से किराए संदाय करने से बन्द करने का निवारण करता है जिस से उसके विरुद्ध बेदखली के लिए वाद फाइल किया गया यह मकान-मालिक को बेदखली के लिए उसके द्वारा फाइल गए वाद के लम्बित रहने वाली अवधि के किराए के पृथक रूप से वाद फाइल करने की आवश्यकता से भी मु देता है ।"

1. 1967 एम० पी० एल० जे० 125.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri / CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

10. पूर्वगामी विचार-विमर्श का निष्कर्ष यह है कि न्यायालय बेदखली के लिए फाइल किए गए वाद को खारिज करते हुए भी वादकालीन किराए की डिक्री पारित करने के लिए सक्षम है।

11. हम अपने मत की विधिमान्यता की बाबत न्याय साम्या और शुद्ध अन्तःकरण के सिद्धांत पर भी परीक्षा करना चाहेंगे। वादी मकान-मालिक अधिनियम की धारा 12(1) में उल्लिखित आधारों में से एक या अधिक आधारों पर कब्जा परिदान किए जाने की तारीख तक वादकालीन अन्तःकालीन लाभों के लिए किराए की बकाया या बेदखली के लिए वाद संस्थित करता है। वह वाद के अन्तिम परिणाम को नहीं जानता। वाद कई वर्षों तक चलता रहता है और अन्ततोगत्वा बेदखली की प्रार्थना से इस आधार पर इंकार कर दिया जाता है कि धारा 12(1) के अधीन दिए गए आधारों में से कोई भी आधार साबित नहीं हुआ है। यदि प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान काउन्सेल द्वारा व्यक्त किए गए मत को और उस मत को जो ऊपरिनिर्दिष्ट शंकर सहाय वाले मामले में एकल न्यायपीठ द्वारा अपनाया गया है, स्वीकार कर लिया जाता है तो वादकालीन किराए के लिए कोई भी डिक्री पारित नहीं की जा सकती। परिणाम यह होगा कि वादी को वादकालीन किराए को वसूल करने के लिए पृथक वाद लाना पड़ेगा। कोई भी व्यक्ति इस बात की कल्पना नहीं कर सकता कि वाद को अन्तिम रूप से निपटाए जाने में कितना समय लगेगा। अतः ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि उस तारीख को जब कि किराएदार के विरुद्ध बेदखली के लिए डिक्री से इन्कार करते हुए वाद का अन्तिम रूप से विनिश्चय किया जाए और उस डिक्री की पूर्वगामी तारीख से 3 वर्ष की अवधि का किराया समय द्वारा वर्जित हो जाए, क्योंकि किराए की वसूली के लिए कार्रवाई करने का वाद हेतुक उस तारीख को उद्भूत होता है जिस तारीख को यह संदाय के लिए शोध्य होता है, अतः वादी अपनी कोई भूल न होते हुए भी किराया प्राप्त करने का हकदार नहीं रह जाएगा। प्रतिवादी-किराएदार जो वाद को लम्बे समय तक चलाने के लिए सफल हो सकता है वह उस अवधि के लिए जिस अवधि के लिए किराया वाद के लम्बित रहने के दौरान समय द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्जित हो गया है किराए का संदाय किए बिना किराएदार के रूप में निवास करते हुए फायदा उठाएगा जो कि न्याय, साम्या और शुद्ध अन्तःकरण के सिद्धांत के प्रतिकूल है। इस बात का खण्डन नहीं किया जा सकता कि किराएदार पर उस तारीख से किराए का संदाय करने की बाध्यता होती है जिस तारीख को कि यह उद्भूत होता है अतः वाद के लम्बित रहने के दौरान यह बाध्यता बनी रहती है। वादी-मकानमालिक के लिए यह वाद हेतुक वाद के लम्बित रहने के दौरान उस अवधि के दौरान उपगत किराए के लिए उद्भूत होता है। ऐसी स्थिति में संहिता में किसी प्रतिषेध के अभाव में और चूंकि वादी को अधिकार उद्भूत हो गया है अतः न्यायालय को वादी के अधिकार की अधिकारिता प्रवर्तित करना न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करना है। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के अधीन न्यायालय बेदखली के वाद को खारिज करते हुए वादकालीन किराए के लिए डिक्री मंजूर कर सकता है। यह प्रश्न कि क्या उस किराए के लिए, जिसके लिए वादी को अधिकार है और न्यायालय को उसे मंजूर करने की अधिकारिता भी है, डिक्री इस वाद में मंजूर की जानी चाहिए या नए सिरे से वाद लाया जाना चाहिए, मात्र प्रक्रिया संबंधी प्रश्न है क्योंकि यह सुव्यवस्थित है कि जब कोई विषय किसी कानून के अभिव्यक्त उपबंधों की परिधि के अन्तर्गत नहीं आता तब न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों का न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयोग किया जा सकता है। प्रत्येक न्यायालय का गठन विधि के अनुसार न्याय करने के प्रयोजन के लिए किया जाता है और एक आवश्यक स्वाभाविक परिणाम के रूप में यह समझा जाना चाहिए कि ऐसी शक्ति उस न्यायालय में है और उसके गठन में वे सभी शक्तियां अन्तर्निहित हैं जो उचित कार्य करने के लिए और न्याय के प्रशासन के लिए गलत काम को अकृत करने के लिए आवश्यक हों। इस दृष्टि से भी हमारे मत को समर्थन प्राप्त होता है।

12. उपरोक्त विचार-विमर्श के आधार पर ऊपरिनिर्दिष्ट शंकर सहाय वाले मामले[1] में एकल न्यायपीठ द्वारा अपनाया गया मत सही नहीं है और हमारी राय यह है कि किसी किराएदार की बेदखली के

---

[1] 1971 एम० पी० एल० जे० 436-1971 जे० एल० जे० 101.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिए किए गए वाद में बेदखली के लिए वाद को खारिज करते हुए न्यायालय वाद किए जाने की तारीख से डिक्री किए जाने की तारीख तक किराए की डिक्री मंजूर करने के लिए सक्षम है। परिणामतः निर्दिष्ट प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप में दिया जाता है।

निर्देश का उत्तर सकारात्मक दिया गया।

वसंत

नि० प० 1983 : मध्य प्रदेश—435

रेस्टोरेंट ली, जगदलपुर और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य (Restaurant Lee, Jagdalpur and others *Vs.* State of M.P. and others)

तारीख 28 अप्रैल, 1983

[मु० न्या० जी० पी० सिंह और न्या० के० के० अधिकारी]

1. मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट [मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियमन) अधिनियम], 1952 धारा 2 (क) और 3 वीडियो कैसेट रिकार्डर का टेलीविजन के पर्दे पर चलचित्रों के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसेटों को चलाना उक्त अधिनियम की धारा 2(क) में दी गई "सिनेमेटोग्राफ" '(चलचित्र) की परिभाषा के अन्तर्गत आने के कारण भोजनालयों में इस प्रकार के चलचित्रों का प्रदर्शन तब तक प्रतिषिद्ध है जब तक कि ऐसे स्थानों पर इनके प्रदर्शन के लिए उक्त अधिनियम के अन्तर्गत अनुज्ञप्ति प्राप्त न कर ली गई हो।

2. मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट [मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियमन) अधिनियम], 1952 धारा 3 सपठित संविधान, 1950 की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 32—वीडियो कैसेट रिकार्डर और टेलीविजन की सहायता से भोजनालयों में चलचित्रों का प्रदर्शन उक्त प्रविष्टि 32 में आए हुए "चलचित्र" शब्द की परिधि के अन्तर्गत आने के कारण उक्त अधिनियम के विनियमनकारी उपबंधों द्वारा शासित होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

3. संविधान, 1950 सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 32 सपठित मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट [मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियमन) अधिनियम], 1952 की धारा 3—वीडियो कैसेट रिकार्डर और टेलीविजन की सहायता से भोजनालयों में चलचित्रों का प्रदर्शन प्रविष्टि 32 में आए हुए "चलचित्र" शब्द की परिधि के अन्तर्गत आने के कारण उक्त अधिनियम के विनियमनकारी उपबंधों द्वारा शासित होगा।

4. मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) [ऐक्ट मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियमन) अधिनियम] 1952 की धारा 5(ख)—उक्त अधिनियम की धारा 5 (ख) के अधीन अनुज्ञापन प्राधिकारी से अनुज्ञप्ति मंजूर करने से पूर्व इस बात पर विचार करने की अपेक्षा की जाती है कि वह यह देखें कि जनता की सुरक्षा हेतु पर्याप्त रूप से पूर्वावधानियां बरती गई हैं या नहीं यही बात भोजनालयों पर भी लागू होती है।

5. एम० पी० एन्टरटेनमेंट ड्यूटी ऐक्ट, 1936 (मध्य प्रदेश मनोरंजन शुल्क अधिनियम, 1936) की धारा 2 ख और 3—भोजनालयों में वीडियो कैसैट रिकार्डर और टेलीविजन की सहायता से चलचित्रों के प्रदर्शन हेतु इनके स्वामियों द्वारा ग्राहकों से पृथक रूप से राशि न लेकर चाय काफी या अन्य खाद्य पदार्थ में सम्मिलित करके लेने से वे उक्त अधिनियम के उपबंधों से नहीं बच सकते यद्यपि यह प्रश्न तथ्य विषयक प्रश्न है।

6. लाईसेंसिंग आफ वायरलैस रिसीविंग एपेरेटस रूल्स, 1965 और इण्डियन वायरलैस टेलीग्राफी (पजेशन) रूल्स, 1965—वाणिज्यिक अनुज्ञप्ति वीडियो कैसैट रिकार्डर और टेलीविजन पर चलचित्रों के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसेटों को चलाने के लिए अनुज्ञात नहीं करती—परिणामतः भोजनालय के स्वामी अपने-अपने भोजनालयों में इन कैसेटों को विडियो कैसेट रिकार्डर और टेलिविजन पर प्रदर्शित नहीं कर सकते।

पिटीशनर अपने-अपने भोजनालयों में वीडियो कैसैट रिकार्डर और टेलीविजन सैट्स लगाए हुए हैं। वे इन वीडियो कैसैट रिकार्डर और टेलीविजन की सहायता से अपने भोजनालयों में आने वाले ग्राहकों को विशिष्ट समयों पर चलचित्र दिखाते हैं। इन चलचित्रों को दिखाने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का समय और इनके नामों का बड़े-बड़े कस्बों में दैनिक समाचार पत्रों और बोर्डों पर विज्ञापन दिया जाता है। छोटे-छोटे कस्बों में यह विज्ञापन बोल कर किया जाता है। ग्राहकों से चाय, काफी या इसी प्रकार के अन्य पेय या खाद्य पदार्थों के लिए 8 रुपये से लेकर 1 रुपये 50 पैसे तक लिया जाता है। कतिपय दशाओं में प्रवेश कूपनों या टिकटों के क्रय द्वारा किया जाता है। अन्य दशाओं में संदाय बिल के माध्यम से किया जाता है। दिखाए जाने वाले चलचित्र चुम्बकीय टेप के कैसेट्रों पर पहले ही रिकार्ड किए होते हैं जिनका टेलीविजन के पर्दे पर वी०सी०आर० द्वारा प्रदर्शन किया जाता है। पिटीशनरों के वी०सी० आर० और टी०वी० सैट्स को वाणिज्यिक अनुज्ञप्तियां प्रदान की गई हैं जो घरेलू अनुज्ञप्तियों से भिन्न हैं। पिटीशनरों ने सर्वप्रथम यह दलील दी कि मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट, 1952 की धारा 2(क) में आया हुआ "सिनेमेटोग्राफ" शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत इसके स्वयं के निबन्धनों के आधार पर वी०सी०आर० और टी०वी० सैट नहीं आते और यह कहा गया कि चूंकि वी०सी०आर० और टी०वी० का विषय पूर्णतः तार अधिनियम और बेतार तारयांत्रिकी अधिनियम, जो सूची 1 की प्रविष्टि 31 के अन्तर्गत आने वाले विधायन हैं, के अन्तर्गत आता है, अतः यह क्षेत्र पूर्णतः केन्द्रीय अधिनियम के अन्तर्गत आता है जो राज्य विधानमण्डल की विधायी सक्षमता से परे है। इसके अतिरिक्त यह दलील भी दी गई कि पिटीशनरों के पास अपने अपने भोजनालयों में लगाए गए वीडियो कैसेट रिकार्डरों के लिए वाणिज्यिक अनुज्ञप्तियां हैं और इस कारण वे पहले ही रिकार्ड किए गए कैसेटों पर चलचित्रों का प्रदर्शन करने के प्रयोजनों के लिए इन सैटों का प्रयोग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया कि चूंकि पिटीशनर मनोरंजन के लिए पृथक् रूप से कोई प्रवेश शुल्क नहीं ले रहे हैं, अतः यह अधिनियम उन पर लागू नहीं होता। प्रस्तुत मामले में विचारार्थ और अवधारणार्थ प्रश्न यह है कि क्या पिटीशनरों द्वारा अपने-अपने भोजनालयों में वीडियो कैसेट रिकार्डर का टेलीविजन के पर्दे पर चलचित्रों के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसेटों का प्रदर्शन करना मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट, 1952 और एम०पी० एन्टरटेनमेंट ड्यूटी ऐक्ट, 1936 के उपबंधों के अतिलंघन में है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित—पिटीशन खारिज किए गए।

"चलचित्र" शब्द मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट, 1952 की धारा 2(क) में परिभाषित किया गया है जिसके अन्तर्गत चलचित्र या चलचित्रों की आवली को प्रदर्शित करने के लिए कोई साधित्र है। इस परिभाषा के निबन्धन विस्तृत हैं। यह परिभाषा केवल उन प्रक्षेपण यंत्रों तक ही सीमित नहीं है जिनका प्रयोग साधारणतया चलचित्रों को दिखाने के लिए सिनेमाओं में किया जाता है। समावेशी परिभाषा पूर्णत: सामान्य है और चलचित्र या चलचित्र की आवली को प्रदर्शित करने के लिए किसी साधित्र को सम्मिलित करने के लिए विस्तृत है। अतः जब किसी वी०सी०आर०, टी०वी० का पर्दे पर चलचित्रों के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसिटों को बजाने में प्रयोग किया जाता है तब निश्चित रूप से इसका प्रयोग ऐसे साधित्र के रूप में किया जाता है जो चलचित्र या चलचित्रों की आवली को प्रदर्शित करने के लिए है अतः यह प्रयोग "चलचित्र" की परिभाषा के अन्तर्गत आता है। इसी प्रकार पिटीशनरों द्वारा अपने भोजनालयों में वी०सी०आर० में पहले ही रिकार्ड किए गए कैसैटों को चलाना और चलचित्रों का प्रदर्शन करना अधिनियम की धारा 3 में अन्तर्विष्ट प्रतिषेध के अन्तर्गत आता है। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, धारा 3 इस अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त स्थानों से भिन्न स्थान पर चलचित्र द्वारा प्रदर्शन को प्रतिषिद्ध करती है। पिटीशनर अपने भोजनालयों में वी०सी०आर० और टी०वी० सैटों की सहायता से चलचित्रों का प्रदर्शन कर रहे हैं जहां की जनता को प्रवेश दिया जाता है। यह स्पष्ट रूप से चलचित्रों के माध्यम द्वारा प्रदर्शन की कोटि में आता है अतः पिटीशनरों का यह क्रियाकलाप धारा 3 के प्रतिषेध के अन्तर्गत है। पिटीशनर इस प्रकार के क्रियाकलाप को तब तक नहीं चला सकते जब तक कि वे अधिनियम के अधीन अपने भोजनालयों के लिए अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त न कर लें। (पैरा 8)

जिन चलचित्रों को पिटीशनर वी० सी० आर० और टी० वी० से प्रदर्शित कर रहे हैं, वे फोटोचित्रण फ़िल्मों पर ली गई फिल्में हैं। इन चलचित्रों के चुम्बकीय टेप के कैसेट या तो निर्माताओं द्वारा या प्रतिलिप्याधिकार विधि के अतिलंघन में अनधिकृत रूप से बेचे जाते हैं। इन कैसैटों का चलचित्रों को दिखाने के लिए वी०सी० आर० में प्रयोग किया जाता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस न्यायालय की यह स्पष्ट राय है कि पिटीशनरों के भोजनालयों में इस प्रकार वी० सी० आर० और टी० वी० से चलचित्रों का प्रदर्शन सूची 2 की प्रविष्टि 32 में "सिनेमा" की परिधि के अन्तर्गत आता है जो मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट [मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियमन) अधिनियम], 1952 के विनियमनकारी उपबंधों द्वारा शासित है। (पैरा 9)

यदि पिटीशनरों को बिना किसी विनियम के छोटे सिनेमाओं के रूप में इन्हें अपने भोजनालयों में अनुज्ञात कर दिया जाता है तो जनता को होने वाला खतरा स्पष्ट दिखाई देता है। उन व्यक्तियों की सुरक्षा और स्वास्थ्य को जोखिम होगी जो इन भोजनालयों में इन चलचित्रों को देखने आते हैं। जब कोई प्रमुख चलचित्र का प्रदर्शन किया जा रहा हो तब इन भोजनालयों के बाहर और भीतर भीड़ का इकट्ठा होना लोक व्यवस्था के लिए एक समस्या उत्पन्न करेगा। इसके अतिरिक्त इन चलचित्रों के बहुत से स्वामी अनधिकृत और अश्लील (ब्लू) फिल्म का प्रदर्शन करेंगे। समाचारपत्रों की रिपोर्टों द्वारा इन आशंकाओं की पुष्टि हो चुकी है (8 अप्रैल, 1983 का इंडियन एक्सप्रैस देखिए)। अतः यह न्यायालय भी इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि पहले ही रिकार्ड किए गए कैसैटों से अपने भोजनालयों में चलचित्रों का प्रदर्शन करने के लिए पिटीशनरों को मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट [मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियमन) अधिनियम], 1952 के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त करने की आवश्यकता है। (पैरा 12)

प्रवेश के लिए संदाय मनोरंजन-शुल्क के अधिरोपण के लिए पूर्वापेक्षा है। इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि यदि ग्राहकों को संदाय के आधार पर प्रवेश दिया जाता है तो भोजनालयों में वी० सी० आर० और टी० वी० की सहायता से चलचित्रों का प्रदर्शन मनोरंजन है। यह प्रश्न कि क्या ग्राहकों को संदाय के आधार पर प्रवेश दिया जाता है, तथ्य विषयक प्रश्न है। दृश्यमान रूप से यह हो सकता है कि चलचित्र देखने के लिए कोई प्रवेशशुल्क न हो, किंतु केवल इसी बात से यह नहीं कहा जा सकता कि व्यक्तियों को पिटीशनरों द्वारा संदाय के आधार पर प्रवेश नहीं दिया जाता। यदि पिटीशनरों द्वारा ली जाने वाली राशि ऐसी है जिसके बारे में यह कहा जा सकता हो कि वस्तुतः ग्राहक भोजनालयों में चलचित्र देखने के लिए संदाय कर रहे हैं न कि चाय, काफी और खाद्य पदार्थों का उपभोग करने के लिए तो इससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि ग्राहकों को संदाय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के आधार पर प्रवेश दिया जाता है और इस तरह धारा 2(ख) में दी गई परिभाषा की अपेक्षा की पूर्ति हो जाती है। किंतु दूसरी ओर यदि ग्राहकों द्वारा उपभोग किए गए पेय और खाद्य पदार्थों के लिए आवश्यक रूप से संदाय किया जाता है तो यह कहना संभव नहीं है कि उन्हें धारा 2(ख) के अर्थान्तर्गत मनोरंजन के लिए संदाय के आधार पर प्रवेश दिया जाता है। यह प्रश्न मुख्यत: तथ्य विषयक प्रश्न है। किंतु यह स्पष्ट है कि चाय, काफी और खाद्य पदार्थों के लिए ली जाने वाली कोई राशि और भोजनालयों में प्रदर्शित किए जाने वाले चलचित्र को देखने के लिए पृथक् रूप से किसी रकम के न लिए जाने के आधार पर पिटीशनर अधिनियम के उपबंधों से नहीं बच सकते। (पैरा 14)

पैरा

[1964]	(1964) 112 सी० एल० आर० 206 : जान्स बनाम दि कामनवैल्थ (Jones *Vs.* The Commonwealth);	9
[1962]	ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 159 : सीनियर इलैक्ट्रिक इंस्पैक्टर बनाम लक्ष्मीनारायण चोपड़ा (Senior Electric Inspector *Vs.* Laxminarayan Chopra);	9
[1959]	ए० आई० आर० 1959 एस० सी० 544 : राजस्थान राज्य बनाम जी० चावला (State of Rajasthan *Vs.* G. Chawla);	10
[1935]	(1935) 54 सी० एल० आर० 262 : आर० बनाम ब्रिसलन एकपक्षीय विलियम्स (R. *Vs.* Brislon Ex-parte Williams)	9

निर्दिष्ट किए गए।

सिविल अधिकारिता : 1983 का प्रकीर्ण पिटीशन सं० 556.

पिटीशनर की ओर से ... श्री वाई० एस० धर्माधिकारी

प्रत्यर्थियों की ओर से ... श्री एस० एल० सक्सेना, सरकारी अधिवक्ता

मध्यक्षेपी की ओर से ... श्री आर० पी० वर्मा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय का निर्णय मु० न्या० जी० पी० सिंह ने दिया।

मु० न्या० सिंह :

इस आदेश से 1983 के प्रकीर्ण पिटीशन सं० 676, 677, 678, 679, 680, 835, 902, 923, 968, 995, 998, 1008, 1011, 1012, 1013, 1014, 1154 और 1180 का भी निपटारा किया जाएगा। इन पिटीशनों में प्रकीर्ण पिटीशन सं० 1180 को छोड़ कर सभी पिटीशनर मध्य प्रदेश के विभिन्न भागों में काफी हाउस और भोजनालयों के स्वामी हैं। इनका मध्य प्रदेश वीडियो व्यवसाय संघ के नाम से संघ है। यह संघ प्रकीर्ण पिटीशन सं० 1180 में पिटीशनर है। ये पिटीशनर अपने-अपने भोजनालयों में वीडियो कैसेट रिकार्डर (वी० सी० आर०) और टेलीविजन (टी० वी०) सेट्स लगाए हुए हैं। वे इन वीडियो कैसेट रिकार्डर और टेलीविजन की सहायता से अपने भोजनालयों में आने वाले ग्राहकों को विशिष्ट समयों पर चलचित्र दिखाते हैं। इन चलचित्रों को दिखाने का समय और इनके नामों का बड़े-बड़े कस्बो में दैनिक समाचारपत्रों और बोर्डों पर विज्ञापन दिया जाता है। छोटे-छोटे कस्बों में यह विज्ञापन बोल कर किया जाता है ग्राहकों से चाय, काफी या इसी प्रकार के अन्य पेय और/या खाद्य पदार्थों के लिए 8 रुपये से लेकर 1 रुपये 50 पैसे तक लिया जाता है। कतिपय दशाओं में प्रवेश कूपनों या टिकटों के क्रय द्वारा किया जाता है। अन्य दशाओं में संदाय बिल के माध्यम से किया जाता है। दिखाए जाने वाले चलचित्र चुम्बकीय टेप के कैसैटों पर पहले ही रिकार्ड किए होते हैं जिनका टी० वी० के पर्दे पर वी० सी० आर० द्वारा प्रदर्शन किया जाता है। पिटीशनरों के वी० सी० आर० और टी० वी० सेट्स को लाइसेंसिंग आफ वायरलैस रिसीविंग एपेरेट्स रूल्स, 1965 और इंडियन वायरलैस टेलीग्राफी (पजैशन) रूल्स, 1965, जिन्हें अभी हाल ही में भारतीय तार अधिनियम, 1885 की धारा 7 और भारतीय बेतार तार अधिनियम, 1933 की धारा 10 के अधीन क्रमशः विरचित किया गया है, के अन्तर्गत अनुज्ञप्ति प्रदान की गई है। पिटीशनरों द्वारा पारित अनुज्ञप्तियां घरेलू अनुज्ञप्तियों से भिन्न वाणिज्यक अनुज्ञप्तियां हैं। इन तथ्यों के आधार पर, जिन्हें बहस के दौरान पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा स्वीकार किया गया है, इन पिटीशनों में यह सामान्य प्रश्न उद्भूत हुआ है कि क्या इन पिटीशनरों द्वारा अपने-अपने भोजनालयों में ऊपर बताई गई रीति में वी० सी० आर० और टी० वी० सैट्स का प्रयोग किया जाना मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट, 1952 और एम० पी० एंटरटेनमेंट ड्यूटी ऐक्ट, 1936 के उपबंधों के अतिलंघ

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

2. पक्षकारों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल की सहमति से प्रत्यर्थियों अर्थात् मध्य प्रदेश राज्य और 1983 के प्रकीर्ण पिटीशन सं० 556 में जिला प्राधिकारी द्वारा फाइल की गई विवरणी को इन सभी पिटीशनों में विवरणी के रूप में स्वीकार किया गया है। सैण्ट्रल सर्किट सिने एसोसिएशन, भुसावल को 1983 के प्रकीर्ण पिटीशन सं० 556 में हस्तक्षेप करने के लिए अनुज्ञात कर दिया गया है जिसने एक पृथक् विवरणी फाइल की है।

3. इन पिटीशनों में दी गई दलीलों पर विचार करने से पूर्व सर्वप्रथम सुसंगत कानूनी उपबंधों का उल्लेख करना सुविधापूर्ण होगा। सर्वप्रथम हम संविधान से प्रारम्भ करेंगे। संसद् को अनुसूची 7 की सूची 1 की प्रविष्टि 31 के अधीन डाक-तार, टेलीफोन, बेतार, प्रसारण और वैसे ही अन्य संचार साधन की बाबत विधान बनाने की अनन्य शक्ति है। संसद् को सूची 1 की प्रविष्टि 60 के अधीन प्रदर्शन के लिए चलचित्र फिल्मों की मंजूरी देने के विषय में भी अनन्य शक्ति है। दूसरी ओर राज्य विधानमंडल को सूची 2 की प्रविष्टि (1) और (6) के अधीन लोक व्यवस्था और लोक स्वास्थ्य के विषयों पर विधान बनाने की अनन्य शक्ति है। इसे नाट्यशाला (थियेटर) और नाट्य प्रदर्शन सूची 1 की प्रविष्टि 60 के उपबंधों के अधीन, रहते हुए, सिनेमा, खेलकूद, मनोरंजन और आमोद के विषयों की बाबत भी अनन्य शक्ति है। इसके अतिरिक्त सूची 2 की प्रविष्टि 62 के अधीन इसे विलास वस्तुओं पर कर, जिनके अन्तर्गत मनोरंजन, आमोद, दाव और द्यूत पर कर है, अधिरोपित करने की भी शक्ति है। जिस समय संविधान की विरचना की गई थी उस समय भारत में टेलीविजन का आविष्कार नहीं हुआ था। टेलीविजन के आविष्कार के साथ ही साथ संसद् ने भारतीय तार अधिनियम, 1885 में "तार" शब्द की परिभाषा तथा भारतीय बेतार तारयांत्रिकी अधिनियम, 1933 में "बेतार संचार" अभिव्यक्ति की परिभाषा को संशोधित करने के लिए टेलीग्राफ लाज (अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1961 [तार विधियां (संशोधन) अधिनियम, 1961] अधिनियमित किया जिससे कि इस विषय को विवाद से परे रखा जा सके क्योंकि ये परिभाषाएं टेलीविजन द्वारा दृश्य-बिम्ब के संचरण और ग्रहण को अपने अन्तर्गत लाने के लिए पर्याप्त रूप से विस्तृत है। तार अधिनियम, 1885 की धारा 4, जो तार यंत्रों की स्थापना, अनुरक्षण तथा चालन को नियंत्रित करती है, में यह अधिनियमित किया गया है कि केन्द्रीय सरकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को तार यंत्रों की स्थापना, अनुरक्षण तथा उनके चालन का अनन्य विशेषाधिकार होगा। धारा 4 के प्रथम परन्तुक में यह कहा गया है कि केन्द्रीय सरकार किसी व्यक्ति को भारत के किसी भाग के भीतर तार यंत्र की स्थापना, अनुरक्षण या चालन की अनुज्ञप्ति ऐसी शर्तों पर और ऐसे संदायों के प्रतिफलार्थ अनुदत्त कर सकेगी जैसी वह ठीक समझे। "तार यंत्र" को धारा 3(1) में परिभाषित किया गया है जिससे किसी प्रकार के चिह्नों, संकेतों, लेखन, प्रतिबिम्बों और ध्वनियों अथवा आसूचना का तार यंत्र, चाक्षुश या अन्य विद्युत-चुम्बकीय उत्सर्जनों, रेडियो तरंगों अथवा हर्टजियन तरंगों, गैल्वनीय, विद्युत् या चुम्बकीय साधनों से परेषण या प्राप्ति के लिए प्रयुक्त या प्रयोक्तव्य कोई साधित्र, उपकरण, सामग्री या यंत्र अभिप्रेत है। तार अधिनियम बेतार तारयांत्रिकी साधित्र के मात्र कब्जे को नियंत्रित नहीं करता। इसका मात्र कब्जा बेतार तारयांत्रिकी अधिनियम द्वारा नियंत्रित किया जाता है जिसकी धारा 3 में यह उपबंध किया गया है कि इस अधिनियम के अधीन जारी की गई अनुज्ञप्ति के अधीन और के अनुसार के सिवाय कोई भी व्यक्ति बेतार तार यांत्रिकी संयंत्र नहीं रखेगा। धारा 5 में अनुज्ञप्तियों के बारे में कहा गया है। इस धारा में यह उपबंध किया गया है कि तार अधिनियम के अधीन गठित तार प्राधिकारी अधिनियम के अधीन बेतार तारयांत्रिकी संयंत्र रखने के लिए अनुज्ञप्तियां जारी करने हेतु सक्षम प्राधिकारी होगा। "बेतार संचार" बेतार तारयांत्रिकी अधिनियम, 1933 की धारा 2(1) में परिभाषित किया गया है जिससे किसी भी प्रकार के चिह्नों, संकेतों, लेखन, प्रतिबिम्बों और ध्वनियों अथवा आसूचना का विद्युत्, चुम्बकत्व या रेडियो तरंग अथवा हर्टजियन तरंग के माध्यम से कोई प्रेषण, उत्सर्जन या प्राप्ति अभिप्रेत है जो प्रेषक और अभिग्राहित्र यंत्र के बीच तारों या अन्य अविरत विद्युत् चालकों के प्रयोग के बिना हो। "बेतार तारयांत्रिकी यंत्र" पद धारा 2(2) द्वारा परिभाषित किया गया है जिससे बेतार संचार में प्रयुक्त या प्रयोक्तव्य कोई यंत्र, साधित्र, उपकरण या सामग्री अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत कोई ऐसी वस्तु है जो धारा 10 के अधीन बनाए गए नियम द्वारा बेतार तारयांत्रिकी यंत्र होनी अवधारित की गई है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, केन्द्रीय सरकार ने भारतीय तार अधिनियम, 1885 की धारा 7 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में लाइसेंसिंग आफ वायरलैस रिसीविंग एपेरेटस रूल्स, 1965

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विरचित किए। इस नियमावली के नियम 5 में यह उपबंध किया गया है कि व्यक्तियों को अनुज्ञप्तियां ऐसे प्ररूप में जारी की जाएंगी जो उन प्रयोजनों के अनुसार जिनके लिए वे अपेक्षित हैं, अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा विहित किए जाएं। नियम 11 में यह कहा गया है कि अनुज्ञप्ति इन नियमों के अधीन रहते हुए अनुज्ञप्ति में अन्तर्विष्ट शर्तों के अध्यधीन है। अनुज्ञप्तियों को शासित करने वाली शर्तें भारतीय डाकतार विभाग द्वारा जारी किए गए वायरलैस लाइसेंसिंग मैनुअल के अध्याय 4 में अन्तर्विष्ट हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि घरेलू और वाणिज्यिक दो प्रकार की अनुज्ञप्तियां हैं। घरेलू अनुज्ञप्ति सामान्य प्रदर्शन के लिए पारेषित कार्यक्रमों और सूचनाओं को सुनने के लिए वायरलैस रिसीविंग एपेरेटस के प्रयोग को अनुज्ञात करती है। किन्तु यह साधित्र कारबार के परिसरों में या निवास के लिए संयुक्त रूप से प्रयुक्त किए जाने वाले कमरे में और कारबार के प्रयोजनों तथा अभिलाभ के लिए नहीं किया जा सकता। वाणिज्यिक अनुज्ञप्ति इस वायरलैस रिसीविंग एपेरेट्स के प्रयोग को सामान्य प्रदर्शन के लिए पारेषित कार्यक्रमों का सूचनाओं को सुनने के लिए कारबार के परिसरों, लोक स्थानों, निवासीय और कारबार प्रयोजनों के लिए संयुक्त रूप से प्रयुक्त कमरों अथवा अभिलाभ या यात्रियों के फायदे या सड़कों या रेलों या लोक यानों में विज्ञापन के लिए अनुज्ञा प्रदान करती है।

4. चलचित्र प्रदर्शनों के उचित नियंत्रण को विशिष्टतया उनमें उपस्थित होने वाले व्यक्तियों की सुरक्षा हेतु और जनता को अनुचित या आक्षेपणीय फिल्मों को प्रदर्शित करने से निवारित करना सुनिश्चित करने के लिए केन्द्रीय विधानमंडल ने सिनेमेटोग्राफ ऐक्ट, (चलचित्र अधिनियम), 1918 अधिनियमित किया। इस अधिनियम की धारा 3 में इस अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त स्थान से भिन्न किसी स्थान पर चलचित्र के माध्यम द्वारा प्रदर्शन को प्रतिषिद्ध किया गया है। धारा 7 लोक प्रदर्शन के लिए फिल्मों के प्रमाणन के संबंध में है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है संविधान की स्कीम के अधीन 1918 के अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले विषयों पर विधान बनाने की शक्ति ससद और राज्य विधानमंडलों के बीच वितरित की गई है। प्रदर्शन के लिए चलचित्र फिल्म की मंजूरी का विषय अनन्य रूप से संघ सूची के अन्तर्गत आता है और "सिनेमा" विषय अनन्य रूप से राज्य सूची के अन्तर्गत आता है। अतः संसद ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिनेमेटोग्राफ ऐक्ट (चलचित्र अधिनियम), 1952 अधिनियमित किया जो संघ राज्य क्षेत्रों के सिवाय संपूर्ण भारत पर लागू होता है और जो प्रदर्शन हेतु चलचित्र फिल्मों के प्रमाणन की बाबत है। मध्य प्रदेश राज्य विधान-मण्डल ने मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट, 1952 [मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियमन) अधिनियमन, 1952] अधिनियमित किया जो चलचित्रों के विनियमन और उनकी अनुज्ञप्तियों के बारे में है। इस अधिनियम की धारा 2(क) में "सिनेमेटोग्राफ" (चलचित्र) को परभाषित किया गया है जिसके अन्तर्गत "चलचित्र या चलचित्रों की आवली को प्रदर्शित करने के लिए कोई साधित्र" है। धारा 2(ख) में "स्थान" को परिभाषित किया गया है जिसके अन्तर्गत "कोई गृह, भवन, टेंट और समुद्र में, भूमि पर या वायु-मण्डल में चलाए जाने वाला किसी भी प्रकार का परिवहन है"। अधिनियम की धारा 3 में यह अधिनियमित किया गया है कि "इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित के सिवाय कोई भी व्यक्ति चलचित्र के माध्यम द्वारा किसी ऐसे स्थान के अतिरिक्त जिसे इस अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त है या अनुज्ञप्ति द्वारा अधिरोपित किन्हीं शर्तों या निर्बन्धनों के अनुपालन से भिन्न किसी स्थान पर इसका प्रदर्शन नहीं करेगा। धारा 5 में यह उपबंध किया गया है कि अनुज्ञापन प्राधिकारी कोई अनुज्ञप्ति तब तक मंजूर नहीं करेगा जब तक कि उसका यह समाधान न हो जाए कि (क) अधिनियम के अधीन विरचित नियमावली का सारवान् रूप से अनुपालन कर लिया गया है; और (ख) उस स्थान में, जिसकी बाबत अनुज्ञप्ति प्रदान की जानी है, किए जाने वाले प्रदर्शनों में उपस्थित होने वाले व्यक्तियों की सुरक्षा की व्यवस्था कर दी गई है, पर्याप्त रूप से पूर्वविधानियां न कर ली गई हों। धारा 6 राज्य सरकार को संपूर्ण राज्य और जिला मजिस्ट्रेट को उसकी अधिकारिता के भीतर उस जिले या कस्बे की बाबत किसी फिल्म के प्रदर्शन को निलंबित करने के लिए सशक्त किया गया है, यदि इसकी यह राय हो कि प्रदर्शित की जाने वाली फिल्म से शांति भंग होने की संभावना है। धारा 7 में इस अधिनियम के उपबंधों के अतिलंघन में चलचित्र या स्थान का प्रयोग करने के लिए शास्तियों का उपबंध किया गया है। धारा 9 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में राज्य सरकार ने मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) रूल्स, 1972 निर्मित किए। इन विनियमों में सिनेमा के लिए अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त करने की आवश्यकता के बारे में विचार किया गया है। "सिनेमा" पद नियमावली के नियम 3(ग) में परिभाषित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया गया है जिससे ऐसा कोई स्थान अभिप्रेत है, जहां चलचित्र के माध्यम से कोई प्रदर्शन किया जाता है।

5. मध्य प्रदेश एण्टरटेनमेंट ड्यूटी ऐक्ट (मध्य प्रदेश मनोरंजन शुल्क अधिनियम), 1936, जो सूची 2 की प्रविष्टि 62 के अन्तर्गत आने वाली विधि है, के उपबंधों के अधीन राज्य द्वारा मनोरंजन शुल्क उद्गृहीत किया जाता है। अधिनियम की धारा 2(ख) में "मनोरंजन" पद को परिभाषित किया गया है जिसके अन्तर्गत कोई ऐसा प्रदर्शन, नाट्य प्रदर्शन, मनोरंजन, द्यूत या खेलकूद है, जिसमें व्यक्तियों को संदाय करने पर प्रवेश दिया जाता है, है। यह शुल्क धारा 3 में यथा उपबंधित रूप में मनोरंजन के लिए प्रवेश हेतु प्रत्येक संदाय की बाबत 50% की दर से देय है।

6. पिटीशनरों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान काउंसेल ने प्रथम दलील यह दी कि मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट, [मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियम) अधिनियम], 1952 की धारा 2(क) में आया हुआ "सिनेमेटोग्राफ" शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत इसके स्वयं के निबंधनों के आधार पर वी०सी०आर० और टी०वी० सैट नहीं आते। यह तर्क दिया गया कि इस अर्थान्वियन को स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि वी०सी०आर० और टी० वी० का विषय पूर्णतः तार अधिनियम और बेतार तारयांत्रिकी अधिनियम, जो सूची 1 की प्रविष्टि 31 के अन्तर्गत आने वाले विधायन हैं, के अन्तर्गत आता है और चूंकि यह क्षेत्र पूर्ण रूप से केन्द्रीय अधिनियम के अन्तर्गत आता है, अतः यदि राज्य अधिनियम का यह अर्थ लगाया जाता है कि इसके अन्तर्गत ये साधित्र आते हैं तो यह राज्य विधानमंडल की विधायी सक्षमता से परे होगा।

7. वी०सी०आर० में ब्लैक एंड व्हाईट और कलर दोनों में ध्वनि और दृश्यों को चुम्बकीय टेप के आधार पर रिकार्ड करना और इसके पश्चात् अपेक्षानुसार उनका प्रदर्शन करना परिकल्पित हैं। वी०सी०आर० में एक स्वरसमंजक (ट्यूनर) होता है जो यंत्र को एनटीना से प्राप्त होने वाले संकेतों को रिकार्ड करने में सहायक होता है। इस प्रकार रिकार्ड की गई इस सामग्री को साधारण घरेलू टी०वी० सेट पर देखा जा सकता है। कोई भी व्यक्ति किसी अन्य स्टेशन पर के टी०वी० सेट के स्वरसमंजक का प्रयोग करते हुए वी०सी०आर० स्वरसमंजक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का प्रयोग करते हुए फिल्म रिकार्ड कर सकता है। वी० सी० आर० में एक डिजिटल क्लॉक (अंक संबंधी घड़ी) होती है जो टाइमर (समय मापक यंत्र) के साथ सहयोजित होती है जिससे कि कोई भी फिल्म रिकार्ड की जा सके चाहे व्यक्ति बिस्तर पर हो या घर से बाहर हो। वी० सी० आर० में अन्य मशीनों पर रिकार्ड किए गए टेपों को और फिल्मों के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसेटों को पुनः चलाया जा सकता है। (डेविड ओनर/मार्क डंटन द्वारा रचित दि कम्पलीट हैण्डबुक आफ वीडियो, पृ० 18 देखिए)। जब किसी वी० सी० आर० का एक वीडियो टेप पर इसका स्वरसमंजक की सहायता से टी०वी० प्रसारण कार्यक्रम को रिकार्ड करने में प्रयोग किया जाता है तब इसका प्रयोग इसे तार अधिनियम की धारा 3(1) में आए हुए "तार" और "बेतार तारयांत्रिकी" अधिनियम की धारा 2(ख) में यथा अन्तर्विष्ट "बेतार तारयांत्रिकी साधित्र" की परिभाषा के अन्तर्गत आता है। लेकिन ऐसे वी० सी० आर० जिनमें आर० एफ० ट्यूनर (स्वर संमजक) और मानीटर्स नहीं होते तथा जो प्रसारण कार्यक्रम को प्राप्त नहीं कर पाते वे उपरोक्त परिभाषाओं के अन्तर्गत नहीं आते अतः इन्हें उक्त अधिनियमों के अधीन किसी अनुज्ञप्ति की आवश्यकता नहीं होती। इस विषय की डाक और तार महा-निदेशक द्वारा परीक्षा की गई थी जिसने सेना डाक सेवा और डाक सर्किलों के सभी प्रधानों को इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए तथा मार्गदर्शन देते हुए 31 अक्तूबर, 1981 को पत्र सं० 16-1/81-बी० आर एल जारी किया। तार अधिनियम और बेतार तारयांत्रिकी अधिनियम अन्य अधि-नियमों के साथ रेडियो और टी० वी० प्रसारण के पारेषण और प्राप्ति के विषय में हैं। वी० सी० आर० प्रसारण को पारेषित करने वाला साधित्र नहीं है। इसका प्रयोग आर० एफ० ट्यूनर सैक्शंस और प्रसारण कार्यक्रमों को प्राप्त करने हेतु मोनीटर्स को फिट करने के पश्चात ही किया जा सकता है अतः ऐसे वीडियो कैसेट रिकार्डरों से प्रसारण प्राप्त करने के लिए अनुज्ञप्ति की आवश्यकता होती है। जब वी० सी० आर० का केवल टी० वी० पर्दे पर पहले ही रिकार्ड किए गए टेपों को मात्र सुनने के लिए ही प्रयोग किया है तब ये न तो तार अधिनियम के अधीन और न ही बेतार तारयांत्रिकी अधिनियम के अधीन आते हैं। इन पिटी-शनों में हमारा संबंध उन वी० सी० आर० और टी० वी० सैटों से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं है जो टी० वी० स्टेशनों से प्रसारण को ग्रहण करने के लिए बनाए गए हैं। वस्तुतः अधिकांश पिटीशनरों के अपने भोजनालय ऐसे स्थानों पर हैं जो टेलीविजन केन्द्र के अन्तर्गत नहीं आते क्योंकि हमारे राज्य में केवल रायपुर, भोपाल और इंदौर में ही टेलीविजन केन्द्र हैं। इन पिटीशनों में हमारा संबंध केवल ऐसे वी० सी० आर० और टी० वी० सैटों से है जो चलचित्रों के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसेटों को बजाते और प्रदर्शित करते हैं। इन साधित्रों का इस प्रकार का प्रयोग पूर्वोक्त दोनों केन्द्रीय अधिनियमों के अन्तर्गत नहीं आता अत: विद्वान काउन्सेल द्वारा यह दलील देना सही नहीं है कि वी० सी० आर० और टी० वी० सैटों से संबंधित सभी क्षेत्र इन अधिनियमों के अन्तर्गत आता है।

8. इसके पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि क्या चलचित्रों के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसैटों का प्रयोग मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट [मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियमन) अधिनियम, 1952] की परिधि के अन्तर्गत आता है? हम इस बात का पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि "चलचित्र" इस अधिनियम की धारा 2(क) में परिभाषित किया गया है जिसके अन्तर्गत चलचित्र या चलचित्रों की आवली को प्रदर्शित करने के लिए कोई साधित्र है। इस परिभाषा के निबन्धन विस्तृत हैं। यह परिभाषा केवल उन प्रक्षेपण यंत्रों तक ही सीमित नहीं है जिनका प्रयोग साधारणतया चलचित्रों को दिखाने के लिए सिनेमाओं में किया जाता है। समावेशी परिभाषा पूर्णतः सामान्य है और चलचित्र या चलचित्रों की आवली को प्रदर्शित करने के लिए किसी साधित्र को सम्मिलित करने के लिए विस्तृत है। अतः जब किसी वी० सी० आर० टी० वी० का पर्दे पर चलचित्रों के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसेटों को बजाने में प्रयोग किया जाता है तब निश्चित रूप से इसका प्रयोग ऐसे साधित्र के रूप में किया जाता है जो चलचित्र या चलचित्रों की आवली को प्रदर्शित करने के लिए है, अतः यह प्रयोग "चलचित्र" की परिभाषा के अन्तर्गत आता है। इसी प्रकार पिटीशनरों द्वारा अपने भोजनालयों में वी० सी० आर० में पहले ही रिकार्ड किए गए कैसेटों को चलाना और चलचित्रों को प्रदर्शित करना अधिनियम की धारा 3 में अन्तर्विष्ट प्रतिषेध के अन्तर्गत आता है। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, धारा 3 इस अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त स्थानों से भिन्न स्थान पर चलचित्र द्वारा प्रदर्शन को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिषिद्ध करती है। "स्थान" पद को धारा 2 (ख) द्वारा परिभाषित किया गया है जिसके अन्तर्गत कोई गृह भवन, आदि आता है। पिटीशनरों के भोजनालय "स्थान" पद की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं। "प्रदर्शित करना" (एक्जीबिट) पद के अर्थों में से एक अर्थ "मनोरंजन या अनुदेश के प्रयोजन के लिए सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करना है"। "प्रदर्शन" से सार्वजनिक रूप में प्रदर्शन अर्थात ऐसा प्रदर्शन आता है जिसमें जनता को प्रवेश दिया जाता है (इंगलिश डिक्शनरी, जिल्द III, पृ० 408-409 और दि रेंडम हाउस डिक्शनरी, सम्पूर्ण संस्करण, पृ० 499 देखिए)। इसी भाव में धारा 3 में यथा प्रयुक्त "प्रदर्शन" शब्द के अर्थ को समझा जाना है। उदाहरणार्थ यदि किसी वी० सी० आर० का प्रयोग किसी व्यक्ति के अपने निवास स्थान पर चलचित्र के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसैटों को चलाने में किया जाता और उस प्रदर्शन को परिवार के सदस्यों या मित्रों तक ही सीमित किया जाता है तथा उस प्रदर्शन में जनता को प्रवेश नहीं दिया जाता तो ऐसा प्रदर्शन धारा 3 में प्रतिषेध के अन्तर्गत नहीं आएगा। किन्तु पिटीशनर अपने भोजनालयों में वी० सी० आर० और टी० वी० कैसैटों की सहायता से चलचित्रों का प्रदर्शन कर रहे हैं जहां कि जनता को प्रवेश दिया जाता है। यह स्पष्ट रूप से चलचित्रों के माध्यम द्वारा प्रदर्शन की कोटि में आता है अतः पिटीशनरों का यह क्रियाकलाप धारा 3 के प्रतिषेध के अन्तर्गत है। पिटीशनर इस प्रकार के क्रियाकलाप को तब तक नहीं चला सकते जब तक कि वे अधिनियम के अधीन अपने भोजनालयों के लिए अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त न कर लें।

9. मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट [मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियमन) अधिनियम], 1952 सूची 2 की प्रविष्टि 32 द्वारा राज्य विधानमण्डल को प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में अधिनियमित किया गया है। इस सूची में विनिर्दिष्ट रूप से "चलचित्र" सम्मिलित है। इस तर्क को कि यह प्रविष्टि केवल फोटोग्राफ संबंधी चलचित्रों के प्रदर्शन तक ही सीमित होनी चाहिए, स्वीकार नहीं किया जा सकता। आजकल साधारणतया चलचित्र बनाने में वह ध्वनि जो 1950 के अन्त तक सदैव ही फोटोचित्रण के आधार पर रिकार्ड की जाती थी, जब अधिकांशतः सर्वत्र चुम्बकीय फिल्मों या टेपों पर रिकार्ड की जाती है। [चैम्बर्स

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(एनसाइक्लोपीडिया) नया पुनरीक्षित संस्करण, जिल्द III, पृ० 584 देखिए]। इसके अतिरिक्त चलचित्र बनाने से पूर्व चलचित्र बनाने वाले भी शाट का निरीक्षण करने के लिए वीडियो टेप का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार टेलीविजन के उत्पादन की अनेक शाखाओं में फिल्म कैमरा अनिवार्य है। तकनीकी मतभेदों के होते हुए भी चलचित्र और टेलीविजन सौंदर्य की दृष्टि से एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबधित हैं और इनका यह घनिष्ठ संबंध चालू रहेगा और स्वाभाविक रूप से यह संबंध तकनीकी क्षेत्र में भी विस्तृत होगा। [एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, मैक्रोपीडिया, जिल्द 18 (15वां संस्करण) पृ० 125 देखिए]। संविधान में या किसी आधुनिक कानून में प्रयुक्त भाषा का साधारण शब्दों में वर्णन किया जाता है और इसका अर्थ ऐसे नए वैज्ञानिक आविष्कारों को सम्मिलित करने के लिए किया जाता है जो संविधान या कानून को पारित करते समय अज्ञात थे। इसी सिद्धान्त के आधार पर उच्चतम न्यायालय ने **सीनियर इलैक्ट्रिक इन्स्पैक्टर** बनाम **लक्ष्मीनारायण चौपड़ा**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि बेतार तार के प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त बिजली लाइनें इलैक्ट्रिसिटी ऐक्ट, 1910 (बिजली अधिनियम, 1910) की धारा 34(2) और तार अधिनियम, 1885 की धारा 3(4) के अर्थान्तर्गत पश्चात्वर्ती अधिनियम के तार विधियां (संशोधन) अधिनियम, 1961 द्वारा संशोधन के पूर्व भी, तार लाईनें हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया है कि रेडियो और टी०वी० प्रसारण कामनवैल्थ आफ आस्ट्रेलिया कांस्टीट्यूशन ऐक्ट, 1900 (**आर० बनाम बिसलन**[2]: **एकपक्षीय विलियम्स और जोंस बनाम दि कामनवैल्थ**[3]) की धारा 51 (5) के अधीन "डाक तार यांत्रिकी, टेलीफोनिक और इसी प्रकार की अन्य सेवाओं" अभिव्यक्ति में सम्मिलित है। वास्तव में अर्थान्वयन के इस सिद्धान्त के आधार पर यह सूची 1 की प्रविष्टि 31 के अर्थ के अन्तर्गत ऐसा टी० वी० प्रसारण है जो संविधान के अधिनियमित किए जाने के समय प्रारम्भ नहीं हुआ था। इसके अतिरिक्त जब तक कि हम चुम्बकीय टेप के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसैटों से चलचित्र के प्रदर्शन को "सिनेमा" और "चलचित्र" में सम्मिलित नहीं करते तब तक

---

1. ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 159.
2. (1935) 54 सी० एल० आर० 262
3. (1964) 112 सी० एल० आर० 216.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऐसे चलचित्रों पर सेंसरशिप की विधि को लागू करना असंभव है क्योंकि संसद को प्रदत्त सेंसरशिप की शक्ति सूची[1] को प्रविष्टि 60 द्वारा प्रदर्शन के लिए चलचित्र फिल्मों की मंजूरी तक ही सीमित है। जिन चलचित्रों को पिटीशनर वी० सी० आर० और टी० वी० से प्रदर्शित कर रहे हैं वे फोटोचित्रण फिल्मों पर ली गई फिल्में हैं। इन चलचित्रों के चुम्बकीय टेप के कैसेट या तो निर्माताओं द्वारा या प्रतिलिप्याधिकार विधि के अतिलंघन में अनधिकृत रूप से बेचे जाते हैं। इन कैसेटों का चलचित्रों को दिखाने के लिए वी० सी० आर० में प्रयोग किया जाता है। हमारी यह स्पष्ट राय है कि पिटीशनरों के भोजनालयों में इस प्रकार वी० सी० आर० और टी० वी० से चलचित्रों का प्रदर्शन सूची 2 की प्रविष्टि 32 में "सिनेमा" की परिधि के अन्तर्गत आता है जो म० प्र० सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट म० प्र० चलचित्र (विनियम) अधिनियम, 1952 के विनियमनकारी उपबंधों द्वारा शासित है।

10. इस समस्या पर एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है। म० प्र० सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट [म० प्र० चलचित्र (विनियमन) अधिनियम], 1952 की धारा 5 और तद्धीन विरचित विनियमों से यह दर्शित होता है कि अधिनियम में लोक व्यवस्था और लोक स्वास्थ्य का संरक्षण चाहा गया है। उदाहरणार्थ अनुज्ञापन प्राधिकारी को धारा 5 द्वारा अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति मंजूर न करने के लिए तब तक व्यादिष्ट किया गया है, जब तक कि उसका यह समाधान न हो जाए कि नियमों का सारवान् रूप से अनुपालन किया गया है और उस स्थान पर, जिसकी बाबत उसमें प्रदर्शन में उपस्थित होने वाले व्यक्तियों की सुरक्षा के लिए व्यवस्था करने हेतु अनुज्ञप्ति दी जानी है, पर्याप्त रूप से पूर्वावधानियां बरती गई हैं। विरचित विनियमों में उन व्यक्तियों की सुरक्षा और स्वास्थ्य को जो चलचित्र देखने आते हैं सुनिश्चित करने के लिए समुचित प्रवेश द्वार, निकास, बैठने की सीटें, संवातन, सफाई सुविधा आदि की व्यवस्था की गई है। **राजस्थान राज्य बनाम जी० चवाला**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने सूची 2 की प्रविष्टि 1 और 6 के अधीन विरचित अजमेर (साउण्ड एम्पलीफायर्स कंट्रोल) ऐक्ट, 1953 की विधिमान्यता को यह अभिनिर्धारित करते हुए अनुमोदित किया कि यह अधिनियम स्वास्थ्य और शांति के हित में एम्पलीफायरों

1. ए० आई० आर० 1959 एस० सी० 544.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के प्रयोग को नियंत्रित करने से संबंधित विधि है। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि एम्पलीफायर्स प्रसारण और साथ ही साथ संचार के उपकरण भी हैं तथा संघ सूची की प्रविष्टि 31 के अन्तर्गत आते हैं। किन्तु उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि एम्पलीफायरों के व्यवसाय में इस प्रकार के साधित्रों के विनियमन सहित इनका विनिर्माण या इनका स्वामित्व या कब्जे के नियंत्रण के लिए अनुज्ञापन एक बात है किन्तु इस प्रकार के साधित्रों को, चाहे इन्हें विधिपूर्ण रूप से क्रय किया गया हो या कब्जे में हों, अन्य व्यक्तियों की शांति, स्वास्थ्य और आराम में अपायकर रूप में प्रयोग को नियंत्रित करना एक अन्य बात है। दोनों केन्द्रीय अधिनियमों में उन स्थानों के अनुज्ञापन के बारे में कोई उपबंध नहीं किया गया है, जहां कि वीडियो कैसैट रिकार्डर की सहायता से चलचित्र प्रदर्शित किए जा सकते हों। ऐसे स्थानों के अनुज्ञापन की म० प्र० सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट के उपबंधों के अधीन अपेक्षा सूची 2 की प्रविष्टि 33 के अधीन आने के बावजूद भी सूची 2 की प्रविष्टि 1 और 6 के अन्तर्गत आती हैं जो **राजस्थान राज्य** बनाम **जी० चावला**[1] वाले मामले में अधिकथित सिद्धान्तों के आधार पर लोक व्यवस्था और लोक स्वास्थ्य के संबंध में हैं।

11. पिटीशनरों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान काउन्सेल ने इस बात पर जोर दिया कि इन पिटीशनरों के पास अपने भोजनालयों में लगाए गए वीडियों कैसैट रिकार्डरों के लिए वाणिज्यिक अनुज्ञप्तियां हैं जो इन्हें पहले ही रिकार्ड किए गए कैसैटों पर चलचित्र प्रदर्शित करने के प्रयोजनों के लिए इन सैटों के प्रयोग के लिए हकदार बनाते हैं। यह तर्क सार रहित है। वाणिज्यिक अनुज्ञप्ति वी० सी० आर० और टेलीविजन के प्रयोग को केवल कारबार के परिसरों में सामान्य रूप से ग्रहण करने के लिए संचारित कार्यक्रमों और समाचारों को प्राप्त करने के लिए अनुज्ञात करती है। यह अनुज्ञप्ति चलचित्रों के पहले ही रिकार्ड किए गए कैसैटों को वी०सी०आर० और टेलीविजन पर दिखाने के लिए अनुज्ञात नहीं करती। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, इन साधित्रों का इस प्रकार का प्रयोग केन्द्रीय अधिनियमों और तद्धीन विरचित नियमों से बाह्य है। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि केन्द्रीय अधिनियमों के अन्तर्गत आने वाले विषय पर राज्य द्वारा विरचित अधिनियम प्रवर्तित नहीं हो सकता।

1 ए० आ.ई० आर० 1959 एस० सी० 544.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह तर्क जो लागू होने वाले क्षेत्र के सिद्धान्त के आधार पर दिया गया है, इस मामले में लागू नहीं होता। केन्द्रीय अधिनियमों के अन्तर्गत पहले ही रिकार्ड किए गए कैसेटों से चलचित्र प्रदर्शित करने के लिए वी०सी०आर० और टेलीविजन के अनुज्ञापन के विषय नहीं आते और न ही उन स्थानों के, जहां इस प्रकार का क्रियाकलाप चलाया जाता है, अनुज्ञापन इसके अन्तर्गत आता है। राज्य अधिनियम अर्थात् मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट [म०प्र० चलचित्र (विनियमन) अधिनियम], 1952 जिसके अन्तर्गत इस प्रकार के स्थानों की अनुज्ञप्ति आती है, ऐसे क्षेत्र में प्रवर्तित होते हैं जो केन्द्रीय अधिनियमों के अन्तर्गत न हों। यह भी तर्क दिया गया कि इस अधिनियम के अधीन विरचित विनियम भोजनालयों के लिए उचित नहीं हैं क्योंकि ये विनियम बड़े-बड़े सिनेमा घरों के लिए परिकल्पित हैं। इस तर्क को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। हमें यह बात स्पष्ट है कि यद्यपि विनियमों के कुछ उपबंध, लागू न होते हों तथापि प्रदर्शन में आने वाले व्यक्तियों के संवातन, सफाई और सुरक्षा और पूर्वावधानियों से संबंधित उपबंध स्पष्ट रूप से लागू होते हैं। प्रत्येक दशा में अधिनियम की धारा 5(ख) जिसमें अनुज्ञापन प्राधिकारी से यह अपेक्षा की गई है कि वह अनुज्ञप्ति मंजूर करने से पूर्व यह देखे कि सुरक्षा संबंधी पूर्वावधानियां पर्याप्त रूप से ली गई हैं, स्पष्ट रूप से लागू होते हैं।

12. यदि पिटीशनरों को बिना किसी विनियम के छोटे सिनेमाओं के रूप में अपने भोजनालयों में इन्हें अनुज्ञात कर दिया जाता है तो लोगों को होने वाला खतरा स्पष्ट दिखाई देता है। उन व्यक्तियों की सुरक्षा और स्वास्थ्य को जोखिम होगी जो इन भोजनालयों में इन चलचित्रों को देखने आते हैं। जब कोई प्रमुख चलचित्र का प्रदर्शन किया जा रहा हो तब इन भोजनालयों के बाहर और भीतर भीड़ का इकट्ठा होना लोक व्यवस्था के लिए एक समस्या उत्पन्न करेगा। इसके अतिरिक्त इन चलचित्रों के बहुत से स्वामी अनधिकृत और अश्लील (ब्लू) फिलम का प्रदर्शन करेंगे। समाचारपत्रों की रिपोर्टों द्वारा इन आशंकाओं की पुष्टि हो चुकी है (8 अप्रैल, 1983 का इण्डियन एक्सप्रैस देखिए)। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि पहले ही रिकार्ड किए गए कैसैटों से अपने भोजनालयों में चलचित्रों का प्रदर्शन करने के लिए पिटीशनरों को मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगुलेशन) ऐक्ट [मध्य प्रदेश चलचित्र (विनियमन) अधिनियम], 1952 के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त करने की आवश्यकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

13. पिटीशनरों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील भी दी थी कि यद्यपि पिटीशनर मध्य प्रदेश सिनेमाज (रेगूलेशन) ऐक्ट [मध्य प्रदेश चलचित्र(विनयमन) अधिनियम] 1952 के उपबंधों के अतिलंघन में कार्य कर रहे हैं तथापि प्रत्यर्थियों को वी०सी०आर० से चलचित्रों के प्रदर्शन को रोकने का आदेश देने की अधिकारिता नहीं है। हमारी राय में इस तर्क में कोई बल नहीं है। सम्बद्ध प्राधिकारियों ने पिटीशनरों को केवल इस बात का संकेत दिया है कि वे अधिनियम के उपबंधों का अतिलंघन कर रहे हैं क्योंकि उनके भोजनालय अनुज्ञप्ति प्राप्त भोजनालय नहीं हैं। यदि पिटीशनर इन चलचित्रों के प्रदर्शन को नहीं रोकते तो प्राधिकारियों को अधिनियम के अधीन शास्तिक कार्रवाई करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा।

14. अब हम मध्य प्रदेश मनोरंजन शुल्क अधिनियम, 1936 के लागू होने से संबंधित प्रश्न पर विचार करेंगे। पिटीशनरों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान काउन्सेल ने यह तर्क दिया कि चूंकि पिटीशनर मनोरंजन के लिए कोई प्रवेश शुल्क नहीं ले रहे हैं और चूंकि वे केवल ग्राहकों को दी जाने वाली चाय, काफी या खाद्य पदार्थों के लिए ही कीमत ले रहे हैं अतः यह अधिनियम उन पर लागू नहीं होता। हम धारा 2(ख) में अन्तर्विष्ट मनोरंजन की परिभाषा और धारा 3 के उपबंधों का, जो प्रभारी धारा है, पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। प्रवेश के लिए संदाय मनोरंजन-शुल्क के अधिरोपण के लिए पूर्वापेक्षा है। इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि यदि ग्राहकों को संदाय के आधार पर प्रवेश दिया जाता है, तो भोजनालयों में वी० सी० आर० और टी० वी० की सहायता से चलचित्रों का प्रदर्शन मनोरंजन है। यह प्रश्न कि क्या ग्राहकों को संदाय के आधार पर प्रवेश दिया जाता है, तथ्य-विषयक प्रश्न है। दृश्यमान रूप से यह हो सकता है कि चलचित्र देखने के लिए कोई प्रवेश-शुल्क न हो किन्तु केवल इसी बात से यह नहीं कहा जा सकता कि व्यक्तियों को पिटीशनरों द्वारा संदाय के आधार पर प्रवेश नहीं दिया जाता। यदि पिटीशनरों द्वारा ली जाने वाली राशि ऐसी है जिसके बारे में यह कहा जा सकता हो कि वस्तुतः ग्राहक भोजनालयों में चलचित्र देखने के लिए संदाय कर रहे हैं न कि चाय, काफी और खाद्य पदार्थों का उपभोग करने के लिए तो इससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि ग्राहकों को संदाय के आधार पर प्रवेश दिया जाता है और इस तरह धारा 2 (ख) में दी गई परिभाषा की अपेक्षा की पूर्ति हो जाती है। किन्तु दूसरी ओर यदि ग्राहकों द्वारा उपभोग किए गए पेय और खाद्य पदार्थों के लिए आवश्यक रूप से संदाय किया जाता है तो यह कहना संभव नहीं है कि उन्हें धारा 2(ख) के अर्थान्तर्गत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मनोरंजन के लिए संदाय के आधार पर प्रवेश दिया जाता है। यह प्रश्न मुख्यतः तथ्य-विषयक प्रश्न है। किन्तु यह स्पष्ट है कि चाय, काफी और खाद्य पदार्थों के लिए ली जाने वाली कोई राशि और भोजनालयों में प्रदर्शित किए जाने वाले चलचित्र को देखने के लिए पृथक रूप से किसी रकम के न लिए जाने के आधार पर पिटीनशर अधिनियम के उपबंधों से नहीं बच सकते। उदाहरणार्थ यदि किसी भोजनालय का स्वामी एक प्याला काफी या चाय के लिए 7 रुपये लेता है तो यह स्पष्ट है कि ली गई इस राशि में आवश्यक और सारवान् रूप से चलचित्र देखने का प्रभार सम्मिलित है और काफी के आधार पर ली गई राशि अधिनियम से बचने का एक साधन है। अधिनियम के उपबंधों को प्रवर्तित करने वाले प्राधिकारी इन प्रश्नों की परीक्षा करेंगे तथा प्रत्येक पिटीशनर के मामले पर उनके द्वारा पृथक रूप से विचार किया जाएगा। हम यह सामान्य घोषणा नहीं कर सकते कि पिटीशनर अधिनियम के उपबंधों से बाह्य हैं।

15. मध्यक्षेपी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि पिटीशनर प्रतिलिप्याधिकार, 1957 के अतिलंघन में चलचित्र का प्रदर्शन करते है। प्रतिलिप्याधिकार अधिनियम की धारा 13 और 14 चलचित्र फिल्मों के प्रतिलिप्याधिकार के संबंध में है जिससे अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित कार्य करने या कार्य करने के लिए प्राधिकृत करने का अनन्य अधिकार अभिप्रेत है : (i) चलचित्र की प्रति तैयार करना, (ii) चलचित्र का, जहां तक कि यह दृश्यबिम्ब से संबंधित है, जनता को दिखाया जाना और जहां तक यह ध्वनियों से संबंधित है, जनता को सुनाया जाना। "ब्राडकास्ट रिप्रोडक्शन राइट" (प्रसारण पुनरुत्पादन अधिकार) के रूप में ज्ञात अधिकार, जो किसी भी ऐसे कार्यक्रम में प्रतिलिप्याधिकार के समान है, और जो रेडियो डिफ्यूजन द्वारा प्रसारित किया जाता है, सरकार रखती है। यदि समाचार-पत्र को रिपोर्टें सही हैं तो अखिल भारतीय फिल्म निर्माता परिषद् ने अप्रैल, 1980 में घरेलू वीडियो विषयक उन अधिकारों की बिक्री को प्रतिषिद्ध कर दिया था जिसके कारण बड़ी मात्रा में वीडियो की अनधिकृतता में वृद्धि हो गई थी और इस प्रश्न पर फिल्म उद्योग में पुनः विचार किया जा रहा है। (20 अप्रैल, 1983 को एन० आई० पत्रिका देखिए)। यदि यही मान लिया जाए, जैसा कि है कि तो इस प्रश्न का कि क्या पिटीशनर प्रतिलिप्याधिकार या प्रसारण पुनरुत्पादन अधिकार का अतिलंघन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर रहे हैं, उत्तर यथावत् रूप से नहीं दिया जा सकता। यदि किसी विशेष मामले में इस प्रकार के अधिकारों का अतिलंघन किया जाता है या उनका अतिलंघन किया जाना संभाव्य हो, तो व्यथित पक्षकार उन उपचारों का आश्रय ले सकता है जो विधि में उपलब्ध हैं।

16. ये पिटीशन असफल होते हैं और इन्हें खारिज किया जाता है किन्तु खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता। प्रतिभूति रकम का, यदि कोई हो, पिटीशनरों को प्रतिदाय किया जाए।

पिटीशन खारिज किए गए।

बंसल/मि०

नि० प० 1983 : मध्य प्रदेश—456

अपर आय-कर आयुक्त, मध्य प्रदेश, भोपाल, बनाम मैसर्स अग्रवाल टिम्बर एण्ड बांस कं०, सतना

(The Additional Commissioner of Income-tax, M.P., Bhopal Vs. M/s. Agarwal Timber and Bans Co., Satna)

तारीख 6 मई, 1983

[मु० न्या० जी० पी० सिंह और न्या० के० के० अधिकारी]

आय-कर अधिनियम, 1961 धारा 41 (2)—यदि किसी भागीदारी फर्म ने भागीदारी फर्म से निवृत्त भागीदारों को उनके हिस्से की रकम के बराबर फर्म की किसी आस्ति का आबंटन कर दिया है तो ऐसी स्थिति में उक्त धारा के अधीन उस आस्ति को लाभ के रूप में निर्धारण हेतु विचार में नहीं लिया जाएगा—उस आस्ति पर लाभ के रूप में कर का निर्धारण नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसे संव्यवहार में विक्रय नहीं हुआ था।

निर्धारिती एक भागीदारी फर्म है। मूलतः निर्धारिती फर्म चार भागीदारों से मिल कर गठित हुई थी जिसमें से दो भागीदारों ने फर्म से निवृत्त होकर पृथक फर्म गठित कर ली। निर्धारिती फर्म ने अन्य व्यक्तियों को भागीदार बना लिया। निर्धारिती-फर्म ने निवृत्त होने वाले

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दोनों भागीदारों को 48,000 रुपये के परिसमापन में, जो कि ऐसी रकम थी जिसे बाहर जाने वाले भागीदारों को निर्धारिती-फर्म से प्राप्त करनी थी, दो ट्रक और एक जीप दी। ट्रक और जीप का अवलिखित मूल्य 29,621 रुपये था। आय-कर अधिकारी ने आय-कर अधिनियम की धारा 41 (2) के अधीन इन दोनों रकमों के अन्तर पर जो 18,379 रुपये है कर लगा दिया। आय-कर अधिकारी के इस आदेश को सहायक (अपील) आयुक्त ने अपील में कायम रखा। किन्तु आगे की गई अपील में अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि फर्म ने निवृत्त होने वाले भागीदारों को यानों का विक्रय नहीं किया है अतः धारा 41 (2) लागू नहीं होगी। विभाग की ओर से यह दलील दी गई कि विघटन की दशा में फर्म का अस्तित्व समाप्त हो जाता है अतः आस्तियों के वितरण के समय फर्म द्वारा अपने भागीदारों को कोई अन्तरण नहीं किया जा सकता। किन्तु जब कोई भागीदार निवृत्त होता है तब फर्म का अस्तित्व में रहना बना रहता है अतः निवृत्त होने वाले भागीदार के पक्ष में फर्म द्वारा उस समय अन्तरण या विक्रय किया जा सकता है जब कि निवृत्त होने वाले भागीदार को भागीदारी आस्तियों में उसके हिस्से के बदले में कोई विशिष्ट आस्ति आबंटित की जाती है। प्रस्तुत मामले में विचारार्थ और अवधारणार्थ प्रश्न यह है कि क्या निर्धारिती-फर्म ने निवृत्त भागीदारों को यानों का विक्रय किया है और क्या ऐसे विक्रय पर आय-कर अधिरोपित किया जा सकता है?

अभिनिर्धारित—निर्देशित प्रश्न का उत्तर दिया गया।

निवृत्त होने वाले भागीदार के अधिकारों का उसी आधार पर निर्धारण किया जाता है मानो कि फर्म का विघटन हो गया है। किसी भागीदार की निवृत्ति जहां तक उसका संबंध है, फर्म का विघटन है। वह विक्रय के आदेश द्वारा साख सहित आस्तियों के अपने समुचित हिस्से को प्राप्त करने के लिए भी बाध्य कर सकता है। किन्तु न्यायालय अपवादात्मक परिस्थितियों को छोड़ कर विक्रय का आदेश नहीं देता और निवृत्त होने की तारीख पर निवृत्त होने वाले भागीदार के हिस्से के मूल्य के आधार पर संदाय करने का निदेश देता है। जब कोई भागीदार निवृत्त होता है तब उसके और शेष भागीदारों के बीच अधिकारों का परस्पर समायोजन होता है और फर्म द्वारा निवृत्त होने वाले भागीदार के पक्ष में विक्रय या अन्तरण करने का प्रश्न ही नहीं उठता चाहे कुछ आस्ति उसके उस हिस्से के जिसे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.
के रूप में निर्धारण के लिए विचारित 18,379 रुपये की रकम को कम करने में न्यायोचित है।"

2. सुसंगत निर्धारण वर्ष 1968-69 है जिसका लेखा वर्ष 31 जुलाई, 1967 को समाप्त होता है। निर्धारिती एक भागीदारी फर्म है। मूलतः निर्धारिती 4 भागीदार अर्थात् माया प्रकाश, बालकिशनदास, शांतिस्वरूप और कांचीमल थे। 1966 के लेखा वर्ष में फर्म के दो भागीदार अर्थात् माया प्रकाश और कांचीमल फर्म से निवृत्त हो गए और उन्होंने पृथक फर्म गठित कर ली। निर्धारिती फर्म ने अन्य दो व्यक्तियों को भागीदार बना लिया। माया प्रकाश और कांचीमल के निवृत्त हो जाने पर निर्धारिती फर्म ने उन्हें 48,000 रुपये के परिसमापन में, जो कि ऐसी रकम थी जिसे बाहर जाने वाले भागीदारों को निर्धारिती फर्म से प्राप्त करनी थी, दो ट्रक और एक जीप दी। ट्रकों और जीप का अवलिखित मूल्य 29,621 रुपये था। 48,000 रुपये और 29,621 रुपये के अन्तर पर जो 18,379 रुपये है, आय-कर अधिनियम की धारा 41(2) के अधीन आय-कर अधिकारी ने लाभ के रूप में कर लगा दिया। आय-कर अधिकारी के इस आदेश को सहायक (अपील) आयुक्त ने अपील में कायम रखा। आगे की गई अपील में अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि फर्म ने निवृत्त होने वाले भागीदारों को यानों का विक्रय नहीं किया है, अतः धारा 41(2) लागू नहीं होती।

3. धारा 41(2) केवल वहां लागू होती है जहां कि कोई भवन, मशीनरी, संयंत्र आदि विक्रीत, त्यक्त, तोड़े या नष्ट किए जाते हैं। प्रस्तुत मामले में प्रश्न यह है कि क्या निर्धारिती फर्म ने निवृत्त भागीदारों को यानों का विक्रय किया है। धारा 41(2) के स्पष्टीकरण में "विक्रीत" अभिव्यक्ति परिभाषित की गई है जिसका अभिप्राय वही है जो धारा 32 की उपधारा (1) में है। "विक्रीत" शब्द धारा 32(1) में परिभाषित किया गया है जिसमें तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन विनियम के तौर पर अन्तरण या अनिवार्य अर्जन है किन्तु इसमें समामेलन करने वाली कम्पनी द्वारा समामेलित कम्पनी को जहां कि समामेलित कम्पनी भारतीय कम्पनी है, किसी आस्ति के समामेलन की किसी स्कीम में का अन्तरण नहीं है। धारा 2(47) में पूंजी आस्ति की बाबत "अन्तरण" परिभाषित किया गया है जिसमें आस्ति का विक्रय, विनिमय या त्याग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथवा उसमें के किसी अधिकार का निर्वापन अथवा किसी विधि के अधीन उसका अनिवार्य अर्जन है ।

4. उच्चतम न्यायालय ने सदैव ही यह अभिनिर्धारित किया है कि जब विघटन के पश्चात् किसी फर्म की आस्तियों का उसके भागीदारों में वितरण किया जाता है, तब भागीदारी आस्तियों में कोई विक्रय, विनिमय, अन्तरण या फर्म के अधिकारों का निर्वापन नहीं होता वरन् उन आस्तियों में जिनके वे उस समय तक संयुक्त रूप से स्वामी थे, भागीदारों के बीच अधिकारों का परस्पर समायोजन किया जाता है । इस संबंध में **आय-कर आयुक्त बनाम देवास सिने कारपोरेशन**[1], **आय-कर आयुक्त बनाम बांके लाल वैद्य**[2] और **मालाबार फिशरीज कं० बनाम आय-कर आयुक्त**[3] वाले मामलों के प्रति निर्देश किया जा सकता है । **मालाबार फिशरीज कं० बनाम आय-कर आयुक्त**[3] वाले मामले में, जो धारा 34(3)(ख) से संबंधित है, उच्चतम न्यायालय ने धारा 2(27) में अन्तर्विष्ट "अन्तरण" शब्द का विस्तृत अर्थ लिया जो इन्कम टैक्स ऐक्ट, 1922 में नहीं है । इन मामलों में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय का आधार, जैसा कि **मालाबार फिशरीज कं० बनाम आय-कर आयुक्त**[3] वाले मामले में स्पष्ट किया गया है, यह है कि भागीदारी फर्म इसे गठित करने वाले भागीदारों से पृथक कोई विधिक अस्तित्व नहीं रखती और जब कोई एक भागीदार फर्म की सम्पत्ति या फर्म की आस्तियों के बारे में बात करता है, तब इसका अभिप्राय ऐसी सम्पत्ति या आस्तियों से होता है जिनमें सभी भागीदार संयुक्त या सामान्य हित रखते हैं । अतः यह कहना सही नहीं है कि विघटन पर फर्म का अपनी आस्तियों में अधिकारों का निर्वापन हो गया है या ये अधिकार भागीदारों को अन्तरित हो गए हैं । जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है । उच्चतम न्यायालय के अनुसार विघटन पर भागीदारों को आस्तियों का वितरण, विभाजन या आबंटन उनके अधिकारों का परस्पर समायोजन है न कि अन्तरण । हमारी राय में यही सिद्धान्त उस समय भी लागू किया जाना चाहिए जब कि एक या अधिक भागीदार निवृत्त होते हैं और फर्म का पूर्ण रूप से विघटन नहीं होता । निवृत्त होने वाले भागीदार के अधिकारों का उसी आधार

---

[1] (1968) 68 आई०टी० आर० 240.
[2] (1971) 79 आई० टी० आर० 594.
[3] (1979) 120 आई० टी० आर० 49.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर निर्धारण किया जाता है मानो कि फर्म का विघट न हो गया है। किसी भागीदार की निवृत्ति, जहां तक उसका संबंध है, फर्म का विघटन है। वह विक्रय के आदेश द्वारा साख सहित आस्तियों के अपने समुचित हिस्से को प्राप्त करने के लिए भी बाध्य कर सकता है। किन्तु न्यायालय अपवादात्मक परिस्थितियों को छोड़ कर विक्रय का आदेश नहीं देता और निवृत्ति की तारीख पर निवृत्त होने वाले भागीदार के हिस्से के मूल्य के आधार पर संदाय करने का निदेश देता है। (लिण्डले आन पार्टनरशिप, 14वां संस्करण, पृ० 227 एवं **प्रेमचन्द** बनाम **सम्पदा-शुल्क नियंत्रक**[1] देखिए)। जब कोई भागीदार निवृत्त होता है, तब उसके और शेष भागीदारों के बीच अधिकारों का परस्पर समायोजन होता है और फर्म द्वारा निवृत्त होने वाले भागीदार के पक्ष में विक्रय या अन्तरण करने का प्रश्न ही नहीं उठता चाहे कुछ आस्ति उसके उस हिस्से के जिसे उसे प्राप्त करना चाहिए, मूल्य की तुष्टि में निवृत्त होने वाले भागीदार को आबंटित हो। ऐसा इसलिए होता है, जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, क्योंकि भागीदारी सम्पत्ति फर्म द्वारा पारित की जाती है जो कि विधिक इकाई नहीं होती। अपनाया गया यह मत गुजरात उच्च न्यायालय के तीन विनिश्चयों द्वारा जिनसे हम सम्मानपूर्वक सहमत हैं, प्रत्यक्षत: समर्थित है। ये मामले हैं—**वैलो इण्डस्ट्रीज बनाम कलक्टर, भावनगर**[2], **आयकर आयुक्त बनाम मोहनभाई प्रेमभाई**[3] और **आय-कर आयुक्त बनाम दिलीप इंजीनियरिंग वर्क्स**[4]।

5. विभाग की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् स्थायी काउन्सेल ने हमारे समक्ष यह दलील दी है कि विघटन की दशा मे फर्म का अस्तित्व समाप्त हो जाता है अत: आस्तियों के वितरण के समय फर्म द्वारा अपने भागीदारों को कोई अन्तरण नहीं किया जा सकता किन्तु जब कोई भागीदार निवृत्त होता है, तब फर्म का अस्तित्व में होना बना रहता है अत:

---

[1] (1983) एम० पी० एल० जे० 200, पृ० 202.

[2] (1971) 80 आई०टी० आर० 291.

[3] (1973) 91 आई० टी० आर० 393.

[4] (1981) 129 आई०टी०आर० 688.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निवृत्त होने वाले भागीदार के पक्ष में फर्म द्वारा उस समय अन्तरण या विक्रय किया जा सकता है, जब कि निवृत्त होने वाले भागीदार को भागीदारी आस्तियों में उसके हिस्से के बदले में कोई विशिष्ट आस्ति आबंटित की जाती है। यह सत्य है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए वे विनिश्चय जिनके प्रति हम पहले ही निर्देश कर चुके हैं, ऐसे विनिश्चय हैं जिनमें विघटन हुआ है किन्तु इन विनिश्चयों में यह विधि अधिकथित की गई है कि विघटन पर जब आस्तियों का वितरण किया जाता है, भागीदारों के पक्ष में भागीदारी द्वारा आस्तियों का कोई अन्तरण नहीं किया गया है बल्कि भागीदारों के बीच अधिकारों का पारस्परिक समायोजन किया गया है। यह बात आवश्यक रूप से इस विधिक प्रस्थापना पर आधारित है कि चूंकि फर्म विधिक इकाई नहीं है भागीदारी की उन आस्तियों की स्वामी नहीं हो सकती जिसके भागीदार सामूहिक रूप से स्वामी होते हैं। इस तथ्य को कि विघटन की दशा में आस्तियों के वितरण से पूर्व फर्म समाप्त हो जाती है, अतः फर्म द्वारा कोई अन्तरण नहीं किया जा सकता। **मालाबार फिशरीज कं० बनाम आय-कर आयुक्त**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का समर्थन करने के लिए मात्र अतिरिक्त आधार माना गया है। निस्संदेह ही यह अतिरिक्त आधार उस दशा में उपलब्ध नहीं होता जिसमें कि फर्म की आस्तियों में से निवृत्त होने वाले भागीदार को उसका हिस्सा दिया जाता है वरन् यह मुख्य आधार कि भागीदारी एक विधिक इकाई नहीं है और यह आस्तियों की स्वामी नहीं होती, अतः निवृत्त होने वाले भागीदार और शेष भागीदारों के बीच आस्तियों का वितरण जो उनके अधिकारों का केवल पारस्परिक समायोजन है न कि फर्म द्वारा अन्तरण, निवृत्ति की दशा में भी उपलब्ध है। विद्वान् स्थायी काउन्सेल ने **पापूलर इंजीनियरिंग कं० बनाम आय-कर आयुक्त**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलम्ब लिया। इस मामले में उच्च न्यायालय के समक्ष इस बात पर विवाद नहीं किया गया था कि फर्म के विघटन से पूर्व फर्म द्वारा भागीदारों में से किसी भागीदार के पक्ष में यदि कोई विक्रय किया जाता है अधिनियम की धारा 41(2) लागू होगी। इस तर्क के आधार पर न्यायालय के समक्ष केवल यह प्रश्न उठा था कि क्या अन्तरण फर्म के

[1] (1979) 129 आई० टी० आर० 688.
[2] (1983) 140 आई० टी० आर० 398.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विघटन के पूर्व हुआ है या बाद में। इस प्रश्न का विनिश्चय अधिकरण द्वारा निकाले गए तथ्य-विषयक निष्कर्ष द्वारा किया गया है, अतः न्यायालय का विनिश्चय निर्धारिती के विरुद्ध है । अतः यह मामला प्रभेदनीय है। यह सम्प्रेक्षण किया गया कि उच्चतम न्यायालय ने **मालाबार फिशरीज कं० बनाम आय-कर आयुक्त**[1] वाले मामले में यही मत अपनाया था जो सही प्रतीत नहीं होता । जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, उच्चतम न्यायालय द्वारा उस मामले में दिया गया विनिश्चय मुख्य रूप से इस आधार पर आधारित है कि किसी फर्म की आस्तियां फर्म, जो कि विधिक इकाई नहीं होती, द्वारा धारित नहीं होती। केवल अतिरिक्त आधार के रूप में ही यह कहा गया था कि चूंकि विघटन के पश्चात् फर्म का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, अतः फर्म द्वारा भागीदारों को उस समय कोई अन्तरण नहीं किया जा सकता जब कि विघटन के पश्चात् आस्तियों का वितरण किया जाता है । उस निर्णय से निम्नलिखित दो अवतरण इस स्थिति को स्पष्ट करेंगे :—

> "उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखते हुए हमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 के अधीन भागीदारी फर्म इसे गठित करने वाले भागीदारों के अतिरिक्त एक सुभिन्न विधिक इकाई नहीं होती और समान रूप से विधि के अनुसार भी फर्म की भागीदारी आस्तियों में अपने स्वयं के कोई पृथक अधिकार नहीं होते और जब फर्म की सम्पत्ति या फर्म की आस्तियों के बारे में चर्चा की जाती है तब इस सब का तात्पर्य ऐसी सम्पत्ति या आस्तियों से है जिसमें सभी भागीदार संयुक्त या सामान्य हित रखते हैं। यदि यह स्थिति है तो इस दलील को स्वीकार करना कठिन है कि फर्म के विघटन पर भागीदारी आस्तियों में फर्म के अधिकार समाप्त हो जाते हैं। फर्म के भागीदारी आस्तियों में स्वयं के कोई पृथक अधिकार नहीं होते किन्तु भागीदार संयक्त रूप से या सामान्य रूप से भागीदारी आस्तियों के स्वामी होते हैं, अतः भागीदारों को आस्तियों का वितरण, विभाजन या आबंटन, जो दायित्वों का उन्मोचन करने के पश्चात् विघटन के परिणामस्वरूप होता है, भागीदारों के बीच

[1] 1979) 120 आई० टी० आर० 49.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिकारों के पारस्परिक समायोजन के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता, अतः भागीदारी आस्तियों में, जो अधिनियम की धारा 2(47) के अर्थान्तर्गत आस्तियों के अन्तरण की कोटि में आती है, फर्म के अधिकारों के निर्वापन का प्रश्न नहीं उठता। अतः हमारे मत के अनुसार विघटन पर जब वितरण किया जाता है, तब भागीदारी आस्तियों में फर्म के अधिकारों के निर्वापन के भाव में भी आस्तियों का अन्तरण अन्तर्वलित नहीं होता।"

"राजस्व विभाग की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल की इस दलील को अस्वीकार करने के लिए एक अन्य कारण भी है कि धारा 33(4)(ख) को लागू करने के लिए द्वितीय शर्त की पूर्ति की अपेक्षा बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि इसकी इस मामले में पूर्ति हो गई है। यह आवश्यक है कि आस्तियों का विक्रय या अन्तरण निर्धारिती द्वारा किसी व्यक्ति को किया जाना चाहिए। प्रत्येक विघटन उन आस्तियों के वास्तविक वितरण, विभाजन या आबंटन से पूर्व का होना चाहिए जो लेखाओं को पूर्ण करने के पश्चात् और फर्म पर शोध्य ऋण और दायित्वों का उन्मोचन करने के पश्चात् किया जाता है। विघटन के पश्चात् फर्म का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और इसके पश्चात् लेखे तैयार किए जाते हैं और ऋण और दायित्वों का उन्मोचन करने के पश्चात् पहले के भागीदारों के बीच अधिकारों के पारस्परिक समायोजन के तौर पर आस्तियों का परस्पर वितरण, विभाजन या आबंटन किया जाता है। पहले के भागीदारों को आस्तियों का वितरण, विभाजन या आबंटन विघटित फर्म द्वारा नहीं किया जाता है। इस भाव में निर्धारिती (विघटित फर्म) द्वारा किसी भी व्यक्ति को आस्तियों का अन्तरण नहीं किया जाता।"

6. विद्वान् स्थायी काउन्सेल ने कुछ अन्य मामलों को भी प्रोद्धृत किया है, किन्तु वे प्रत्यक्ष रूप से इस प्रश्न से संबंधित नहीं हैं क्योंकि इनका संबंध किसी भागीदार की निवृत्ति से संबंधित नहीं है। अतः उन मामलों के प्रति यहां निर्देश करना उपयुक्त नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

7. उपर्युक्त कारणों के आधार पर निर्देशित किए गए प्रश्न का हम निर्धारिती के पक्ष में सकारात्मक रूप में और विभाग के विरुद्ध उत्तर देते हैं। इस निर्देश के खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

निर्देशित प्रश्न का उत्तर दिया गया।

बंसल/मि०

नि० प० 1983 : मध्य प्रदेश—466

संदीप खन्ना बनाम प्रथम सिविल न्यायाधीश; वर्ग I, ग्वालियर और अन्य (Sandeep Khanna *Vs.* First Civil Judge, Class I, Gwalior and others)

तारीख 30 जून, 1983

[न्या० जे० एस० वर्मा और न्या० सी० पी० सेन]

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971, धारा 10 और उच्च न्यायालय द्वारा न्यायालय अवमान अधिनियम के अधीन विरचित मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय प्रक्रिया संबंधी नियमावली का नियम 7— सिविल अवमान—अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अवमानकर्ता को यह समाधान करने का अवसर दिया जाना कि उसने अधीनस्थ न्यायालय का अवमान नहीं किया और किए गए निर्देश में उच्च न्यायालय द्वारा यह विनिश्चय करना कि अवमानकर्ता के अपराध का संज्ञान किया जाए या नहीं--इस प्रक्रिया से अवमानकर्ता को अपना पक्ष दो बार प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त होता है कि उसने न्यायालय का अवमान नहीं किया है—उक्त नियम विधिमान्य है।

2. न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971, धारा 2 (क) और 10—अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के लिए दण्डित करने की शक्ति—उच्च न्यायालय को सिविल और आपराधिक दोनों प्रकार के अवमान के लिए दण्ड देने की शक्ति प्राप्त है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिविल न्यायाधीश के न्यायालय में लम्बित एक वाद में अंतरिम आदेश पारित किया गया। यह अभिकथन किया गया है कि पिटीशनर ने जो ग्वालियर में कलक्टर है, उक्त अंतरिम आदेश का अननुपालन किया। इस अभिकथन को ध्यान में रखते हुए विद्वान सिविल न्यायाधीश ने पिटीशनर को यह हेतुक दर्शित करने के लिए एक सूचना जारी की कि उसके विरुद्ध न्यायालय के अवमान करने के लिए कार्रवाई क्यों न की जाए। पिटीशनर ने सूचना का जवाब फाइल करने के स्थान पर प्रस्तुत पिटीशन फाइल किया है और यह प्रार्थना की है कि सिविल न्यायाधीश द्वारा जारी की गई सूचना अभिखण्डित कर दी जाए।

अभिनिर्धारित--पिटीशन खारिज किया गया।

न्यायालय अवमान अधिनियम की धारा 15 में आपराधिक अवमान के मामले में अधिक जटिल प्रक्रिया उपबन्धित है और संज्ञान करने के लिए विहित तरीकों में से एक तरीका अधीनस्थ न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय को निर्देश करने का है। अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया उच्च न्यायालय द्वारा विरचित नियमों में विहित है। इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि विहित प्रक्रिया आपराधिक अवमान के मामले में लागू होती है। उच्च न्यायालय द्वारा विरचित नियमावली के नियम 7 में केवल यह वर्णित है कि सिविल अवमान की दशा में संबंधित न्यायालय जहां तक सम्भव हो, उच्च न्यायालय को वैसी ही प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए निर्देश करेगा जैसी प्रक्रिया आपराधिक अवमान के मामले में अपनाई जाती है। यह नियम अविधिमान्य नहीं कहा जा सकता। (पैरा 4)

अधीनस्थ न्यायालय सिविल अवमान के मामले में भी अवमानकर्ता को हेतुक दर्शित करने की सूचना देता है जिससे कि अवमानकर्ता को अधीनस्थ न्यायालय का यह समाधान करने का अवसर मिल सके कि उसके विरुद्ध लगाए गए अभिकथन निराधार हैं और यदि वह ऐसा करता है तो अधीनस्थ न्यायालय को निर्देश करने के लिए कोई कारण उपलब्ध नहीं होगा। तथापि यदि वह अधीनस्थ न्यायालय का समाधान करने में सफल नहीं होता या उस अवसर का उपयोग नहीं करता है और उच्च न्यायालय को निर्देश कर दिया जाता है और वह अभिकथित अवमान का संज्ञान करता है और अवमानकर्ता को सूचना जारी करने के पश्चात् मामले का विनिश्चय करने की कार्रवाई करता है। पिटीशनर द्वारा व्यक्त की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गई परिवेदना यह है कि इस प्रक्रिया से दो जांचे होती हैं। अर्थात्, एक— निर्देश करने से पहले अधीनस्थ न्यायालय द्वारा और दूसरी अभिज्ञान करने के पश्चात्, उच्च न्यायालय द्वारा, यह भ्रमपूर्ण है। निर्देश करने से पहले अवसर का दिया जाना अवमानकर्ता के फायदे के लिए है और वह उसका उपयोग करने के लिए या उसका उपयोग न करने के लिए स्वतंत्र हैं। (पैरा 5)

पिटीशनर की ओर से श्री पी० आर० भावे

प्रत्यर्थियों की ओर से कोई नहीं

सिविल निर्देश अधिकारिता : 1983 का प्रकीर्ण पिटीशन संख्या 1254.

ग्वालियर के प्रथम सिविल न्यायाधीश, वर्ग (I) द्वारा किया गया निर्देश।

न्यायालय का निर्णय न्या० जे० एस० वर्मा ने दिया।

न्या० वर्मा

ग्वालियर स्थित प्रथम सिविल न्यायाधीश वर्ग (I) के न्यायालय में लम्बित एक वाद में एक अंतरिम आदेश पारित किया गया। तब यह अभिकथित किया गया कि पिटीशनर जो ग्वालियर में कलक्टर है, ने उक्त अंतरिम आदेश का अनुपालन किया है। इस अभिकथन को ध्यान में रखते हुए प्रथम सिविल न्ययाधीश वर्ग (I) ग्वालियर ने पिटीशनर को यह हेतुक दर्शित करने के लिए एक सूचना जारी की कि उसके विरुद्ध न्यायालय का अवमान करने के लिए कार्रवाई क्यों न की जाए। यह स्पष्ट है कि ऐसा अधीनस्थ न्यायालय को इस बात का विनिश्चय करने के लिए समर्थ बनाने हेतु किया गया था कि क्या वह मामले के संबंध में उच्च न्यायालय को यह रिपोर्ट कर दे कि वह न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के अधीन संज्ञान करने की यह कार्रवाई खत्म कर दे। हेतुक दर्शित करने की सूचना का जवाब फाइल करने के स्थान पर पिटीशनर ने यह पिटीशन फाइल किया है और यह प्रार्थना की है कि मामले की परिस्थितियों में प्रथम सिविल न्यायाधीश वर्ग (I), ग्वालियर द्वारा जारी की गई सूचना (उपाबंध पी-2) तारीख 24 फरवरी, 1983 अभिखण्डित कर दी जाए।

2. मामूली तौर पर हम इस पिटीशन को इस लघु आधार पर ही खारिज कर देते कि पिटीशनर को इस बात का अधिकार है कि वह हेतुक दर्शित करे और अधीनस्थ न्यायालय का यह समाधान करे कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उसने उस न्यायालय के किसी आदेश की अवज्ञा नहीं की है जैसा कि पिटीशनर के विद्वान काउंसेल ने हमारे समक्ष प्राख्यान किया है और इसलिए इस पिटीशन में उठाए गए प्रश्न के गुणागुण पर विचार करना जरूरी नहीं है। तथापि पिटीशनर के विद्वान काउंसेल ने बहुत जोर देते हुए यह दलील दी है कि हम इन प्रश्नों का विनिश्चय करें जो ऐसी सूचना जारी करने के अधीनस्थ न्यायालय के प्राधिकार से संबंधित हैं और जो उच्च न्यायालय द्वारा विरचित न्यायालय अवमान अधिनियम के अधीन कार्रवाई के लिए नियमावली के नियम 7 की विधिमान्यता से संबंधित हैं। इस कारण से ही हमारे समक्ष दी गई दलीलों का निपटारा गुणागुण के आधार पर कर रहे हैं।

3. पिटीशनर के विद्वान काउंसेल की दलील यह है कि अधीनस्थ न्यायालय को ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि जिसके आधार पर वह सिविल अवमान के लिए दण्ड हेतु निर्देश कर सके क्योंकि न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के उपबंधों में यह परिकल्पित है कि ऐसा निर्देश केवल दाण्डिक अवमान के मामलों में ही किया जा सकता है न कि सिविल अवमान के मामलों में। न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 15 की उपधारा (2) के प्रति विद्वान काउंसेल ने निर्देश किया है। अधिनियम की धारा 23 के प्रति निर्देश यह दर्शाने के लिए किया गया है कि उच्च न्यायालय प्रक्रिया का उपबंध करते हुए अधिनियम के उपबंधों से असंगत न होने वाले ऐसे नियम विरचित कर सकता है और उस आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा विरचित नियम 7 अवैध कहा गया है। इस दलील में कोई गुणवत्ता नहीं है।

4. अधिनियम की धारा 10 में उच्च न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालय के अवमान करने पर दण्डित करने के लिए सशक्त किया गया है जिससे अभिप्रेत है कि शक्ति न केवल दाण्डिक अवमान के लिए दण्डित करने की है किन्तु अवमान के लिए भी है। चूंकि अधिनियम की धारा 2 (क) में "न्यायालय का अवमान" परिभाषित है जिससे सिविल अवमान अथवा आपराधिक अवमान अभिप्रेत है। अधीनस्थ न्यायालयों के सिविल अवमान को भी दण्डित करने की शक्ति स्पष्ट रूप से उच्च न्यायालय को उपलब्ध है। अतः प्रश्न यह है कि कौन-सी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाए। अधिनियम की धारा 15 में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आपराधिक अवमान के मामले में अधिक जटिल प्रक्रिया उपबन्धित है और संज्ञान करने के लिए विहित तरीकों में से एक तरीका अधीनस्थ न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय को निर्देश करके करने का है। अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया उच्च न्यायालय द्वारा विरचित नियमों में विहित है। इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि विहित प्रक्रिया आपराधिक अवमान के मामले में लागू होती है। उच्च न्यायालय द्वारा विरचित नियमावली के नियम 7 में केवल यह वर्णित है कि विहित अवमान की दशा में संबंधित न्यायालय जहां तक संभव हो, उच्च न्यायालय को वैसी ही प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए निर्देश करेगा जैसी प्रक्रिया आपराधिक अवमान के मामले में अपनायी जाती है। हम यह समझने में असमर्थ हैं कि यह नियम किस प्रकार अविधिमान्य कहा जा सकता है। नियम का प्रभाव आपराधिक मामलों में अनुसरण किए जाने के लिए वैसी ही प्रक्रिया विहित की गई है जैसी प्रक्रिया सिविल अवमान के मामलों में विहित है। यदि विहित प्रक्रिया अवमानकर्ता को अधिक फायदाप्रद है तो इस कारण से अवमानकर्ता को शिकायत करने का कोई उपयुक्त कारण नहीं है तथापि चूंकि उच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम द्वारा उच्च न्यायालय को यह शक्ति प्रदत्त की गई है कि वह अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के सभी मामलों का संज्ञान करे और दण्डित करे। अतः प्रक्रिया विहित करने के लिए विरचित नियम अधिनियम के प्रयोजन को क्रियान्वित करने के लिए ही अभिप्रेत हैं। अधिनियम और नियम 7 के बीच किसी प्रकार की असंगति नहीं है।

5. नियमों के अनुसार निर्देश करने के पहले अधीनस्थ न्यायालय सिविल अवमान के मामले में भी अवमानकर्ता को हेतुक दर्शित करने की सूचना देता है जिससे कि अवमानकर्ता को अधीनस्थ न्यायालय का यह समाधान करने का अवसर मिल सके कि उसके विरुद्ध लगाए गए अभिकथन निराधार हैं और यदि वह ऐसा करता है तो अधीनस्थ न्यायालय को निर्देश करने के लिए कोई कारण उपलब्ध नहीं होगा। तथापि यदि वह अधीनस्थ न्यायालय का समाधान करने में सफल नहीं होता या उस अवसर का उपयोग नहीं करता है और उच्च न्यायालय को निर्देश कर दिया जाता है और वह अभिकथित अवमान का संज्ञान करता है और अवमानकर्ता को सूचना जारी करने के पश्चात् मामले का विनिश्चय करने की कार्रवाई करता है। पिटीशनर द्वारा व्यक्त की गई परिवेदना यह है कि इस प्रक्रिया से दो जांचें होती हैं अर्थात एक—निर्देश करने से पहले

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधीनस्थ न्यायालय द्वारा और दूसरी अभिज्ञान करने के पश्चात्, उच्च न्यायालय द्वारा, यह भ्रमपूर्ण है। निर्देश करने से पहले अवसर का दिया जाना अवमानकर्ता के फायदे के लिए है और वह उसका उपयोग करने के लिए या उसका उपयोग न करने के लिए स्वतंत्र हैं। किया गया निर्देश एक ऐसा विहित तरीका है जिसके द्वारा सिविल अवमान के मामले में भी संबंधित मामले की रिपोर्ट उच्च न्यायालय को की जाती है। इस प्रकार मामले की रिपोर्ट किए जाने के पश्चात् उच्च न्यायालय विहित रीति में यह विनिश्चित करता है कि संज्ञान किया जाना चाहिए या नहीं। सचमुच ही यह बहुत अजीब बात है कि संज्ञान करने के पहले अवमानकर्ता को दिया गया यह अवसर अवमानकर्ता के लिए शिकायत करने का एक हेतुक बन गया।

6. हमारे मतानुसार पिटीशनर की इस दलील में कोई बल नहीं है कि न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा विरचित "प्रक्रिया के लिए नियमावली" अविधिमान्य है। चूंकि हमारे समक्ष सुनवाई के समय केवल नियम 7 की विधिमान्यता पर आक्षेप किया गया है, अतः इस संबंध में पिटीशन में वर्णित नियम 5 या किसी अन्य उपबंध के प्रति निर्देश करना आवश्यक नहीं है।

7. एकमात्र शेष प्रश्न अब हेतुक दर्शित करने की सूचना उपाबंध पी-2 जो अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पिटीशनर को जारी की गई थी की विधिमान्यता के बारे में हैं। इतना कहना ही पर्याप्त है कि पिटीशनर को यह अवसर उपलब्ध था यदि वह उसका उपयोग करना चाहता तो वह अधीनस्थ न्यायालय का यह समाधान कर देता कि उसने किसी भी प्रकार से उस न्यायालय द्वारा पारित किए गए किसी भी आदेश की किसी प्रकार से भी अवज्ञा नहीं की है जैसा कि पिटीशन की सुनवाई के समय हमारे समक्ष वर्णित किया गया था। हमें इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि अधीनस्थ न्यायालय पिटीशनर द्वारा दिए गए हेतुक दर्शित करने की सूचना के जवाब पर विचार करेगा और यदि जवाब संतोषजनक पाया जाता है तो कार्रवाई को समाप्त कर देगा। इस प्रक्रम पर हम गुणागुण के आधार पर कुछ भी कहने से विरत रहते हैं क्योंकि उस पर उच्च न्यायालय द्वारा उस समय विचार किया जाएगा जब अधीनस्थ न्यायालय निर्देश करना उचित समझे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

8. ऊपर व्यक्त किये गये मतों को ध्यान में रखते हुए यह पिटीशन संक्षेपतः खारिज किया जाता है ।

पिटीशन खारिज किया गया।

मि०

नि० प० 1983 : मध्य प्रदेश--472

आयकर आयुक्त, जबलपुर वनाम कारेलाल कुंदनलाल न्यास, सागर (Commissioner of Income-tax, Jabalpur *Vs.* Karelal Kundanlal Trust, Sagar)

14 जुलाई, 1983

[न्या० जी० एल० ओझा और के० के० अधिकारी]

आयकर अधिनियम, 1961—धारा 160 और 161(1)—न्यास विलेख में वर्णित न्यासियों को कतिपय जंगम और स्थावर संपत्तियां हस्तांतरित किया जाना—प्रत्येक हिताधिकारी की आय के अंश के बारे में प्रबंध न्यासी पर अलग निर्धारण किया जाना चाहिए —व्यक्तियों के संगम की प्रास्थिति में न्यास पर निर्धारण नहीं किया जा सकता—ऐसा निर्धारण विधि के अनुसार कायम नहीं रखा जा सकता ।

आयकर अधिकारी ने विरोधी पक्षकार न्यास का निर्धारण व्यक्तियों के संगम की प्रास्थिति के आधार पर किया। व्यवस्थापक ने एक न्यास विलेख निष्पादित करके उस में वर्णित न्यासियों को कतिपय जंगम और स्थावर संपत्तियां हस्तांतरित कीं। आयकर अधिकारी ने न्यासियों के पास की संपत्ति का निर्धारण किया जिन्हें वे संपत्तियां व्यक्तियों के संगम की प्रास्थिति में हस्तांतरित की गई थीं। आय-कर अधिकारी के समक्ष यह अभिवचन किया गया कि न्यास में न्यासीगण न्यास के प्रयोजन को पूरा करने के लिए और न्यास के सर्जित किए जाते समय न्यासकर्ता द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिए गए निदेशों का पालन करने के लिए आबद्ध हैं। ए० ए० सी० ने अपील में आयकर अधिकारी द्वारा पारित आदेश को कायम रखा। निर्धारिती ने अधिकरण के समक्ष अपील की जिसे अधिकरण ने स्वीकार कर लिया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि न्यासियों पर व्यक्तियों के संगम के तौर पर निर्धारण नहीं किया जा सकता। किन्तु वह हिताधिकारियों के अंश का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिनिधि निर्धारिती के तौर पर ही किया जा सकता था। अधिकरण ने न्यासी पर निर्धारण आय-कर अधिनियम की धारा 161 के अधीन केवल प्रतिनिधि निर्धारिती के तौर पर किया जाना अभिनिर्धारित किया। अधिकरण के इस निर्णय के विरुद्ध विभाग ने आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 256 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया और उच्च न्यायालय ने अधिकरण को निर्देश करने का निदेश दिया। अतः अधिकरण ने उच्च न्यायालय के समक्ष उत्तर देने के लिए निम्नलिखित निर्देश किया है।

"क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अधिकरण द्वारा यह अभिनिर्धारित करना न्यायसंगत था कि व्यक्तियों के संगम के तौर पर इस न्यास का निर्धारण भ्रम के आधार पर किया गया था और वह विधि के अनुसार कायम नहीं रखा जा सकता और क्या उक्त निर्धारण को इस निदेश के साथ अपास्त करना न्यायसंगत था कि तीन विवरणियों के फाइल किए जाने के आधार पर तीन हिताधिकारियों में से प्रत्येक की आय के अंश के बारे में आय-कर अधिनियम की धारा 161(1) के अधीन प्रबंध न्यासियों पर अलग-अलग निर्धारण किया था।"

अभिनिर्धारित—निर्देश का सकारात्मक उत्तर दिया गया।

आयकर अधिनियम की धारा 160 (1) के खण्ड 4 में 'प्रतिनिधि निर्धारिती' की परिभाषा को पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि न्यासी का ऐसी आय के संबंध में निर्धारण किया जा सकता है जो हिताधिकारी के लिए अभिप्रेत हो और जिसका वह प्रतिनिधित्व करता हो। यह भी स्पष्ट है कि कर के दायित्व का विस्तार इतना ही होगा जितना उस व्यक्ति पर कर उद्ग्रहीत और वसूल किया जा सके जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है और न्यास की दशा में इससे अभिप्रेत है हिताधिकारी। (पैरा 7)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिनिधि निर्धारिती का प्रतिनिधि को वयक्तिक तौर पर निर्धारित करने के मामले में विभाग को कोई विकल्प प्राप्त नहीं है। वह केवल एक प्रतिनिधि निर्धारिती के तौर पर निर्धारित किया जा सकता है या निर्धारण प्रत्यक्षः हिताधिकारी का किया जा सकता है। (पैरा 9)

अधिकरण द्वारा यह अभिनिर्धारित करना न्यायसंगत था कि इस न्यास का व्यक्तियों के संगम की प्रास्थिति में निर्धारण करना भ्रमपूर्ण था और उसे विधि के अनुसार कायम नहीं रखा जा सकता। (पैरा 12)

	पैरा
122 आई०टी०आर० 652 : आय-कर आयुक्त गुजरात **बनाम** श्रीमती कमलनी खटाऊ (Commissioner of Income-tax, Gujarat *Vs.* Smt. Kamalini Khatau);	4
138 आई०टी०आर० 808 : आय-कर आयुक्त **बनाम** वी०एस० कुमारस्वामी रेडियार, न्यास (Commissioner of Income-tax *Vs.* V. S Kumaraswamy Reddiar, Trust);	5
73 आई० टी० आर० 626 : सी० आर० नागप्पा **बनाम** आय-कर आयुक्त (C.R. Nagappa *Vs.* Commissioner of Income-Tax)	5

निर्दिष्ट किए गए।

सिविल निर्देश अधिकारिता : 1981 का सिविल प्रकीर्ण मामला सं० 3 आयकर अपील अधिकरण जबलपुर द्वारा किया गया निर्देश।

आवेदक की ओर से ...श्री बी० के० रावत

विरोधी पक्षकार की ओर से ...श्री वाई० एस० धर्माधिकारी

न्यायालय का निर्णय न्या० जी० एल० ओझा ने दिया।

न्या० ओझा :

यह निर्देश जबलपुर स्थित आयकर अपील अधिकरण द्वारा किया गया है। 1974 के प्रकीर्ण सिविल मामला सं० 409, 414 और 415 में इस न्यायालय के आदेशों के अनुसार यह निर्देश विभिन्न वर्षों के निर्धारण से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्बन्धित है। जो सामान्य प्रश्न हमें उत्तर देने के लिए निर्देशित किया गया है, वह निम्नलिखित है :—

> "क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अधिकरण द्वारा यह अभिनिर्धारित करना न्यायसंगत था कि व्यक्तियों के संगम के तौर पर इस न्यास का निर्धारण भ्रम के आधार पर किया गया था और वह विधि के अनुसार कायम नहीं रखा जा सकता और क्या उक्त निर्धारण को इस निदेश के साथ अपास्त करना न्यायसंगत था कि तीन विवरणियों के फाइल किए जाने के आधार पर तीन हिताधिकारियों में से प्रत्येक की आय के अंश के बारे में आय-कर अधिनियम की धारा 161 (1) के अधीन प्रवंध न्यासियों पर अलग-अलग निर्धारण किया था।"

2. तथ्य इस प्रकार हैं कि विचाराधीन तीन निर्धारण वर्षों के लिए आय-कर अधिकारी ने कारेलाल कुन्दन लाल न्यास का निर्धारण व्यक्तियों के संगम की प्रास्थिति के आधार पर किया। आय-कर अधिकारी के कथनानुसार व्यवस्थापक ने 24-10-1950 को एक न्यास विलेख निष्पादित किया और उसमें वर्णित न्यासियों को कतिपय जंगम और स्थावर सम्पत्तियां हस्तांतरित की। अतः आय-कर अधिकारी ने न्यासियों के पास की सम्पत्ति का निर्धारण किया जिन्हें वे सम्पत्तियां व्यक्तियों के संगम की प्रास्थिति में हस्तांतरित की गई थीं। आय-कर अधिकारी के समक्ष यह अभिवचन किया गया कि न्यास में न्यासीगण न्यास के प्रयोजन को पूरा करने के लिए और न्यास के सर्जित किए जाते समय न्यासकर्ता द्वारा दिए गए निदेशों का पालन करने के लिए आवद्ध हैं।

3. ए० ए० सी० के समक्ष अपील किए जाने पर न्यासियों की ओर से इसी प्रकार की दलील दी गई और ए० ए० सी० ने उक्त दलील को स्वीकार नहीं किया और आय-कर अधिकारी द्वारा पारित आदेश को कायम रखा। निर्धारिती ने अधिकरण के समक्ष अपील की और अधिकरण ने अपील स्वीकार कर ली और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि न्यासियों पर व्यक्तियों के संगम के तौर पर निर्धारण नहीं किया जा सकता था किन्तु वह हिताधिकारियों के अंश का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिनिधि निर्धारिती के तौर पर ही किया जा सकता था। अतः अधि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करण ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यासी पर निर्धारण आय-कर अधिनियम की धारा 161 (1) के अधीन केवल प्रतिनिधि निर्धारिती के तौर पर ही किया जा सकता है और ऐसा निर्धारण उस अंश के सम्बन्ध में किया जा सकता है अर्थात् तीनों हिताधिकारियों में से प्रत्येक के 1/4 अंश पर। अधिकरण के इस निर्णय के विरुद्ध विभाग ने आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 256 के अधीन इस न्यायालय के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया और इस न्यायालय ने अधिकरण को निर्देश करने का निदेश दिया और इसलिए अधिकरण ने ऊपर वर्णित प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए यह निर्देश किया है।

4. विभाग की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी है कि इस विषय पर विधि कंगा और पालकीवाला द्वारा लिखित "ला एण्ड प्रेक्टिस आफ इन्कम टैक्स, सातवां संस्करण, जिल्द 1 पृष्ठ 947" पर वर्णित की गई है जहां यह मत व्यक्त किया गया है कि विभाग को इस बात का विकल्प प्राप्त है कि वह प्रतिनिधि निर्धारिती पर निर्धारण करे या आय से फायदाप्रद रूप से हकदार व्यक्तियों पर सीधा निर्धारण करे। यह दलील दी गई कि इस प्रकार आय-कर अधिकारी और ए०ए०सी० ने व्यक्तियों के संगम के तौर पर न्यासियों पर निर्धारण ठीक ही किया है और अपील अधिकरण द्वारा अपनाया गया मत विधि के अनुसार न्यायसंगत नहीं है। विभाग के विद्वान् काउन्सेल ने **आय-कर आयुक्त गुजरात** बनाम **श्रीमती कमलनी खटाऊ**[1] वाले मामले का अवलम्ब लिया है।

5. दूसरी ओर निर्धारिती के विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 161 में प्रतिनिधिक हैसियत में निर्धारण के लिए उपबन्ध किया गया है और प्रतिनिधि निर्धारिती क्या है, यह बात धारा 160 (4) में परिभाषित है। यह दलील दी गई कि कंगा और पालकीवाला के आय-कर अधिनियम में विद्वान लेखक ने विभाग के विकल्प के बारे में जो टिप्पण सम्मिलित किया है, उससे केवल यह अभिप्रेत है कि विभाग को यह विकल्प है कि वह या तो प्रतिनिधि निर्धारिती का निर्धारण करे या उस व्यक्ति के निर्धारण के लिए निदेश दे जो आय के लिए फायदाप्रद रूप से हकदार है। अतः यह दलील दी गई कि यह

[1] 122 आई० टी० आर० 652.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिप्रेत नहीं है कि विभाग वैयक्तिक रूप से न्यासियों का निर्धारण कर सकता है और चूंकि वे एक से अधिक हैं, अतः उन्हें व्यक्तियों के संगम के तौर पर माना जा सकता है जसा कि आय-कर अधिकारी ने इस मामले में किया है और जिसे ए० ए० सी० ने कायम रखा है। विद्वान काउन्सेल ने **आय कर आयुक्त बनाम वी० एस० कुमार स्वामी रेडिडयर**[1] वाले मामले में सम्प्रकाशित विनिश्चय का अवलम्ब लिया है जहां इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया गया है। विद्वान काउन्सेल ने **सी० आर० नागप्पा बनाम आयकर आयुक्त**[2] वाले मामले में सम्प्रकाशित विनिश्चय का भी अवलम्ब लिया है जहां उच्चतम न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीशों ने आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 161 पर विचार किया है। अतः यह दलील दी गई कि अधिकरण द्वारा व्यक्तियों के संगम के तौर पर न्यासियों का निर्धारण अपास्त किया जाना सही था।

6. आय-कर अधिनियम की धारा 160 में प्रतिनिधि निर्धारिती की परिभाषा दी गई है और न्यास के सम्बन्ध में इस धारा का खण्ड (iv) तात्विक है जो इस प्रकार है :—

> (iv) ऐसी आय की बाबत, जिसे सम्यक्‌रूपेण निष्पादित लिखत द्वारा घोषित न्यास के अधीन चाहे वह वसीयती हो या अन्यथा (जिसके अन्तर्गत कोई ऐसा वक्फ विलेख है जो मुसलमान वक्फ विधि-मान्यताकरण अधिनियम, 1913 के अधीन विधिमान्य है) नियुक्त न्यासी किसी व्यक्ति की ओर से या उसके फायदे के लिए प्राप्त करता है या प्राप्त करने का हकदार है, ऐसा या ऐसे न्यासी।

इस संदर्भ में "प्रतिनिधि निर्धारिती" शब्द को धारा 161 के खण्ड (1) में दिए गए अर्थ में समझना होगा। उक्त धारा इस प्रकार है :—

> "161 (1) हर प्रतिनिधि निर्धारिती उस आय के सम्बन्ध में जिसकी बाबत् वह प्रतिनिधि निर्धारिती है, वैसे ही कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्वों और दायित्वों के अधीन होगा जैसी कि वह होता यदि वह आय फायदाप्रद रूप में उसके द्वारा प्राप्त या उसकी या उसके पक्ष में प्रोद्भूत आय होती और उस आय की बाबत

[1] 138 आई० टी० आर० 808.
[2] 73 आई० टी० आर० 626.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वह स्वयं अपने नाम में निर्धारण के दायित्वाधीन होगा, किन्तु ऐसा कोई निर्धारण उस पर उसकी प्रतिनिधिक हैसियत में ही किया गया समझा जाएगा और वह कर, इस अध्याय में अंतर्विष्ट अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए, उस पर उद्गृहीत और उससे वसूल उसी रीति में और उसी परिमाण तक किया जाएगा जिसमें और जिस तक कि वह उस व्यक्ति पर उद्गृहीत और उससे वसूल किया जाता जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है।"

उसमें यह बात स्पष्ट रूप से अधिकथित है कि आय के बारे में जिसके सम्बन्ध में वह प्रतिनिधि निर्धारिती है, उसके कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व और दायित्व वैसे ही होंगे जैसे कि आय उसे फायदाप्रद रूप से प्राप्त हुई हो या प्रोद्भूत हुई हो और इसलिए उस आय के सम्बन्ध में वह अपने स्वयं के नाम पर ही निर्धारण के लिए दायी होगा। आगे यह और उपबंधित किया गया है कि ऐसा निर्धारण उस पर केवल प्रतिनिधायी हैसियत में किया गया ही समझा जाएगा और कर उस अध्याय में अंतर्विष्ट उपबन्धों के अधीन उससे उसी प्रकार और उसी विस्तार तक उद्ग्रहीत और वसूल किया जाएगा जिस प्रकार वह उसके द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए व्यक्ति से उद्ग्रहणीय और वसूलीय होता।

7. अतः यह स्पष्ट है कि धारा 160 (1) के खण्ड 4 में "प्रतिनिधि निर्धारिती" की परिभाषा को पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि न्यासी का ऐसी आय के सम्बन्ध में निर्धारण किया जा सकता है जो हिताधिकारी के लिए अभिप्रेत हो और जिसका वह प्रतिनिधित्व करता हो। यह भी स्पष्ट है कि कर के दायित्व का विस्तार इतना ही होगा जितना उस व्यक्ति पर कर उदग्रहीत और वसूल किया जा सके जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है और न्यास की दशा में इससे अभिप्रेत है हिताधिकारी।

8. यदि धारा 160 (4) और धारा 161 की भाषा के संदर्भ में जिस टिप्पण का विभाग के विद्वान् काउन्सेल ने अवलम्ब लिया है, उसे पढ़ा जाए तो उसका वह अर्थ नहीं है जो सुझाया गया है। जिस टिप्पण का अवलम्ब लिया गया है वह इस प्रकार है :—

"धारा 160 और 161 समर्थ बनाने वाली धाराएं हैं। विभाग को इस बात का विकल्प है कि वह प्रतिनिधि निर्धारिती

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

> या आय के लिए फायदाप्रद रूप से हकदार व्यक्ति का निर्धारण कर सकता है। धारा 166 में यह स्पष्ट किया गया है कि धारा 160 और 161 समर्थ बनाने वाली धाराएं हैं अर्थात् विभाग को इस बात का विकल्प है कि वह प्रतिनिधि निर्धारिती पर निर्धारण कर सकता है या उस व्यक्ति पर प्रत्यक्ष निर्धारण कर सकता है जो आय के लिए फायदाप्रद रूप से हकदार है ....।"

अतः यह स्पष्ट है कि या तो प्रतिनिधि निर्धारिती अर्थात् किसी न्यासी का निर्धारण किया जाना चाहिए या प्रत्यक्षतः हिताधिकारी का निर्धारण किया जाना चाहिए। किन्तु यह स्पष्ट है कि ऐसा केवल उस आय के सम्बन्ध में ही किया जा सकता है जिसके लिए हिताधिकारी हकदार है और दायित्व केवल उस विस्तार तक ही होगा। इन परिस्थितियों में इस टिप्पण का न्यासियों के उनकी व्यक्तिगत हैसियत में निर्धारण करने के सबध में उपयोग किया जाना न्यायसंगत नहीं होगा और चूंकि वे एक से अधिक हैं, उन पर व्यक्तियों के संगम के तौर पर निर्धारण करना होगा।

9. अधिनियम की धारा 166 के द्वारा यह स्थिति और भी स्पष्ट की गई है। उक्त धारा इस प्रकार है :

> "166. इस अध्याय की पूर्ववर्ती धाराओं की कोई बात न तो उस व्यक्ति का जिसकी ओर से या जिसके फायदे के लिए उसमें निर्दिष्ट आय प्राप्य है, प्रत्यक्ष निर्धारण और न ऐसी आय की बाबत संदेय कर की ऐसे व्यक्ति से वसूली ही निवारित करेगी।"

इसमें केवल यह कहा गया है कि ऊपर वर्णित धाराओं में अर्थात् धारा 160 और 161 में वर्णित किसी भी बात से किसी व्यक्ति का प्रत्यक्ष निर्धारण इस बात से निवारित नहीं होगा कि किसकी ओर से और किसके फायदे के लिए उसमें निर्दिष्ट आय प्राप्य या वसूलीय है और वह किस व्यक्ति से वसूलीय है और ऐसी आय के सम्बन्ध में कर किस व्यक्ति द्वारा संदेय है। धारा "प्रतिनिधि निर्धारिती—साधारण उपबन्ध" शीर्षक से प्रारम्भ होती है। अतः इसमें केवल यह उपबन्धित है कि निर्धारण या तो न्यासी के प्रतिनिधि निर्धारिती के तौर पर जैसा कि धारा 161 में प्रकल्पित है, किया जा सकता है या प्रत्यक्षतः हिताधिकारी का निर्धारण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया जा सकता है जो आय के लिए हकदार है जैसा कि न्यास में उपदर्शित है। अतः इन परिस्थितियों में न्यासकर्ता द्वारा व्यक्त किए गए मत से यह अनुमान नहीं निकाला जा सकता है जो यह प्रतीत होता है कि विद्वान आयकर अधिकारी और ए० ए० सी० ने निकालना चाहा था। इस सम्बन्ध में प्रतिनिधि निर्धारिती का प्रतिनिधि को वैयक्तिक तौर पर निर्धारित करने के मामले में विभाग को कोई विकल्प प्राप्त नहीं है। वह केवल एक प्रतिनिधि निर्धारिती के तौर पर निर्धारित किया जा सकता है या निर्धारण प्रत्यक्षतः हिताधिकारी का किया जा सकता है।

10 **सी० आर० नागप्पा** बनाम **आयकर आयुक्त**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने आयकर अधिनियम की धारा 161 पर विचार किया था और निम्नलिखित मत व्यक्त किया:—

"उपधारा (1) के निबन्धनों के अनुसार यह अंतर्निहित है कि आयकर अधिकारी प्रतिनिधि निर्धारिती का ऐसी आय के बारे में निर्धारण कर सकता है जिसके सम्बन्ध में वह प्रतिनिधि निर्धारिती है। किन्तु वह ऐसा करने के लिए आबद्ध नहीं है। वह या तो प्रतिनिधि निर्धारिती का निर्धारण कर सकता है या उसके द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए व्यक्ति का निर्धारण कर सकता है। यह बात स्पष्ट रूप से ही धारा 166 में अधिनियमित है जो इस प्रकार है :—

"166. इस अध्याय की पूर्ववर्ती धाराओं की कोई बात न तो उस व्यक्ति का, जिसकी ओर से या जिसके फायदे के लिए उसमें निर्दिष्ट आय प्राप्य है, प्रत्यक्ष निर्धारण और न ऐसी आय की बाबत संदेय कर की ऐसे व्यक्ति से वसूली ही निवारित करेगी।"

11. इस प्रश्न पर भी केरल उच्च न्यायालय द्वारा **आय-कर आयुक्त** बनाम **बी० एस० कुमार स्वामी रेड्डियार ट्रस्ट**[2] वाले मामले में विस्तार से विचार किया गया था और यह मत व्यक्त किया गया था :—

"यह दलील और दी गई थी कि यदि एक विधिमान्य न्यास को स्वीकार कर भी लिया जाता है तो भी निर्धारिती व्यक्तियों

1. 73 आई० टी० आर० 626.

2. 138 आई० टी० आर० 808.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्री मलक से पूर्व-ऋण किन्हीं अनैतिक प्रयोजनों के लिए लिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि वादियों ने इस बात का संकेत करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि उनका पिता शराब पीता था। किन्तु जब तक पहले का पूर्व-ऋण अर्थात् बन्धक संव्यवहार के प्रयोजनों के लिए लिया गया उधार अनैतिकता से दूषित न हो तब तक पुत्र अर्थात् वादी उसका संदाय करने के लिए आबद्धकर हैं और स्वभावतः उक्त संव्यवहार उस ऋण को समाप्त करने के लिए लिया गया था और चूंकि यह ऋण पूर्व ऋण था अतः निश्चित रूप से वादियों पर आबद्धकर है। अतः म यह अभिनिर्धारित करता हूं कि विचारण न्यायालय ने यह मत अभिनिर्धारित करने में कि बन्धक संव्यवहार विधिक आवश्यकता से समर्थित न होने के कारण विक्रय वाद भी अविधिमान्य है, भूल की है। अतः मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि चूंकि बन्धक ऋण किन्हीं अनैतिक प्रयोजनों के लिए नहीं लिया गया था और चूंकि वाद संव्यवहार पूर्व ऋण का संदाय करने के लिए किया गया था अतः वाद संव्यवहार की पुष्टि की जानी चाहिए।"

15. इस तरह श्री खेरदेकर के अनुसार जब एक बार पूरनचन्द्र के ऐसे पूर्व ऋण की विद्यमानता विषयक तथ्य, जिसके संदाय के लिए स्वीकृत रूप से वादगत सम्पत्ति को बेचा गया है, साबित हो जाती है तब मामले का अन्त हो जाता है क्योंकि वादियों ने न तो इस बात का अभिवाक् किया है और न ही इस बात को साबित किया है कि ऋण अनैतिक प्रयोजनों के लिए उपगत किए गए थे जैसा कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा सही ही अभिनिर्धारित किया गया है और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा विधिक आवश्यकता के तत्व का उठाया जाना एक असंगत विचारण है। इसके पश्चात् उसने अपनी इस प्रस्थापना के समर्थन में कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 47, नियम 1 में आई हुई "किसी भूल या गलती के कारण जो अभिलेख के देखने से ही प्रकट होती हो" अभिव्यक्ति भूल या तथ्य तक ही सीमित नहीं है वरन् विधि विषयक भूल तक विस्तृत है, दो विनिश्चयों का अवलम्ब लिया। ये दो विनिश्चय हैं : **थाडीकुल अंगारा पाइली-पुत्र पथरोज** बनाम **अय्याजोविट्टिल लक्ष्मी अम्मा—पुत्र कुट्टन और अन्य**[1] तथा **नटेसा नायकर** बनाम **सामंदा चेट्टियार**[2] हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

16. दूसरी ओर श्री चन्दूरकर ने निम्नलिखित नजीरों का अवलम्ब लेते हुए यह दलील प्रस्तुत की कि न्यायालय को विधि के प्रश्न का गलत रूप से और साथ ही साथ सही रूप से विनिश्चय करने की आधिकारिता है किन्तु पुनर्विलोकन मात्र इस कारण मंजूर नहीं किया जा सकता क्योंकि निर्णय या आदेश विधि की गलत प्रस्थापना के आधार पर अग्रसर हुआ है या उसमें प्रासंगिक विधि की अवहेलना की गई है --

(1) सफर सीतापति राव बनाम चिसजूरी सोलाबायम्मा[3] ;

(2) जी० एस०[4] गुप्ता बनाम बशीर अहमद और अन्य[1] ; और

(3) लक्ष्मण आनन्दराव और अन्य बनाम रामचन्द्र वासुदेव अगस्ती

17. मैसर्स तुंगभद्रा इण्डस्ट्रीज लि० बनाम आन्ध्र प्रदेश सरकार[6] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने गलत विनिश्चय के प्रश्न पर सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 47, नियम 1 की परिधि की बाबत निम्नलिखित अधिकथित किया है :--

"मात्र गलत विनिश्चय और ऐसे विनिश्चय जिसे प्रत्यक्ष गलती से दूषित कहा जा सकता है, के बीच भिन्नता होती है जो वास्तविक है यद्यपि इसे सदैव ही स्पष्ट नहीं किया जा सकता। पुनर्विलोकन किसी भी प्रकार से छुपे रूप में ऐसी अपील नहीं है जिसके द्वारा गलत विनिश्चय की पुनः सुनवाई की जाती है और इसे सही किया जाता है किन्तु पुनर्विलोकन केवल प्रत्यक्ष भूल के लिए होता है। इसमें कोई भी पक्षकार बिना किसी विस्तृत तर्क कि भूल की ओर संकेत कर सकता है और यह कह सकता है कि यह विधि का सारवान् प्रश्न जो प्रत्यक्ष है और इसकी बाबत

---

[1] ए० आई० आर० 1969 केरल 186.

[2] ए० आई० आर० 1941 मद्रास 918.

[3] ए० आई० आर० 1933 मद्रास 662.

[4] ए० आई० आर० 1977 कर्नाटक 193.

[5] ए० आई० आर० 1938 नागपुर 145.

[6] ए० आई० आर० 1964 एस० सी० 1372.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

युक्तियुक्त रूप से कोई दो राय नहीं हैं तथा यह अभिलेख पर के सकृत दर्शने स्पष्ट भूल का मामला साबित किया जाएगा।"

18. मूल प्रश्न यह है कि क्या विद्वान् एकल न्यायाधीश ने वास्तव में इस विस्थापित विधिक स्थिति के विरुद्ध विचार किया है कि यह भूल ऐसी भूल है जो प्रत्यक्ष है। निस्संदेह ही यह सुस्थापित है कि किसी पूर्ण ऋण का उन्मोचन करने के लिए किए गए अन्यसंक्रामण की विधिमान्यता पिता के ऐसे ऋण से जो अनैतिकता से दूषित न हो उन्मोचन करने के लिए पुत्र की पवित्र बाध्यता पर आधारित है। यह भी सही है कि सामान्यता ऐसे मामले में विधिक आवश्यकता का प्रश्न नहीं उठता किन्तु क्या नियम इतना निश्चित और अपरिवर्तनशील है कि ऐसे मामले में कोई अन्य विचार उठ ही नहीं सकता। **प्रसाद और अन्य** बनाम **वी० गोविन्द-स्वामी मुदालियर और अन्य**[1] वाले मामले में **बृज नारायण** बनाम **मंगल प्रसाद**[2] वाले मामले का अवलम्ब लेते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि पूर्व ऋण से तात्पर्य ऐसे पूर्व ऋण से है जो तथ्य और समय के अनुसार पूर्व हो अर्थात् ऋण सही अर्थ में स्वतंत्र होना चाहिए तथा यह अधिक्षेपित संव्यवहार का भाग रूप नहीं होना चाहिए।

19. प्रस्तुत मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :—

> "विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करने में कि ऋण, जो उपगत किया गया है अथवा रकम जो विवादास्पद गृह की बिक्री से अभिप्राप्त की गई है, ऐसे पूर्व ऋण का जिसका अभिप्राय पूर्ववर्ती बन्धक ऋण से है का अनुमोदन करने में सही है, समस्या पर विचार नहीं किया है बल्कि पूर्व ऋण की परिभाषा का यांत्रिक रूप से अनुसरण किया है। लेकिन वह इस बात को भूल गया कि पहले यह ऋण किसी विधिक आवश्यकता के लिए नहीं लिया गया था तथा इसके बाद में उपगत कोई अन्य ऋण चाहे यह पूर्ववर्ती ऋण का उन्मोचन करने के लिए लिया गया हो पुत्रों के हिस्सों को आबद्ध नहीं कर सकता। अतः मेरी राय में विद्वान् न्यायाधीश ने वाद खारिज करने में गलती की है।"

---

1. ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 84.
2. ए० आई० आर० 1924 पी० सी० 50.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

20. यह नहीं कहा जा सकता कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने सुव्यवस्थित विधिक स्थिति की पूर्ण रूप से उपेक्षा की है और इस तथ्य पर ध्यान देते हुए कि स्वयं बन्धक ऋण बिना आवश्यकता के है अभिलेख पर सकृतदर्शने भूल की है। हिन्दू विधि का यह सिद्धांत कि अनैतिकता से अदूषित पिता के पूर्व ऋण का उन्मोचन करने के लिए किया गया अन्य संक्रामण पुत्र पर आबद्धकर है निस्संदेह ही सुस्थापित है किन्तु यह कहना कि सदैव ही ऐसा होता है और किसी विशेष मामले में कोई अन्य विचार उत्पन्न नहीं हो सकता इस प्रस्थापना के लिए बहुत ही साधारण और सूत्रमय है। यह कि संव्यवहार सही रूप से स्वतंत्र नहीं है वरन् आक्षेपित संव्यवहार का भाग रूप है भी एक ऐसा ही विचारण हो सकता है।

21. प्रथम अपील न्यायालय द्वारा दिए गए कारण में और श्री खेरदेकर की दलील में यह भ्रांति है कि इसमें यह उपधारणा की गई है कि श्री मलक के पक्ष में पूरन चन्द्र द्वारा 21 जनवरी, 1946 को किया गया बन्धक स्वयं ही पूर्ववर्ती ऋणों का संदाय करने के लिए था। वास्तव में पूरन चन्द्र ने इस सम्पत्ति को बन्धक रखते हुए ऋण लिया था तथा उक्त बन्धक को प्रवर्तित करने के लिए बन्धकिती श्री मलक द्वारा फाइल किए गए वाद में पूरन चन्द्र के पुत्रों ने सही रूप से और विधि-मान्य रूप से यह दलील दी है कि उक्त बन्धक संव्यवहार बिना विधिक आवश्यकता के किया गया था। दी गई उनकी दलील अभिभावी है। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पुत्रों के हित प्रभावित नहीं हुए हैं। दूसरे शब्दों में, चूंकि बन्धक संव्यवहार बिना किसी विधिक आवश्यकता के किया गया था अतः यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह बन्धककर्ता पूरन चन्द्र के हित के विस्तार तक, जो कि 1/5 भाग है, आबद्धकर और प्रवर्तनीय है। पूरन चन्द्र ने उक्त सम्पत्ति का विक्रय 4,767 रुपए के बन्धक ऋण का संदाय करने के लिए किया था जो उक्त मुकदमेबाजी का मुख्य मुद्दा था। दूसरे शब्दों में वादी सं० 2 के हिस्से का उसके पिता द्वारा अभिकथित अन्तरण सारतः और संक्षेप में उस ऋण का संदाय करने के लिए किया गया था जिसे वादी सं० 2 के अंश पर किसी भी प्रकार आबद्धकर न होने के लिए घोषित और न्यायनिर्णीत किया गया था। वादकालीन सम्पत्ति के अन्यसंक्रामण के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि यह बन्धक आक्षेपित संव्यवहार का भागरूप है और वास्तव में यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किसी पूर्व ऋण का संदाय करने के लिए विक्रय नहीं है। ऐसे अन्य संक्रामण के उद्देश्य के बारे में हम यह कह सकते हैं कि यह अवैध और अनुचित है और पुत्रों के पक्ष में इस निर्णय को कि बन्धक संव्यवहार उनके हिस्सों पर आबद्धकर नहीं है पहले से ही निरर्थक करने और उलटने के लिए आशयित है। मामले को इस दृष्टिकोण से देखने पर अन्य संक्रामण स्वतंत्र संव्यवहार नहीं है बल्कि बन्धक संव्यवहार का भागरूप है और यह नहीं कहा जा सकता कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अभिलेख के सकृत-दर्शने कोई भूल की है और उपयुक्त तथा विधि के सुस्थापित सिद्धांतों को लागू न करने में गलती की है।

22. किन्तु सभी अपीलार्थियों के दावों को यह अभिनिर्धारित करते हुए डिक्री करने में कि उनमें से प्रत्येक कुल सम्पत्ति में 1/7 हिस्से के लिए हकदार है एक स्पष्ट भूल की गई है जिसका पुनर्विलोकन किया जाना है और जिसे सही किया जाना है।

23. परिणामतः पुनर्विलोकन के लिए किया गया आवेदन भागतः मंजूर किया जाता है। सभी अपीलार्थियों के पक्ष में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित डिक्री अपास्त की जाती है और इसके स्थान पर अपीलार्थी सं० 1—रमेश (मूल वादी सं० 2) के 684 रुपए के अन्तःकालीन लाभ के लिए किए गए दावे को तथा वादगत सम्पत्ति में अपने 1/5 हिस्से के विभाजन के लिए किया गया दावा सर्वत्र आनुपातिक खर्चे सहित प्रत्यर्थी सं० 1, लक्ष्मीकांत के विरुद्ध डिक्रीत किया जाता है। इस तरह विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री प्रत्यावर्तित की जाती है तथा विभाजन के लिए इसके द्वारा यथा निदेशित कार्रवाई की जाएगी। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 20, नियम 12(1) के अधीन जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा निदेश दिया गया है भावी अन्तःकालीन लाभों के लिए जांच भी की जाएगी।

आवेदन भागतः मंजूर किया गया।

बंसल

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न० प० 1983 : मुम्बई—102

छगनलाल मूलचन्द जैन बनाम नारायण जगन्नाथ सिंह
(Chhaganlal Mulchand Jain *Vs.* Narayan Jagannath Singh)

तारीख 22 नवम्बर, 1982

[न्या० चन्दूरकर और न्या० बी० सी० गाडगिल]

बाम्बे रैण्ट्स, होटल एण्ड लाजिंग हाउस रेट्स कण्ट्रोल ऐक्ट (मुम्बई होटल और बासा किराया दर नियंत्रण अधिनियम), 1947, धारा 12 (3) (क)—उक्त धारा के अनुसार यदि मकानमालिक ने किराए की बकाया की मकान का कब्जा प्राप्त करने सहित किराएदार को सूचना की तामील की है तो ऐसी स्थिति में किराएदार मानक किराए संबंधी विवाद तब तक नहीं उठा सकता जब सतक कि उसने सूचना की प्राप्ति की तारीख से एक मास के अन्दर इस प्रयोजन हेतु आवेदन फाइल न कर दिया हो।

प्रत्यर्थी, मकानमालिक ने पिटीशनर किराएदार पर किराए की बकाया का संदाय करने और मकान का कब्जा परिदत्त करने के लिए सूचना की तामिल की। किराएदार ने सूचना का जवाब न देते हुए 525 रुपए मनीआर्डर द्वारा भेज दिए। प्रत्यर्थी ने धूलिया के सिविल न्यायाधीश, सीनियर डिवीजन न्यायालय में कब्जे और बकाया का दावा करते हुए नियमित सिविल वाद फाइल किया। किराएदार ने यह दलील दी कि मकान का मानक किराया 35 रुपये प्रतिमास से कम है। इसके अतिरिक्त भी उसने यह अभिकथन किया चूंकि वह किराए का संदाय करने के लिए तैयार और इच्छुक है अतः मकानमालिक के पास कब्जे का दावा करने के लिए कोई हेतुक नहीं है। विचारण न्यायालय ने मानक किराया 11 रुपए प्रतिमास अवधारित करते हुए मकानमालिक के कब्जे के दावे को खारिज कर दिया। विचारण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध मकानमालिक ने जिला न्यायालय में अपील की जिसने अपने निर्णय और डिक्री द्वारा कब्जे की डिक्री मंजूर करते हुए अपील मंजूर की। जिला न्यायालय के इस निर्णय से असन्तुष्ट होकर किराएदार ने प्रस्तुत पिटीशन द्वारा निर्णय को चुनौती दी है। उसने यह दलील प्रस्तुत की कि उसने मकानमालिक की सूचना प्राप्ति के तुरन्त पश्चात् मानक किराये की रकम जो सभी बकाया की पूर्ति के लिए पर्याप्त है, का संदाय कर दिया है अतः जिला न्यायाधीश किराए के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के आधार पर कब्जे की डिक्री मंजूर नहीं कर सकता। उसने यह दलील भी दी कि सर्वप्रथम न्यायालय इस बात का विनिश्चय करेगा कि मानक किराया कितना है और क्या किराया बकाया है क्योंकि किरायेदार की ओर से किराए के संदाय में की गई उपेक्षा की बाबत निष्कर्ष अभिलिखित करते समय मानक किराए की रकम का अवधारण किया जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह भी दलील दी गई चूंकि, सूचना किराए की मांग मानक किराए और अनुज्ञात अभिवृद्धियों के आधार पर नहीं की गई है वारन्ट करारित दर के आधार पर की गई है, अतः यह मांग अनुचित है और मांग के अनुचित होने का फायदा किराएदार को दिया जाना चाहिए। किन्तु इसके विपरीत प्रत्यर्थी ने यह दलील दी कि मानक किराए संबंधी दलील तब तक नहीं दी जा सकती जब तक कि किराए-दार ने उस प्रयोजन के लिए सूचना की प्राप्ति के एक मास के भीतर आवेदन न कर दिया हो। प्रस्तुत मामले में विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या मकानमालिक द्वारा किराएदार को किराए की बकाया और कब्जा प्राप्त करने की सूचना दिए जाने के पश्चात् यदि किराएदार ने सूचना प्राप्ति के एक मास के भीतर मानक किराए का विवाद नहीं उठाया है तो क्या वाद में मानक किराए संबंधी प्रश्न उठाया जा सकता है।

अभिनिर्धारित — पिटीशन नामंजूर किया गया।

मकानमालिक और किराएदार दोनों के बारे में ही यह उपधारणा की जाती है कि वे यह जानते हैं कि किराए और अनुज्ञात वृद्धियों की कितनी मात्रा का और संदाय किया जाना है अतः जब मकानमालिक सूचना द्वारा इस प्रकार की बकाया के संदाय का दावा करता है तब यदि किराए की मात्रा की बाबत कोई भूल हो जाती है तो ऐसी भूल के कारण सूचना अनुचित नहीं हो जाती। इस दलील को स्वीकार करना बहुत ही कठिन है कि मांग में यहां वहां हुई कोई गलती वाद को खारिज करने के लिए पर्याप्त है। यह संभव है कि किसी विशिष्ट मामले में मकानमालिक ने ऐसे दावे सहित जिसके बारे में कोई विवाद नहीं है कतिपय रकम की मिथ्या या कायम न रखे जाने वाली मांग हो। ऐसी दशा में किराएदार के पास यह विकल्प होता है कि वह किराए की अविवादास्पद रकम का संदाय कर दे और यह जवाब दे दे कि शेष रकम की बाबत दावा मिथ्या है। यदि कुछ समय पश्चात्

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाद के प्रक्रम पर दावे के बारे में यह साबित हो जाता है कि यह मिथ्या है तो स्पष्ट रूप से किराएदार सुरक्षित रहेगा क्योंकि उसने वस्तुतः शोध्य रकम का संदाय कर दिया है। लेकिन वह तब उसका विरोध करने में समर्थ नहीं होगा जब उसने सूचना की प्राप्ति के एक मास के भीतर उस बकाया का संदाय नहीं किया है जिसके लिए मकान-मालिक हकदार है। ऐसे मामले में भी जिसमें कायम न रखे जाने वाला दावा सम्मिलित किया गया हो, किराएदार की यह बाध्यता होती है कि वह विहित समय के भीतर उसके द्वारा देय अनुज्ञेय रकम का संदाय करे। वास्तव में यदि अन्ततोगत्वा न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि किराएदार के द्वारा भेजी गई रकम किराए की सभी बकाया की पूर्ति नहीं करती तो किराएदार को जोखिम उठानी पड़ेगी। ऐसे निष्कर्ष की दशा में मकानमालिक कब्जे की डिक्री के लिए हकदार होगा। लेकिन इस प्रकार की कोई डिक्री नहीं दी जाएगी यदि मकानमालिक को देय समस्त बकाया का संदाय करने के लिए वह रकम पर्याप्त हो। इस तरह प्रत्येक बात प्रत्येक मामले के तथ्यों पर आधारित होगी किन्तु मुख्य रूप से इस आधार पर कार्रवाई करनी होगी कि सूचना का उदारतापूर्वक अर्थान्वयन किया जाए न कि उसका इस प्रकार अर्थान्वयन किया जाए कि उसमें कोई गलती ढूंढ़ी जा सके। (पैरा 11)

		पैरा
[1977]	ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 1180 : भगवानदास अग्रवाल **बनाम** भगवान दास बसू और अन्य (Bhagwandas Agarwalla *Vs.* Bhagwandas Basu and others);	11
[1966]	4 जून, 1966 को विनिश्चित 1964 की सिविल अपील सं० 387 : रघुनाथ रावजी दाण्डेकर **बनाम** अनन्त नारायण आपटे (Raghunath Ravji Dandekar *Vs.* Anant Narayan Apte);	10
	74 मुम्बई एल० आर० 241 : लालशंकर मूलजी **बनाम** कांतिलाल (Lalshankar Mulji *Vs.* Kantilal) का **अवलम्ब** लिया गया।	10
[1977]	ए० आई० आर० 1977 मुम्बई 344 : गणपत बनाम मोतीलाल (Ganpat *Vs.* Motilal) से **असहमति** प्रकट की गई।	11

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1982] 1982 महाराष्ट्र एल० जे० 612 : जयील बन्धु अदके और एक अन्य बनाम बसावली गुरुलिपअप्पा महलंक और एक अन्य (Jayeel Bandu Adake and another *Vs.* Basavali Gurulipappa Mhalank and another); 6

[1976] ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 2005 : हरबंसलाल जगमोहन दास और एक अन्य बनाम प्रभुदास शिवलाल (Harbanslal Jagmohandas and another *Vs.* Prabhudas Shivlal) 5

निर्दिष्ट किए गए।

सिविल अपीली अधिकारिता : 1978 का विशेष सिविल आवेदन सं० 2439. इसके साथ-साथ 1978 का विशेष सिविल आवेदन सं० 2784 पर भी कार्रवाई की गई।

जिला न्यायाधीश द्वारा कब्जे के लिए दी गई डिक्री के विरुद्ध किया गया पिटीशन।

पिटीशनर-मूल प्रतिवादी की ओर से····श्री एम० ए० राने

प्रत्यर्थी-मूल वादी की ओर से····श्री जे० एम० बापना

न्यायालय का निर्णय न्या० बी० सी० गाडगिल ने दिया।

न्या० गाडगिल :

यह पिटीशन न्या० मसोदकर ने अपने 21 सितम्बर, 1982 के आदेश द्वारा खण्ड न्यायपीठ को निर्देशित किया है।

2. यह मामला मकानमालिक (जिसे इसमें इसके पश्चात् "वादी" कहा गया है) द्वारा किराएदार छगनलाल मूलचन्द जैन (जिसे इसमें इसके पश्चात् "प्रतिवादी" कहा गया है के विरुद्ध बाम्बे रेंट्स, होटल एण्ड लाजिंग हाउस रेट्स कण्ट्रोल ऐक्ट, (मुम्बई होटल और बासा किराया दर नियंत्रण अधिनियम), 1947, (जिसे इसमें इसके पश्चात्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"किराया अधिनियम" कहा गया है) के उपबंधों के अधीन की गई बेदखली की कार्यवाहियों से संबंधित है। प्रश्नगत परिसर, जिसमें दो कमरे और एक टिन शैड है, धूलिया, गली सं० 8, सीटीएस सं० 1276/8 में स्थित है। गृह का स्वामी वादी है जिसे 6 अगस्त, 1967 को प्रतिवादी ने 35 रुपये मासिक किराए पर लिया था। प्रतिवादी पर 1 दिसम्बर, 1969 से किराया बकाया था अतः वादी ने 15 अप्रैल, 1972 को प्रतिवादी को कब्जा परिदत्त करने की सूचना दी और उससे यह अपेक्षा की कि वह सभी बकाया का संदाय करे। प्रतिवादी ने कोई जवाब नहीं दिया। किन्तु उसने वादी को मनीआर्डर द्वारा 525/- रुपये भेज दिये। इसके पश्चात् वादी ने धूलिया के सिविल न्यायाधीश सीनियर डिवीजन न्यायालय में कब्जे के लिए और बकाया का दावा करते हुए 1972 का नियमित सिविल वाद सं० 237 फाइल किया।

3. इस वाद का प्रतिवादी द्वारा विरोध किया गया। उसने यह दलील दी कि इस परिसर का मानक किराया 35/- रुपये प्रतिमास के किराए से कम है। इसके अतिरिक्त उसने यह अभिकथन भी किया कि वह किराए का संदाय करने के लिए तैयार और इच्छुक है। अतः कब्जे का दावा करने के लिए वादी के पास कोई हेतुक नहीं है।

4. विचारण न्यायालय ने मानक किराया 11/- रुपये प्रतिमास अवधारित किया तथा कतिपय बकाया की डिग्री पारित की। किन्तु वादी के कब्जे के लिए किए गए दावे को खारिज कर दिया। वादी मामले को 1978 की सिविल अपील सं० 3 के रूप में जिला न्यायालय में ले गया। विद्वान् जिला न्यायाधीश ने 17 अगस्त, 1978 के अपने निर्णय और डिक्री द्वारा कब्जे की डिक्री मंजूर करते हुए अपील मंजूर की। इसी डिक्री को प्रतिवादी किराएदार ने प्रस्तुत पिटीशन द्वारा चुनौती दी है।

5. पिटीशनर की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता, श्री हंस की मुख्य दलील यह है कि 11/- रुपये प्रतिमास के हिसाब से नियत किया गया मानक किराया तथा 525/ रुपये की वह रकम जिसे प्रतिवादी-पिटीशनर ने वादी द्वारा दी गई सूचना के तुरन्त पश्चात् भेज दिया था सभी बकाया की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त है अतः विद्वान् जिला न्यायाधीश को किराए के संदाय में व्यक्तिक्रम के आधार पर कब्जे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के लिए डिक्री मंजूर नहीं करनी चाहिए थी। इसके विरुद्ध प्रत्यर्थी के विद्वान् अधिवक्ता, श्री बापना ने यह दलील दी की विचारण न्यायालय और जिला न्यायालय द्वारा मानक किराए का अवधारण अनुज्ञेय नहीं है क्योंकि वादी का दावा मुम्बई होटल और वासा किराया दर नियंत्रण अधिनियम, 1947 की धारा 12 2(3) (क) के अन्तर्गत आता है। उसने यह दलील देने के प्रयोजन के लिए कि धारा 12 (3) (क) के अन्तर्गत आने वाले मामले में मानक किराए की बाबत विवाद उठाना तब तक अनुज्ञेय नहीं है जब तक कि किराएदार उस प्रयोजन के लिए उक्त अधिनियम की धारा 12 के अधीन सूचना की प्राप्ति के एक मास के भीतर आवेदन नहीं करता। उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलम्ब भी लिया गया। जहां तक इस प्रश्न का संबंध है हम यह नहीं समझते कि इसमें कोई मतभेद है। **हरबंसलाल जगमोहनदास और अन्य बनाम प्रभुदास शिवलाल**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष इसी प्रकार का प्रश्न उठा था जिसका सुसंगत शीर्ष-टिप्पण निम्न प्रकार है ––

> "अधिनियम की धारा 12 (3) (क) के प्रवर्तन से बचने के लिए मानक किराए या अनुज्ञात वृद्धियों के संबंध में विवाद अधिक से अधिक अधिनियम की धारा 12 (2) के अधीन सूचना की तामिल की तारीख से एक मास के अवसान से पूर्व उठाया जाना चाहिए क्योंकि लिखित कथन में प्रथम बार विवाद उठाया जाना पर्याप्त नहीं है ······।
>
> यह मत कि किराएदारी को समाप्त करने वाली सूचना की तामील किए जाने के एक मास के भीतर विवाद उठाया जाना विवाद उठाए जाने का एक तरीका है तथा वाद के किसी प्रक्रम पर वाद उठाए जाने का अन्य तरीका धारा 12 तथा उसके स्पष्टीकरण में अन्तर्विष्ट उपबन्धों को अकृत करता है और किराए-दार को अधिकार प्रदान करता है जबकि विधायन में इस प्रकार के अधिकार को अनुध्यात नहीं किया गया है।"

---

1. ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 2005.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

6. **जयील बन्धु अदके और एक अन्य बनाम बसावली गुरुलिंगप्पा महलंक और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने भी इस प्रश्न पर विचार किया था तथा निम्नलिखित शीर्ष-टिप्पण इस स्थिति को स्पष्ट करता है—

> "बाम्बे रेंट्स, होटल एण्ड लाजिंग हाउस रेट्स कंट्रोल ऐक्ट की धारा 12(3)(क) के उपबंधों के अधीन पारित बेदखली की डिक्री का निवारण करने का एकमात्र तरीका यह है कि किराएदार किराए के संबंध में विवाद उठाते हुए आवेदन करे तथा बाम्बे रेंट्स, होटल एण्ड लाजिंग हाउस रेट्स कण्ट्रोल ऐक्ट की धारा 11(2) के अधीन मानक किराए का नियत करने का निवेदन करे जैसा कि धारा 12 के स्पष्टीकरण I में अपेक्षित है। बाम्ब रेंट ऐक्ट की धारा 12 के प्रयोजनों के लिए मानक किराए की बाबत विवाद उठाने के लिए और कोई तरीका अनुज्ञेय नहीं है। धारा 12 के स्पष्टीकरण I के साथ पठित धारा 11 (3) के अधीन आवेदन किए बिना एक मास के अवसान से पूर्व मांग सूचना का जवाब देने में किराएदार मानक किराए की बाबत विवाद उठाने में न्यायालय धारा 12(3)(क) के उपबंधों के अधीन बेदखली की डिक्री पारित करने से निवारित नहीं होगा ....।"

अतः यह स्पष्ट है कि जब कभी न्यायालय को किराया अधिनियम की धारा 12(3)(क) के अधीन किसी मामले पर विचार करना पड़ता है तब मानक किराए के विषय में के प्रश्न पर तब तक विचार नहीं किया जा सकता जब तक कि किराएदार ने उस सूचना की प्राप्ति से एक मास के भीतर उस प्रयोजन के लिए आवेदन न कर दिया हो।

7. तथापि, श्री राने ने यह दलील दी कि उपरोक्त विनिश्चय केवल तभी लागू होंगे जब कि मुम्बई होटल और बासा किराया दर नियंत्रण अधिनियम की धारा 12 (3) (क) के उपबंधों पर विचार करता हो और यह कि इन विनिश्चयों का तब कोई संबंध नहीं है जब मुम्बई होटल और बासा किराया दर नियंत्रण अधिनियम की धारा और 12 (2) के उपबंधों का निर्वचन किया जा रहा हो।

[1] 1982 महाराष्ट्र एल० जे० 612.

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्री राने की दलील को समझने के लिए हम धारा 12 के सुसंगत भाग को उद्धृत करना चाहेंगे। यह भाग निम्नलिखित है :—

*"12 (1). मकान-मालिक किसी भी परिसर के कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए तब तक हकदार नहीं होगा जब तक कि किराएदार मानक किराए की रकम का और अनुज्ञात वृद्धियों का यदि कोई हों, संदाय कर देता है या संदाय करने के लिए तैयार या इच्छुक है और किराएदारी की अन्य शर्तों का निर्वहन और अनुपालन वहां तक करता है जहां तक कि वे इस अधिनियम के उपबंधों से संगत हैं।

(2) मकान-मालिक द्वारा किराएदार के विरुद्ध कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए कोई वाद मानक किराए या शोध्य अनुज्ञात वृद्धियों के संदाय के न करने के आधार पर तब तक संस्थित नहीं किया जाएगा जब तक कि मानक किराए या अनुज्ञात वृद्धियों की मांग की लिखित सूचना सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 में उपबंधित रीति में किराएदार पर तामील किए जाने के पश्चात् एक मास की अवधि व्यतीत न हो गई हो।

(3) (क). जहां किराया मास-प्रति-मास देय है और जहां मानक किराए या अनुज्ञात वृद्धियों की रकम की बाबत कोई

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :—

"12(1). A landlord shall not be entitled to the recovery of possession of any premises so long as the tenant pays, or is ready and willing to pay, the amount of the standard rent and permitted increases, if any and observes and performs the other conditions of the tenancy, in so far as they are consistent with the provisions of this Act.

(2) No suit for recovery of possession shall be instituted by a landlord against tenant on the ground of non-payment of the standard rent or permitted increases due, until the expiration of one month next after notice in writing of the demand of the standard rent or permitted inrceases has been served upon the tenant in the manner provided in section 106 of the Transfer of Property Act, 1882.

(3) (a). Where the rent is payable by the month and there is no dispute regarding the amount of standard rent or

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विवाद नहीं है वहां यदि ऐसे किराए की वृद्धियां 6 मास या 6 मास से अधिक की अवधि तक बकाया, बकाया हैं और किराएदार उसका संदाय करने की उपधारा (2) में निर्दिष्ट सूचना दिए जाने के एक मास की अवधि की समाप्ति तक उपेक्षा करता है तो न्यायालय कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए किए गए इस प्रकार के वाद में बेदखली के लिए डिक्री पारित करेगा।

(ख) किसी अन्य मामले में बेदखली के लिए कोई डिक्री इस प्रकार के वाद में पारित नहीं की जाएगी यदि वाद की सुनवाई के प्रथम दिन या किसी ऐसी अन्य तारीख को या से पूर्व जैसी न्यायालय नियत करे, किरायदार न्यायालय में मानक किराए का और उस समय तक शोध्य अनुज्ञात वृद्धियों का संदाय करता है या उसे निविदत्त करता है और इसके पश्चात् इस किराए और अनुज्ञात वृद्धियों का नियमित रूप से न्यायालय में वाद के अन्तिम रूप से विनिश्चित किए जाने तक संदाय करता रहता है तथा न्यायालय द्वारा यथा निदेशित वाद के खर्चे का संदाय कर देता है।

* * * *

8. श्री राने ने यह दलील दी कि उपरोक्त धारा इस बात को दर्शित करती है कि मकानमालिक द्वारा कब्जे का दावा करने से पूर्व कतिपय

---

permitted increases, if such rent increases are in arrears for a period of six months or more and the tenant neglects to make payment thereof until the expiration of the period of one month after notice referred to in sub-section (2), the (Court shall pass a decree) for eviction in any such suit for recovery of possession.

(b) In any other case no decree for eviction shall be passed in any such suit if, on the first day of hearing of the suit or on or before such other date as the Court may fix, the tenant pays or tenders in Court the standard rent and permitted increases then the due and thereafter continues to pay or tender in Court regularly, such rent and permitted increases till the suit is finally decided and also pays costs of the suit as directed by the Court.

* * * *

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आवश्यकताओं की पूर्ति करना आवश्यक है। सुविधा के लिए हम श्री राने द्वारा दी गई इन अपेक्षाओं के प्रति निर्देश करना चाहेंगे :—

(1) कब्जे के लिए कोई डिक्री नहीं होगी यदि किराएदार मानक किराए और अनुज्ञात वृद्धियों की रकम का संदाय करने के लिए तैयार या इच्छुक है।

(2) कोई भी वाद तब तक संस्थित नहीं किया जा सकेगा जब तक कि मकानमालिक मानक किराए या अनुज्ञात वृद्धियों की मांग करते हुए सूचना नहीं दे देता।

(3) धारा 12 (3) (क) लागू नहीं होती; यदि किराया मास-प्रति-मास देय न हो।

(4) धारा 12 (3) (क) लागू होगी यदि मानक किराए की बाबत कोई विवाद न हो।

(5) धारा 12 (3) (क) लागू होगी यदि बकाया 6 मास या उससे अधिक की है।

(6) किराएदार रेंट ऐक्ट की धारा 12 (2) के अधीन सूचना की प्राप्ति से एक मास के भीतर संदाय करने की उपेक्षा करता है।

9. श्री राने द्वारा जिस बात पर जोर दिया गया है वह यह है कि उपर्युक्त मामलों में उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय ने भी केवल उपरोक्त अपेक्षा सं० 4 पर ही विचार किया है और यह कि शेष प्रश्नों पर उक्त विनिश्चयों में से किसी भी विनिश्चय में विचार नहीं किया गया है। अतः उसने यह दलील दी कि धारा 12 (3) (क) के लागू किए जाने की बाबत विचार करते हुए मानक किराए के बारे में विवाद सूचना की प्राप्ति से एक मास के भीतर आवेदन किए बिना नहीं उठाया जा सकता और इस प्रकार के आवेदन के अभाव में इस बात का पता लगाया जाना आवश्यक होगा कि क्या कब्जे के लिए डिक्री पारित करने से पूर्व शेष अपेक्षाएं विद्यमान थीं। उदाहरणार्थ उसने यह दलील दी कि प्रश्न सं० 1 में मानक किराए का संदाय करने की तत्परता और इच्छा का अभाव अनुध्यात है। इसी प्रकार प्रश्न सं० 2 में यह सुझाव दिया गया है कि सूचना में मानक किराए या अनुज्ञात वृद्धियों की मांग की जानी चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उसने इस बात पर भी जोर दिया कि इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या बकाया 6 मास या इससे अधिक की है, प्रथमतः न्यायालय के लिए इस बात का विनिश्चय करना आवश्यक होगा कि मानक किराया कितना है और इसके पश्चात् वह इस बात का पता लगाने के लिए संगणना करेगा कि क्या बकाया विद्यमान है। उसने आगे यह दलील दी कि किराए-दार की ओर से उपेक्षा की बाबत निष्कर्ष को अभिलिखित करते हुए मानक किराए की रकम का अवधारण करना आवश्यक होगा। उसके अनुसार यह सब किया जाएगा यदि किराएदार ने अपने लिखत कथन में मानक किराए के बारे में विवाद खड़ा किया हो चाहे उसने मकान मालिक की सूचना की प्राप्ति से एक मास के भीतर कोई आवेदन फाइल न किया हो। हम यह नहीं समझते कि श्री राने द्वारा की गई ये संस्वी-कृतियां सुआधारित है। यदि वाद में किराएदार को मानक किराए के बारे उस दशा में विवाद उठाए जाने से प्रवारित किया जाता है जिसमें उसने सूचना की प्राप्ति से एक मास के भीतर कोई आवेदन फाइल न किया हो तो हम यह नहीं समझते कि वह किस प्रकार इस बात पर जोर देने के प्रयोजन के लिए मानक किराए की बाबत दलील दे सकता है कि वह मानक किराए का संदाय करने के लिए तत्पर और इच्छुक है और यह कि वह इसका इसलिए संदाय नहीं कर सका क्योंकि मानक किराया नियत नहीं किया गया है। इसी प्रकार किराएदार के लिए यह दलील देना संभव नहीं है कि सूचना में मानक किराए की मांग नहीं की गई है क्योंकि मानक किराया नियत नहीं किया गया है। ऊपर प्रगणित विभिन्न प्रश्नों का विनिश्चय इस विधिक स्थिति पर विचार करने के पश्चात् संयुक्त रूप से किया जाएगा कि मानक किराए की बाबत विवाद ऐसे वाद में उठाए जाने के लिए अनुज्ञेय नहीं है जिसमें किराएदार ने सूचना की प्राप्ति से एक मास के भीतर कोई आवेदन न किया हो। अन्य प्रश्नों पर विचार करते समय और विशिष्ट रूप से अब प्रश्न 4 पर निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया जाए कि मानक किराए की बाबत कोई विवाद नहीं है, यह कहना कि इस प्रकार की दलील दिया जाना अनुज्ञेय है व्यर्थ का तर्क होगा। श्री राने की दलीलें स्पष्ट रूप से भ्रांतिपूर्ण हैं विशिष्टया उल्लिखित विनिश्चयों के आधार पर मानक किराए की बाबत कोई विवाद नहीं होगा और करारित दर पर किराए की मांग पूर्ण रूप से विधिपूर्ण और उचित है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

10. यह भी दलील दी गई कि किराया अधिनियम की धारा 12(2) के अधीन सूचना अनुचित है क्योंकि मांग मानक किराया और अनुज्ञात वृद्धियों के लिए नहीं की गई है और क्योंकि मांग करारित दर के आधार पर की गई है यद्यपि मानक किराया बाद में निचले न्यायालयों द्वारा कम रकम पर अर्थात् 11 रुपये प्रतिमास पर अवधारित किया गया है। तर्क यह है कि धारा 12 (2) के अधीन दी गई सूचना का यथावत् रूप से अर्थान्वियन किया जाना चाहिए और किराएदार को सूचना में हुई भूल का फायदा दिया जाना चाहिए। हमारी राय में किराएदार के पक्ष में सूचना के यथावत् रूप से अर्थान्वियन किए जाने संबंधी इस दलील को स्वीकार किया जाना संभव नहीं है। सूचना मकानमालिक और किराएदार के बीच संसूचना होती है और दोनों ही पक्षकार किराए के संदाय के बारे में अपने-अपने अधिकार और अपने-अपने दायित्व को समझते हैं। अतः अधिक रकम के लिए की गई मांग में हुई कोई भूल सूचना को अवैध नहीं बनाएगी। यही बात उच्चतम न्यायालय द्वारा **रघुनाथ रावजी दाण्डेकर बनाम अनन्त नारायण आपटे**[1] वाले मामले में जो कि एक अप्रतिवेदित विनिश्चय है अभिनिर्धारित की गई है। इसी प्रकार इस न्यायालय ने **लालशंकर मुलजी बनाम कांतिलाल**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि सूचनामात्र इस कारण अवैध नहीं होती कि उसमें भूल से या असावधानी से मकानकराए ने शोध्य किराए से अधिक किराए की मांग की है। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि मकान खाली करने के लिए दी गई किसी ऐसी सूचना का, जिसमें अशुद्धियां हों, उदारतापूर्वक अर्थान्वियन किया जाना चाहिए।

11. किराएदार ने **गणपत बनाम मोतीलाल**[3] वाले मामले में न्या० अग्रवाल के विनिश्चय का अवलम्ब लिया। उस मामले में अनुज्ञात वृद्धियों और नगरपालिका करों का पूर्ण रूप से कायम न रखे जाने वाले ऐसे दावे की सूचना दी जिसकी रकम 500 रुपये से अधिक थी। प्रश्न उठा कि क्या ऐसी सूचना अनुचित है। न्या० अग्रवाल ने यह अभिनिर्धारित किया कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सूचना द्वारा की गई मांग घातक है और ऐसी सूचना बेदखली कार्यवाहियों का आधार नहीं हो

---

[1] 4 जून, 1966 को विनिश्चित 1964 की सिविल अपील सं० 387.

[2] 74 मुम्बई एल० आर० 241.

[3] ए० आई० आर० 1977 मुम्बई 344.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सकती। उक्त निर्णय के पैरा 17 में व्यक्त किए गए कतिपय मतों का यह दलील देने के प्रयोजन के लिए अवलम्ब लिया गया कि सूचना का उदारतापूर्ण रूप से अर्थान्वयन नहीं किया जाना चाहिए। हमारी राय में यह सही प्रस्थापना नहीं है। सामान्य नियम यह है कि मकानमालिक और किराएदार के बीच दी गई सूचना का उदारतापूर्ण रूप से अर्थान्वयन किया जाना चाहिए न कि उसमें किसी प्रकार की गलती निकालने के प्रयोजन के लिए उसका अर्थान्वयन किया जाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने **भगवान दास अग्रवाल बनाम भगवान दास बसु और अन्य**[1] वाले मामले में ऐसा ही अभिनिर्धारित किया है। हम यह पहले ही मत व्यक्त कर चुके हैं कि मकानमालिक और किराएदार दोनों के बारे में ही यह उपधारणा की जाती है कि वे यह जानते हैं कि किराए और अनुज्ञात वृद्धियों की कितनी मात्रा का और संदाय किया जाना है। अतः जब मकानमालिक सूचना द्वारा इस प्रकार की बकाया के संदाय का दावा करता है तब यदि किराए की मात्रा की बाबत कोई भूल हो जाती है तो ऐसी भूल के कारण सूचना अनुचित नहीं हो जाती। इस दलील को स्वीकार करना बहुत ही कठिन है कि मांग सूचना में यहां-वहां हुई कोई गलती वाद को खारिज करने के लिए पर्याप्त है। यह संभव है कि किसी विशिष्ट मामले में मकानमालिक ने ऐसे दावे के सहित जिसके बारे में कोई विवाद नहीं है कतिपय रकम की मिथ्या या कायम न रखे जाने वाली मांग की हो। ऐसी दशा में किराएदार के पास यह विकल्प होता है कि वह किराए की अविवादास्पद रकम का संदाय कर दे और यह जवाब दे दे कि शेष रकम की बाबत दावा मिथ्या है। यदि कुछ समय पश्चात् वाद के प्रक्रम पर दावे के बारे में यह साबित हो जाता है कि यह मिथ्या है तो स्पष्ट रूप से किराएदार सुरक्षित रहेगा क्योंकि उसने वस्तुतः शोध्य रकम का संदाय कर दिया है। लेकिन वह उसका विरोध करने में समर्थ नहीं होगा। यदि उसने सूचना की प्राप्ति के एक मास के भीतर उस बकाया का संदाय नहीं किया है जिसके लिए मकानमालिक हकदार है। **गणपत बनाम मोतीलाल**[2] वाले मामले में व्यक्त किया गया यह मत कि यदि सूचना में कायम न रखे जाने वाला दावा सम्मिलित किया गया है तो ऐसी सूचना

---

1 ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 1180.

2 ए० आई० आर० 1977 मुम्बई 344.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुचित होगी, एक सामान्य कथन है और हम इससे सहमत नहीं हैं। ऐसे मामले में भी किराएदार की यह बाध्यता होती है कि वह विहित समय के भीतर उसके द्वारा देय अनुज्ञेय रकम का संदाय करे। वास्तव में यदि अन्ततोगत्वा न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि किराएदार के द्वारा भेजी गई रकम किराए की सभी बकाया की पूर्ति नहीं करती तो किराएदार को जोखिम उठानी पड़ेगी। ऐसी निष्कर्ष की दशा में मकानमालिक कब्जे की डिक्री के लिए हकदार होगा। लेकिन इस प्रकार की कोई डिक्री नहीं दी जाएगी यदि मकानमालिक को देय समस्त बकाया का संदाय करने के लिए वह रकम पर्याप्त हो। इस तरह प्रत्येक बात प्रत्येक मामले के तथ्यों पर आधारित होगी किन्तु मुख्य रूप से इस आधार पर कार्रवाई करनी होगी कि सूचना का उदारतापूर्वक अर्थान्वयन किया जाए न कि उसका इस प्रकार अर्थान्वयन किया जाए कि उसमें कोई गलती ढूंढी जा सके।

12. श्री राने ने आगे इस बात पर जोर दिया कि प्रस्तुत मामले में असंगत स्थिति उत्पन्न हो सकती है क्योंकि विचारण न्यायलय और जिला न्यायालय ने मानक किराया 11 रुपये नियत किया है और इसके बावजूद भी प्रतिवादी किराएदार कब्जा परिदत्त करने के दायित्वाधीन होगा। उसने यह तर्क दिया कि सूचना की प्राप्ति से एक मास के भीतर प्रतिवादी द्वारा 525 रुपये का संदाय 11 रुपये प्रतिमास की दर से समस्त बकाया की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त है और इस प्रकार निचले न्यायालय को यह निष्कर्ष अभिलिखित करना चाहिए था कि प्रतिवादी किराएदार मानक किराए का संदाय करने के लिए तैयार और इच्छुक है और यह कि वाद फाइल किए जाने के समय उस पर कोई बकाया नहीं थी। उसने यह भी दलील दी कि 525 रुपये के संदाय के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि इस रकम के संदाय द्वारा सूचना की प्राप्ति से एक मास के भीतर बकाया का संदाय करते हुए किराया अधिनियम की धारा 12 (3) (क) का पर्याप्त रूप से अनुपालन कर दिया गया है। यह सत्य है कि निचले दोनों न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मानक किराया 11 रुपये प्रतिमास है। किन्तु उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयों के आधार पर किराएदार उस संबंध में कोई विवाद उठाने का हकदार नहीं है। परिणामतः विचारण न्यायालय या जिला न्यायालय के समक्ष मानक किराए के नियत किए जाने के बारे में कोई विवाद्यक नहीं हो सकता। इस तरह निचले दोनों न्यायालयों द्वारा अभि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिखित निष्कर्ष ऐसे मामले में दिया गया है जिसमें मानक किराए के नियत किए जाने के बारे में कोई विवाद्यक नहीं हो सकता । अतः यह तथ्य कि विचारण न्यायालय और जिला न्यायालय ने मानक किराए के रूप में 11 रुपये प्रतिमास नियत किए है । यह दलील देने के प्रयोजन के लिए प्रतिवादी की कोई सहायता नहीं करता कि उसने वादी की उस सूचना का जिसमें प्रतिवादी किराएदारों से सूचना की प्राप्ति के एक मास के भीतर बकाया का संदाय करने का निवेदन किया गया था, अनुपालन कर दिया है। विचारण न्यायालय और जिला न्यायालय द्वारा अभिलिखित मानक किराए के नियतन के विषय में निष्कर्ष अनावश्यक है । वास्तव में श्री बापना यह दलील देने में सही है कि मानक किराए के बारे में विवाद का ग्रहण किया जाना और उसके आधार पर निष्कर्ष अभिलिखित किया जाना बिना अधिकारिता के है। अतः स्थिति यह है कि किराएदार मानक किराए के बारे में विवाद उठाने के लिए हकदार नहीं है और इस तरह मकानमालिक को इस आधार पर कि यह मामला किराया अधिनियम की धारा 12 (3) (क) के अन्तर्गत आता है कब्जे के लिए डिक्री का दिया जाना सही है। इस पृष्ठभूमि के आधार पर करारित किराए की मांग सूचना को अनुचित नहीं बनाती ।

13. परिणामतः पिटीशन असफल होता है। न्यादेश का खर्चे सहित उन्मोचन किया जाता है। इन कार्यवाहियों में अनुदत्त अन्तरिम रोक आदेश प्रभावोन्मुक्त किया जाता है । किन्तु पिटीशनर को खाली करने के लिए दो मास का समय मंजूर किया जाता है।

पिटीशन नामंजूर किया गया।

बंसल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नि० प० 1983 : मुम्बई—117

मैसर्स बिलियन प्लास्टिक्स प्रा० लि० बनाम डाईज एण्ड केमिकल कर्मकार संघ और अन्य

(M/s. Billion Plastics P. Ltd. Vs. Dyes & Chemical Workers Union & Ors.)

तारीख 20 दिसम्बर, 1982

[न्या० धर्माधिकारी]

महाराष्ट्र रिकोगनीशन ऑफ ट्रेड यूनियन एण्ड प्रिवेंशन आफ अनफेयर लेबर प्रेक्टिसेज ऐक्ट (महाराष्ट्र व्यवसाय संघ मान्यकरण और अनुचित श्रम व्यवहार निवारण अधिनियम), 1971 धारा 30 (2) और इसकी सूची III की मद सं० 1—उक्त धारा के अधीन प्रथमदृष्टया जब तक न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच जाता कि हड़ताल या तालाबंदी अनुचित श्रम व्यवहार के कारण है तब तक किसी प्रकार का अन्तरिम अनुतोष मंजूर नहीं कर सकता और चूंकि अधिनियम की उक्त अनुसूची की मद सं० 1 का यथावत रूप से अर्थान्वयन किए जाने के कारण इसके अन्तर्गत केवल वे ही हड़तालें आती हैं जो अधिनियम के उपबंधों के अन्तर्गत अवैध समझी जाती हैं।

पिटीशनर-कम्पनी ने औद्योगिक न्यायालय में अनुतोष के लिए निवेदन करते हुए प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया। अन्य अनुतोषों के अतिरिक्त पिटीशनर-कम्पनी ने इस आन्तरिक अनुतोष के लिए निवेदन किया कि कर्मकारों को हड़ताल का आश्रय लेने से रोका जाए। किन्तु औद्योगिक न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश द्वारा अनुतोष मंजूर करने से इन्कार कर दिया। इसी आदेश को प्रस्तुत पिटीशन में चुनौती देते हुए यह दलील दी गई कि महाराष्ट्र रिकोगनीशन आफ ट्रेड यूनियन एण्ड प्रिवेंशन आफ अनफेयर लेबर प्रेक्टिसेज ऐक्ट, 1971 स्वयं में एक पूर्ण संहिता है जो अनुचित संव्यवहार का निवारण करने के एकमात्र उद्देश्य से अधिनियमित किया गया है। तालाबन्दी या हड़ताल का आश्रय लिया जाना किसी भी व्यक्ति का मूल अधिकार नहीं है बल्कि यह एक ऐसा हथियार है जिसका प्रयोग केवल अन्तिम आश्रय के रूप में किया जा सकता है। अतः औद्योगिक न्यायालय को नियोजक या कर्मचारियों को अनुचित तालाबन्दी या अनुचित हड़ताल से अवरुद्ध करने की अधिकारिता प्राप्त है। इसके विपरीत प्रत्यर्थियों ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह दलील दी कि चूंकि उक्त अधिनियम एक पूर्ण संहिता है अतः अनुचित श्रम व्यवहार से संबंधित प्रविष्टियां पूर्ण रूप से विस्तृत होने के कारण न्यायालय निर्वचन या अर्थान्वयन की प्रक्रिया द्वारा इसकी प्रविष्टियों में कोई बात जोड़ कर परिवर्तन नहीं कर सकता। उसने यह दलील दी कि जब तक प्रत्यक्ष रूप से यह दर्शित नहीं कर दिया जाता कि जिस हड़ताल का अवलम्ब लिया गया है वह अवैध है तब तक औद्योगिक अधिकरण कर्मचारियों या संघ को विधिक हड़ताल का अवलम्ब लेने से अवरुद्ध करने के लिए किसी प्रकार का अन्तरिम आदेश पारित करने की अधिकारिता नहीं रखता। प्रस्तुत मामले में विचारार्थ और अवधारणार्थ प्रश्न यह है कि क्या उक्त अधिनियम के अधीन औद्योगिक न्यायालय वैध रूप से हड़ताल करने वाले कर्मचारियों को हड़ताल का आश्रय न लेने का आदेश देने की अधिकारिता है ?

अभिनिर्धारित -- पिटीशन नामंजूर किया गया।

यद्यपि संविधान के अधीन हड़ताल करने का अधिकार मूल अधिकार नहीं है तथापि उक्त अधिकार कर्मकारों का सुमान्यताप्राप्त अधिकार है। प्रत्येक हड़ताल अवैध नहीं होती। प्रजातंत्र राज्य में कर्मकारों को अपनी मांगों के समर्थन में श्रम को विधारित करने का प्रत्येक अधिकार है अतः औद्योगिक संबंधों में विधिक हड़ताल एक सुसंगत हथियार है। औद्योगिक संबंधों में उचित रूप से की गई हड़ताल सुरक्षा वाल्व का कार्य करती है। अवैध हड़ताल कानून का ही सृजन है और प्रस्तुत अधिनियमिति में अधिनियम की धारा 24 का इसी उद्देश्य से सृजन किया गया है। विधिक हड़ताल का स्वरूप विशुद्धतः अहिंसात्मक है। यह दमन के विरुद्ध विद्रोह है। यह असहयोग का एक सुविख्यात ढंग है। सामान्यतया यह ऐसे सदोष कार्य के लिए प्रतितोष घोषित करने के लिए होती है जो केवल सदोष कार्य में भाग लेने के लिए श्रम से इन्कार करने की कोटि में आती है और इस तरह सदोषकर्ता को उसके अपने साधनों पर छोड़ दिया जाता है। दूसरे शब्दों में अन्य पक्षकार को सदोष कार्य करने में गलती का परिणाम भुगतने के लिये छोड़ दिया जाता है। अतः यह कहना उचित नहीं है कि प्रत्येक प्रकार की हड़ताल अवैध हड़ताल होती है। (पैरा 3)

यदि अधिनियम के अधीन हड़ताल विधिक हड़ताल है तो स्पष्ट रूप से यह अनुसूची 3 की मद सं० 1 के अन्तर्गत नहीं आएगी। हड़ताल जारी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करते हुए भी यदि कर्मचारी बल और हिंसा के प्रयोग में लगे रहते हैं तथा या तो हड़ताल न करने वाले कर्मचारियों के या प्रबन्ध करने वाले कर्मचारीवृन्द के विरुद्ध हड़ताल की बाबत धमकी या अभित्रास देते हैं तो ऐसी हड़ताल को अनुसूची 3 की प्रविष्टि सं० 2 (ख) के अनुसार अनुचित श्रम व्यवहार माना जाएगा। (पैरा 4)

अनुचित श्रम व्यवहार के प्रश्न का विनिश्चय करते समय न्यायालय को यह देखना होता है कि क्या अधिनियम के अधीन हड़ताल अवैध समझी जाएगी या नहीं और यह कि न्यायालय इसकी न्यायोचितता या औचित्यता की बाबत अधिनिर्णय नहीं दे सकता। उक्त क्षेत्र अधिनियम की धारा 30 के अन्तर्गत नहीं आता जिसमें कि न्यायालयों को अनुचित श्रम व्यवहार के संबंध में परिवादों पर विचार करने की सीमित शक्ति प्रदान की गई है। यह अधिक स्पष्ट है कि अनुचित श्रम व्यवहार के मामलों में अधिनियम की धारा 30 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए न्यायालय को अन्तरिम अनुतोष जारी करने या मंजूर करने से पूर्व किसी निश्चित प्रथमदृष्टया निष्कर्ष पर पहुंचना आवश्यक है। (पैरा 4)

जब एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिया जाता है कि हड़ताल की औचित्यता अनुसूची 3 की मद सं० 1 के विस्तार के परे है तब इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक नहीं होता कि क्या ऐसी स्थिति में जब कि सभी मार्गों का अनुसरण किया जा चुका हो अन्त में हड़ताल का अवलम्ब लिया जाए। ये ऐसे विषय हैं जो प्रस्तुत अधिनियम के अन्य उपबंधों और साथ ही साथ इस क्षेत्र की अन्य अधिनियमितियों के उपबंधों के अन्तर्गत आते हैं और ऐसी बात नहीं है कि इस निमित्त नियोजक के लिए कोई उपचार नहीं है। प्रस्तुत मामले में यह न्यायालय अनुसूची 3 की मद सं० 1 से निर्बन्धित केवल सीमित संविवाद से ही सम्बद्ध है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अनुचित श्रम व्यवहार में लगना अधिनियमिति में गम्भीरता से लिया गया है जिसके परिणाम शास्तिक होते हैं। यह सुस्थापित है कि जब किसी विशिष्ट उपबंध के अननुपालन के शास्तिक परिणाम हो सकते हैं तब उक्त उपबंध का यथावत रूप से अर्थान्वयन किया जाना चाहिए। अतः अनुसूची 3 में की प्रविष्टियों का यथावत् रूप से अर्थान्वयन किया जाएगा और इस प्रकार अर्थान्वयन किए जाने पर इसके अन्तर्गत केवल वे ही हड़तालें आ सकेंगी जो अधिनियम के अधीन अवैध समझी जाती हैं। (पैरा 4)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पैरा

[1980] [1980] 4 उम० नि० प० 456=ए० आई०आर० 1980 एस० सी० 1896 : गुजरात स्टील ट्यूब्स लि० **बनाम** गुजरात स्टील ट्यूब्स मजदूर सभा (Gujrat Steel Tubes Ltd. *Vs.* Its Mazdoor Sabha) 3

का **अवलम्ब** लिया गया।

[1982] 1982 लेबर एण्ड आई०सी० 1533 : मनुबाई मजदूर सभा **बनाम** बाम्बे डाईंग एण्ड मैन्युफैक्चरिंग कं० लि० और अन्य (Manubai Mazdoor Sabha *Vs.* Bombay Dyeing & Mfg. Co. Ltd. & Ors.) 2

से अभेद बतलाया गया।

[1982] 1982 (2) लेबर ला जर्नल 332: अमलेन्दु गुप्ता और अन्य **बनाम** भारत जीवन बीमा निगम (Amalendu Gupta and others *Vs.* Life Insurance Corporation of India); 1

[1982] 1982 (2) लेबर एल०जे० 73=प्रीमियर आटोमोबाइल्स लि० **बनाम** इंजीनियरिंग मजदूर सभा और अन्य (Premier Automobiles Ltd. *Vs.* Engineering Mazdoor Sabha & Ors.); 2

[1981] 1981 महाराष्ट्र ला जर्नल 711 : निछानी होटल्स कारपोरेशन **बनाम** बाम्बे श्रम संघ और अन्य (Nichani Hotels Corporation *Vs.* Bombay Labour Union & others); 1

[1980] 1980 (1) लेबर ला जर्नल 112 : मनुबाई मजदूर सभा **बनाम** बैनेट कालमैन एण्ड कं० लि० और अन्य (Manubai Mazdoor Sabha *Vs.* Bennet Colman & Co. Limited and others); 1

[1965] ए० आई० आर० 1965 एस० सी० 311 : राधे श्याम शर्मा **बनाम** पोस्ट मास्टर जनरल (Radhey Shyam Sharma *Vs.* Post Master General); 1

[1960] 1960 (2) लेबर ला जर्नल 243 : चन्द्रमलाई एस्टेट **बनाम** कर्मकार और अन्य (Chandramalai Estate *Vs.* Workmen and others) 1

निर्दिष्ट किए गए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आरम्भिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 1982 का रिट पिटीशन सं० 2214.

इस रिट पिटीशन में पिटीशनर-कम्पनी ने औद्योगिक न्यायालय द्वारा 21 जुलाई, 1982 को पारित आदेश को चुनौती दी है।

पिटीशनर की ओर से ... श्री एस० डी० पुरी

प्रत्यर्थी सं० 1 से 3 की ओर से ... श्री पंकज एम० पटेल सहित कुमारी निशिता प्रधान

न्या० धर्माधिकारी :

इस रिट पिटीशन में पिटीशनर-कम्पनी ने औद्योगिक न्यायालय द्वारा 21 जुलाई, 1982 को पारित आदेश को चुनौती दी है। इस आदेश द्वारा औद्योगिक न्यायालय ने पिटीशनर-कम्पनी की उसके द्वारा दिए गए आवेदन के खण्ड 4(ii) में की गई प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया था। पिटीशनर-कम्पनी ने महाराष्ट्र रिकाग्नीशन आफ ट्रेड यूनियन एण्ड प्रिवेंशन आफ अनफेयर लेबर प्रेक्टिसेज ऐक्ट (महाराष्ट्र व्यवसाय संघ मान्यकरण और अनुसूचित श्रम व्यवहार निवारण अधिनियम), 1971 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 30(2) के अन्तर्गत अन्तरिम अनुतोष के लिए आवेदन फाइल किया था। अन्य अनुतोषों के अतिरिक्त 3 जुलाई, 1982 के पत्र के अनुसरण में कर्मकारों को हड़ताल का आश्रय लेने या उसे चालू रखने से निवारित करने के लिए भी अन्तरिम अनुतोष की मांग की गई। आवेदन में किए गए अन्य प्रकथनों अथवा संघ द्वारा फाइल किए गए जवाब के प्रति विस्तृत रूप में निर्देश करना आवश्यक नहीं है। अन्तरिम अनुतोष के इसी भाग की बाबत औद्योगिक न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश द्वारा पिटीशनर-कम्पनी को इनकार कर दिया। औद्योगिक न्यायालय ने अपने आदेश के पैरा 7 में अन्तरिम अनुतोष को मंजूर करने से इनकार करने के अपने कारण दिए हैं जो निम्न प्रकार हैं :—

> "जहां तक परिवादी-कम्पनी द्वारा चाहे गए द्वितीय अनुतोष का संबंध है यह संदेहास्पद है कि यह न्यायालय कर्मकारों को हड़ताल करने से अवरुद्ध करने की अधिकारिता रखता है। कर्मचारी-समूह द्वारा की गई सामूहिक कार्रवाई पर साधारण रूप से विचार नहीं किया जा सकता। कर्मकारों द्वारा हड़ताल का आश्रय लिए जाने का अधिनियम की सुसंगत अनुसूची में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुचित श्रम व्यवहार के रूप में उल्लेख नहीं किया गया है। अतः जब यह कहने का कोई आधार न हो कि कर्मकारों ने अनुचित श्रम व्यवहार का आश्रय लिया है तब अस्थायी आदेश के तौर पर द्वितीय अनुतोष मंजूर करना उचित नहीं है।"

जैसा कि पहले ही मत व्यक्त किया जा चुका है इसी निष्कर्ष को प्रस्तुत रिट पिटीशन में चुनौती दी गई है। पिटीशनर-कम्पनी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल, श्री पुरी ने यह दलील दी कि अधिनियम स्वयं में एक पूर्ण संहिता है जो अनुचित श्रम व्यवहार का निवारण करने के एकमात्र उद्देश्य से अधिनियमित किया गया है। ताला-बन्दी या हड़ताल का आश्रय लिया जाना किसी का भी मूल अधिकार नहीं है, वरन् यह मात्र एक ऐसा हथियार है जिसका प्रयोग केवल अन्तिम आश्रय के रूप में तब लिया जा सकता है जब कि अन्य सभी प्रयास किए जा चुके हों। अतः औद्योगिक न्यायालय को या तो नियोजक को या कर्मचारियों को अनुचित तालाबन्दी या हड़ताल से अवरुद्ध करने की अधिकारिता प्राप्त है। अतः निचले अधिकरण ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में भूल की है कि न्यायालय को कर्मकारों को हड़ताल का आश्रय लेने से अवरुद्ध करने की अधिकारिता नहीं है। अपनी इस दलील के समर्थन में उसने **चन्द्रमलाई एस्टेट** बनाम **कर्मकार और अन्य**[1], **राधे श्याम शर्मा** बनाम **पोस्ट मास्टर जनरल**[2], **मनुबाई मजदूर सभा** बनाम **बैनेट कालमैन एण्ड कं० लि० और अन्य**[3], **अमलेन्दु गुप्ता और अन्य** बनाम **भारत जीवन बीमा निगम**[4] और **निळानी होटल्स कारपोरेशन** बनाम **बाम्बे श्रम संघ और अन्य**[5] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों का अवलम्ब लिया। श्री पुरी ने यह भी दलील दी कि चूंकि वर्तमान अधिनियमिति एक पूर्ण संहिता है अतः औद्योगिक अधिकरण उक्त अधिनियम की धारा 30(2) के अधीन परिवाद को ग्रहण करते समय समनुषंगी अधिकारिता का प्रयोग करने का भी हकदार है। उसके अनुसार प्रस्तुत मामले में औद्योगिक

---

1 1960 (2) लेबर ला जर्नल 243.

2 ए० आई० आर० 1965 एस० सी० 311.

3 1980 (1) लेबर ला जर्नल 112.

4 1982 (2) लेबर ला जर्नल 332.

5 1981 महाराष्ट्र ला जर्नल 711.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिकरण ने विधि द्वारा इसमें निहित अधिकारिता का प्रयोग करने से इनकार कर दिया है अतः उक्त आदेश पूर्णरूप से दूषित है।

2. दूसरी ओर कुमारी प्रधान ने यह दलील दी है कि प्रस्तुत अधिनियमिति चूंकि एक पूर्ण संहिता है अतः अनुचित श्रम व्यवहार से संबंधित प्रविष्टियां पूर्ण रूप से विस्तृत होने के कारण यह न्यायालय निर्वचन या अर्थान्वयन की प्रक्रिया द्वारा प्रविष्टियों में कोई बात जोड़ कर परिवर्तन नहीं कर सकता। अनुसूची 3 की प्रविष्टि सं० 1 में हड़ताल के औचित्य या न्यायोचित होने का प्रश्न सम्मिलित नहीं है। वास्तव में उक्त प्रश्न सम्बद्ध न्यायालय के विस्तार और अधिकारिता के परे है, यद्यपि प्रस्तुत मामले में उक्त अधिनियम की धारा 25 के अधीन अनुचित श्रम व्यवहार के प्रश्न का विनिश्चय करते समय औचित्य या न्यायोचित का प्रश्न सुसंगत हो सकता है। उसने यह भी दलील दी कि जब तक कि प्रत्यक्ष रूप से यह दर्शित न कर दिया जाए कि अवलम्ब ली गई हड़ताल अवैध है तब तक औद्योगिक अधिकरण को कर्मचारियों या संघ को विधिक हड़ताल का अवलम्ब लेने से अवरुद्ध करने के लिए किसी प्रकार के अन्तरिम आदेश पारित करने की कोई अधिकारिता नहीं है। अपनी दलील के समर्थन में उसने **प्रीमियर आटोमोबाइल्स लि० बनाम इंजीनियरिंग मजदूर सभा और अन्य**[1] तथा **मनुबाई मजदूर सभा बनाम बाम्बे डाइंग एण्ड मैन्युफैक्चरिंग कं० लि० और अन्य**[2] वाले मामलों का अवलम्ब लिया। मेरे समक्ष उठाए गए संविवाद का उचित रूप से मूल्यांकन करने के लिए यह कहना होगा कि अधिनियम की अनुसूची 3 की सुसंगत प्रविष्टि के प्रति निर्देश करना उपयुक्त होगा। अनुसूची 3 की प्रविष्टि सं० 1 निम्न प्रकार है :—

> *"हड़ताल करने की सलाह देना या उसका सक्रिय रूप से समर्थन करना या उसे करने के लिए उकसाना इस अधिनियम के अधीन अवैध समझा जाएगा।"

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :

"To advise or actively support or instigate any strike deemed

---

[1] 1982 (2) लेबर एल० जे० 73.

[2] 1982 लेबर एण्ड आई० सी० 1533.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिनियम की धारा 24 में "अवैध हड़ताल" को विधानमण्डल द्वारा परिभाषित किया गया है। इसके पश्चात् धारा 25 आती है जिसमें हड़ताल या तालाबन्दी के बारे में यह घोषणा करने के लिए कि क्या यह अवैध है श्रम न्यायालय को निर्देश किए जाने का उपबंध किया गया है। धारा 26 में यह उपबंध किया गया है कि अनुचित श्रम व्यवहार को क्या कहा जाए। इसके पश्चात् धारा 28 आती है जिसमें अनुचित श्रम व्यवहार से संबंधित परिवाद पर विचार करने की प्रक्रिया उपबंधित है। इस निमित्त न्यायालय की शक्तियां अधिनियम की धारा 30 में अधिकथित की गई है। तत्पश्चात् धारा 32 में यह अधिकथित किया गया है कि न्यायालय को इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी भी उपबंध के अधीन विनिश्चय के लिए निर्दिष्ट आवेदन या परिवाद से उद्भूत हुए सभी विषयों का विनिश्चय करने की शक्ति है। मनुभाई मजदूर सभा बनाम बाम्बे डाईंग एण्ड मैन्युफैक्चरिंग कं० लि० और अन्य[1] वाले मामले में अनुसूची में प्रविष्टियों के विस्तार और परिधि पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ था। उक्त मामले में विधानमण्डल के उद्देश्य पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रस्तुत अधिनियमिति स्वयं में एक पूर्ण संहिता है। अनुसूची 3 की प्रविष्टि सं० 1 व्यवसाय संघ की ओर से अनुचित श्रम व्यवहार के बारे में है और इसमें यह अधिकथित किया गया है कि व्यवसाय संघ की ओर से किसी ऐसी हड़ताल की सलाह देना या उसका सक्रिय रूप से समर्थन करना या उसे उकसाना जो अधिनियम के अधीन अवैध हो अनुचित श्रम व्यवहार माना गया है। कौन सी हड़ताल अवैध समझी जाएगी इसके बारे में अधिनियम की धारा 24 में अधिकथित किया गया है। इसके पश्चात् धारा 25 आती है जिसमें यह घोषणा करने के लिए उपबंध किया गया है कि किस हड़ताल को अधिनियम के अधीन अवैध हड़ताल समझा जाएगा। अनुसूची 3 की मद सं० 1 में प्रयुक्त किया गया शब्द "डीम्ड" (समझा जाएगा) है जिससे कि धारा 30 के अधीन आवेदन ग्रहण करने के लिए या आवश्यक अनुतोष मंजूर करने के लिए न्यायालय को धारा 25(ख) के अधीन घोषणा की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं होती वरन् न्यायालय मामले पर विचार कर सकता है

to be illegal under this Act."

[1] 1982 लेबर एण्ड आई० सी० 1533.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यदि यह दर्शित कर दिया जाता है कि अवलम्ब ली गई हड़ताल अधिनियम की धारा 24 के अधीन अवैध हड़ताल के रूप में मानी जाएगी या अवैध हड़ताल के रूप में समझी जाएगी। श्री पुरी के अनुसार धारा 30 (ख) के उपबंधों के, जिसमें ऐसी कार्रवाई करने का उपबंध किया गया है, या धारा 32 के आधार पर जो न्यायालय को संबंधित विषयों का विनिश्चय करने और साथ ही साथ धारा 24 में प्रयुक्त शब्द रचना अर्थात् "जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो" इस तथ्य सहित कि हड़ताल और तालाबन्दी का केवल अन्तिम हथियार के रूप में तभी प्रयोग किया जा सकता है जब कि अन्य मार्ग बन्द हो चुके हैं का विनिश्चय करने की शक्ति प्रदान करती है औद्योगिक न्यायालय हड़ताल की न्यायोचितता का विनिश्चय कर सकता है और व्यवसाय संघ या कर्मकारों को अनुचित हड़ताल का अवलम्ब लेने या उसे जारी रखने से अवरुद्ध करते हुए अन्तरिम अनुतोष मंजूर कर सकता है। इस संदर्भ में उसने **मनुबाई मजदूर सभा बनाम बैनेट कोलमैन एण्ड कं० लि० और अन्य**[1] वाले मामले में न्या० पैण्डसे द्वारा दिए गए इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलम्ब लिया है। मेरे लिए एक से अधिक कारणों के आधार पर इस दलील को स्वीकार करना संभव नहीं है। यद्यपि संविधान के अधीन हड़ताल करने का अधिकार मूल अधिकार नहीं है तथापि उक्त अधिकार कर्मकारों का सुमान्यताप्राप्त अधिकार है। प्रत्येक हड़ताल अवैध नहीं होती। प्रजातंत्र राज्य में कर्मकारों को अपनी मांगों के समर्थन में श्रम को विधारित करने का प्रत्येक अधिकार है अतः औद्योगिक संबंधों में विधिक हड़ताल एक विधि सम्मत हथियार है। औद्योगिक संबधों में उचित रूप से की गई हड़ताल सुरक्षा वाल्व का कार्य करती है। अवैध हड़ताल कानून का ही सृजन है और प्रस्तुत अधिनियमिति में अधिनियम की धारा 24 का इसी उद्देश्य से सृजन किया गया है। विधिक हड़ताल का स्वभाव विशुद्धता अहिंसात्मक है। यह दमन के विरुद्ध विद्रोह है। यह असहयोग का एक सुविख्यात ढंग है। सामान्यतया यह ऐसे सदोष कार्य के लिए प्रतितोष घोषित करने के लिए होती है जो केवल सदोष कार्य में भाग लेने के लिए श्रम से इनकार करने की कोटि में आती है और इस तरह सदोषकर्ता को उसके अपने साधनों पर छोड़ दिया जाता है। दूसरे शब्दों में अन्य पक्षकार को सदोष कार्य करने में

[1] 1980 (1) लेबर एल० जे० 112.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गलती का परिणाम भुगतने के लिए छोड़ दिया जाता है। अतः यह कहना उचित नहीं है कि प्रत्येक प्रकार की हड़ताल अवैध हड़ताल होती है। इस संदर्भ में **गुजरात स्टील ट्यूब्स लि० बनाम गुजरात स्टील ट्यूब्स मजदूर सभा**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय के पृ० 129 पर अपनाए गए मतों के प्रति निर्देश करना उपयुक्त होगा। ये मत निम्न प्रकार हैं :—

"निर्णयज विधि का चयनात्मक अध्ययन करना इस स्थान पर उचित है। इसके पहले कि हम ऐसा करें, हड़ताल के अधिकार और सांविधानिक मार्गदर्शक सिद्धान्तों द्वारा प्रेरित प्रगतिशील विधिक विचारधारा के आधार पर कुछ शब्द कहना आवश्यक है। संघ बनाने का अधिकार, सामूहिक सौदेबाजी के अंग के रूप में हड़ताल करने का अधिकार, और स्थिति की वैधता और मानवीयता के अध्यधीन रहते हुए कमजोर समूह, अर्थात् मजदूर का सबल पक्ष, अर्थात् पूंजीपति पर दबाव डालने संबंधी अधिकार, वार्ता करने और न्याय प्राप्त करने का अधिकार ये सभी ऐसी प्रक्रियाएं हैं, जिन्हें औद्योगिक न्यायशास्त्र ने मान्यता दी है और जिन्हें सामाजिक न्याय से समर्थन प्राप्त हुआ है। जब कि स्वयं समाज की बाबत, अस्तित्व की अपनी आधारिक शक्ति की दृष्टि से, यह अभिनिर्धारित न किया जा सके कि सौदेबाजी करने के अधिकार के नाम से लूट-खसौट की गई है और हड़तालियों को अवश्य ही संघर्ष में सुसंस्कृत सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए, न कि अशिष्ट और उपद्रवी गुण्डों के सिद्धान्तों का, उद्योग को, जिसका प्रतिनिधित्व हठी प्रबन्धमण्डल करता है, हड़ताल के हथियार द्वारा तर्कसंगत बनाया जा सकता है और तब वह लाभों की हानि के या अन्य दुष्प्रभावों के संबंध में चीख या चिल्ला नहीं सकता और न ही शिकायत कर सकता है किन्तु उसे वार्ता करनी चाहिए और निर्देश कराया जाना चाहिए। मुख्य आधार यह है कि कर्मकार कमजोर होते हैं, यद्यपि वे उत्पादन करते हैं और अपनी स्थिति अच्छी बनाने के संबंध में उनके संघर्ष को विधि के नियम का समर्थन प्राप्त है। संघ और हड़तालें वृत्तिक घोषणाओं (प्रोफेशन्स) और राजनीतिक दलों की तुलना में कम

[1] [1980] 4 उम० नि० प० 456=ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1896.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

षड़यंत्रकारी है और चूंकि वे काफी कमजोर हैं, इसलिए उन्हें सहायता की आवश्यकता है। अनुच्छेद 19 के साथ पठित संविधान के भाग 4 से इस विकासमान न्यायशास्त्र का बीजारोपण हुआ है। इस निर्णय के प्रारम्भ में दिए गए गांधीवादी उद्धरण में उद्योग में आर्थिक समानता की बात कही गई है। निश्चित रूप से दुःसाहसी उग्रवादी बाह्य प्रेरित तथा बचकानी हड़तालें, जिन पर पागलपन के साथ व्यर्थ ही जिद की जाती है हिंसात्मक स्वभूमिध्वंस नीतियां उल्टी युक्ति प्रस्तुत करती हैं और विधि के लिए अभिशाप होती हैं। इन सीमाओं में रहते हुए, हड़ताल करने का अधिकार सामूहिक सौदेबाजी के लिए महत्वपूर्ण होता है।"

4. अनुसूची 3 की मद सं० 1 के अन्तर्गत जो कुछ आता है वह ऐसी हड़ताल है जिसे उक्त अधिनियम के अधीन अवैध समझा जाता है। यदि अधिनियम के अधीन हड़ताल विधिक हड़ताल है तो स्पष्ट रूप से यह अनुसूची 3 की मद सं० 1 के अन्तर्गत नहीं आएगी। हड़ताल जारी करते हुए भी यदि कर्मचारी बल और हिंसा के प्रयोग में लगे रहते हैं तथा या तो हड़ताल न करने वाले कर्मचारियों के या प्रबंध करने वाले कर्मचारिवृन्द के विरुद्ध हड़ताल की बाबत धमकी या अभित्रास देते तो ऐसी हड़ताल को अनुसूची 3 की प्रविष्टि सं० 2(ख) के अनुसार अनुचित श्रम व्यवहार माना जाएगा। अनुसूची 3 की अन्य मदों में उन व्यवहारों के बारे में उल्लेख किया गया है जिन्हें व्यवसाय संघ की ओर से अनुचित श्रम व्यवहार माना जा सकता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है जब अनुसूची में व्यवसाय संघ की ओर से अनुचित श्रम व्यवहार के बारे में कहा गया है तब इसके अर्थान्तर्गत व्यवसाय संघ के सदस्य भी होने चाहिए। वास्तव में व्यवसाय संघ कर्मचारियों का प्रतिनिधि होता है अतः औद्योगिक न्यायालय यह कहने में पूर्णतया सही नहीं है कि यह कर्मकारों को हड़ताल का अवलम्ब लेने से अवरुद्ध करने की अधिकारिता नहीं रखता। इसका अभिप्राय केवल यह है कि यह किसी विधिक हड़ताल का अवलम्ब लेने से कर्मकारों को अवरुद्ध नहीं कर सकता। मेरे समक्ष संघ की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान काउंसेल ने भी इस बात पर विवाद नहीं किया है कि यदि कर्मकारों या संघ ने अवैध हड़ताल का आश्रय लिया है तो स्पष्ट रूप से यह अनुसूची 3 की मद सं० 1 के अन्तर्गत आएगी। अनुचित श्रम व्यवहार के प्रश्न का विनिश्चय करते समय न्यायालय को यह देखना होता है कि क्या अधिनियम के अधीन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हड़ताल अवैध समझी जाएगी या नहीं और यह कि न्यायालय इसकी न्यायोचितता या औचित्यता की बाबत अधिनिर्णय नहीं दे सकता। उक्त क्षेत्र अधिनियम की धारा 30 के अन्तर्गत नहीं था जिसमें कि न्यायालयों को अनुचित श्रम व्यवहार के संबंध में परिवादों पर विचार करने की सीमित शक्ति प्रदान की गई है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि कोई विशिष्ट संविवाद अधिनियम की परिधि के भीतर विचारणीय नहो तो अधिनियम की धारा 59 या धारा 60 में निर्दिष्ट न्यायालय की अधिकारिता वर्जित नहीं है। यह अधिक स्पष्ट है कि अनुचित श्रम व्यवहार के मामलों में अधिनियम की धारा 30 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए न्यायालय को अंतरिम अनुतोष जारी करने या मंजूर करने से पूर्व किसी निश्चित प्रथमदृष्टया निष्कर्ष पर पहुंचना आवश्यक है। इस संदर्भ में प्रीमियर आटो० प्रा० लि० बनाम इंजीनियरिंग मजदूर सभा[1] वाले मामले में न्या० चन्दूरकर द्वारा अपनाए गए मत के प्रति निर्देश करना उपयुक्त होगा। व्यक्त किए गए मत निम्न प्रकार हैं:—

> "मैं औद्योगिक न्यायालय के आदेश के तात्विक रूप से प्रवर्तनकारी ऐसे भाग को पहले ही उद्धृत कर चुका हूं जिसमें औद्योगिक न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि संदाय जिसका कर्मचारियों द्वारा अवलम्ब लिया गया है अनुग्रहपूर्वक संदाय है न कि 1966 के करार के निबंधनों के अनुसार किया गया संदाय है। अब यदि हम अधिनियम की धारा 30 के उपबंधों का जिनमें औद्योगिक न्यायालय की शक्ति को विनियमित किया गया है, सावधानीपूर्वक अध्ययन करें, तो यह प्रतीत होगा कि किसी व्यक्ति को अनुचित श्रम व्यवहार समाप्त करने या से विरत रहने का निदेश देने के लिए प्रवर्तनकारी आदेश करने की शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व न्यायालय को इस तथ्य के बारे में निष्कर्ष निकालना होगा कि परिवाद में नामित व्यक्ति अनुचित श्रम व्यवहार में लगा हुआ है या लग रहा है किंतु इसे नियोजक को यह निदेश देने की अधिकारिता नहीं है कि वह परिवादित अनुचित श्रम व्यवहार को समाप्त कर दे या से विरत

[1] 1982 (2) लेबर एल० जे० 73.

रहे। धारा 30 की उपधारा (2) न्यायालय को संबंद्ध व्यक्ति को परिवादित व्यवहार को अस्थायी रूप से प्रत्याहृत करने का निदेश देने सहित अन्तरिम आदेश देने के लिए समर्थ बनाती है। इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता कि औद्योगिक न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा है कि वास्तव में ऐसा कोई अनुचित श्रम व्यवहार हुआ है जिसका नियोजक दोषी है। अतः यह स्पष्ट है कि अनुचित श्रम व्यवहार की व्यथा करने के लिए तात्पर्यित ऐसे दो परिवादों में से परिवादित किसी विशिष्ट अनुचित श्रम व्यवहार को नियोजक के विरुद्ध नहीं पाया जाता तो अधिनियम की धारा 30 के अधीन की शक्ति का औद्योगिक न्यायालय द्वारा प्रयोग नहीं किया जा सकता। अधिनियम की धारा 32 में अधिनियम के उपबंधों में से किसी उपबंध के अधीन विनिश्चय करने के लिए इसे निर्दिष्ट किए गए आवेदन या परिवाद से उद्भूत सभी मामलों का विनिश्चय करने की न्यायालय की शक्ति का उपबंध किया गया है। यह उपबंध स्पष्ट रूप से न्यायालय को उन मामलों का विनिश्चय करने के लिए समर्थ बनाने हेतु आशयित है जो औद्योगिक न्यायालय के समक्ष परिवादी द्वारा अभिकथित अनुचित श्रम व्यवहार के मुख्य परिवाद के आनुषंगिक हों। लेकिन यदि औद्योगिक न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि किसी भी प्रकार का अनुचित श्रम व्यवहार साबित नहीं हुआ है तो किसी ऐसी आशंका के आधार पर कि भविष्य में अनुचित श्रम व्यवहार किया जाना संभाव्य है प्रत्याशित स्वभाव का आदेश किए जाने के लिए न्यायालय के पास कोई शक्ति नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत मामले में औद्योगिक न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए दोनों परिवादों में इस प्रकार का परिवाद नहीं किया है।"

किंतु श्री पुरी ने **मनुबाई मजदूर सभा बनाम बेनेट कोलमैन एंड कं०**[1] वाले मामले में न्या० पेंडसे द्वारा दिए गए विनिश्चय का जोरदार रूप से अवलम्ब लिया। इस मामले में न्या० पेंडसे ने अधिनियम की अनुसूची 2 की मद सं० 1(ख), 2, 3 और 6 तथा अनुसूची 4 की मद सं० 5 के अंतर्गत होने वाले विवाद पर विचार किया था। मद सं० 1 (ख) के अन्तर्गत तालाबन्दी या बन्द किए जाने की धमकी आती है यदि कोई संघ गठित हो गया

1 1980 (1) लेबर एल० जे० 112.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हो। किंतु मद सं० 6 में ऐसी तालाबन्दी आती है जो प्रस्थापित की गई हो या जारी हो और जिसे अधिनियम के अधीन अवैध समझा गया हो। अनुसूची 3 में अनुसूची 2 की मद सं० 1 (ख) की भांति की मद नहीं है। अतः उस मामले में अपने समक्ष उठाए गए संविवाद का विनिश्चय करते हुए विद्वान न्यायाधीश को अनुसूची 2 की मद सं० (1) (ख) पर भी विचार करना पड़ा था। अपने समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री की मूल्यांकन करते हुए न्या० पेंडसे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उस मामले में दुस्संधि की बाबत कर्मचारियों द्वारा किए गए अभिकथनों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे बिना आधार के थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि दुस्संधि या कपट ने सभी बातों को दूषित कर दिया हो और इसे अवैध बना दिया हो। विद्वान न्यायाधीश ने आगे यह निष्कर्ष निकाला कि निर्दिष्ट तालाबंदी प्रथमदृष्टया ही दुस्संधिपूर्ण थी। इस संदर्भ में न्या० पेंडसे ने यह अभिनिर्धारित किया कि श्रम न्यायालय द्वारा नियोजकों को तालाबंदी करने से अवरुद्ध करते हुए अन्तरिम अनुतोष मंजूर किया जा सकता था। मेरी राय में उक्त मामले में दिया गया विनिश्चय स्पष्ट रूप से प्रभेदनीय है। अनुसूची 3 और अनुसूची 2 के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र कुछ विस्तार तक सुभिन्न और भिन्न थे। तालाबंदी के मामले में इच्छुक कर्मकारों को भी अवरुद्ध कर दिया जाता है या उन्हें उनके कर्त्तव्यारूढ़ होने से प्रतिषिद्ध किया जाता है जब कि हड़ताल के मामले में स्थिति यह नहीं है हड़ताल पूर्ण और आंशिक हो सकती है। इसके अतिरिक्त अनुसूची 2 और अनुसूची 3 को अधिनियमित करते समय विधानमंडल ने बुद्धिमतापूर्ण रूप से अनुसूची 3 में अनुसूची 2 की मद सं० 1 (ख) के समान मद सम्मिलित नहीं की है। अतः **मनुबाई मजदूर सभा बनाम बेनेट कोलमैन एंड कं०**[1] वाले मामले में न्या० पेंडसे द्वारा अधिकथित विधि प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होती। अन्य उन मामलों के प्रति जिनका श्री पुरी ने अवलम्ब लिया है विस्तृत निर्देश करना आवश्यक नहीं है क्योंकि मेरी राय में प्रस्तुत पिटीशन में उठाए उए संविवाद का विनिश्चय करने के लिए वे संगत नहीं हैं। जब एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिया जाता है कि हड़ताल की औचित्यता अनुसूची 3 की मद सं० 1 के विस्तार के परे है तब इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक नहीं होता कि क्या ऐसी स्थिति में जब कि सभी

[1] 1980 (1) लेबर एल० जे० 112.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मार्गों का अनुसरण किया जा चुका हो अन्त में हड़ताल का अवलम्ब लिया जाए। ये ऐसे विषय हैं जो प्रस्तुत अधिनियम के अन्य उपबंधों और साथ ही साथ इस क्षेत्र की अन्य अधिनियमितियों के उपबंधों के अन्तर्गत आते हैं और ऐसी बात नहीं है कि इस निमित्त नियोजक के लिए कोई उपचार नहीं है। प्रस्तुत मामले में हम अनुसूची 3 की मद सं० 1 से निर्बन्धित केवल समती संविवाद से ही संबद्ध हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अनुचित श्रम व्यवहार में लगना अधिनियमिति में गंभीरता से लिया गया है। इसके परिणाम शास्तिक होते हैं। अधिनियम की धारा 13 के अधीन किसी व्यवसाय संघ को मान्यता प्रदान किया जाना भी रद्द किया जा सकता है। यह सुस्थापित है कि जब किसी विशिष्ट उपबंध के अननुपालन के शास्तिक परिणाम हो सकते हैं तब उक्त उपबंध का यथावत् रूप से अर्थान्वयन किया जाना चाहिए। अतः अनुसूची 3 में की प्रविष्टियों का यथावत रूप से अर्थान्वयन किया जाएगा और इस प्रकार अर्थान्वयन किए जाने पर इसके अन्तर्गत केवल वे ही हड़तालें आ सकेंगी जो अधिनियम के अधीन अवैध समझी जाती हैं। अतः हम श्री पुरी द्वारा दी गई इस बृहत् प्रस्थापना को स्वीकार नहीं कर सकते कि यद्यपि हड़ताल वैध है तथापि चूंकि यह अनौचित्यपूर्ण है अतः न्यायालय को व्यादेश की प्रकृति का अन्तरिम अनुतोष मंजूर करने की अधिकारिता है। श्री पुरी ने यह दलील भी दी कि प्रस्तुत हड़ताल अधिनियम के आज्ञापक उपबंधों के आधार पर अवैध भी है। किंतु मैं विषय के इस पहलू पर विचार नहीं करना चाहूंगा क्योंकि इस प्रकार की दलील निचले न्यायालय के समक्ष नहीं दी गई थी। प्रत्यर्थियों ने मेरे समक्ष यह दलील भी प्रस्तुत की कि औद्योगिक न्यायालय ने प्रार्थना (क) को मंजूर करने में भूल की है तथापि मेरे लिए इस बात पर विचार करना और उक्त दलील का विनिश्चय करना आवश्यक नहीं है क्योंकि आदेश के इस भाग को प्रत्यर्थी संघ द्वारा चुनौती नहीं दी गई है।

5. परिणामतः पिटीशन असफल होता है। व्यादेश प्रभावोन्मुक्त किया जाता है और खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

6. इस विनिश्चय के आवश्यक परिणाम के रूप में इस न्यायालय द्वारा पारित अन्तरिम आदेश भी प्रभावोन्मुक्त किया जाता है।

वंसल पिटीशन नामंजूर किया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नि० प० 1983 : मुम्बई—132

नामदार खान बनाम बीबनबी

(Namdar Khan *Vs.* Bibnabi)

तारीख 13 जनवरी, 1983

[न्या० बैंकर]

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 125 (3) स्पष्टीकरण 1—भरण-पोषण के लिए पत्नी का आवेदन करना--पति द्वारा दूसरा विवाह कर लेने पर प्रथम पत्नी उसके साथ रहने के लिए बाध्य नहीं है—अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ पत्नी का भरण-पोषण करने के लिए पति बाध्य है।

अनावेदक का करीब 12 वर्ष पहले प्रस्तुत आवेदक से विवाह हुआ था किंतु अनावेदक की कोई संतान नहीं हुई। अतः आवेदक ने दूसरा विवाह किया। अनावेदक ने अपने आवेदन में यह अभिकथन किया है कि उसकी सहमति के बिना उसके पति ने दूसरा विवाह किया था। दूसरी पत्नी द्वारा बच्चों को जन्म देने के पश्चात् उसके पति और दूसरी पत्नी ने उसे परेशान करना आरम्भ कर दिया और अंततः करीब डेढ़ वर्ष पहले से उसे घर से बाहर निकाल दिया। इसके पश्चात् से वह अपने पिता के पास रह रही है। चूंकि, उसका पति उसका भरण-पोषण करने के लिए रजामन्द नहीं था और वह उसकी देखभाल नहीं कर रहा था, अतः उसने 200 रुपये प्रतिमास की दर से भरण-पोषण का दावा किया। आवेदक ने यह कहा कि उसने अनावेदक की सहमति से दूसरा विवाह किया था और उसने उसे घर से बाहर नहीं निकाला और न उसके साथ दुर्व्यवहार किया। उसने अनावेदक का भरण-पोषण करने की अपनी रजामन्दी व्यक्त की। तथापि उसने इस बात से इनकार किया कि किसी प्रकार के भरण-पोषण भत्ते का संदाय करने का उसका दायित्व है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आवेदक की संपत्ति और उसकी आय के स्रोतों को ध्यान में रखते हुए 150 रुपये प्रति मास की दर से भरण-पोषण मंजूर किया। विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने पति द्वारा फाइल किए गए दांडिक पुनरीक्षण को रद्द कर दिया और विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए गए आदेश को कायम रखा। अतः आवेदक ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन यह आवेदन फाइल किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित--आवेदन खारिज किया गया।

भरण-पोषण का दावा करने के पिटीशन में आधार के तौर पर पति के दूसरे विवाह के तथ्य का अभिकथन नहीं किया गया है। किंतु ऊपर वर्णित स्पष्टीकरण तब प्रवृत्त हो जाता है जब पति कार्यवाहियों में अंतिम आदेश पारित किए जाने के पहले या उसके पश्चात् पत्नी का भरण-पोषण करने का प्रस्ताव रखता है तब ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट इस बात पर विचार कर सकता है कि क्या पत्नी के लिए पति के साथ रहने से इंकार करने के लिए कोई न्यायसंगत आधार अस्तित्व में है। स्पष्टीकरण में वर्णित है कि यदि पति ने अन्य स्त्री से विवाह कर लिया है या वह रखैल रखता है तो यह उसकी पत्नी द्वारा उसके साथ रहने से इंकार का न्यायसंगत आधार माना जाएगा। इस प्रकार स्पष्टीकरण पर ऐसी स्थिति में विचार करने का प्रश्न उद्भूत होता है, जहां पति पत्नी का भरण-पोषण करने का प्रस्ताव इस शर्त के आधार पर रखता है कि वह उसके साथ रहे और वह उसके (पति के) साथ रहने से इंकार करती है। प्रस्तुत मामले में, इस आवेदन का जो उत्तर फाइल किया गया है, उस में निस्संदेह आवेदक ने अपनी पत्नी का भरण-पोषण करने के लिए रजामंदी व्यक्त की है और इन परिस्थितियों में, अनावेदक के लिए इस प्रस्ताव को नामंजूर करना इस आधार पर न्यायसंगत है कि उसके पति ने दूसरी पत्नी से विवाह कर लिया है। (पैरा 10)

पैरा

[1981] 1981 महाराष्ट्र लॉ जर्नल 907: मारोतराव बनाम चंद्रकांता (Marotrao *Vs.* Chandra Kanta); 8

[1980] ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 258: राजकपूर बनाम राज्य [Raj Kapoor *Vs.* State (Delhi)]; 7

[1980] 1980 क्रिमिनल लॉ जर्नल 232: अब्दुल सलीम बनाम नजीनिया बेगम (Abdul Salim *Vs.* Najinia Begum); 8

[1978] ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 47: मधु लिमए बनाम महाराष्ट्र राज्य (Madhu Limaye *Vs.* State of Maharashtra); 7

निर्दिष्ट किए गए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दाण्डिक अधिकारिता : 1982 का दाण्डिक आवेदन सं० 504
दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन।

आवेदक की ओर से ... श्री एम० एच रिजवी
अनावेदक की ओर से ... श्री ए० एम० बापट
न्या० बैकर :

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन यह आवेदन न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग द्वारा पारित आदेश की और पुनरीक्षण में सेशन न्यायाधीश द्वारा पुष्ट किए गए आदेश को अभिखंडित करने के लिए फाइल किया गया है। सेशन न्यायाधीश ने अनावेदक (पत्नी) के आवेदन पर जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन किया गया था, भरण-पोषण मंजूर कर दिया था।

2. यह स्वीकार किया गया है कि अनावेदक का करीब 12 वर्ष पहले प्रस्तुत आवेदक से विवाह हुआ था, किंतु अनावेदक की कोई संतान नहीं हुई। अतः आवेदक ने नसीर बेग की पुत्री से विवाह किया जिससे उसे बच्चे हुए।

3. अनावेदक ने अपने आवेदन में यह अभिकथन किया है कि उसकी सहमति के बिना उसके पति ने दूसरा विवाह किया था और दूसरी पत्नी द्वारा बच्चों को जन्म देने के पश्चात् उसके पति और दूसरी पत्नी ने उसे परेशान करना प्रारम्भ कर दिया और अंततः करीब डेढ़ वर्ष पहले उसे घर से बाहर निकाल दिया। उसके पश्चात् से वह अपने पिता के पास रह रही है। चूंकि उसका पति उसका भरण-पोषण करने के लिए रजामन्द नहीं था और वह उसकी देखभाल नहीं कर रहा था, अतः उसने 200/- रुपए प्रति मास की दर से भरण-पोषण का दावा किया।

4. आवेदक ने अपने उत्तर में यह कहा कि उसने अनावेदक की सहमति से दूसरा विवाह किया था और इस बात से इंकार किया कि उसे या तो घर से बाहर निकाल दिया गया था या उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया या उसका भरण-पोषण करने में उपेक्षा की गई। उसने अपने उत्तर में उसका भरण-पोषण करने की अपनी रजामन्दी व्यक्त की तथापि उसने इस बात से इंकार किया कि किसी प्रकार के भरण-पोषण भत्ते का संदाय करने का उसका दायित्व है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

5. विद्वान् मजिस्ट्रेट ने यह निष्कर्ष निकाला कि किसी प्रकार के दुर्व्यवहार का कोई पर्याप्त सबूत नहीं था। किन्तु उसने यह निष्कर्ष निकाला कि इस आवेदक ने उसके भरण-पोषण के लिए कोई व्यवस्था नहीं की है और इसलिए यह स्पष्ट था कि वह अपनी पत्नी का भरण-पोषण करने में उपेक्षा कर रहा था। अतः आवेदक के स्वामित्व की संपत्ति और उसके अन्य स्रोतों को ध्यान में रखते हुए 150/- रुपए प्रतिमास की दर से भरण-पोषण मंजूर किया गया।

6. विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने पति द्वारा फाइल किये गय दाण्डिक पुनरीक्षण को रद्द कर दिया और विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए गए आदेश को कायम रखा और इसलिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन यह आवेदन फाइल किया गया है।

7. प्रारंभ में ही अनावेदक के विद्वान काउंसेल श्री ए० एम० बापट ने यह निवेदन किया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 397(3) के अधीन द्वितीय पुनरीक्षण के लिए अभिव्यक्त वर्जन को देखते हुए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए जैसाकि उच्चतम न्यायालय ने **मधु लिमए बनाम महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में मत व्यक्त किया है कि उक्त शक्ति का प्रयोग न्यायालय की कार्यवाही का दुरुपयोग निवारित करने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए बहुत कम मामलों में किया जाना चाहिए। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन विधि के अधीन चलने योग्य नहीं होगा। किन्तु उसका प्रयोग जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने **राजकपूर बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन)**[2] वाले मामले में मत व्यक्त किया है कि उसका सहारा केवल ऐसे मामलों में ही लिया जाना चाहिए जहां न्यायालय की कार्रवाई का दुरुपयोग किया गया हो या किसी अन्य असाधारण स्थिति में न्यायालय की अधिकारिता का प्रयोग किया जाए और उक्त शक्तियों का प्रयोग केवल उसी स्थिति में किया जाना चाहिए, यदि बहुत स्पष्ट अन्याय होना न्यायालय की जानकारी में लाया जाता है।

[1] ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 47.
[2] ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 258.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

8. श्री रिजवी को काफी विस्तार से सुनने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि यह ऐसा उपयुक्त मामला नहीं है जिसमें वास्तव में अंर्तानिहित शक्तियों का प्रयोग किया जाना उचित होगा क्योंकि इस मामले में स्पष्ट अन्याय होना प्रतीत नहीं होता है। सबसे पहले श्री रिजवी ने यह दलील दी कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन आवेदन में यह आवश्यक प्रकथन अंर्तविष्ट नहीं था कि कि वह अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ है और **मारोतराव** बनाम **चंद्रकांता**[1] वाले मामले का अवलंब लेते हुए उसने आगे यह निवेदन किया कि आवेदन केवल उस आधार पर ही खारिज कर दिया जाना चाहिए था। अब यह हो सकता है कि अनावेदक ने कानून के शब्दों को न दोहराया हो। किन्तु पिटीशन के पैराग्राफ 4 में उसने यह वर्णित किया है कि उसके पास आजीविका का कोई साधन नहीं है जिसका सारतः अर्थ यह है कि वह अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ है। आवेदक ने अपने उत्तर में इस प्रकथन से इंकार मात्र ही किया है। किन्तु उसने यह कभी भी नहीं कहा कि उसके पास आय का कोई अन्य साधन है या यह कि वह वास्तव में अपना भरण-पोषण करने में समर्थ है। वास्तव में जैसा इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने **अब्दुल सलीम** बनाम **नजीनिया बेगम** वाले मामले में मत व्यक्त किया है कि "अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ" पद का यह अर्थ नहीं है कि उसे पूर्ण रूप से दीनहीन होना चाहिए और बिल्कुल ही निःसहाय, बेघरबार होना चाहिए। जब अनावेदक ने यह कथन किया कि उसे अभित्यक्त कर दिए जाने के पश्चात् वह अपने माता-पिता के घर आ गई और उनके द्वारा उसका भरण-पोषण किया जा रहा है और यह कि उसके पास आजीविका का कोई अन्य स्रोत नहीं है। वास्तव में उसने यह कहा है कि वह अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि आवेदन में ऐसा कोई दोष है जैसा कि विद्वान् काउंसेल ने बतलाया है।

9. श्री रिजवी ने इसके पश्चात यह निवेदन किया कि आवेदक के दूसरे विवाह का तथ्य उस आवेदन में आधार नहीं बनाया गया है जिस पर अलग भरण-पोषण का दावा किया गया है और फिर भी निचले दोनों न्यायालय इस आधार से प्रभावित हुए हैं और उन्होंने उसे भरण-पोषण मंजूर किया है। यह सच है कि अनावेदक ने अपने पति के दूसरे विवाह के तथ्य के प्रति

---

1 1981 महाराष्ट्र ला जर्नल 907.

2 1980 क्रिमिनल ला जर्नल 232.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुनरीक्षण न्यायालय निष्कर्ष और दण्डादेश को उलट कर अभियुक्त को दोषमुक्त अथवा उन्मोचित कर सकता है या अपने अधीनस्थ किसी सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में उसके पुनःविचारण हेतु आदेश दे सकता है या विचारण हेतु सुपुर्द कर सकता है या दण्डादेश को बहाल रखते हुए निष्कर्ष को परिवर्तित कर सकता है अथवा दण्डादेश को परिवर्तित करके या परिवर्तित न करके दण्डादेश की सीमा के स्वरूप को इस प्रकार परिवर्तित कर सकता है कि उसमें वृद्धि न हो। प्रस्तुत मामले में, अपील और पुनरीक्षण न्यायालयों ने प्रत्यर्थी सं० 2 की विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए दण्डादेशों के विस्तार को कम करते हुए दोषसिद्धि को बहाल रखा है। यदि अपील अथवा पुनरीक्षण न्यायालय दोषसिद्धि और दण्डादेश के निष्कर्षों को उलट कर प्रत्यर्थी सं० 2 को दोषमुक्त कर देते तो उसकी दोषमुक्ति भूतलक्षी प्रभाव सहित उस तारीख से प्रभावी होती जिसको वह विचारण न्यायालय द्वारा सिद्धदोष ठहराया गया था। (पैरा 14)

अतः यथास्थिति, अपीलार्थी अथवा पिटीशनर की अपील अथवा उसका पुनरीक्षण पिटीशन खारिज करते समय, यथास्थिति, अपील अथवा पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी अथवा पिटीशनर की दोषसिद्धि के बहाल रखे अथवा पुष्ट किए जाने की स्थिति में दोषसिद्धि की तारीख परिवर्तित नहीं होती। ऐसे किसी मामले में अपील अथवा पुनरीक्षण-न्यायालय के निर्णय की तारीख विधिक रूप से अपीलार्थी अथवा पिटीशनर की दोषसिद्धि की तारीख नहीं हो सकती। उसकी दोषसिद्धि उस तारीख से प्रारम्भ होती है जब वह विचारण न्यायालय द्वारा सिद्धदोष ठहराया गया था। (पैरा 15)

न्यायालय की राय में प्रत्यर्थी सं० 2 भारतीय दण्ड संहिता की धारा 406 और 409 के अधीन दण्डनीय नैतिक अधमता से अन्तर्ग्रस्त अपराधों के लिए विचारण न्यायालय द्वारा अपनी दोषसिद्धियों की तारीख से 6 वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने के कारण पंचायत समिति, शाहपुरा के प्रधान के रूप में निर्वाचित किए जाने के लिए निर्रहित नहीं था। (पैरा 16)

अपीलार्थी पंचायत समिति का सदस्य नहीं है। अतः वह नियमावली के नियम 3 के साथ पठित 1959 के अधिनियम की

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धारा 3 के अधीन निर्वाचन पिटीशन फाइल करके प्रत्यर्थी के पंचायत समिति के प्रधान के पद पर निर्वाचन को चुनौती देने का हकदार नहीं है। (पैरा 11)

पैरा

[1982] 1982 राजस्थान ला रिपोर्टर 918 : सोहन दास बनाम सम्पत सिंह और अन्य (Sohan Das *Vs*. Sampat Singh and others) का अवलम्ब लिया गया। 14

]प्रैल, 1982 को विनिश्चित 1982 का एकल न्यायपीठ सिविल रिट पिटीशन सं० 7 : महावीर सिंह बनाम रघुनाथ और अन्य (Mahaveer Singh *Vs*. Raghunath and others); 7

[1982] 4 अप्रैल, 1982 को विनिश्चित 1982 का एकल न्यायपीठ सिविल रिट पिटीशन सं० 80 : लक्ष्मी नारायण बनाम नरपत करण और अन्य (Laxmi Narain *Vs*. Narpat Karan and others); 7

[1971] ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 330 : मन्नीलाल बनाम परमाई लाल और अन्य (Manni Lal *Vs*. Parmailal and others) निर्दिष्ट किए गए। 14

सिविल अपीली अधिकारिता : 1982 की खंड न्यायपीठ विशेष अपील सं० 581.

1982 के रिट पिटीशन सं० 149 में न्यायमूर्ति एन० सी० जैन द्वारा दिए गए आदेश के विरुद्ध की गई विशेष अपील।

अपीलार्थी की ओर से ... श्री मरुधर मृदुल

प्रत्यर्थी सं० 2 की ओर से ... श्री एम० एम० सिंघवी
श्री आर० पी० दवे, सरकारी उप-अधिवक्ता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय का निर्णय माननीय मु० न्या० कल्याण दत्त शर्मा ने दिया ।

मु० न्या० शर्मा :

यह एक ऐसी विशेष अपील है जिसे नरेन्द्र कुमार सोमानी ने राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश (राजस्थान हाई कोर्ट आर्डिनैन्स) की धारा 18 के अधीन इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 5 मई, 1982 के उस निर्णय के विरुद्ध फाइल किया है जिसके द्वारा अपीलार्थी के रिट पिटीशन को 1982 के एकल न्यायपीठ सिविल रिट पिटीशन सं० 7 और 80 में 9 अप्रैल, 1982 को दिए गए निर्णय के आधार पर खारिज कर दिया गया था ।

2. जिस रिट पिटीशन से यह अपील उद्भूत हुई है उसके सुसंगत तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित हैं :--

श्री सम्पत सिंह, प्रत्यर्थी सं० 2 तारीख 26 दिसम्बर, 1981 को पंचायत समिति, शाहपुरा, जिला भीलवाड़ा का प्रधान निर्वाचित हुआ था । मतदान तारीख 26 दिसम्बर, 1981 को हुआ था और उसी दिन परिणाम घोषित कर दिया गया था जबकि नामांकन पत्र तारीख 25 दिसम्बर, 1981 को फाइल किए गए थे । प्रत्यर्थी सं० 2 को प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट, शाहपुरा ने अपने 24 सितम्बर, 1974 के निर्णय द्वारा, जिसकी सत्यापित की गई फोटो प्रति रिट पिटीशन से संलग्न है, जो प्रदर्श 3 के रूप में चिन्हित है, भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 406 के अधीन दण्डनीय अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया था और एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने तथा 1000 रुपए जुर्माना अदा करने; और जुर्माना अदा करने में व्यतिक्रम किए जाने पर तीन मास का और कारावास भोगने के लिए दण्डादिष्ट किया था । प्रत्यर्थी सं० 2 ने अपनी दोष-सिद्धि और दण्डादेश से व्यथित होकर सेशन न्यायाधीश भीलवाड़ा को अपील की, जिसे सेशन न्यायाधीश ने 3 अगस्त, 1976 के अपने निर्णय द्वारा अस्वीकार कर दिया । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं० 2 ने पुनरीक्षण के लिए उच्च न्यायालय से समावेदन किया किन्तु उच्च न्यायालय ने 20 अगस्त, 1976 के अपने निर्णय द्वारा उसका पुनरीक्षण पिटीशन भी खारिज कर दिया ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

3. एक अन्य मामले में मुंसिफ मजिस्ट्रेट, शाहपुरा ने प्रत्यर्थी सं० 2 को भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 409 के अधीन दण्डनीय अपराध करने के लिए सिद्धदोष ठहराते हुए चार मास का कठोर कारावास भोगने तथा 200 रुपए जुर्माना अदा करने तथा जुर्माना अदा करने में व्यतिक्रम किए जाने पर 20 दिन का और कठोर कारावास भोगने के लिए दण्डादिष्ट किया। प्रत्यर्थी सं० 2 ने मुंसिफ मजिस्ट्रेट, शाहपुरा के तारीख 10 अप्रैल, 1974 के निर्णय के विरुद्ध सेशन न्यायाधीश को अपील की। सेशन न्यायाधीश ने उसकी दोषसिद्धि को बहाल रखते हुए उसके कठोर कारावास की अवधि घटाकर एक मास कर दी। प्रत्यर्थी सं० 2 ने सेशन न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण-पिटीशन फाइल किया। उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं० 2 की भारतीय दण्ड संहिता, 1860 के अधीन दोषसिद्धि को पुष्ट करते हुए उसके कठोर कारावास की अवधि घटाकर उतनी कर दी जितनी अवधि का कठोर कारावास वह भोग चुका था।

4. नामांकन-पत्रों की संवीक्षा के समय श्री सुखदेव जाट नामक एक व्यक्ति ने प्रत्यर्थी सं० 2 के नामांकन की विधिमान्यता के प्रति इस आधार पर आपत्ति की थी कि प्रत्यर्थी सं० 2 को सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालयों ने नैतिक अधमता से अंतर्ग्रस्त अपराध करने के लिए सिद्धदोष ठहराया था। निर्वाचन अधिकारी (रिटर्निंग आफिसर) ने 25 दिसम्बर, 1981 को सुखदेव जाट द्वारा उठाई गई आपत्ति को अपने आदेश (प्रदर्श सं० 2) द्वारा अस्वीकार कर दिया। उसके पश्चात्, जैसा कि ऊपर कथन किया गया है, निर्वाचन किया गया और निर्वाचन का परिणाम प्रत्यर्थी सं० 2 के पक्ष में घोषित कर दिया गया।

5. अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी सं० 2 के पंचायत समिति, शाहपुरा के प्रधान के पद पर निर्वाचित होने तथा उसके तथाकथित पद धारण करने से व्यथित होकर उच्च न्यायालय में निम्नलिखित आधारों पर रिट पिटीशन फाइल किया :—

1. प्रत्यर्थी सं० 2 उस दिन, जिस दिन उसने नामांकन-पत्र फाइल किया था, या जिस दिन नामांकन-पत्रों की संवीक्षा की गई थी, या जिस दिन वह प्रधान के रूप में निर्वाचित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घोषित किया गया था, राजस्थान पंचायत अधिनियम (जिसे इसमें इसके पश्चात् अधिनियम कहा गया है) की धारा 11 (छ) के अनुसार पंचायत समिति के प्रधान के रूप में निर्वाचित किये जाने के लिये निर्रहित था। राजस्थान पंचायत समितीज एण्ड जिला परिषद्स ऐक्ट, 1959 (जिसे इसमें इसके पश्चात् अधिनियम कहा गया है) की धारा 15 (ट) में यह भी अधिकथित किया गया है कि जो व्यक्ति किसी पंचायत समिति के प्रधान के पद के लिये निर्वाचित किये जाने के लिये निर्रहित कर दिया जायेगा वह पंचायत समिति का सदस्य बनने के लिये भी निर्रहित होगा। चूंकि नामांकन-पत्र फाइल करने की तारीख को प्रत्यर्थी सं० 2 की दोषसिद्धि की तारीख से 6 वर्ष की अवधि समाप्त नहीं हुई थी इसलिये अधिनियम के अधीन उसकी निर्रहता समाप्त नहीं हुई थी और वह विद्यमान थी ;

2. निर्वाचन अधिकारी ने यह अभिनिर्धारित करने में भूल की है कि 6 वर्ष की तथाकथित अवधि उस तारीख से प्रारम्भ होती है जिस तारीख को विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं० 2 को सिद्धदोष ठहराया है। कोई व्यक्ति तभी सिद्धदोष समझा जा सकता है जब विधि के अधीन उसे उपलभ्य सभी उपचार समाप्त हो गये हों और परिणामत: उसकी दोषसिद्धि अंतिम बन गई हो। प्रत्यर्थी सं० 2 की दोषसिद्धियां उसकी अपीलों और पुनरीक्षण-पिटीशनों के खारिज कर दिये जाने के पश्चात् ही अन्तिम हुई थीं ;

3. प्रत्यर्थी सं० 2 ने पंचायत समिति, शाहपुरा के प्रधान का पद स्पष्टत: अनुचित रूप से प्राप्त किया है इसलिये उसे उससे हटाया जाना चाहिये।

6. अत: पिटीशनर ने प्रार्थना की कि प्रत्यर्थी सं० 2 के विरुद्ध, उसे पंचायत समिति, शाहपुरा के प्रधान के पद से हटाने वाला एक अधिकार पृच्छा रिट जारी किया जाये और रिट पिटीशन का विनिश्चय होने तक उसे प्रधान के रूप में कार्य करने से अवरुद्ध किया जाये।

7. प्रत्यर्थियों को रिट पिटीशन ग्रहण न किये जाने के संबंध में हेतुक दर्शित करने के लिये नोटिस जारी किये गये थे। नोटिस के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रत्युत्तर में श्री संपत सिंह, प्रत्यर्थी सं० 2 ने अपने अधिवक्ता श्री एम० एम० सिंघवी द्वारा न्यायालय में हाजिर होकर रिट-पिटीशन के ग्रहण किये जाने की बाबत प्रारम्भिक आपत्ति उठाई। उसकी आपत्ति यह थी कि नामांकन-पत्र की अनुचित स्वीकृति के विरुद्ध एकमात्र उपचार यही है कि राजस्थान पंचायत समितीज एण्ड जिला परिषद्स (इलैक्शन पिटीशन) रूल्स, 1959 के नियम 7 के अधीन एक निर्वाचन पिटीशन फाइल किया जाये और पिटीशनर नरेन्द्र कुमार के सगे भाई श्री श्याम सुन्दर सोमानी ने इसी आधार पर, कि 25 दिसम्बर, 1981 को निर्वाचन अधिकारी ने सम्पत सिंह का नामांकन-पत्र अनुचित रूप से स्वीकार किया था, जिला न्यायाधीश, भीलवाड़ा के न्यायालय में एक निर्वाचन पिटीशन फाइल कर दिया था अतः पिटीशनर श्री नरेन्द्र कुमार श्री सम्पत सिंह के निर्वाचन को चुनौती देने के लिये संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उपलब्ध असाधारण रिट के उपचार का लाभ नहीं उठा सकता। इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेलों के तर्कों को रिट पिटीशन के ग्रहण किये जाने के प्रक्रम पर सुनने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि रिट पिटीशन **महावीर सिंह** बनाम **रघुनाथ और अन्य**[1] और **लक्ष्मी नारायण** बनाम **नरपत करण और अन्य**[2] वाले मामलों में उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, खारिज किया जाना चाहिये। नरेन्द्र कुमार ने इस आदेश से व्यथित होकर, जैसा कि ऊपर कथन किया गया है, यह विशेष अपील फाइल की है।

8. प्रत्यर्थियों को इस विशेष अपील के ग्रहण न किये जाने के संबंध में हेतुक दर्शित करने के लिये नोटिस जारी किये गये थे। हेतुक दर्शित करने के लिये दिये गये नोटिस के प्रत्युत्तर में सम्पत सिंह, प्रत्यर्थी सं० 2 की ओर से श्री एम० एम० सिंघवी और राजस्थान राज्य तथा निर्वाचन अधिकारी की ओर से सरकारी उप-अधिवक्ता श्री एच० पी० दवे न्यायालय में उपस्थित हुए और विशेष अपील के ग्रहण किये जाने के प्रक्रम पर हमने उनके तर्क सुने। अभिलेख का परिशीलन करने और तर्कों को सुनने के पश्चात् हमारी राय में इस विशेष अपील में

1. 4 अप्रैल, 1982 को विनिश्चित 1982 का एकल न्या० सिविल रिट पि० सं० 7.
2. 4 अप्रैल, 1982 को विनिश्चित 1982 का एकल न्या० सिविल रिट पि० सं० 80.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कोई सार नहीं है और यह निम्नलिखित कारणों से ग्रहण किये जाने के प्रक्रम पर ही खारिज कर दी जानी चाहिये :—

9. अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल श्री मरुधर मृदुल ने प्रथम दलील यह दी कि अपीलार्थी पंचायत समिति, शाहपुरा को कर देता है। इसलिये उसका उक्त पंचायत समिति के मामलों में महत्वपूर्ण हित है और उसे संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट-पिटीशन के तौर पर सम्पत सिंह, प्रत्यर्थी सं० 2 के निर्वाचन को चुनौती देने का अधिकार है। उसने यह भी निवेदन किया है कि अपीलार्थी को सम्पत सिंह, प्रत्यर्थी सं० 2 के पंचायत समिति, शाहपुरा के प्रधान के पद के लिये निर्वाचन को चुनौती देने के अधिकार से केवल इसलिये वंचित नहीं किया जा सकता कि 1959 के अधिनियम की धारा 13 में यह उपबन्धित है कि किसी पंचायत समिति के प्रधान अथवा उप-प्रधान के निर्वाचन को पंचायत समिति के किसी सदस्य द्वारा उक्त धारा में विहित कारणों के आधार पर तथा विहित अवधि के भीतर ही प्रश्नगत किया जा सकता है। उसने यह भी निवेदन किया है कि अधिकार-पृच्छा रिट फाइल करने के अधिकार को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 ने मान्यता प्रदान की है और यह अधिकार किसी राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित किसी साधारण विधि द्वारा नहीं छीना जा सकता। उसके निवेदन के अनुसार, इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस न्यायालय द्वारा **महावीर सिंह बनाम रघुनाथ और अन्य**[1] और **लक्ष्मी नारायण बनाम नरपत करण और अन्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों के आधार पर अपीलार्थी के रिट-पिटीशन को खारिज करने में भूल की है क्योंकि उपर्युक्त दोनों विनिश्चयों में अंतर्ग्रस्त प्रश्न यह था कि किसी मतदाता के दो बार मतदान करने के कारण कोई निर्वाचन दूषित होता है अथवा नहीं ? इसके विपरीत, प्रस्तुत मामले में अंतर्ग्रस्त प्रश्न यह है कि सम्पत सिंह, प्रत्यर्थी सं० 2 पंचायत समिति, शाहपुरा के प्रधान के पद पर निर्वाचित होने के लिये निर्रहित है, अथवा नहीं ?

---

[1] 4 अप्रैल, 1982 को विनिश्चित 1982 का एकल न्या० सिविल रिट पि० सं० 7.

[2] 4 अप्रैल, 1982 को विनिश्चित 1982 का एकल न्या० सिविल रिट पि० सं० 80.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

10. सम्पत सिंह, प्रत्यर्थी सं० 2 के विद्वान् काउंसेल श्री एम०एम० सिंघवी ने अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री मरुधर मृदुल के उपर्युक्त निवेदन का यह तर्क देते हुए खंडन किया कि सोहनदास नामक एक पराजित उम्मीदवार ने सम्पत सिंह, प्रत्यर्थी सं० 2 के ग्राम पंचायत, सांगरिया के सरपंच के पद के लिए निर्वाचन को प्रथम वर्ग के मुंसिफ और न्यायिक मजिस्ट्रेट, शाहपुरा के न्यायालय में एक निर्वाचन-पिटीशन फाइल करके इस आधार पर चुनौती दी थी कि जिस दिन सम्पत सिंह ने नामांकन-पत्र फाइल किया था या जिस दिन उसके नामांकन-पत्र की संवीक्षा की गई थी या जिस दिन उसका निर्वाचन हुआ था, उस दिन वह नैतिक अधमता से अन्तर्ग्रस्त एक अपराध के लिए सिद्धदोष था। विद्वान् मुंसिफ ने सोहन दास द्वारा फाइल किए गए इस निर्वाचन-पिटीशन को 21 जुलाई, 1982 के अपने निर्णय द्वारा (जिसकी प्रमाणित प्रतिलिपि श्री एम० एम० सिंघवी ने इस विशेष अपील में पेश की है) खर्चे सहित खारिज कर दिया था। श्री एम० एम० सिंघवी ने आगे निवेदन किया कि सम्पत सिंह, प्रत्यर्थी सं० 2 के पंचायत समिति, शाहपुरा के प्रधान के पद पर निर्वाचन को श्याम सुन्दर नामक एक पराजित उम्मीदवार ने (जो कोई और व्यक्ति न होकर अपीलार्थी नरेन्द्र कुमार का भाई ही है) अधिनियम की धारा 13 के अधीन निर्वाचन पिटीशन फाइल करके इसी आधार पर चुनौती दी थी कि प्रत्यर्थी भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 109 के साथ पठित धारा 406 और 409 के अधीन दण्डनीय अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया था किन्तु जिला न्यायाधीश, भीलवाड़ा ने यह निर्वाचन पिटीशन भी 24 सितम्बर, 1982 के अपने निर्णय द्वारा (जिसकी प्रमाणित फोटो प्रतिलिपि इस विशेष अपील में फाइल की गई है) खारिज कर दिया था। सोहन दास और श्याम सुन्दर द्वारा फाइल किए गए निर्वाचन पिटीशनों में दिए गए दोनों उपरिनिर्दिष्ट विनिश्चयों के आधार पर प्रत्यर्थी सं० 2 के विद्वान् काउन्सेल श्री एम० एम० सिंघवी ने निवेदन किया कि अपीलार्थी सम्पत सिंह, प्रत्यर्थी सं० 2 के पंचायत समिति, शाहपुरा के प्रधान के पद के लिए निर्वाचन को उन्हीं आधारों पर, जिन पर सोहन दास और श्याम सुन्दर ने चुनौती दी थी, चुनौती देने का हकदार नहीं है।

11. हमने उपर्युक्त विरोधी तर्कों पर विचार किया है। प्रारम्भ में ही हम यह मत व्यक्त करते हैं कि अपीलार्थी पंचायत समिति, शाहपुरा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का सदस्य नहीं है। अतः वह नियमावली के नियम 3 के साथ पठित 1959 के अधिनियम की धारा 13 के अधीन निर्वाचन-पिटीशन फाइल करके सम्पत सिंह, प्रत्यर्थी सं० 2 के पंचायत समिति, शाहपुरा के प्रधान के पद पर निर्वाचन को चुनौती देने का हकदार नहीं है।

12. अवधारण के लिए उत्पन्न होने वाला अगला प्रश्न यह है कि क्या किसी निर्वाचित पद के संबंध में जैसा कि प्रस्तुत मामले में है, अधिकार-पृच्छा रिट की प्रकृति का रिट जारी किया जा सकता है अथवा नहीं? इस मुद्दे की बाबत अनेक निर्णयों पर विचार करने के बाद इस प्रश्न के बारे में हमारा उत्तर यह है कि किसी उचित मामले में किसी निर्वाचन विषयक विवाद के संबंध में अधिकार-पृच्छा रिट जारी करने की शक्ति उच्च न्यायालय को प्राप्त है परन्तु वह साधारणतः इस कर्तव्य को, जिसकी समुचित व्यवस्था निर्वाचन का संचालन करने वाले कानूनी उपबंधों में कर दी गई है, तब तक स्वयं अपने ऊपर नहीं लेगा जब तक कि ऐसा करने के लिए विवशकारी कारण मौजूद न हों क्योंकि उसका केवल तकनीकी बातों के आधार पर निर्वाचनों में हस्तक्षेप करना उस जनता के विनिश्चयों में हस्तक्षेप की कोटि में आएगा जिसने अपने प्रतिनिधियों में विश्वास व्यक्त करते हुए मतदान किया है। यदि निर्वाचित उम्मीदवार निर्वाचन की तारीख को किसी ऐसी निरर्हता से ग्रसित हो, जो उसके निर्वाचन को अविधिमान्य बनाती हो, अथवा निर्वाचन के दौरान कोई ऐसी अनियमितता बरती गई हो जो निर्वाचन के मूल आशय को प्रभावित करती हो तथा जिसके परिणामस्वरूप मतदाता स्वतन्त्र और उचित रूप से अपने मत व्यक्त न कर सके हों अथवा कोई ऐसी भ्रष्ट पद्धति अपनाई गई हो जिसने निर्वाचन के परिणाम को तात्विक रूप से प्रभावित किया हो अथवा निर्वाचन का आधार, यथा निर्वाचक नामावली, अवैध हो और उस पर आधारित निर्वाचन विधिमान्य न ठहराया जा सकता हो अथवा निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन अवैध हो, जिसके परिणामस्वरूप अनेक मतदाता अपने मताधिकार से वंचित हो गए हों अथवा कुछ ऐसी अन्य महत्वपूर्ण परिस्थितियां विद्यमान हों जिनके परिणामस्वरूप निर्वाचन अविधिमान्य बनता हो, तो मामला पूर्ण रूप से भिन्न होगा।

13. पूर्वोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए हम यह पता करने के लिए अग्रसर होते हैं कि प्रस्तुत मामले में ऐसे गम्भीर और विवशकारी

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कारण विद्यमान हैं जिनके आधार पर हमारा निर्वाचित उम्मीदवार अर्थात् प्रत्यर्थी सं० 2 के निर्वाचन में हस्तक्षेप करना न्यायोचित हो सकता है। श्री मरुधर मृदुल ने हमारा ध्यान अधिनियम की धारा 11 की ओर आकृष्ट किया है जिसमें किसी पंच के निर्वाचन अथवा नियुक्ति के लिए अपेक्षित अर्हताएं अधिकथित की गई हैं। यह धारा निम्नलिखित है:—

*"धारा 11. **पंचों के लिए अर्हताएं**—ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो इस अधिनियम के प्रयोजनार्थ किसी पंचायत मंडल अथवा उसके किसी वार्ड में निर्वाचन में मतदान करने का हकदार है, पंच के रूप में निर्वाचित अथवा नियुक्त किए जाने के लिए तब तक अर्ह होगा, जब तक कि ऐसा व्यक्ति :—

खंड (क) से (च) हमारे प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं हैं।

(छ) नैतिक अधमता से अंतर्ग्रस्त किसी अपराध के लिए किसी सक्षम न्यायालय द्वारा सिद्धदोष न ठहराया गया हो।"

इस धारा में तीन परन्तुक जोड़े गए हैं जिसका खंड (ii) नीचे सविस्तार उद्धृत किया जाता है :—

**"(ii) खंड (ग), (छ), (झ) और (ड) के प्रयोजनार्थ कोई व्यक्ति, यथास्थिति, अपनी पदच्युति अथवा दोषसिद्धि की तारीख से छह वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने के बाद, अथवा यदि वह

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :

"Sec. 11. **Qualifications of Panchas**—Eevery person, who is entitled to vote at an election in any Panchayat circle or a ward thereof for the purpose of this Act, shall be qualified for election or appointment as a Panch unless such person :

(a) to (f) are not relevant for our purpose.

(g) has been convicted by a competent court of an offence invclving moral turpitude."

**"(ii) For the purposes of clause (c), (g), (i) and (m) any person shall become eligible after lapse of six years from the date of his dismissal or conviction, as the case may be,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस निमित्त राज्य सरकार के किसी सामान्य अथवा विशेष आदेश द्वारा निर्वाचन के लिए पात्र घोषित कर दिया गया है तो इससे पहले पात्र हो जाएगा, और"

धारा 11 के खंड (छ) और उसके परन्तुक के खंड (ii) के अध्ययन मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई व्यक्ति नैतिक अधमता से अन्तर्ग्रस्त किसी अपराध के लिए किसी सक्षम न्यायालय द्वारा अपनी दोषसिद्धि की तारीख से छह वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने के बाद पंच के रूप में निर्वाचित अथवा नियुक्त किए जाने का पात्र हो जाता है किन्तु इस निमित्त राज्य सरकार के किसी सामान्य अथवा विशेष आदेश द्वारा निर्वाचन का पात्र घोषित कर दिए जाने पर वह इससे पहले निर्वाचन का पात्र हो जाता है। श्री मरुधर मृदुल ने हमारे समक्ष ज़ोरदार रूप से यह तर्क प्रस्तुत किया है कि प्रत्यर्थी सं० 2, अर्थात् सम्पत सिंह, के मामले में तथाकथित छह वर्ष की अवधि की गणना उस तारीख से की जानी चाहिए जिसको उच्च न्यायालय ने दोनों आपराधिक मामलों में उसकी (प्रत्यर्थी सं० 2) दोषसिद्धियों और दण्डादेशों के विरुद्ध उसके द्वारा फाइल किए गए पुनरीक्षण पिटीशन विनिश्चित किए थे। इसके विपरीत प्रत्यर्थी सं० 2 के विद्वान् काउन्सेल श्री एम० एम० सिंघवी ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि तथाकथित छह वर्ष की अवधि की गणना विचारण न्यायालय द्वारा उसकी (प्रत्यर्थी सं० 2) दोषसिद्धि की तारीख से ही की जा सकती है और पुनरीक्षण न्यायालय ने उसके दण्डादेश का जो पुष्टीकरण किया है वह तथाकथित अवधि के प्रारम्भ के लिए कोई नई तारीख प्रदान नहीं करता।

14. हमने इस विवादग्रस्त विषय पर विचार किया है। हमारी राय में छह वर्ष की अवधि की गणना विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी सं० 2 की दोषसिद्धि की तारीख से की जाएगी क्योंकि किसी दोषसिद्धि के विरुद्ध फाइल की गई किसी अपील अथवा पुनरीक्षण में, यथास्थिति, अपील न्यायालय अथवा पुनरीक्षण न्यायालय निष्कर्ष और दण्डादेश को उलट कर अभियुक्त को दोषमुक्त अथवा उन्मोचित कर सकता है या

or earlier if he is declared eligible for election by a general or a special order of the State Government in this behalf, and"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपने अधीनस्थ किसी सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में उसके पुनः विचारण हेतु आदेश दे सकता है या विचारण हेतु सुपुर्द कर सकता है या दण्डादेश को बहाल रखते हुए निष्कर्ष को परिवर्तित कर सकता है अथवा दण्डादेश को परिवर्तित करके अथवा न करके दण्डादेश की सीमा के स्वरूप को इस प्रकार परिवर्तित कर सकता है कि उसमें वृद्धि न हो। प्रस्तुत मामले में, अपील और पुनरीक्षण न्यायालयों ने प्रत्यर्थी सं० 2 के विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए दण्डादेशों के विस्तार को कम करते हुए दोषसिद्धि को बहाल रखा है। यदि अपील अथवा पुनरीक्षण न्यायालय दोषसिद्धि और दण्डादेश के निष्कर्षों को उलट कर प्रत्यर्थी सं० 2 को दोषमुक्त कर देते तो उसकी दोषमुक्ति भूतलक्षी प्रभाव सहित उस तारीख से प्रभावी होती जिसको वह विचारण न्यायालय द्वारा सिद्धदोष ठहराया गया था। इस संबंध में **सन्नीलाल बनाम परमाई लाल और अन्य**[1] वाला मामला निर्दिष्ट किया जा सकता है। हमारी राय में, अपील और पुनरीक्षण न्यायालयों द्वारा प्रत्यर्थी सं० 2 की दोषसिद्धियों के बहाल रखे जाने की स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि दोषसिद्ध की तारीख वह तारीख मानी जाए जिसको वरिष्ठ न्यायालय ने दोषसिद्धियों को बहाल रखा था। हम अपने उपर्युक्त मत के समर्थन में इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित **सोहन दास बनाम सम्पत सिंह और अन्य**[2] वाले मामले के प्रति निर्देश कर सकते हैं जिसमें न्यायमूर्ति श्री जी० एम० लोढ़ा ने समरूप मत व्यक्त किया था। उनके निर्णय का सुसंगत अंश नीचे उद्धृत किया जाता है :—

> "प्रस्तुत मामले में विवाद केवल दोषसिद्धि की तारीख के बारे में है तथा विचारण न्यायालय ने निस्संदेह दोषसिद्धि के निर्णय को अभिलिखित किया है तथा जहां तक दोषसिद्धि के निष्कर्ष का संबंध है अपील अथवा पुनरीक्षण न्यायालय ने उसके बारे में हस्तक्षेप करने से इन्कार करके उसकी पुष्टि मात्र की है।
>
> मामले के इस परिप्रेक्ष्य में मेरा यह दृढ़ मत है कि राजस्थान पंचायत अधिनियम (राजस्थान पंचायत ऐक्ट) की धारा 11 के परन्तुक के उपखण्ड (2) में यथोल्लिखित छह वर्ष की

---

[1] ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 330.

[2] 1982 राजस्थान ला रिपोर्टर 918.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अवधि की गणना के प्रयोजनार्थ दोषसिद्धि की तारीख वह तारीख होती है जिसको अभियुक्त विचारण न्यायालय द्वारा सर्वप्रथम सिद्धदोष ठहराया जाता है। अतः निर्वाचन-अधिकरण के निर्णय में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है और रिट पिटीशन संक्षिप्ततः खारिज किया जाता है।"

15. यहां यह उल्लेख करना असमीचीन नहीं होगा कि दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 389 के अधीन अपील न्यायालय, ऐसे कारणों से, जो उसके द्वारा अभिलिखित किए जाएंगे, यह आदेश दे सकता है कि उस दंडादेश या आदेश का निष्पादन, जिसके विरुद्ध अपील की गई है सिद्ध-दोष व्यक्ति द्वारा की गई अपील के लम्बित रहने तक निलम्बित किया जाए और यदि वह व्यक्ति परिरोध में है तो यह भी आदेश दे सकता है कि उसे जमानत पर या उसके अपने बन्धपत्र पर छोड़ दिया जाए। इस धारा के अधीन अपील न्यायालय को कोई ऐसा आदेश पारित करने की शक्ति प्रदान नहीं की गई है कि किसी ऐसे अपीलार्थी की दोष-सिद्धि, जिसका विचारण किसी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विधि के सम्यक् अनुक्रम में किया जा चुका है, उसकी अपील का निपटारा होने तक निलम्बित मान ली जाए। यह धारा अपील का विनिश्चय होने तथा अपीलार्थी के जमानत पर छोड़े जाने तक दण्डादेश के निलम्बन मात्र से संबंधित है। यदि विधानमंडल का आशय यह होता कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि उसके अपील करने तक निलम्बित रहेगी तथा अपील न्यायालय के निर्णय की तारीख से ही पुनरुज्जीवित होगी बशर्ते कि उसकी अपील खारिज कर दी गई हो और विचारण न्यायालय द्वारा उसकी दोषसिद्धि बहाल रखी गई हो, तो विधानमंडल ने दंड प्रक्रिया संहिता अथवा किसी अन्य विधि में ऐसा अभिव्यक्त रूप से कहा होता। इसके विपरीत विधानमंडल ने धारा 389 की उपधारा (4) अधिनियमित की है जिसमें यह कहा गया है कि जब अंततोगत्वा अपीलार्थी को किसी अवधि के कारावास या आजीवन कारावास का दंडादेश दिया जाता है, तब वह समय, जबकि उसका दण्डादेश निलम्बित रहता है और वह समय जिसके दौरान वह मुक्त रहता है, उस अवधि की संगणना करने में, जिसके लिए उसे अभी कारावास भोगना है, अपवर्जित किया जाएगा। अतः हमें इस बात में कोई संदेह नहीं है कि, यथास्थिति, अपीलार्थी अथवा पिटीशनर की अपील अथवा उसका पुनरीक्षण पिटीशन खारिज करते समय, यथा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्थिति, अपील अथवा पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी अथवा पिटीशनर की दोषसिद्धि के बहाल रखे अथवा पुष्ट किए जाने की स्थिति में दोषसिद्धि की तारीख परिवर्तित नहीं होती। ऐसे किसी मामले में अपील अथवा पुनरीक्षण-न्यायालय के निर्णय की तारीख विधिक रूप से अपीलार्थी अथवा पिटीशनर की दोषसिद्धि की तारीख नहीं हो सकती। उसकी दोषसिद्धि उस तारीख से प्रारम्भ होती है जब वह विचारण न्यायालय द्वारा सिद्धदोष ठहराया गया था।

16. परिणामतः प्रत्यर्थी सं० 2 विचारण न्यायालय द्वारा अपनी दोषसिद्धि की तारीख से 6 वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने के बाद पंच के पद के लिए निर्वाचन हेतु पात्र हो गया था यद्यपि इसके पूर्व वह भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 409 के अधीन दण्डनीय नैतिक अधमता से अंतर्ग्रस्त अपराधों के लिए सिद्धदोष ठहराए जाने के कारण निर्वाचन के लिए निर्रहित कर दिया गया था। यहां यह उल्लेख करना असंगत नहीं होगा कि श्याम सुन्दर नामक पराजित उम्मीदवार ने, जोकि कोई अन्य व्यक्ति न होकर पिटीशनर का भाई है, इसी आधार पर, प्रत्यर्थी सं० 2 के पंचायत समिति, शाहपुरा के प्रधान के पद पर निर्वाचन को चुनौती दी थी परन्तु जिला न्यायाधीश, भीलवाड़ा ने उसका निर्वाचन-पिटीशन, पूर्ण विचारण के पश्चात् खारिज कर दिया था। अभिलेख में कोई सामग्री न होने के कारण हम यह न कहकर, कि पिटीशनर ने जो यह रिट-पिटीशन फाइल किया है, वह पराजित उम्मीदवार के कहने पर किया है, यह कह सकते हैं कि यह मामला इस न्यायालय से यह याचना करने के लिए उचित मामला नहीं है कि वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग करके प्रत्यर्थी सं० 2 के विरुद्ध अधिकार पृच्छा रिट जारी करे क्योंकि हमारी राय में प्रत्यर्थी सं० 2 भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 409 के अधीन दण्डनीय नैतिक अधमता से अंतर्ग्रस्त अपराधों के लिए विचारण न्यायालय द्वारा अपनी दोषसिद्धियों की तारीख से 6 वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने के कारण पंचायत समिति शाहपुरा के प्रधान के रूप में निर्वाचित किए जाने के लिए निर्रहित नहीं था।

17. अतः विशेष अपील में कोई सार नहीं है, इसे एतद्द्वारा ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर खारिज किया जाता है।

अशोक/बंसल

विशेष अपील खारिज की गई।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रहलाद बनाम राजस्व बोर्ड और अन्य

(Prahlad *Vs.* Board of Revenue & Others)

तारीख 12 अप्रैल, 1983

[न्या० गुमान मल लोढ़ा]

राजस्थान अभिधृति अधिनियम, 1955, धारा 19, 114, 115 सपठित राजस्थान भूराजस्व अधिनियम, 1956 धारा 114, 132, 140 और राजस्थान भूराजस्व (भू-अभिलेख) नियमावली, 1957 नियम 64-89 और 335(ख)—खसरा गिरदावरी को केवल प्रशासनिक सामग्री देने के लिए ही तैयार किया जाता है और यद्यपि वह 'अधिकारों के अभिलेख' के तैयार किए जाने के लिए सुसंगत हो सकता है, वह, स्वतः, राजस्व विधि के अधीन 'अधिकारों के अभिलेख' का भाग नहीं हो सकता ; तथा उसमें की गई प्रविष्टि से राजस्व विधि के अधीन कोई विधिक अधिकार सर्जित नहीं होता है।

पिटीशनरों ने राजस्थान अभिधृति अधिनियम, 1955 की धारा 183 के अधीन वादों में नगरपालिका बोर्ड द्वारा किए गए अभिकथनों का प्रत्याख्यान किया और यह दलील दी कि वादाधीन भूमि माफी जागीर थी और वह पवनगिरि नामक एक व्यक्ति की माफी के अधीन थी। पवनगिरि के समय से ही, उक्त भूमि पिछले 35 वर्षों से माफीदार के उप-अभिधारी के रूप में पिटीशनर के पिता के कब्जे में थी और चूंकि माफी के पुनर्ग्रहण (रीजम्पशन) के समय वह उप-अभिधारी था, अतः वह अभिलिखित अभिधारी (रिकार्डेड टेनेंट) हो गया और विधि के आधार पर वह प्रश्नगत भूमि का कानूनी खातेदार अभिधारी हो गया और इस प्रकार नगरपालिक बोर्ड पिटीशनर को प्रश्नगत भूमि से बेदखल करने के लिए हकदार नहीं है। पिटीशनरों ने यह दलील भी दी कि नगरपालिका बोर्ड ने सहायक कलक्टर न्यायालय में उसी भूमि की बाबत और उसी वादहेतुक के लिए पिटीशनर के पिता के विरुद्ध वाद फाइल किए थे और चूंकि, उक्त वाद खारिज कर दिए गए थे, अतः नगरपालिक बोर्ड ने उसी भूमि की बाबत और उसी वादहेतुक के लिए वर्तमान वाद फाइल करने के लिए हकदार नहीं था, क्योंकि वह विधि के अधीन वर्जित था। यह दलील दी गई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि प्रश्नगत भूमि पर नगरपालिक बोर्ड का कभी भी कब्जा नहीं था और न वह भूमि कभी उसके खाते में ही आई। वे प्रविष्टियां, जो बाद में राजस्व अभिलेख में की गई थीं, पिटीशनर के पीठ पीछे पटवारी के साथ दुरभिसंधि करके कराई गई थीं। तारीख 26 जून, 1963 के लिखित कथन में वादों के चलने योग्य होने के बारे में अन्य विभिन्न अभिवाक् भी किए गए। पिटीशनरों ने संवत् वर्ष 2005 से 2008, 2010 से 2013, 2013 से 2016, 2017 से 2020 और 2021 से 2024 के लिए खसरा गिरदावरी प्रस्तुत किया। नगरपालिक बोर्ड ने अपनी दलील के समर्थन में संवत् वर्ष 2016 से 2019 के लिए जमाबन्दी और संवत् वर्ष 2017 से 2020 के लिए खसरा गिरदावरी भी फाइल किया। इन सभी वादों में प्रत्यर्थी-वादी ने यह दलील दी कि प्रश्न-गत भूमि वादी नगरपालिक बोर्ड की खातेदारी में थी और प्रतिवादी विवादग्रस्त भूमि पर अतिचारी थे। प्रतिवादी-पिटीशनरों ने वादों का विरोध किया और यह निवेदन किया कि वे खातेदार थे, क्योंकि वे पिछले 35 वर्षों से विवादग्रस्त भूमि जोत रहे थे। विवाद्यकों के विरचित किए जाने और साक्ष्य के अभिलिखित किए जाने के पश्चात्, विचारण न्यायालय द्वारा ऊपरनिर्दिष्ट वाद खारिज कर दिए गए। किन्तु, प्रथम अपील न्यायालय ने वाद डिक्रीत किया और विचारण न्यायालय का आदेश उलट दिया। राजस्व बोर्ड ने तीनों मामलों में प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की। राजस्व बोर्ड के उक्त निर्णय के विरुद्ध ही पिटीशनर ने उच्च न्यायालय में प्रस्तुत रिट पिटीशन फाइल किए।

अभिनिर्धारित—रिट पिटीशन खारिज किए गए।

गिरदावरी मात्र एक प्रशासनिक प्रविष्टि है और जब तक कि उसके आधार पर खतौनी में प्रविष्टि नहीं की जाती है, संशोधन के लिए, आवेदन ग्रहण नहीं किया जा सकता है। (पैरा 21)

यह निष्कर्ष निकालने के लिए सूरजमल वाले मामले (1959 आर० आर० डी० पृ० 173) में कोई बात नहीं है कि खसरा गिरदावरी में की गई प्रविष्टि राजस्व विधि के अधीन 'अधिकारों का अभिलेख' मानी जाएगी। इस मामले में किए गए विनिश्चय के पैरा 12 में केवल यही कहा गया है कि खसरा 'अधिकारों के अभिलेख' का आधार होता है। इस पैरा 12 में प्रयुक्त शब्दावली से स्पष्टतः यह दर्शित हो जाता है कि वह 'अधिकारों के अभिलेख' से भिन्न दस्तावेज है। (पैरा 23)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'अधिकारों का अभिलेख' पद को राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम की धारा 114 में परिभाषित किया गया है और उसमें खसरा गिरदावरी का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है। उपर्युक्त बातों को देखते हुए ऊपर निर्दिष्ट सूरजमल वाले मामले में किया गया विनिश्चय इस प्रतिपादना के लिए नजीर नहीं माना जा सकता है कि खसरा गिरदावरी ऐसे दस्तावेजों में से एक दस्तावेज़ है, जिन्हें राजस्थान की राजस्व विधि के अधीन 'अधिकारों का अभिलेख' कहा या माना जा सकता है। (पैरा 24)

राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम और तदधीन विरचित नियमों के सुसंगत उपबंधों तथा मैनुअल में अन्तर्विष्ट अनुदेशों और टिप्पणों की बारीकी से जांच करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि गिरदावरी केवल प्रशासनिक सामग्री देने के लिए ही तैयार की जाती है और यद्यपि वह 'अधिकारों के अभिलेख' के तैयार किए जाने के लिए सुसंगत हो सकती है, वह, स्वतः, राजस्व विधि के अधीन 'अधिकारों के अभिलेख' का भाग नहीं हो सकती है। (पैरा 28)

उपाबंध आर० 4/1 और आर० 4/2 में यह दर्शित करने के लिए निर्णायक साक्ष्य उपलब्ध है कि किस प्रकार विवादग्रस्त भूमि तारीख 24-11-45 के आदेश द्वारा नगरपालिक बोर्ड को अन्तरित की गई और दी गई और इसलिए संवत् वर्ष 2012 से 2015 तक के राजस्व अभिलेख जमाबन्दी (खेवट-खतौनी)—में भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड का नाम अन्ततः प्रविष्ट किया गया। (पैरा 37)

खेवट खतौनी-जमाबन्दी वाले और इस भूमि के भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड को अन्तरण के पृष्ठांकन वाले राजस्व अभिलेखों की उपर्युक्त प्रविष्टियों को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि इस बात पर ध्यान दिए बिना कि गिरदावरी को क्या महत्व दिया जाता है, जमाबन्दी (खेवट खतौनी) वाला 'अधिकारों का अभिलेख' नगरपालिक बोर्ड, भवानी मण्डी, प्रत्यर्थी सं० 4 के पक्ष में है। 'अधिकारों के अभिलेख' के इन दस्तावेजों में, प्रतिवादी-पिटीशनरों के नामों का कोई उल्लेख नहीं है और इसलिए प्रस्तुत मामला ऐसा मामला है, जिसमें वादी-प्रत्यर्थी सं० 4, नगरपालिक बोर्ड, भवानी मण्डी विवादग्रस्त भूमि का खातेदार है। (पैरा 38)

उपर्युक्त बातों को देखते हुए, अब इस प्रश्न पर विचार करना कतई आवश्यक नहीं है कि क्या, यदि दो मत संभव हैं, राजस्व बोर्ड द्वारा

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपनाए गए दृष्टिकोण की पुष्टि की जानी चाहिए और उसे कायम रखा जाना चाहिए जिस मत का जागन सिंह बनाम राजस्व बोर्ड वाले मामले में इस न्यायालय के खण्ड न्यायपीठ के विनिश्चय द्वारा सम्यक् रूप से अनुसमर्थन होता है, और न इस प्रश्न पर विचार करना ही आवश्यक है कि क्या इस तथ्य से संबंधित निष्कर्ष कि प्रतिवादी अतिचारी थे, पूर्णतः तथ्य का निष्कर्ष ही है। (पैरा 39)

राजस्व अपील प्राधिकरण और राजस्व बोर्ड का एकसा विनिश्चय, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिवादी-पिटीशनर अतिचारी थे और वादी-प्रत्यर्थी सं० 4, नगरपालिक बोर्ड, भवानी मण्डी खातेदार था, सही है और उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप किये जाने की कोई आवश्यता नहीं है। (पैरा 40)

विचारण न्यायालय का राजस्थान अभिधृति अधिनियम की धारा 19 के अधीन प्रतिवादी-पिटीशनरों को खातेदारों के रूप में घोषित करना न्यायोचित नहीं था। यह बात अभिलेख में आई है और प्रतिवादी-पिटीशनरों द्वारा स्वीकार की गई है कि उन्होंने खातेदारों के रूप में घोषणा के लिए कोई कार्यवाही नहीं की, जब कि अधिकारों के राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियां, कम से कम संवत् वर्ष 2012 में, भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड के पक्ष में की गई थीं, जैसा कि ऊपर वर्णित दस्तावेजों (उपाबंध आर० 4/1 और आर० 4/2) से स्पष्ट होता है। यह काम प्रतिवादी-पिटीशनरों का था कि वे सभी न्यायालयों में उसे चुनौती देते, जिसमें नियमित घोषणात्मक वाद का फाइल किया जाना भी सम्मिलित था, जो उन्होंने अभी तक नहीं किया। (पैरा 41)

उपर्युक्त बातों को देखते हुए, इस बारे में लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि राजस्व बोर्ड और राजस्व अपील प्राधिकरण का एक जैसा निष्कर्ष मामले के गुणागुण के आधार पर न्यायोचित है और वह तथ्यों और विधि, दोनों ही, की दृष्टि से स्पष्ट कारणों पर आधारित है। (पैरा 42)

पैरा 19

[1963] 1963 आर० आर० डी० पृ० 101 : पन्ने सिंह बनाम श्री गुमान सिंह (Panne Singh *Vs.* Shri Guman Singh) से सहमति व्यक्त की गई।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1961] 1961 आर० एल० डब्ल्यू० पृ० 42: जगन सिंह बनाम राजस्व बोर्ड (Jagan Singh *Vs.* Board of Revenue); 39

[1959] 1959 आर० आर० डी० पृ० 173 = 1959 आर० एल० डब्ल्यू० पृ० 381: सूरजमल बनाम राज्य (Surajmal *Vs.* The State); 18

[1956] 1953 का खण्ड न्यायपीठ सिविल रिट पिटीशन सं० 185, जिसका विनिश्चिय तारीख 1 फरवरी, 1956 को किया गया: माला बनाम राजस्व बोर्ड (Mala *Vs.* Board of Revenue) 18
निर्दिष्ट किए गए।

आरम्भिक (सिविल रिट) अधिकारिता: 1973 का सिविल प्रकीर्ण रिट पिटीशन सं० 627, जिसके साथ दो अन्य रिट पिटीशन भी सुने गए।

संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट पिटीशन।

पिटिशनर की ओर से ... श्री एच० सी० रस्तोगी

प्रत्यर्थियों की ओर से ... सर्वश्री दिलीप सिंह और अजय पुरोहित, उप सरकारी अधिवक्ता

न्या० गुमान मल लोढा :

ये तीनों रिट पिटीशन अजमेर स्थित राजस्थान राजस्व बोर्ड के तारीख 22 जनवरी, 1973 के सामान्य निर्णय के विरुद्ध फाइल किए गए हैं, जिसके द्वारा नगरपालिक बोर्ड, भवानी मण्डी के विरुद्ध तीन द्वितीय अपीलों का निपटारा किया गया था।

2. ये तीनों द्वितीय अपीलें तीन वादों, अर्थात् वाद सं० 265/1960, 266/1960, 264/1960, में फाइल की गई थीं, जिनका विनिश्चय राजस्थान अभिधृति अधिनियम (राजस्थान टेनेंसी ऐक्ट), 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 183

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के अधीन झालावाड़ के सहायक कलक्टर द्वारा किया गया था [देखें, तारीख 14 अक्तूबर, 1968 का सामान्य आदेश (उपाबन्ध 8)]।

3. पिटीशनरों ने वादों में नगरपालिक बोर्ड द्वारा किए गए अभिकथनों का प्रत्याख्यान किया और यह दलील दी कि वादाधीन भूमि माफी जागीर थी और वह पवनगिरि नामक व्यक्ति की माफी के अधीन थी। पवनगिरि के समय से ही, उक्त भूमि पिछले 35 वर्षों से माफीदार के उप-अभिधारी के रूप में प्रहलाद के पिता नांगा के कब्जे में थी और चूंकि माफी के पुनः आरम्भ (ग्रहण) किए जाने के समय वह उप-अभिधारी था, अतः वह अभिलिखित अभिधारी (रिकार्डेड टेनेंट) हो गया और विधि के आधार पर वह प्रश्नगत भूमि का कानूनी खातेदार अभिधारी हो गया और इस प्रकार नगरपालिक बोर्ड पिटीशनर को प्रश्नगत भूमि से बेदखल करने का हकदार नहीं है। पिटीशनरों ने यह दलील भी दी कि नगरपालिक बोर्ड ने सहायक कलक्टर के न्यायलय में उसी भूमि की बाबत और उसी वाद हेतुक के लिए पिटीशनर के पिता के विरुद्ध वाद (1960 का वाद सं० 265, 266 और 264) फाइल किए थे और चूंकि उक्त वाद खारिज कर दिए गए थे, अतः नगरपालिक बोर्ड उसी भूमि की बाबत और उसी वाद हेतुक के लिए वर्तमान वाद फाइल करने का हकदार नहीं था, क्योंकि वह विधि के अधीन वर्जित था। यह दलील दी गई कि प्रश्नगत भूमि पर नगरपालिक बोर्ड का कभी भी कब्जा नहीं था और न वह भूमि कभी उसके खाते में ही आई। वे प्रविष्टियां, जो बाद में राजस्व अभिलेख में की गई थीं, पिटीशनर के पीठ-पीछे पटवारी के साथ दुरभिसंधि करके कराई गई थीं। तारीख 26 जून, 1963 के लिखित कथन (उपाबंध 2) में वादों के चलने योग्य होने के बारे में अन्य विभिन्न अभिवाक् भी किए गए।

4. पिटीशनरों ने संवत् वर्ष 2005 से 2008, 2010 से 2013, 2013 से 2016, 2017 से 2020 और 2021 से 2024 के लिए खसरा गिरदावरी (उपाबंध 3 से 7) प्रस्तुत किया। नगरपालिक बोर्ड ने अपनी दलील के समर्थन में संवत् वर्ष 2016 से 2019 की जमाबन्दी और संवत वर्ष 2017 से 2020 के लिए खसरा गिरदावरी भी फाइल किया।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

5. इन सभी वादों में प्रत्यर्थी-वादी ने यह दलील दी कि प्रश्नगत भूमि वादी नगरपालिक बोर्ड की खातेदारी में थी और प्रतिवादी विवादग्रस्त भूमि पर अतिचारी थे। प्रतिवादी-पिटीशनरों ने वादों का विरोध किया और यह निवेदन किया कि वे खातेदार थे, क्योंकि वे पिछले 35 वर्षों से विवादग्रस्त भूमि जोत रहे थे।

6. विवाद्यकों के विरचित किए जाने और साक्ष्य के अभिलिखित किए जाने के पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा ऊपर निर्दिष्ट वाद खारिज कर दिए गए। किन्तु प्रथम अपील न्यायालय ने वाद डिक्रीत किया और विचारण न्यायालय का आदेश उलट दिया। राजस्व बोर्ड ने तीनों मामलों में प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की।

7. प्रस्तुत दो रिट पिटीशनों में बहस की सुनवाई के समय पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेलों ने यह निवेदन किया कि तृतीय रिट पिटीशन भी, जो नारायण कलाल के पुत्र मथुरालाल की मृत्यु के कारण उसके विधिक प्रतिनिधियों के नाम अभिलेख में लाने के लिए आवेदन फाइल किए जाने के कारण लम्बित है, विचारार्थ लिया जाना चाहिए और उसका इन दोनों पिटीशनों के साथ ही विनिश्चय किया जाना चाहिए। पक्षकारों के विद्वान काउन्सेलों का यह संयुक्त अनुरोध स्वीकार कर लिया गया और मथुरालाल के तृतीय रिट पिटीशन का भी इस समेकित आदेश द्वारा विनिश्चय किया जा रहा है, जैसी कि प्रार्थना की गई है।

8. उक्त पिटीशनों के गुणागुण पर विचार करने से पूर्व मैं यहां यह उल्लेख करना उचित समझता हूं कि मथुरालाल की मृत्यु तारीख 1 जनवरी, 1978 को हो गई और चूंकि उसके विधिक प्रतिनिधियों के नाम अभिलेख में लाए जाने के लिए कोई कार्यवाही नहीं की गई और तारीख 25 मार्च, 1983 को भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री दिलीप सिंह द्वारा यह आवेदन फाइल किया गया कि रिट पिटीशन का उपशमन हो गया है और उसे खारिज कर दिया जाना चाहिए क्योंकि पिटीशनर, मृत मथुरालाल के विधिक प्रतिनिधियों के नाम अभिलेख में नहीं लाए गए हैं।

9. पिटीशनरों के विद्वान अधिवक्ता श्री रस्तोगी ने तारीख 18 अप्रैल, 1983 को एक आवेदन फाइल किया, जो मथुरालाल के पुत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जगदीश प्रसाद के इस शपथपत्र के द्वारा सम्यक् रूप से अनुसमर्थित किया गया है कि उसे इस रिट पिटीशन के लम्बित होने के बारे में कोई जानकारी नहीं थी और उसे उसकी जानकारी तभी हुई जब उसे उसके काउन्सेल का तारीख 26 मार्च, 1983 का पत्र मिला।

10. इस आवेदन पर भी बहस सुनी गई, क्योंकि 5 वर्ष के विलम्ब के पश्चात् नाम के प्रतिस्थापन के लिए इस आवेदन के ग्रहण किए जाने की बावत श्री दिलीप सिंह ने गम्भीर आक्षेप किए। किन्तु मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं इस आवेदन को मंजूर कर रहा हूं और इसलिए मैंने श्री एच० सी० रस्तोगी को पिटीशनर जगदीश प्रसाद का प्रतिनिधित्व करने के लिए मंजूरी दे दी और मुख्य मामले में उनके तर्कों को सुना। अतः मथुरालाल के नाम के स्थान पर उसके पुत्र जगदीश प्रसाद का नाम प्रतिस्थापित कर दिया गया है और कार्यालय द्वारा रिट पिटीशन की वाद-सूची में आवश्यक संशोधन किया जाए।

11. इन पिटीशनों में मुख्य संविवाद श्री रस्तोगी द्वारा उठाए गए विधि के इस महत्वपूर्ण प्रश्न से जिसका श्री दिलीप सिंह द्वारा जोरदार विरोध किया गया है, संबंधित है कि इस न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी-पिटीशनरों का पिछले 35 वर्षों से इस भूमि पर कब्जा था, अतः वे अधिनियम की धारा 19 के अधीन खातेदार हो गए हैं और इसलिए उन्हें अतिचारी नहीं माना जा सकता है, जैसा कि राजस्व अपील प्राधिकारी/प्राधिकरण और राजस्व बोर्ड द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है। यह तर्क भी दिया गया कि राजस्व बोर्ड यह दर्शित करने में असफल रहा है कि वे खातेदार कैसे हो गए थे और जब तक कि कोई नियमित जांच नहीं की जाती है और केवल माफीदार पवनगिरि का नाम प्रविष्ट कर और भवानी मण्डी नगरपालिक बोर्ड नाम प्रतिस्थापित करके प्रविष्टि में परिवर्तन करने के लिए कारण सहित ब्यौरेवार आदेश नहीं दिया जाता है, तब तक कानूनी प्रविष्टि अस्तित्वशील नहीं मानी जाएगी। इसके विपरीत, श्री दिलीप सिंह ने यह निवेदन किया कि यह न्यायालय इस समय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट पिटीशन का विनिश्चय कर रहा है और चूंकि केवल इसी प्रश्न पर विचार किया जाना है कि क्या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिलेख को देखने से ही प्रकट कोई गलती या अधिकारिता संबंधी कोई गलती की गई है या नहीं, अतः यह न्यायालय आदेश का पुनरीक्षण नहीं कर सकता है, भले ही दो मत संभव हों। यह भी इंगित किया गया कि जहां तक प्रतिवादी-पिटीशनरों का संबंध है, उन्होंने खसरा, टीप या खतौनी वाला राजस्व अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया है, जैसा कि राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 1956 वाला अधिनियम कहा गया है) के उपबंधों द्वारा अपेक्षित है और राजस्व विधि के अधीन, गिरदावरी प्रविष्टियां किसी अधिकारी का आधार नहीं हो सकती हैं।

12. मैंने पक्षकारों के विद्वान काउन्सेलों द्वारा दी गई दलीलों पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। मैंने सभी सुसंगत अभिलेखों का जिसके प्रति पक्षकारों के विद्वान काउन्सेलों ने निर्देश किया था, और तीनों न्यायालयों के निर्णय का भी परिशीलन किया है तथा बहस के दौरान पक्षकारों द्वारा उठाए गए विभिन्न प्रश्नों पर भी गम्भीरतापूर्वक विचार किया है।

13. राजस्व बोर्ड और राजस्व अपील प्राधिकरण दोनों ही, ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रतिवादी-पिटीशनर अतिचारी थे और उन्हें खातेदार नहीं माना जा सकता है, जैसाकि विचारण न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है। वह आधारभूत कारण जिसे उन्होंने महत्व दिया, यह प्रतीत होता है कि पिटीशनर तो खातेदार दर्शित किए गए हैं, किन्तु जहां तक प्रतिवादियों का संबंध है उन्हें न तो खातेदारों के रूप में मान्यता प्रदान की गई है और न अधिकारों के राजस्व अभिलेख में उन्हें उप-अभिधारी ही पाया गया है, यद्यपि यह दर्शित किया गया है कि उनका वादग्रस्त भूमि पर काफी लम्बे समय से कब्जा रहा है और वे उसे जोतते रहे हैं।

14. यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि राजस्व अपील प्राधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि प्रतिवादी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि उनका माफीदारी या जागीरदारी से (जो भी हो) विवादग्रस्त भूमि पर कब्जा कब और कैसे हुआ और उन्होंने किस हैसियत से इस भूमि पर कब्जा किया तथा यदि वे उप-अभिधारी थे, तो खातेदारी अधिकार प्राप्त करने के लिए कोई कार्यवाही नहीं की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गई। राजस्व अपील प्राधिकरण और राजस्व बोर्ड ने यह मत भी व्यक्त किया कि विवादग्रस्त भूमि पर भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड द्वारा सम्यक् रूप से निर्मित चबूतरे के अस्तित्व के बारे में कोई विवाद नहीं उठाया गया है और जमाबन्दी प्रस्तुत नहीं की गई है। उसके पश्चात् प्राधिकरण और बोर्ड ने गिरदावरी की प्रविष्टियों पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि जमाबन्दी, खसरा टीपों और खेवट खतौनी के प्ररूपों में अधिकारों के अभिलेख की प्रतियों के पेश न किए जाने के कारण, मात्र खसरा काश्त गिरदावरी के आधार पर यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि प्रतिवादी उप-अभिधारी हैं क्योंकि काश्त गिरदावरी 'अधिकारों का अभिलेख' नहीं है।

15. यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि अधिनियम की धारा 183 के अधीन वाद में विचारण न्यायालय को प्रतिवादियों को अधिनियम की धारा 19 के अधीन खातेदार घोषित करने की कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं थी।

16. इस मामले में आगे कार्यवाही करने से पूर्व, 'अधिकारों के अभिलेख' की बाबत राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम के उपबंधों की संक्षिप्ति देना आवश्यक होगा। अधिकारों के अभिलेख वाला अध्याय VII धारा 113 से आरम्भ होता है। स्वयं अधिकारों का अभिलेख भू-अभिलेख अधिकारी द्वारा तैयार किया जाता है। धारा 114 में यह विहित किया गया है कि अधिकारों के अभिलेख में निम्नलिखित होंगे, अर्थात् :—

(क) खेवट, अर्थात्, सर्वेक्षण और अभिलेख संक्रिया के अधीन या अभिलेख संक्रिया के अधीन क्षेत्र में सभी सम्पदा धारकों का रजिस्टर, जिसमें प्रत्येक सम्पदाधारक और उसके सह-अंशधारकों के हित की प्रकृति और सीमा तथा सकब्जा बन्धकों और अभिधारियों की हैसियत से भिन्न हैसियत में उससे भूमि धारित करने वाले व्यक्तियों को, यदि कोई हों, विनिर्दिष्ट किया जाएगा;

(ख) खतौनी, अर्थात्, ऐसे क्षेत्र में ऐसे सभी व्यक्तियों का, जो भूमि को जोत रहे हों या अन्यथा धारित किए हुए हों या उसे अपने उपभोग में लिए हुए हों, रजिस्टर, जिसमें धारा 121 द्वारा अपेक्षित विशिष्टियां विनिर्दिष्ट की जाएंगी;

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ग) ऐसे सभी व्यक्तियों का रजिस्टर, जो ऐसे क्षेत्र में भाटक या राजस्व से मुक्त रूप में, भूमि धारित किए हुए हों, और

(घ) ऐसे अन्य रजिस्टर, जो विहित किए जाएं।

धारा 115 में यह विहित किया गया है कि उस स्थिति में दावे आमंत्रित किए जाने चाहिए, यदि अधिकारों का अभिलेख अभिलेख संक्रिया के दौरान तैयार किया जाता है और प्रारूप सं० 5 की जाने वाली उद्घोषणा का प्ररूप है धारा 120 में भू अभिलेख अधिकारी द्वारा तैयार किए जाने वाला ग्राम रजिस्टर विहित किया गया है ; जिसमें सर्वेक्षण और अभिलेख संक्रिया के अधीन क्षेत्र में के सभी ग्रामों की सूची अन्तर्विष्ट होनी चाहिए। धारा 121 में खतौनी में वर्णित की जाने वाली विशिष्टियां विहित की गई हैं। धारा 121 की उपधारा (ग) में यह वर्णित किया गया है कि खातेदारी पत्री और उसके द्वारा किए गए अन्तरणों, यदि कोई हों, की तारीख तथा ऐसे अन्तरणों की सभी विशिष्टियां उसमें विनिर्दिष्ट की जानी चाहिए। उसके पश्चात् धारा 122 में यह विहित किया गया है कि विवाद की स्थिति में अनुप्रमाणन किस प्रकार किया जाना है और विनिश्चय भू अभिलेख अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए। धारा 123 के अधीन भू अभिलेख अधिकारी द्वारा ठीक अभिधारी की अभिधृति से संबंधित प्रश्न का न्यायनिर्णयन किया जा सकता है। उसके पश्चात् महत्वपूर्ण धारा 125 आती है, जिसमें यह कहा गया है कि 'अधिकारों के अभिलेख' की बाबत विवादों का निपटारा भू अभिलेख अधिकारी द्वारा, व्यक्तियों या ऐसे व्यक्ति के कब्जे के आधार पर जांच के पश्चात् किया जाना चाहिए, जो कब्जा पाने के लिए हकदार है और इस धारा के अधीन पारित कब्जा-संबंधी आदेश से कोई व्यक्ति अधिकारिता प्राप्त किसी सिविल या राजस्व न्यायालय में सम्पत्ति के अपने अधिकार को सिद्ध करने से विवर्जित नहीं होगा।

17. उसके पश्चात् धारा 126 में यह वर्णित किया गया है कि विद्यमान् अभिलेख तब तक प्रभावी माने जाएंगे, जब तक कि नए अभिलेख तैयार नहीं कर लिए जाते हैं और धारा 127 द्वारा कलक्टर को, सर्वेक्षण और अभिलेख संक्रिया बन्द कर दिए जाने के पश्चात् अन्य अभिलेख लेने और विवादों का विनिश्चय करने के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिए प्राधिकृत किया गया है। उसके पश्चात् अध्याय VII (घ) समाप्त हो जाता है और अध्याय VII (ङ) सीमा-विवाद से आरम्भ होता है और नक्शे तथा फील्ड बुक के रख जाने की चर्चा के साथ समाप्त हो जाता है (धारा 131) और उसके पश्चात् अध्याय VII (च) आता है, जिसमें भू अभिलेख अधिकारी को वार्षिक रजिस्टर रखने का आदेश दिया गया है। धारा 133 में यह प्रक्रिया विहित की गई है, जिसमें कब्जे का अन्तरण या उत्तराधिकार अभिलिखित किया जाना है और पटवारी तथा तहसीलदार या भू अभिलेख निरीक्षक की रिपोर्टें प्राप्त की जानी हैं। उसके पश्चात् धारा 136 में यह वर्णित किया गया है कि किसी अभिधारी के वर्ग या अभिधृति से संबंधित या संदेय राजस्व से संबंधित या वार्षिक रजिस्टर में की जाने वाली प्रविष्टियों से संबंधित सभी विवादों का विनिश्चय यथास्थिति, धारा 123 या धारा 124 या धारा 125 के उपबंधों के अनुसार किया जाएगा।

18. इस न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन के लिए जो महत्वपूर्ण प्रश्न उद्‌भूत हुआ है वह यह है कि क्या गिरदावरी 'अधिकार का अभिलेख' है। ऊपर वर्णित धाराओं की, विशेष रूप से धारा 132 से धारा 144 और 120 की संक्षिप्ति से यह दर्शित होगा कि खसरा गिरदावरी का 'अधिकारों के अभिलेख' या तैयार किए जाने वाले वार्षिक रजिस्टरों में कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है। किन्तु इस न्यायालय ने सूरजमल बनाम राज्य[1] वाले मामले में दाण्डिक पुनरीक्षण पर विचार करते समय यह मत व्यक्त किया कि **माला बनाम राजस्व बोर्ड**[2] वाले मामले में भूतपूर्व जयपुर राज्य की राजस्व विधियों के प्रति निर्देश से यह अभिनिर्धारित किया गया कि खसरा गिरदावरी वार्षिक रजिस्टर था और विधि में यह उपधारणा अधिकथित की गई कि उसमें की गई प्रविष्टियां सही थी। उसके पश्चात् इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :—

"8. राजस्थान भू राजस्व अधिनियम, 1956 (1956 का अधिनियम सं० 15) तारीख 1 जुलाई, 1956 को प्रवृत्त हुआ है और अब उसके उपबंधों पर विचार करना उचित होगा।

---

1 1959 आर० आर० डी० पृ० 173 = 1959 आर० एल० डब्ल्यू० पृ० 381.
2 1953 का खण्ड न्यायपीठ सिविल रिट पिटीशन सं० 185 जिसका विनिश्चय तारीख 1 फरवरी, 1956 को किया गया.

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

9. धारा 140 में यह कहा गया है कि अधिकारों के अभिलेख में सभी प्रविष्टियां सही मानी जाएंगी जब तक कि इसके विपरीत साबित नहीं कर दिया जाता है।

10. धारा 114 में उन सभी दस्तावेजों का उल्लेख किया गया है जिनसे मिल कर अधिकारों का अभिलेख बनता है और इस संबंध में निम्नलिखित का उल्लेख करना उचित होगा:—

'(ख) खतौनी, अर्थात् उन सभी व्यक्तियों का रजिस्टर, जो क्षेत्र में भूमि को जोत रहे हों या अन्यथा उसे धारित किए हुए हों या उसको अपने अधिभोग में लिए हुए हों, जिसमें धारा 121 (घ) द्वारा अपेक्षित विशिष्टियां विनिर्दिष्ट की जाएंगी ऐसे अन्य रजिस्टर जो विहित किए जाएं।'

11. धारा 132 में यह निदेश किया गया है कि भू और अभिलेख अधिकारी अधिकारों का अभिलेख रखेगा और उस प्रयोजन के लिए वार्षिक रूप से या ऐसे दीर्घतर अन्तरालों पर, जो सरकार द्वारा विहित किए जाएं, धारा 114 और 120 में प्रगणित रजिस्टरों का संवर्ग (सेट) या संशोधित संवर्ग (सेट) तैयार करवाएगा और इस प्रकार तैयार किए गए रजिस्टर वार्षिक रजिस्टर कहे जाएंगे।

12. भू राजस्व अधिनियम की धारा 261 के अधीन विरचित नियम 355 (ख) में यह कहा गया है कि खसरा अधिकारों के अभिलेख का आधार है, और नियम 64 से 89 में यह निदेश किया गया है कि वह किस प्रकार तैयार किया जाएगा। विहित प्ररूप और उस जान कारी से, जिसका उसमें दर्ज किया जाना अपेक्षित है, यह दर्शित होता है कि वह अधिनियम की धारा 114 के साथ पठित धारा 132 के अधीन तैयार किया गया चतुर्वर्षीय रजिस्टर है। इस प्रकार सभी प्रविष्टियां सही मानी जाएंगी, जब तक कि उसके विपरीत कोई सबूत न हो।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

19. राजस्व बोर्ड के चार सदस्यों के न्यायपीठ ने **पन्ने सिंह** बनाम **श्री गुमान सिंह**[1] वाले मामले में उपर्युक्त निर्णय की विवक्षा (निहितार्थ) पर विचार किया, क्योंकि उसके प्रति खण्ड न्यायपीठ द्वारा **निर्देश** किया गया था। निर्देश निम्नलिखित रूप में था :—

> "क्या खसरा गिरदावरी अधिकार का अभिलेख है और क्या भू अभिलेख अधिकारी के समक्ष खसरा गिरदावरी के ठीक किए जाने के लिए आवेदन किया जा सकता है।"

खण्ड न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि खसरा गिरदावरी अधिकारों का अभिलेख नहीं है। उसके पश्चात् राजस्व बोर्ड के विद्वान सदस्यों ने अधिनियम की धारा 132 और 114 तथा अन्य सुसंगत उपबंधों पर विचार किया। सदस्यों ने यह मत व्यक्त किया कि अधिनियम में खसरा गिरदावरी का कोई उल्लेख नहीं किया गया है, जिससे कि वह 'अधिकारों के अभिलेख' या वार्षिक रजिस्टर की परिभाषा के अन्तर्गत आ सके। ऊपर निर्दिष्ट **सूरजमल वाले मामले**[2] में किया गया उपर्युक्त विनिश्चय इस प्रतिपादना के लिए नजीर के रूप में प्रोद्धृत किया गया कि खसरा गिरदावरी 'अधिकार का अभिलेख' है। ऊपर निर्दिष्ट **पन्ने सिंह वाले मामले**[1] में **सूरजमल वाले मामले**[2] में किए गए विनिश्चय की विवक्षा (निहितार्थ) के संबंध में यह मत व्यक्त किया गया :—

> "जैसा कि खण्ड न्यायपीठ ने ठीक ही बताया है, यह मामला दाण्डिक पुनरीक्षण में उद्भूत हुआ, जिसमें विवादग्रस्त भूमि पर कब्जे के प्रश्न पर उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश द्वारा विचार किया गया, जिसमें उन्होंने यह बताया है कि खसरा गिरदावरी, राजस्थान भू राजस्व (भू अभिलेख) नियमावली, 1957 के नियम 335, उपनियम (ख) में यथा अधिकथित, अधिकारों के अभिलेख का आधार है। यह दर्शित करने के लिए कोई चीज नहीं है कि स्वयं खसरा गिरदावरी को विद्वान न्यायाधीश ने उपर्युक्त निर्णय में अधिकारों का अभिलेख माना। उसमें

[1] 1963 आर० आर० डी० पृ० 101.

[2] 1959 आर० आर० डी० पृ० 173-1959 आर० एल० डब्ल्यू०. पृ० 381.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खसरा गिरदावरी में की गई प्रविष्टि को, जिसे गलती से अधिकार का अभिलेख माना गया, लोक दस्तावेज होने के कारण, सही प्रविष्टि माना गया, क्योंकि ऐसे दस्तावेजों के तब तक सही होने की पूर्वधारणा की जाती है, जब तक कि उन्हें नासाबित नहीं कर दिया जाता है। इस प्रकार उच्च न्यायालय के उक्त दाण्डिक पुनरीक्षण में किया गया विनिश्चय यह अभिनिर्धारित करने के लिए विधि में कोई नजीर नहीं है कि खसरा गिरदावरी अधिकार का अभिलेख है। इसके विपरीत, राजस्थान भू राजस्व नियमावली और अधिनियम में स्पष्ट रूप से यह अधिकथित किया गया है कि खसरा गिरदावरी अधिकारों का अभिलेख नहीं है।"

20. उसके पश्चात् सदस्यों ने ऊपर निर्दिष्ट **पन्ने सिंह वाले मामले**[1] में दिए गए निर्णय के पैरा 4 में गिरदावरी और खतौनी के तैयार किए जाने से संबंधित उपबंधों पर विचार किया। उनके द्वारा व्यक्त किए गए मत का सुसंगत अंश नीचे दिया जा रहा है:—

"खसरा गिरदावरी में पटवारियों द्वारा प्रविष्टियां की जाती हैं, उनकी चेकिंग और दुबारा चेकिंग राजस्व निरीक्षकों तथा तहसीलदारों द्वारा अपने दौरे के दौरान की जाती है। ऐसी प्रविष्टियों से संबंधित सभी विवादों का दौरे (टूर) पर निरीक्षण अधिकारियों द्वारा संक्षिप्त जांच के पश्चात् निपटारा किया जाता है, जो भूमि के कब्जे और अभिधारी या उप-अभिधारी के ऐसे कब्जे की प्रकृति पर आधारित होती है—ऐसा खसरा गिरदावरी रजिस्टर के पूरा किए जाने तथा जमाबन्दी तैयार किए जाने के पश्चात् किया जाता है।"

पटवारी द्वारा गिरदावरी संक्रिया के समय की गई प्रविष्टि उसके प्रशासनिक कृत्यों के पालन में की गई प्रविष्टि है, उससे अधिक कुछ नहीं, और उस प्रक्रम पर उसमें संशोधन के लिए अनुरोध सक्षम प्राधिकारियों के समक्ष प्रशासनिक रीति में किया जाना चाहिए और ऐसी प्रविष्टियों में संशोधन के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया जाना चाहिए। इस अध्युपाय के निश्शेष होने के पश्चात् ही और जमाबन्दी

[1] **1953 का खंड न्यायपीठ सिविल रिट पिटीशन सं० 184, जिसका विनिश्चय तारीख 1 फरवरी, 1956 को किया गया।**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खतौनी में प्रविष्टि किए जाने के पश्चात् ही अधिकार के ऐसे अभिलेख में संशोधन के लिए आवेदन किया जा सकता है।

जमाबन्दी खतौनी के तैयार किए जाने के पश्चात् ही (यदि कोई विवाद फिर भी बना रहता है) अधिकारों के अभिलेख में संशोधन के लिए आवेदन किया जा सकता है; उससे पूर्व नहीं क्योंकि जमाबन्दी खतौनी ही अधिकारों का एकमात्र अभिलेख है, खसरा गिरदावरी नहीं। (पैरा 4)

21. ऊपर निर्दिष्ट **पन्ने सिंह वाले मामले**[1] में राजस्व बोर्ड के सदस्यों ने यह मत भी व्यक्त किया कि गिरदावरी मात्र एक प्रशासनिक प्रविष्टि है और जब तक कि उसके आधार पर खतौनी में प्रविष्टि नहीं की जाती है, संशोधन के लिए आवेदन ग्रहण नहीं किया जा सकता है।

22. मेरा यह मत है कि जहां तक **सूरजमल वाले मामले**[2] में निर्णय के दाण्डिक पुनरीक्षण या कार्यवाही होने की बाबत ऊपर निर्दिष्ट **पन्ने सिंह वाले मामले**[1] में राजस्व बोर्ड के सदस्यों द्वारा व्यक्त किए गए मत का संबंध है इस न्यायालय का विनिश्चय, चाहे वह दाण्डिक पक्ष (साइड) में हो या सिविल पक्ष (साइड) में हो, सभी अधीनस्थ न्यायालयों और अधिकरणों के लिए आबद्धकर है तथा राजस्व बोर्ड का उस निर्णय की विवक्षा (निहितार्थ) से बचना और इस आधार पर उसका अनुसरण करने से इनकार करना न्यायोचित नहीं है कि निर्णय दाण्डिक पक्ष (साइड) में दिया गया है।

23. तथापि, मैं यह पाता हूं कि यह निष्कर्ष निकालने के लिए इस निर्णय में कोई बात नहीं है कि खसरा गिरदावरी में की गई प्रविष्टि राजस्व विधि के अधीन 'अधिकारों का अभिलेख' मानी जाएगी। ऊपर निर्दिष्ट **सूरजमल वाले मामले**[2] में किए गए विनिश्चय के पैरा 12 में केवल यही कहा गया है कि खसरा 'अधिकारों के अभिलेख' का आधार होता है। इस पैरा 12 में प्रयुक्त शब्दावली से स्पष्टतः यह दर्शित हो जाता है कि वह 'अधिकारों के अभिलेख' से भिन्न दस्तावेज है।

[1] 1953 का खंड न्यायपीठ सिविल रिट पिटीशन सं० 185 जिसका विनिश्चय तारीख 1 फरवरी, 1956 को किया गया.

[2] 1959 आर० आर० डी० पृ० 173=1959 आर० एल० डब्ल्यू० पृ० 381.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

24. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, 'अधिकारों का अभिलेख' पद को राजस्थान भू राजस्व अधिनियम की धारा 114 में परिभाषित किया गया है। और उसमें खसरा गिरदावरी का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है। उपर्युक्त बातों को देखते हुए, ऊपरनिर्दिष्ट **सूरजमल वाले मामले**[1] में किया गया विनिश्चय इस प्रतिपादना के लिए नजीर नहीं माना जा सकता है कि खसरा गिरदावरी ऐसे दस्तावेजों में से एक दस्तावेज है, जिन्हें राजस्थान की राजस्व विधि के अधीन 'अधिकारों का अभिलेख' कहा या माना जा सकता है।

25. ऊपर निर्दिष्ट **सूरजमल वाले मामले**[1] में किए गए विनिश्चय में एक अन्य प्रश्न पर भी विचार किया गया है और वह प्रश्न खसरा गिरदावरी की प्रविष्टि के मूल्य के संबंध में है। निस्संदेह इस मामले में विद्वान् न्यायाधीश दाण्डिक पुनरीक्षण पर विचार कर रहे थे और उसमें विचारार्थ एकमात्र जो प्रश्न उद्भूत हुआ था वह कब्जे के सम्बन्ध में था और वह यह था कि किसी विशेष व्यक्ति से संबंधित खसरा गिरदावरी में की गई प्रविष्टि को देखते हुए, जब कि उसके विपरीत कोई साक्ष्य नहीं है, उस व्यक्ति को उस प्रविष्टि का फायदा दिया जाना चाहिए या नहीं। ऊपर निर्दिष्ट **सूरजमल वाले मामले**[1] में किए गए इस विनिश्चय में इस तथ्य की बाबत स्थिति यह थी कि दावेदार ने खुदकाश्त धारक होने का दावा किया और उसका खेत खुदकाश्त के रूप में दर्शित किया गया था तथा गिरदावरी में दर्शित फसल भी उसके पक्ष में थी। पैरा 15 में यह बताया गया है कि अलसी की फसल परिवादियों द्वारा बोई गई थी जो शंकरलाल के कर्मचारी थे और इसलिए अभियुक्त सूरजमल को, जिसे अलसी की फसल उठा लेने के लिए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 379 के अधीन सिद्धदोष ठहराया गया था, विधि के अधीन कोई अधिकार प्राप्त नहीं था और इसलिए उसे ठीक ही सिद्धदोष ठहराया गया था।

26. इस मामले में जिस निर्णायक प्रश्न पर विचार किया गया था वह यह था कि क्या परिवादी खुदकाश्त धारक था और यह कि खसरे से उसके पक्ष में जोत की प्रविष्टि दर्शित होती थी। इसी संदर्भ में गिरदावरी में की गई प्रविष्टि पर विचार किया गया और अभियुक्त के इस

[1] 1959 आर० आर० डी० पृ० 173=1959 आर० एल० डब्ल्यू० पृ० 381.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आक्षेप को कि वह प्रविष्टि पटवारी द्वारा लोक दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियों को पेश करके साबित नहीं की गई थी, इस आधार पर अवीकार कर दिया गया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अधीन (प्रविष्टि के) सही होने की उपधारणा की जाती है और उसके लिए किसी प्रकार का प्ररूपिक सबूत अपेक्षित नहीं था।

27. अतः मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि सूरजमल वाले मामले[1] में किया गया विनिश्चय इस प्रतिपादना के लिए कोई नजीर नहीं है कि खसरा गिरदावरी 'अधिकारों के अभिलेख' का भाग है या उससे राजस्थान की राजस्व विधि के अधीन कोई विधिक अधिकार सृजित होता है।

28. मेरा यह भी मत है कि अन्यथा भी, राजस्थान भू राजस्व अधिनियम और तद्धीन विरचित नियमों के सुसंगत उपबंधों तथा मैनुअल में अन्तर्विष्ट अनुदेशों और टिप्पणों की बारीकी से जांच करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि गिरदावरी केवल प्रशासनिक सामग्री देने के लिए ही तैयार की जाती है और यद्यपि वह 'अधिकारों के अभिलेख' के तैयार किए जाने के लिए सुसंगत हो सकती है, वह, स्वतः, राजस्व विधि के अधीन 'अधिकारों के अभिलेख' का भाग नहीं हो सकती है और मैं तदनुसार अभिनिर्धारित कर रहा हूं।

29. विचारार्थ अगला प्रश्न यह है कि क्या पिटीशनरों के अतिचारी होने के संबंध में, प्रस्तुत मामलों में राजस्व बोर्ड और राजस्व अपील प्राधिकरण के निष्कर्ष में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप अपेक्षित है।

30. यहां यह उल्लेखनीय है कि खसरा गिरदावरी (रिट पिटी सं० 627/73 में उपाबंध 4) में की गई प्रविष्टियों में, जो निर्णायक संवत् वर्ष 2010 से 2013 से संबंधित है, उसके स्तंभ 5 में पवनगिरि या गणेश गिरि का नाम काट दिया गया है। भवानी मण्डी के नगरपालिका बोर्ड का नाम स्तंभ 6 में सम्मिलित कर लिया गया है। यह सच है कि स्तंभ 32 में संवत् वर्ष 2012 के लिए मथुरा और नांगा के नाम वर्णित किए गए हैं, और इसी प्रकार स्तंभ 40 में भी किन्तु, यह स्तंभ विशेष विशिष्टियों और राजस्व दरों के बारे में किए जाने वाले परिवर्तनों आदि

[1] 1959 आर० आर० डी० पृ० 173=1959 आर० एल० डब्ल्यू० पृ० 381.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के लिए हैं। राजस्थान अभिधृति अधिनियम तारीख 15 अक्तूबर, 1955 को प्रवृत्त हुआ, जो संवत् वर्ष 2012 के समतुल्य है। यह भी प्रतीत होता है कि संवत् वर्ष 2012 के पश्चात् भी प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत की गई पश्चात्वर्ती खसरा गिरदावरी में, स्तंभ 6 में भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड का नाम है और संवत् वर्ष 2013, 2014, 2015 और 2016 में स्तंभ सं० 16, 24, 32 और 40 में प्रतिवादियों के नामों का उल्लेख है।

31. खसरा गिरदावरी (रिट पिटीशन सं० 627/73 में उपाबंध 6) में, जिसमें संवत् वर्ष 2017, 2018, 2019 और 2020 की प्रविष्टियां अन्तर्विष्ट हैं, स्तंभ सं० 6 में खातेदार के रूप में भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड का नाम वर्णित है और वह पूर्ववत् अब भी बना हुआ है। संवत् वर्ष 2021, 2022, 2023 और 2024 में, खसरा गिरदावरी के स्तंभ सं० 6 की प्रविष्टियों में भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड का नाम अन्तर्विष्ट है।

32. खसरा गिरदावरी (उपाबंध 6) में, स्तंभ सं० 16 में, भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड के नाम के पश्चात्, मथुरा लाल और नाँगा के नामों का उल्लेख किया गया है। किन्तु, संवत् वर्ष 2021 से, जो वर्ष 1965 के समतुल्य है, आरम्भ होने वाले और वर्ष 1967 के समतुल्य संवत् वर्ष को समाप्त होने वाले वर्षों के लिए खसरा गिरदावरी (रिट पिटीशन सं० 627/73 में उपाबंध 7) में खसरा नं० 410 की बावत, भवानी मण्डी नगरपालिक बोर्ड के पक्ष में प्रविष्टियां की गई हैं, जिसमें 'नगरपालिक बोर्ड' शब्दों में 'बशरह' शब्द जोड़ दिया गया है।

33. वाद तारीख 5 अक्तूबर, 1962 को फाइल किया गया था और इसलिए संवत् वर्ष 2019 तक की प्रविष्टियां तात्त्विक हैं।

34. मैंने यह अभिनिश्चित और निर्धारित करने के लिए प्रविष्टियों की संक्षिप्ति विस्तारपूर्वक दी है कि सुसंगत वर्षों के दौरान सुसंगत अभिलेख क्या था। यह स्पष्ट है कि कारणों पर ध्यान दिए बिना, चाहे वे कुछ भी रहे हों, भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड का नाम इन प्रविष्टियों में बना रहा था और माफीदारी या जागीरदारी का पुनर्ग्रहण राजस्थान जमींदारी और बिस्वेदारी उत्सादन अधिनियम, 1959 द्वारा किया गया था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

35. वर्ष 1959 संवत् वर्ष 2015 के समतुल्य है और इसलिए व्यक्तियों के माफीदारी अधिकार, यदि कोई हों, उत्सादित कर दिए गए थे और राज्य में निहित कर दिए गए थे।

36. राजस्व अपील प्राधिकरण के निर्णय से यह प्रतीत होता है कि भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड के सचिव, रूपनारायण पटवारी (वादी सं० 2) और नगरपालिक बोर्ड के लिपिक, अमरलाल (वादी सं० 3) की परीक्षा की गई और विचारण न्यायालय के समक्ष संवत् वर्ष 2015 से 2019 की जमाबन्दी (प्रदर्श पी-1) प्रस्तुत की गई। इस न्यायालय के समक्ष भी, रिट पिटीशन के उत्तर में यह वर्णित किया गया है कि इन विवादग्रस्त भूमियों के पचपहाड़ के तहसीलदार द्वारा भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड की खातेदारी में अन्तरित किये जाने का आदेश किया गया था [देखें आदेश (उपाबन्ध आर० 4/1)] और संवत् वर्ष 2012 से 2015 तक के लिये 'जमाबन्दी' की प्रमाणित प्रति उपाबन्ध आर० 4/2 के रूप में प्रस्तुत की गई है। इन दस्तावेजों (उपाबन्ध आर० 4/1 और आर० 4/2) से स्पष्टतः यह दर्शित होता है कि स्तम्भ सं० 11 में भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड को खातेदार के रूप में दर्शित किया गया है और टिप्पण में यह उल्लेख किया गया है कि श्री राजेन्द्र इजलास के आदेश (24/11/45) द्वारा यह भूमि टाउन इम्प्रूवमेंट (ट्रस्ट) और उसके पश्चात् भवानी मंडी की नगरपालिका को दे दी गई (देखें ता० 30 मार्च, 1946 का आदेश) तहसीलदार का पृष्ठांकन बहुत महत्वपूर्ण है और यह स्पष्ट है कि इसके कारण ही भूमि नगरपालिक बोर्ड को अन्तरित की गई। पुनः संवत् वर्ष 2012 से 2015 तक के लिये जमाबन्दी (खेवट खतौनी) में यह उल्लेख किया गया है कि श्री राजेन्द्र इजलास के तारीख 24-11-45 के आदेश के कारण, यह भूमि भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड को दे दी गई।

37. इस प्रकार यह दृष्टव्य है कि इन दस्तावेजों (उपाबन्ध आर० 4/1 और आर० 4/2) में यह दर्शित करने के लिये निर्णायक साक्ष्य उपलब्ध है कि किस प्रकार विवादग्रस्त भूमि श्री राजेन्द्र इजलास के तारीख 24-11-45 के आदेश द्वारा नगरपालिक बोर्ड को अन्तरित की गई और दी गई और इसलिये संवत् वर्ष 2012 से 2015 तक के राजस्व

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिलेख जमाबन्दी (खेवट खतौनी)—में भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड का नाम अन्ततः प्रविष्ट किया गया।

38. खेवट खतौनी जमाबन्दी वाले और इस भूमि के भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड को अन्तरण के पृष्ठांकन वाले राजस्व अभिलेखों की उपर्युक्त प्रविष्टियों को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि इस बात पर ध्यान दिए बिना कि गिरदावरी को क्या महत्व दिया जाता है, जमाबन्दी (खेवट खतौनी) वाला 'अधिकारों का अभिलेख' नगरपालिक बोर्ड, भवानी मण्डी, प्रत्यर्थी सं० 4 के पक्ष में है। 'अधिकारों के अभिलेख' के इन दस्तावेजों में, प्रतिवादी-पिटीशनरों के नामों का कोई उल्लेख नहीं है, और इसलिये प्रस्तुत मामला ऐसा मामला है, जिसमें वादी-प्रत्यर्थी सं० 4, नगरपालिक बोर्ड, भवानी मण्डी विवादग्रस्त भूमि का खातेदार है।

39. उपर्युक्त बातों को देखते हुए, अब इस प्रश्न पर विचार करना कतई आवश्यक नहीं है कि क्या, यदि दो मत संभव हैं, राजस्व बोर्ड द्वारा अपनाये गये दृष्टिकोण की पुष्टि की जानी चाहिये और उसे कायम रखा जाना चाहिये, जैसी कि श्री दिलीप सिंह ने दलील दी है, जिस मत का अनुसमर्थन जगन सिंह बनाम राजस्व बोर्ड[1] वाले मामले में इस न्यायालय के खण्ड न्यायपीठ के विनिश्चय द्वारा सम्यक् रूप से होता है, और न इस प्रश्न पर विचार करना ही आवश्यक है कि क्या इस तथ्य से संबंधित निष्कर्ष कि प्रतिवादी अतिचारी थे, पूर्णतः तथ्य का निष्कर्ष ही है।

40. मेरा यह समाधान हो गया है कि राजस्व अपील प्राधिकरण और राजस्व बोर्ड का एकसा विनिश्चय, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिवादी पिटीशनर अतिचारी थे और वादी-प्रत्यर्थी सं० 4, नगरपालिक बोर्ड, भवानी मण्डी खातेदार था, सही है और उसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है।

41. मैं यहां यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि विचारण न्यायालय का राजस्थान अभिधृति अधिनियम की धारा 19 के अधीन प्रतिवादी-पिटीशनरों को खातेदारों के रूप में घोषित करना न्यायोचित नहीं था। यह बात अभिलेख में आई है और प्रतिवादी-पिटीशनरों द्वारा स्वीकार की गई है कि उन्होंने खातेदारों के रूप में घोषणा के लिये कोई

[1] 1961 आर० एल० डब्ल्यू० पृ० 42.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कार्यवाही नहीं की, जब कि अधिकारों के राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियां कम से कम संवत् वर्ष 2012 में, भवानी मण्डी के नगरपालिक बोर्ड के पक्ष में की गई थीं, जैसा कि ऊपर वर्णित दस्तावेजों (उपाबन्ध आर-4/1 और आर-4/2) से स्पष्ट होता है। यह काम प्रतिवादी-पिटीशनरों का था कि वे सभी न्यायालयों में उसे चुनौती देते, जिसमें नियमित घोषणात्मक वाद का फाइल किया जाना भी सम्मिलित था, जो उन्होंने अभी तक नहीं किया।

42. उपर्युक्त बातों को देखते हुए, इस बारे में लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि राजस्व बोर्ड और राजस्व अपील प्राधिकरण का सामान्य (एक जैसा) निष्कर्ष मामले के गुणागुण के आधार पर न्यायोचित है और वह तथ्यों और विधि, दोनों ही, की दृष्टि से स्पष्ट कारणों पर आधारित है।

43. उपर्युक्त विचार-विमर्श का यह परिणाम है कि ऊपर निर्दिष्ट तीनों रिट पिटीशन असफल रहते हैं और इसलिये खारिज किये जाते हैं। खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जा रहा है।

रिट पिटीशन खारिज किए गए।

न०/ब्रह्म

क्रि० प० 1983 : राजस्थान—372

बाबू लाल बनाम राज्य

(Babu Lal *Vs.* State)

तारीख 20 अप्रैल, 1983

(न्या० जी० के० शर्मा)

खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 धारा 7(1), 20 और नियम 47 सपठित खाद्य अपमिश्रण नियमावली नियम 49 (1)(2)(3) —वह आधार, जिस पर अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन आरम्भ किया जाता है, परिवाद में ठीक-ठीक और स्पष्ट रूप से वर्णित किया जाना चाहिए। संबंधित प्राधिकारी की लिखित सम्मति के बिना, अपराध की बाबत कोई भी अभियोजन संस्थित नहीं किया जा सकता है। यदि मुख्य चिकित्सा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और स्वास्थ्य अधिकारी लोक विश्लेषक की राय के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए मंजूरी दे देता है किंतु केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक की राय से लोक विश्लेषक की राय की पुष्टि नहीं होती, तो इस आधार पर संस्थित अभियोजन, मंजूरी में वर्णित आधार से भिन्न आधार पर संस्थित किए जाने के कारण, विधिमान्य नहीं होगा।

लोक विश्लेषक ने 'मिठाई' के नमूने का विश्लेषण किया, जो अभियुक्त से संगृहीत किया गया था और विश्लेषण के लिये खाद्य निरीक्षक द्वारा उसे दिया गया था। लोक विश्लेषक की रिपोर्ट के अनुसार, उसमें सैक्रीन थी और नमूना खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम के अधीन विरचित नियमावली के नियम 47 के अधीन अपमिश्रित पाया गया। खाद्य निरीक्षक की रिपोर्ट पर, मुख्य चिकित्सा और स्वास्थ्य अधिकारी ने अपना समाधान हो जाने के पश्चात् खाद्य अपमिश्रण नियमावली के नियम 49(1)(2)(3) के साथ पठित, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम की धारा 7(1) के अधीन अपराधों के लिये पिटीशनर के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिये मंजूरी दे दी। तत्पश्चात्, पूर्वोक्त मंजूरी के आधार पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में परिवाद फाइल किया गया। पिटीशनर ने केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला, गाजियाबाद के निदेशक को नमूना भेजे जाने के लिये आवेदन फाइल किया। केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक की रिपोर्ट लोक विश्लेषक की रिपोर्ट से मेल नहीं खाती थी बल्कि, उसके विपरीत, यह पाया गया कि सैम्पल से अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर की मौजूदगी दर्शित होती थी। पिटीशनर की ओर से विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष यह आक्षेप उठाया गया कि उसका इस आधार पर अभियोजन कि सैम्पल से अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर की मौजूदगी दर्शित होती थी, अविधिमान्य था क्योंकि उस निमित्त अभियुक्त पिटीशनर के विरुद्ध अभियोजन चलाये जाने के लिये कोई मंजूरी नहीं दी गई थी। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट पिटीशनर के इस तर्क से सहमत नहीं हुए और उन्होंने पिटीशनर के अभियोजन के संबंध में आगे कार्यवाही की और मंजूरी न होने के कारण कार्यवाहियाँ समाप्त नहीं कीं; इस आदेश के विरुद्ध ही उच्च-न्यायालय में प्रस्तुत पुनरीक्षण पिटीशन प्रस्तुत किया गया है।

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित —रिट पिटीशन मंजूर किया गया।

संबंधित प्राधिकारी की लिखित सम्मति के बिना, अपराध की बाबत कोई भी अभियोजन संस्थित नहीं किया जायेगा अतः प्रस्तुत मामले में भिन्न अपराध के लिये, जो अब केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक की रिपोर्ट से उद्भूत होता है, अभियोजन शुरु नहीं किया जा सकता है वह आधार ,जिस पर अभियोजन शुरु किया गया है, परिवाद में ठीक-ठीक और स्पष्ट रूप से वर्णित किया जाना चाहिये ।(पैरा 2 और 3)

केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक की रिपोर्ट मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष नहीं थी । अतः नमूने में पाये गये अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर के आधार पर अभियोजन के लिये मंजूरी देने वाले प्राधिकारी द्वारा विचार किये जाने का कोई प्रश्न ही नहीं था । मंजूरी, उपाबन्ध-2 सैक्रीन के संबंध में है और अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर की मौजूदगी होने के लिये कोई मंजूरी नहीं है । अतः वह अपराध, जिससे अभियुक्त केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला की रिपोर्ट के आधार पर आरोपित होगा, उस अपराध से भिन्न होगा, जिससे वह लोक विश्लेषक की रिपोर्ट के आधार पर आरोपित होता । इस प्रकार पिटीशनर के अभियोजन के लिये मंजूरी भिन्न है और यह मंजूरी विधिमान्य नहीं है। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने, इस तथ्य पर ध्यान दिये बिना ही कि समुचित मंजूरी नहीं दी गई है, परिवाद का गलत ढंग से संज्ञान किया है । मंजूरी देने वाले प्राधिकारी ने अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर के मौजूद होने के संबंध में अभियोजन के लिये मंजूरी देते समय अपनी विवेकबुद्धि का प्रयोग नहीं किया है ।(पैरा 4)

पैरा

[1979] 1979(1) एफ०ए०सी०, पृ० 247 : नगरपालिक बोर्ड, जौनपुर बनाम रघुनन्दन राम Board, Jaunpur *Vs.* Raghunandan Ram); 3

[1978] 1978 (2) एफ०ए०सी० पृ० 136: महाराष्ट्र राज्य बनाम निजामुद्दीन हाजी मोहम्मद खां (State of Maharashtra *Vs.* Nizamudin Haji Muhmmed Khan) से सहमति व्यक्त की गई। 2

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दांडिक (पुनरीक्षण) अधिकारिता : 1983 का दाण्डिक पुनरीक्षण सं० 86.

1982 के दाण्डिक मामला सं० 629 में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, भरतपुर द्वारा तारीख 28 दिसम्बर, 1982 को पारित आदेश के विरुद्ध दाण्डिक पुनरीक्षण।

पिटीशनर की ओर से ....श्री डी०के० सोराल

राज्य की ओर से ....श्री जी०सी० चटर्जी, लोक अभियोजक

न्या० जी० के० शर्मा;

पिटीशनर ने यह अभिकथन किया है कि तारीख 20 अप्रैल, 1981 को भरतपुर के लोक विश्लेषक ने 'मिठाई' के नमूने (सैम्पल) का विश्लेषण किया, जो अभिकथित रूप से अभियुक्त बाबू लाल से संगृहीत किया गया था और विश्लेषण के लिये खाद्य निरीक्षक द्वारा उसे दिया गया था। लोक विश्लेषक की रिपोर्ट के अनुसार, उसमें सैक्रीन थी और नमूना खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम के नियम 47 के अधीन अपमिश्रित पाया गया। भरतपुर के खाद्य निरीक्षक की रिपोर्ट पर, भरतपुर के मुख्य चिकित्सा और स्वास्थ्य अधिकारी ने अपना समाधान हो जाने के पश्चात् तारीख 20 जून, 1982 को खाद्य अपमिश्रण नियमावली के नियम 49(1)(2)(3) के साथ पठित, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम की धारा 7(1) के अधीन अपराधों के लिये पिटीशनर के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिय मंजूरी दे दी। तत्पश्चात्, पूर्वोक्त मंजूरी के आधार पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में परिवाद फाइल किया गया। पिटीशनर ने केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला, गाजियाबाद के निदेशक को नमूना भेजे जाने के लिये आवेदन फाइल किया। केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक की रिपोर्ट भरतपुर के लोक विश्लेषक की रिपोर्ट से मेल नहीं खाती थी बल्कि, उसके विपरीत, यह पाया गया कि सैम्पल से अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर की मौजूदगी दर्शित होती थी। पिटीशनर की ओर से विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष यह आक्षेप उठाया गया कि उसका इस आधार पर अभियोजन कि सैम्पल से अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर की मौजूदगी दर्शित होती थी, अविधिमान्य था क्योंकि उस निमित्त अभियुक्त-पिटीशनर के विरुद्ध अभियोजन चलाये जाने के लिये कोई मंजूरी नहीं दी गई थी। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट पिटीशनर के इस तर्क से सहमत नहीं हुए और उन्होंने पिटीशनर के अभियोजन के संबंध में आगे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कार्यवाही की और मंजूरी न होने के कारण कार्यवाहियां समाप्त नहीं कीं। (तारीख 28 दिसम्बर 1982 का आदेश देखें) । इस आदेश के विरुद्ध ही प्रस्तुत पुनरीक्षण पिटीशन प्रस्तुत किया गया है।

2. पिटीशनर के विद्वान काउन्सल ने यह तर्क दिया है कि नमूना भरतपुर के लोक विश्लेषक को भेजा गया था और उन्होंने यह रिपोर्ट दी कि 'मिठाई' में सैक्रीन थी और इस प्रकार वह अपमिश्रित थी । किन्तु पिटीशनर के अनुरोध पर, जब नमूना केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक को भेजा गया, सैम्पल में कोई सैक्रीन नहीं पाई गई, किन्तु यह पाया गया कि उसमें अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर मौजूद था । अभियोजन के लिये मंजूरी सैक्रीन के संबंध में दी गई थी । मुख्य चिकित्सा और स्वास्थ्य अधिकारी ने पिटीशनर के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिये इस आधार पर कोई मंजूरी नहीं दी है कि उसमें अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर मौजूद था । इसके लिये मंजूरी के बिना पिटीशनर के विरुद्ध सैक्रीन से संबंधित मंजूरी के आधार पर अभियोजन नहीं चलाया जा सकता है । विद्वान काउन्सेल ने अपनी बहस के दौरान महाराष्ट्र राज्य बनाम निजामुद्दीन हाजी मोहम्मद खां[1] वाला मामला प्रोद्धृत किया है। इस मामले में मुम्बई उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया है :—

> "वह प्रश्न, जो श्री वाडकर ने उठाया है, अभियोजन के संस्थित किये जाने से पूर्व, सम्मति देने वाले प्राधिकारी द्वारा मामले के तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किये जाने के संबंध में है । धारा 20 के अधीन परिकल्पित सम्मति प्रायः मंजूरी की प्रकृति की होती है और स्पष्टतः, श्री वाडकर के कथनानुसार मंजूरी नहीं दी जा सकती है, जब तक कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष मामले के तथ्य प्रकट नहीं कर दिये जाते हैं । प्रस्तुत मामले में मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष प्रकट किये गये तथ्य, जिनके आधार पर मंजूरी दी गई थी, अभिगृहीत नमूने के अपमिश्रण के संबंध में थे, जैसा कि लोक विश्लेषक की रिपोर्ट से दर्शित होता है । अपमिश्रण, जो इस प्रकार दर्शित किया गया है, अधिनियम की धारा 2 के खण्डों

1. 1978 (2) एफ० ए० सी० पृ० 136.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में से एक में वर्णित विशेष प्रकार का अपमिश्रण होगा । केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक की रिपोर्ट के प्राप्त होने के पश्चात्, एक अन्य प्रकार प्रकृति का अपमिश्रण प्रकट किया गया । अतः, वह अपराध, जिससे अभियुक्त केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला की रिपोर्ट के आधार पर आरोपित होगा, उस अपराध से भिन्न होगा, जिससे वह लोक विश्लेषक की रिपोर्ट के आधार पर आरोपित होता । जब धारा 20 में यह कहा गया है कि संबंधित प्राधिकारी की लिखित सम्मति के बिना, अपराध की बाबत कोई भी अभियोजन संस्थित नहीं किया जायेगा, तो प्रस्तुत मामले में भिन्न अपराध के लिये, जो अब केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक की रिपोर्ट से उद्भूत होता है अभियोजन शुरु नहीं किया जा सकता है वह अधिनियम की धारा 20(1) के अधीन नये सिरे से दी गई सम्मति के अभाव में सहज ही अक्षम होगा । अपमिश्रण की प्रकृति एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जिस पर सम्मति देने वाले प्राधिकारी को गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये और उसके पश्चात् ही कोई निश्चय करना चाहिये । प्रस्तुत मामले में सम्मति देने वाले प्राधिकारी के समक्ष केवल लोक विश्लेषक की रिपोर्ट ही थी और लोक विश्लेषक की रिपोर्ट तथा प्रस्तुत किये गये तथ्यों के आधार पर ही राय कायम की गई, जो राय उस स्थिति में इस प्रकार कायम न की गई होती यदि केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला की रिपोर्ट भिन्न प्रकार का अपराध प्रकट करती, यद्यपि उसी अधिनियम के अधीन । मेरी राय में जहां केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला की रिपोर्ट से अपराध के भिन्न-भिन्न संघटक तत्त्व प्रकट होते हैं, सम्मति दिये जाने से पूर्व नये तथ्यों पर नये सिरे से विचार किया जाना आवश्यक होगा।"

3. इस संबंध में पिटीशनर की ओर से जो अन्य मामला प्रोद्धृत किया गया है, वह इलाहाबाद उच्च न्यायालय का है और वह **नगरपालिक बोर्ड, जौनपुर बनाम रघुनन्दन राम**[1] वाला मामला है । इस मामले में माननीय न्यायाधीशों ने यह मत व्यक्त किया है :—

> "तथापि, हमारी राय में प्रत्यर्थियों की दोषमुक्ति का आदेश इस संक्षिप्त आधार पर न्यायोचित है कि उस परिवाद में, जिसके

1 1979 (1) एफ० ए० सी० पृ० 247.

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आधार पर प्रत्यर्थी के विरुद्ध कार्यवाहियां संस्थित की गई थीं, जो एक-मात्र आधार लिया गया था वह अन्तर्वस्तु से संबंधित लोक विश्लेषक की रिपोर्ट का आधार था। हम यहां यह बताना उचित समझते हैं कि अधिनियम की धारा 20 के परन्तुक के अधीन, चिकित्सा और स्वास्थ्य अधिकारी को अपने परिवाद में लोक विश्लेषक की रिपोर्ट की प्रति संलग्न करनी थी। इसी आधार पर मजिस्ट्रेट ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध मामले का संज्ञान किया। इसके अतिरिक्त, यह ऐसा मामला था जिसका उत्तर देने के लिये मजिस्ट्रेट ने प्रत्यर्थी से अपेक्षा की थी। किन्तु निदेशक की रिपोर्ट को देखते हुए, यह आधार असफल रहा। यह बात ध्यान में रखते हुए कि अन्ततः एक बिल्कुल ही भिन्न आधार पर प्रत्यर्थी पर दायित्व अधिरोपित करने का प्रयास किया गया, हम यह महसूस करते हैं कि प्रत्यर्थी की इस आधार पर दोषसिद्धि कायम नहीं रखी जा सकती थी, कि अल्कोहल न्यूनतम विहित सीमा तक नहीं था, अन्त में हम यह बताना उचित समझते हैं कि धारा 20 में यह अनुध्यात किया गया है कि वह आधार, जिस पर अभियोजन शुरु किया गया है, परिवाद में ठीक-ठीक और स्पष्ट रूप से वर्णित किया जाना चाहिए, और चूंकि प्रस्तुत परिवाद में वर्णित आधार निदेशक की रिपोर्ट द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था, परिवाद में यथा वर्णित अभियोजन पक्ष का आधार निरर्थक हो गया।"

4. मैंने पिटीशनर के विद्वान काउन्सेल द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार कर लिया है और उनके द्वारा प्रोद्धृत विधि का भी परिशीलन कर लिया है। उनके द्वारा दिए गए तर्क में बल है। पिटीशनर के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए मंजूरी इस आधार पर दी गई थी कि उससे संगृहीत 'मिठाई' में सैक्रीन थी। भरतपुर के लोक विश्लेषक की रिपोर्ट उपाबंध I है। उसमें यह कहा गया है कि (मिठाई में) सैक्रीन मौजूद थी। इस रिपोर्ट में अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर के मौजूद होने का कोई उल्लेख नहीं है। भरतपुर के मुख्य चिकित्सा और स्वास्थ्य अधिकारी द्वारा दी गई मंजूरी उपाबंध-2 है और वह सैक्रीन के संबंध में है। केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला, गाजियाबाद की रिपोर्ट उपाबंध-3 है और इस रिपोर्ट में सैक्रीन का कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु परीक्षा किए जाने पर, निदेशक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ने यह राय व्यक्त की कि नमूने से अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर की मौजूदगी दर्शित होती है। इस प्रकार, इस प्रतिकूल रिपोर्ट के आधार पर, पिटीशनर के विरुद्ध अभियोजन चलाया जाना चाहिए था। केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक की रिपोर्ट मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष नहीं थी। अतः नमूने में पाए गए अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर के आधार पर अभियोजन के लिए मंजूरी देने वाले प्राधिकारी द्वारा विचार किए जाने का कोई प्रश्न ही नहीं था। मंजूरी, उपाबंध-2 सैक्रीन के संबंध में है और अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर की मौजूदगी होने के लिए कोई मंजूरी नहीं है। अतः वह अपराध, जिससे अभियुक्त केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला की रिपोर्ट के आधार पर आरोपित होगा, उस अपराध से भिन्न होगा, जिससे वह लोक विश्लेषक की रिपोर्ट के आधार पर आरोपित होता। इस प्रकार, मेरी यह राय है कि पिटीशनर के अभियोजन के लिए मंजूरी भिन्न है और यह मंजूरी विधिमान्य नहीं है। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने, इस तथ्य पर ध्यान दिए बिना ही कि समुचित मंजूरी नहीं दी गई है, परिवाद का गलत ढंग से संज्ञान किया है। मंजूरी देने वाले प्राधिकारी ने अननुज्ञात बेसिक कोलतार कलर के मौजूद होने के संबंध में अभियोजन के लिए मंजूरी देते समय अपनी विवेकबुद्धि का प्रयोग नहीं किया है।

5. अतः विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का तारीख 28 दिसम्बर, 1982 का आदेश कायम नहीं रखा जा सकता। समुचित मंजूरी के बिना पिटीशनर का अभियोजन विधिमान्य नहीं है। पुनरीक्षण पिटीशन स्वीकार किया जाता है। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का तारीख 28 दिसम्बर, 1982 का आदेश अपास्त किया जाता है और दाण्डिक मामला सं० 629/82 में विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष लम्बित कार्यवाहियां अभिखण्डित की जाती हैं।

अभियोजन पक्ष को, यदि वह ऐसा करना चाहे, समुचित मंजूरी प्राप्त करने के पश्चात् नए सिरे से परिवाद फाइल करने की स्वतंत्रता है।

पुनरीक्षण पिटीशन मंजूर किया गया।

नं०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नि० प० 1983 : राजस्थान—380

श्री राम बनाम हुआ बाई और अन्य
(Shree Ram *Vs.* Hua Bai & Others)

तारीख 5 मई, 1983

[न्या० एस० के० मल लोढ़ा और न्या० (कुमारी) के० भटनागर]

1. राजस्थान परिसर (किराए और बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम, 1950, धारा 13, 19-क और 19-घ सपठित संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882, धारा 112 तथा संविदा अधिनियम, 1872, धारा 23—उक्त धाराओं का समन्वित अर्थान्वियन यह है कि मकानमालिक उस फ़ायदे को अधित्यजित कर सकता है, जो अधिनियम की धारा 13(4) का अनुपालन न किए जाने के कारण उसे उद्भूत हो क्योंकि उससे किसी लोक नीति का उल्लंघन नहीं होता और उक्त धारा 13(4) मकान-मालिक के ही फ़ायदे और संरक्षण के लिए बनाई गई है।

2. संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882, धारा 112 सपठित राजस्थान परिसर (किराए और बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम, 1950 धारा 13, 19-क और 19-घ तथा संविदा अधिनियम 1872, धारा 23—उक्त धाराओं का समन्वित अर्थान्वयन यह है कि मकानमालिक उस फायदे को अधित्यजित कर सकता है, जो अधिनियम की धारा 13(4) का अनुपालन न किए जाने के कारण उसे उद्भूत हो क्योंकि उससे किसी लोक नीति का उल्लंघन नहीं होता और उक्त धारा 13 (4) मकानमालिक के ही फायदे और संरक्षण के लिए बनाई गई है।

3. संविदा अधिनियम, 1872 धारा 23 सपठित राजस्थान परिसर (किराए और बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम, 1950 धारा 13, 19-क और 19-घ तथा संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 धारा 112—उक्त धाराओं का समन्वित अर्थान्वयन यह है कि मकानमालिक उस फायदे को अधित्यजित कर सकता है, जो अधिनियम की धारा 13(4) का अनुपालन न किए जाने के कारण उसे उद्भूत हो क्योंकि उससे किसी लोक नीति का उल्लंघन नहीं होता है और उक्त धारा 13(4) मकानमालिक के ही फायदे और संरक्षण के लिए बनाई गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

4. शब्द और पद—अधित्यजन (वेवर)—अधित्यजन में किसी ज्ञात अधिकार अथवा वचन का स्वैच्छिक त्याग अथवा किसी कार्य से अभिव्यक्त या विवक्षित मुक्ति विवक्षित है। तब तक कोई भी अधित्यजन नहीं हो सकता है, जब तक कि संबंधित व्यक्ति को उसके अधिकार के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं दे दी जाती है और वह ऐसे अधिकार की पूरी जानकारी रखते हुए साशय उसका परित्याग नहीं करता है।

मूल वादी (मकान-मालिक) की मृत्यु द्वितीय अपील के लम्बित रहने के दौरान हो गई। अब उसके विधिक प्रतिनिधि प्रत्यर्थी सं० 1 से 7 हैं। प्रतिवादी किराएदार है। वादी ने एक मौखिक करार के अधीन, वादपत्र के पैरा 1 में वर्णित अपना मकान प्रतिवादी को किराए पर दिया, जो इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी है। उसने यह मकान 11 मास की अवधि के लिए उसके रहने के लिए किराए पर दिया था। वादी ने किराए की बकाया रकम और बेदखली के लिए वाद संस्थित किया। बेदखली, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित आधारों पर चाही गई—(1) 6 मास का किराया बकाया रहता था और इसलिए प्रतिवादी व्यतिक्रमी है, और (2) प्रतिवादी प्रश्नगत मकान का कब्जा, मकान-मालिक की इजाजत के बिना, अपने को दे कर उससे विलग हो गया था। प्रतिवादी ने लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया। यह अभिवचन किया गया कि उसने तारीख 1 फरवरी, 1968 के पश्चात् किराया नियमित रूप से निविदत्त किया था, किन्तु वादी ने वह स्वीकार नहीं किया। सुनवाई की प्रथम तारीख को प्रतिवादी ने राजस्थान परिसर (किराए और बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम की धारा 13 (4) के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया कि न्यायालय मकान-मालिक को संदेय किराए का अवधारण करे। किराए की दर के संबंध में कोई विवाद नहीं था और उसका संदाय केवल 31 जनवरी, 1968 तक ही किया गया था। विचारण न्यायालय ने देय किराए की रकम अवधारित की। उन्होंने प्रतिवादी को तारीख 27 फरवरी, 1969 तक वादी-मकान-मालिक को पूर्वोक्त रकम का संदाय करने या जमा करने का आदेश दिया। प्रतिवादी ने तारीख 27 फरवरी, 1969 को वादी को अवधारित रकम का संदाय किया और रसीद अभिप्राप्त की। विद्वान् मुन्सिफ ने वाद खारिज कर दिया और विवाद्यक सं० 2 और 3 वादी के विरुद्ध और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh

प्रतिवादी के पक्ष में विनिश्चित किए। अपील किए जाने पर, विद्वान् जिला न्यायाधीश ने पूर्वोक्त निष्कर्षों से असहमति व्यक्त की। प्रतिवादी ने अपील जन्य निर्णय के विरुद्ध इस न्यायालय में द्वितीय अपील फाइल की। संबद्ध प्रश्न के संबंध में उच्च न्यायालय के परस्पर विरोधी विनिश्चयों के कारण अपील खण्ड न्यायपीठ को निर्देशित की गई।

अभिनिर्धारित--अपील मंजूर की गई और मामला प्रतिप्रेषित किया गया।

अधित्यजन ऐसे अधिकार का परित्याग है, जिसे अधित्यजित करने के लिए सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है और अधित्यजन, जब तक कि वह निर्मुक्ति की कोटि में नहीं आता है, कुछ भी नहीं है। अधित्यजन से किसी अधिकार पर बल न देने का आशय ही द्योतित होता है, उससे अधिक कुछ नहीं और उसका अनुमान उपमति से किया जा सकता है या वह विवक्षित भी हो सकता है। अवैधता को अधित्यजित करने का करार लोक नीति के आधार पर शून्य है और वह अप्रवर्तनीय होगा। (पैरा 25)

अधित्यजन में किसी ज्ञात अधिकार अथवा वचन का स्वैच्छिक त्याग अथवा किसी कार्य से अभिव्यक्त या विवक्षित मुक्ति विवक्षित है। तब तक कोई भी अधित्यजन नहीं हो सकता है जब तक कि उस व्यक्ति को, जिसके बारे में यह कहा गया है कि उसने अधित्यजन कर दिया है, उसके अधिकार के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं दे दी जाती है और वह ऐसे अधिकार की पूरी जानकारी रखते हुए साशय उसका परित्याग नहीं करता है। (पैरा 27)

लोक नीति का सिद्धान्त यह है कि कोई भी न्यायालय ऐसे व्यक्ति को सहायता प्रदान नहीं करेगा, जो अपने वाद हेतुक को किसी अनैतिक या अवैध कार्य पर आधारित करता है। यदि वादहेतुक किसी अधम कार्य से या देश की विधि के अतिलंघन से उद्भूत हुआ प्रतीत होता है, तो न्यायालय यह कहता है कि वादी को सहायता प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं है। मकान-मालिक अपनी वैयक्तिक हैसियत में, अधिनियम की धारा 13 (4) के अनुपालन से अभिमुक्ति प्रदान कर सकता है और यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा करने से लोक अधिकार या लोक नीति का उल्लंघन होगा। जोध राज वाले मामले (1970 आर० एल० डब्ल्यू० 170) में अपनाया गया यह दृष्टिकोण कि प्रतिवादी द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.
अधिनियम की धारा 13 (4) का अनुपालन न किए जाने के विरुद्ध अधित्यजन या विबन्ध का अभिवचन नहीं किया जा सकता है, सही नहीं है। बुन्दू वाले मामले (1972 आर० एल० डब्ल्यू० 672) में अपनाया गया यह दृष्टिकोण, जिसका अनुसरण जगन्नाथ बनाम जानीराम वाले मामले में (1981 डब्ल्यू० एल० एन० 379) में किया गया, सही है कि मकान मालिक उस फायदे को अधित्यजित कर सकता है, जो अधिनियम की धारा 13 (4) का अनुपालन न किए जाने के कारण उसे उद्भूत हो।

जोध राज वाले मामले में अपनाया गया यह विपरीत मत कि धारा 13 (4) का अनुपालन न किए जाने के कारण मकान-मालिक को प्रोद्भूत होने वाले फायदे को अधित्यजित नहीं किया जा सकता है, उल्टा गया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि मकान-मालिक विधि के फायदे को अधित्यजित कर सकता है, जो अनन्यतः उसके फायदे के लिए है क्योंकि उससे किसी लोक नीति का उल्लंघन नहीं होता है। (पैरा 35)

यह पता करने के लिए कि क्या उस अधिकार का 'अधित्यजन' या परित्याग हुआ है, जो मकान-मालिक को धारा 13 (4) के उपबंधों का अनुपालन न किए जाने के कारण प्रतिवादी द्वारा कारित भंग से मकान-मालिक को प्रोद्भूत हुआ है, यह अवधारित करना आवश्यक है कि क्या, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, वादी के अधिकार का साशय त्याग या परित्याग हुआ है, क्योंकि अधित्यजन शुद्धतः विधि का प्रश्न नहीं है। यह विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न है और 'अधित्यजन' शब्द के अर्थ को ध्यान में रखते हुए इस प्रश्न पर न्यायिक विवेक-बुद्धि का प्रयोग करने के पश्चात् ही यह निष्कर्ष निकाला जाना है कि वादी ने विधि के उस फायदे या लाभ का अधित्यजन या परित्याग कर दिया है अथवा नहीं, जो, अधिनियम की धारा 13 (4) का अनुपालन न किए जाने के कारण उसे उपलब्ध है। (पैरा 36)

पैरा

[1979] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 621 : एम० पी० शुगर मिल्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (M.P. Sugar Mills *Vs.* State of U.P.); 27

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1976] [1976] 1 उम० नि० प० 1299-ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 2156 : गजानन बनाम एस० एच० पटेल (Gajanan *Vs.* S.H. Patel); 6

[1971] 1971 (1) एस० सी० सी० 619 : लच्छू मल बनाम राधे श्याम (Lachoo Mal *Vs.* Radhey Shyam); 28

[1959] ए० आई० आर० 1959 एस० सी० 689 : वामन श्रीनिवास बनाम आर० बी० एण्ड कं० (Waman Shriniwas *Vs.* R.B. & Co.); 25

[1959] ए०आई० आर० 1959 एस० सी० 149 : विश्वेश्वर नाथ बनाम आय-कर आयुक्त (Bashehar Nath *Vs.* I.T. Commr.) 26
का अवलम्ब लिया गया।

[1981] 1981 (2) आर० सी० जे० 513 : सोहनलाल बनाम अपर जिला न्यायाधीश, बुलन्दशहर (Sohanlal *Vs.* VIth Additional District Judge, Bulandshahar); 11

[1981] 1981 आर० एल० डब्ल्यू० 77 : केवलचन्द बनाम सोनामल (Kewalchand *Vs.* Sonamal); 35

[1981] 1981 आर०एल०डब्ल्यू० 469 : रतनलाल बनाम रामलाल (Ratanlal *Vs.* Ramlal); 35

[1981] 1981 डब्ल्यू० एल० एन० 379 : जगन्नाथ बनाम जानीराम (Jagannath *Vs.* Janiram); 35

[1977] 1977 (2) आर०सी०जे० 276 : धर्मचन्द बनाम कस्तूरीलाल (Dharamchand *Vs.* Kasturilal); 15

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1976] · 1976 डब्ल्यू० एल० एन० 332: सारेमल **बनाम** जोहूर मल (Saremal *Vs.* Juharmal); 6

[1972] 1972 आर० एल० डब्ल्यू० 672 : बुन्दू **बनाम** श्रीमती हशमत (Bundu *Vs.* Smt. Hasmat); 3

[1972] 1972 आर० सी० आर० 74 : हजारीलाल **बनाम** ज्ञान राम (Hazarilal *Vs.* Gian Ram); 9

[1971] 1971 आर० सी० जे० 492 : अब्दुल अजीज **बनाम** मोहम्मद याकूब (Abdul Aziz *Vs.* Mohd. Yaqub); 15

[1970] 1970 आर० सी० आर० 212 : आबू **बनाम** चक्किल (Abu *Vs.* Chekkyil); 14

[1970] 1970 आर०सी० आर० 349 : मेलासिंह **बनाम** हरकीरत सिंह (Melasingh *Vs.* Harkirat Singh); 10

[1969] 1969 आर० सी० आर० 38 : डा० रामस्वरूप **बनाम** श्रीमती सावित्री देवी (Dr. Ram Sarup *Vs.* Smt. Savitri Devi); 10

[1968] 1968 (2) एस० सी० जे० 441 : आसन होटल्स आफ इण्डिया लि० **बनाम** सरदार रणजीत सिंह (Asan Hotels of India Ltd. *Vs.* Sardar Ranjeet Singh); 26

[1966] 1966 सी० एल० जे० 361 : शिव प्रसाद जैन **बनाम** ब्रज लाल (Shiv Prasad Jain *Vs.* Brij Lal); 10

[1909] 1909 डब्ल्यू०एल० एन० 351 : भगवती प्रसाद बनाम द्वारका प्रसाद और एक अन्य (Bhagwati Prasad *Vs.* Dwarka Prasad and another); 8

से **सहमति** व्यक्त की गई।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1937] ए० आई० आर० 1937 प्रिवी कौंसिल 114 : मैरीटाइम इलैक्ट्रिक कं० बनाम जनरल गैरियंस लि० (Maritime Electric Co. *Vs*. General Gairians Ltd.) 28

से असहमति व्यक्त की गई।

[1970] 1970 आर० एल० डब्ल्यू० 170 : जोधराम बनाम सुलेमान (Jodhram *Vs*. Suleman) 3

उलट दिया गया।

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1974 की सिविल नियमित द्वितीय अपील सं० 68.

उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निर्देश।

अपीलार्थी की ओर से... श्री भगवती प्रसाद

प्रत्यर्थी की ओर से... सर्वश्री एम० सी० भण्डारी और एन० पी० गुप्त

न्यायालय का निर्णय न्या० एस० के० मल लोढ़ा ने दिया।

न्या० लोढ़ा :

यह द्वितीय अपील इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निर्देशित की गई है, क्योंकि उसमें विधि के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न अन्तर्वलित हैं।

2. आरम्भ में ही हम तात्त्विक तथ्यों का उल्लेख करना उचित समझते हैं। मूल वादी तुलसी राम था। उसकी मृत्यु द्वितीय अपील के लम्बित रहने के दौरान हो गई। अब उसके विधिक प्रतिनिधि हैं प्रत्यर्थी सं० 1 से 7 (श्रीमती हुआ बाई और 6 अन्य व्यक्ति)। श्री राम प्रतिवादी किरायेदार है। तुलसीराम (मकानमालिक) को इसमें इसके पश्चात 'वादी' कहा जाएगा। वादी ने एक मौखिक करार के अधीन, वादपत्र के पैरा 1 में वर्णित अपना मकान प्रतिवादी को किराए पर दिया, जो इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी है। उसने यह मकान 11 मास की अवधि के लिए तारीख 1 मार्च, 1963 को उसके रहने के लिए किराए पर दिया था। संदेय किराया प्रतिमास 30 रुपये था। वादी ने किराए की बकाया रकम और बेदखली के लिए तारीख 11 अक्तूबर, 1968 को वाद संस्थित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया। वह रकम, जिसका तारीख 30 सितम्बर, 1968 तक किराए और उपयोग तथा उपभोग के लिए नुकसानी के रूप में दावा किया गया 250 रुपये और सूचना व्यय के रूप में 5 रुपये थी। बेदखली, अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित आधारों पर चाही गई—(1) 6 मास का किराया बकाया रहता था, इसलिए प्रतिवादी व्यतिक्रमी है; और (2) प्रतिवादी प्रश्नगत मकान का कब्जा मकानमालिक की इजाजत के बिना, अपने भाई त्रिलोकीनाथ को देकर कब्जे से विलग हो गया था। प्रतिवादी ने तारीख 18 जनवरी, 1969 को लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया। यह अभिवचन किया गया कि उसने तारीख 1 फरवरी, 1968 के पश्चात् किराया नियमित रूप से निविदत्त किया था, किन्तु वादी ने वह स्वीकार नहीं किया। उसने प्रश्नगत मकान के त्रिलोकीनाथ को कब्जे के सौंपे जाने से संबंधित अधिकथन का प्रत्याख्यान किया। तारीख 26 नवम्बर, 1968 को, जो वाद में सुनवाई की प्रथम तारीख थी, प्रतिवादी ने राजस्थान परिसर (किराए और बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम (1950 का अधिनियम सं० 17), जो उस समय प्रवृत्त था (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा जाएगा), की धारा 13 (4) के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया। यहां यह उल्लेखनीय है कि इसमें पश्चात् अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के प्रति निर्देश उन उपबंधों के प्रति निर्देश होगा, जो सुसंगत समय पर प्रवृत्त थे। प्रतिवादी ने यह प्रार्थना की कि न्यायालय मकानमालिक को संदेय किराए का अवधारण करे। किराए की दर के संबंध में तथा इस सम्बन्ध में कि उसका संदाय केवल 31 जनवरी, 1968 तक ही किया गया था कोई विवाद नहीं था। बीकानेर के मुन्सिफ (विचार न्यायालय) ने प्रतिमास 30 रुपये की दर से तारीख 12 फरवरी, 1969 से देय किराए के रूप में 360 रुपये की रकम अवधारित की। उन्होंने प्रतिवादी को तारीख 27 फरवरी, 1969 तक वादी मकानमालिक को पूर्वोक्त रकम का संदाय करने या जमा करने का आदेश दिया। प्रतिवादी ने तारीख 27 फरवरी, 1969 को वादी को 360 रुपये का संदाय किया और उसने उस तारीख को रसीद अभिप्राप्त की, जो इस प्रकार है:—

"आज दिन श्री राम मुद्दालेह से मारफत अदालत मात्र 360 रुपये (केवल तीन सौ साठ रुपये) किराये के वसूल पा लिए हैं, जिसकी यहां रसीद लिख दी कि सनद रहे।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यहां यह उल्लेखनीय है कि मुन्सिफ ने, वादी को संदेय रकम का अवधारण करते समय-, न तो उस पर देय ब्याज को रकम संगणित की और न वाद का खर्चा ही संगणित किया, जैसा कि अधिनियम को धारा 13 (4) के अधीन अपेक्षित है । मुन्सिफ ने तारीख 12 फरवरी, 1969 कि आवश्यक विवाद्यक विरचित किए। हम विवाद्यक सं० 2 और 3 के प्रति निर्देश करना उचित समझते हैं, जो इस प्रकार हैं :—

"(2) क्या प्रतिवादी व्यतिक्रमी है ?

(3) क्या प्रतिवादी विवादग्रस्त परिसर का कब्जा अन्य व्यक्तियों को सौंप कर स्वयं उससे विलग हो गया है ?"

विद्वान मुन्सिफ ने तारीख 14 सितम्बर, 1971 को वाद खारिज कर दिया और विवाद्यक सं० 2 और 3 वादी के विरुद्ध और प्रतिवादी के पक्ष में विनिश्चित किए। उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया—(1) चूंकि वादी ने अवधारित किराए की रकम स्वीकर कर ली थी, अतः वह अधिनियम की धारा 13 (4) के अधीन फाइल किए गए आवेदन के चलने योग्य होने या उस आवेदन पर किए गए आदेश की वैधता को चुनौती देने से विबंधित था; और (2) मकान का कब्जा किसी अन्य व्यक्ति को नहीं दिया गया था।

3. अपील किए जाने पर, विद्वान् जिला न्यायाधीश ने, तारीख 3 नवम्बर, 1973 के अपने निर्णय द्वारा, पूर्वोक्त निष्कर्षों से असहमति व्यक्त की और यह अभिनिर्धारित किया—(1) प्रतिवादी अधिनियम की धारा 13(4) के कानूनी उपबंधों का अनुपालन न किए जाने के विरुद्ध अभित्यजन या विबंध का अभिवचन करने से प्रवारित था; और (2) प्रतिवादी मकानमालिक को इजाज़त के बिना, त्रिलोकीनाथ को मकान में रहने की मंजूरी देकर मकान के कब्जे से विलग हो गया है । प्रतिवादी ने अपीलजन्य निर्णय के विरुद्ध इस न्यायालय में द्वितीय अपील फाइल की। विद्वान न्यायाधीश के समक्ष यह निवेदन किया गया—(1) अधिनियम की धारा 13 (4) के अधीन फायदे का वादी द्वारा अधित्यजन किया जा सकता था। इस संबंध में **बुन्दू** बनाम **श्रीमती हशमत**[1] का अवलम्ब लिया गया, जिसमें **जोधराम** बनाम **सुलेमान**[2] वाले मामले में अपनाए गए मत से विपरीत

1. 1972 आर० एल० डब्ल्यू० 672.
2. 1970 आर० एल० डब्ल्यू० 170.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मत व्यक्त किया गया। अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात्, राजस्थान परिसर (किराए और बेदखली का नियंत्रण) (संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 13-क के अधीन कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया। विद्वान् न्यायाधीश ने यह राय व्यक्त की कि यह विनिश्चय करना आवश्यक है कि क्या वादी-मकानमालिक अधिनियम की धारा 13 (4) के अधीन आवेदन के चलने योग्य होने के तथ्य और उस आवेदन पर किए गए आदेश की वैधता को चुनौती देने से विवर्जित था, क्योंकि बुन्दू वाले मामले[1] और जोधराम वाले मामले[2] के बीच मतभेद था। विद्वान् न्यायाधीश ने यह राय भी व्यक्त की कि जहाँ तक विवादग्रस्त मकान के कब्जे से विलग होने से संबंधित मुद्दे का संबंध है, वह भी, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और वाद में पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य को देखते हुए, कठिनाई से मुक्त नहीं है। अतः उन्होंने यह निदेश किया कि अपील, वृहत्तर न्यायपीठ को निर्देशित किए जाने के लिए, कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति के समक्ष रखी जाए। इस प्रकार यह अपील खण्ड न्यायपीठ को निर्देशित की गई है।

4. अपील के लम्बित रहने के दौरान, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 के नियम 17 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया, जिसमें यह प्रार्थना की गई कि वादपत्र के पैरा 3 के उप-पैरा (2) के अन्तिम पांच शब्दों में "सबलेट किया" शब्द जोड़ कर, उक्त उप-पैरा में संशोधन करने की मंजूरी दी जाए। उसके समर्थन में वादी का शपथपत्र फाइल किया गया। खण्ड न्यायपीठ ने तारीख 20 अक्तूबर, 1976 को खर्चे के रूप में 25 रुपये की रकम के संदाय के अध्यधीन, संशोधन मंजूर किया, जैसा कि प्रार्थना की गई थी। यह आदेश भी किया गया कि वादपत्र में संशोधन किए जाने के पश्चात् प्रतिवादी लिखित कथन में पारिणामिक संशोधन कर सकता है। संशोधित वादपत्र तारीख 1 नवम्बर, 1976 को खर्चे के संदाय के पश्चात् फाइल किया गया। संशोधित उप-पैरा 2 में, संशोधनकारी शब्दों को रेखांकित किया गया है। संशोधित वादपत्र का संशोधित

---

[1] 1972 आर० एल० डब्ल्यू० 672.

[2] 1970 आर० एल० डब्ल्यू० 170.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिखित कथन भी तारीख 3 जनवरी, 1977 को फाइल किया गया। संशोधित लिखित कथन का उप-पैरा 2 इस प्रकार है :—

"(2) प्रतिवादी ने प्रीमिसेज का कब्जा कभी किसी को या अपने भाई श्री त्रिलोकीनाथ को बतौर सब टिनेन्ट नहीं दिया, न कभी प्रीमिसेज का कब्जा पार्ट विध बतौर सब-लेटिंग किया। प्रतिवादी की बदली बसिलसिले नौकरी होती रहती है लेकिन प्रतिवादी के स्त्री, बच्चों की पढ़ाई के लिहाज से बीकानेर शहर में ही जहां पढ़ाई की सुविधा से रखना पड़ता है और इसलिए प्रीमिसेज किराये पर लिया है व ले रखा है।"

5. हमने अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल श्री भगवती प्रसाद और प्रत्यर्थियों के विद्वान काउन्सेल, श्री एन० पी० गुप्त को, जो श्री एम० सी० भण्डारी की ओर से हाजिर हुए, विस्तारपूर्वक सुन लिया है।

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल, श्री भगवती प्रसाद ने यह दलील दी कि विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने उस समय विधि की गलती की, जब उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी अधिनियम की धारा 13 (1) (ङ) के अधीन कब्जे से विलग हो गया था, जो इस प्रकार है :—

"13. किराएदार की बेदखली—(1) किसी विधि या संविदा में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई भी न्यायालय, डिक्री के निष्पादन में या अन्यथा, मकानमालिक के पक्ष में किराएदार को बेदखल करते हुए, कोई डिक्री या आदेश पारित नहीं करेगा, यदि वह इस अधिनियम द्वारा अनुज्ञेय पूरी सीमा तक उसके लिए

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :—

"13. Eviction of tenant.—(1) Notwithstanding anything contained in any law or contract, no Court shall pass any decree, or make any order in favour of a landlord, whether in execution of a decree or otherwise, evicting the tenant so long as he is ready and willing to pay

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किराए का संदाय करने के लिए तत्पर और रजामन्द है, जब तक कि उसका यह समाधान नहीं हो जाता है कि—

(ङ) किराएदार ने, मकानमालिक की इजाज़त के बिना, सम्पूर्ण परिसर या उसके किसी भाग को समनुदेशित कर दिया है, उप-पट्टे पर दे दिया है या वह अन्यथा उसके कब्जे से विलग हो गया है; या"

विद्वान् जिला न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी ने यह साबित कर दिया है कि प्रतिवादी ने, प्रश्नगत मकान में अपने भाई त्रिलोकीनाथ को रख कर, किराएदारी की शर्त का उल्लंघन किया है और इस प्रकार वह डेढ़ मास से अधिक अवधि तक उसकी इजाज़त के बिना कब्जे से विलग रहा। इस बात के बारे में ठीक ही कोई विवाद नहीं उठाया गया है कि वाद के फाइल किए जाने के समय तक "कब्जे से विलग होना" या परिसर को उप-पट्टे पर देना बना रहना चाहिए। इस संबंध में **गजानन बनाम एस० एच० पटेल**[1] और **सारेमल बनाम जोहर मल**[2] वाले मामलों के प्रति निर्देश करना उचित होगा। प्रतिवादी का यह पक्षकथन है कि उसने उप-किराएदार के रूप में अपने भाई त्रिलोकीनाथ को कब्जा नहीं दिया है और न वह अन्यथा कब्जे से विलग ही हुआ है।

7. अब हम सर्वप्रथम अधिनियम की धारा 13 (1)(ङ) में यथा-प्रयुक्त "अन्यथा कब्जे से विलग हो गया है" पद पर विचार करेंगे।

8. **भगवती प्रसाद बनाम द्वारका प्रसाद और एक अन्य**[3] वाले मामले में यह प्रश्न उठा था कि क्या वादी पूर्णतः या भागतः दुकान के उप-पट्टे पर उठाए जाने या उसके कब्जे से विलग होने के प्रश्न पर सफल रहा है। विद्वान् न्यायाधीश ने यह राय व्यक्त की कि दोनों पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का अवलोकन करने से यह प्रकट हो जाता है कि

---

rent therefor to the full extent allowable by this Act, unless it is satisfied—

(e) that the tenant has assigned, sub-let or otherwise parted with the possession of, the whole or any part of the premises without the permission of the landlord; or"

(1976) 1 उम० नि० प० 1299=

[1] ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 2156.

[2] 1976 डब्ल्यू० एल० एन० 332.

[3] 1909 डब्ल्यू० एल० एन० 351.

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जी० नाम से ही दर्जी है और वह, बटन आदि लगाने के सिवाय, पूर्ण दर्जी का कार्य नहीं कर सकता है। प्रतिवादी का यह पक्षकथन था कि 'जी०' नामक व्यक्ति उसका सेवक था, किन्तु बाद में वह अपनी इस स्थिति पर स्थिर नहीं रहा और यह कथन किया कि वह उसकी दुकान पर आया करता था और बने-बनाए कपड़ों में बटन आदि लगाने का छोटा-मोटा काम किया करता था। विद्वान् न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि 'जी०' को अपनी आजीविका अर्जित करने में सहायता करने के लिए प्रतिवादी उसे प्रायः अपनी दुकान पर बैठ जाने दिया करता था, और यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादी ने 'जी०' को दुकान का कब्जा दे दिया था।

9. **हजारीलाल** बनाम **ज्ञान राम**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि कब्जे से विलग होने से संबंधित खण्ड का अवलम्ब लेने के लिए कब्जे के अधिकार से निर्निहित होना या उसका परित्याग करना आवश्यक है।

10. **मेलासिंह** बनाम **हरकीरत सिंह**[2] वाले मामले में पिटीशनर की ओर से यह दलील दी गई कि प्रथम प्रत्यर्थी उस समय भवन के कब्जे से विलग हो गया था, जब उसका दिल्ली स्थानान्तरण किया गया और द्वितीय प्रत्यर्थी का ही भवन पर नियंत्रण था और इसलिए यह उपधारणा की जानी चाहिए कि प्रथम प्रत्यर्थी ने पट्टे के अधीन अपने अधिकार द्वितीय प्रत्यर्थी को उप-पट्टे पर दे दिए थे या अन्तरित कर दिए थे। इसके समर्थन में **डा० राम स्वरूप** बनाम **श्रीमती सावित्री देवी**[3] वाले मामले का अवलम्ब लिया गया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया :—

> "....मैं यह समझता हूं कि उप-पट्टे पर परिसर देने, (परिसर में उप-किराएदार रखने) के मूल प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि परिसर पर वास्तविक नियंत्रण किसका है। यदि उप-किराएदार का परिसर पर वास्तविक कब्जा है, तो यह उप-किराएदारी होगी जब तक कि ऐसी व्यवस्था साबित नहीं कर दी जाती है, जिसके द्वारा उप-किराएदार किराएदार की अनुपस्थिति की अवधि के दौरान

---

1 1972 आर० सी० आर० 74.

2 1970 आर० सी० आर० 349.

3 1969 आर० सी० आर० 38.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किराएदार की ओर से कारिन्दा (केयरटेकर) मात्र है। यहां भी यही पक्षकथन किया गया। किन्तु यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया गया। जब कभी माकनमालिक यह साबित करता है कि किराएदार परिसर के कब्जे से पूर्णतः विलग हो गया है, तो यह सिद्ध करना किराएदार का कार्य है कि कब्जे से इस प्रकार विलग होने का कार्य ऐसी किसी व्यवस्था के अधीन किया गया है, जिसमें तथाकथित उप-किराएदार को परिसर का पूर्ण नियंत्रण का अन्तरित किया जाना अस्वीकार कर दिया गया है।"

ऊपर निर्दिष्ट **भेलासिंह वाले मामले**[1] में विद्वान् न्यायाधीश ने **डा० राम स्वरूप वाले मामले**[2] में किए गए विनिश्चय से सहमति व्यक्त की। तथापि, उनके अनुसार, मात्र कब्जे से विलग होना ही भवन को उप-किराए पर देने या पट्टे के अधीन किराएदार के अधिकारों के अन्तरित किए जाने का पर्याप्त सबूत नहीं है। फिर भी उन्होंने **शिव प्रसाद जैन** बनाम **ब्रज लाल**[3] वाले मामले के प्रति निर्देश किया, जिसमें विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने यह अभिनिर्धारित किया कि किराया (भाटक) नियंत्रक द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण उचित था और प्रस्तुत मामले में इससे अधिक कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता था कि किराएदार ने अपने निकट संबंध के कारण अनुज्ञप्तिधारी के रूप में अपने साले/बहनोई (ब्रदर-इन-लॉ) को मकान के एक भाग में रहने की मंजूरी दे दी थी।

11. **हजारीलाल** बनाम **ज्ञान राम**[4] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के खण्ड न्यायपीठ ने दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम, 1958 की धारा 14 (1) के परन्तुक (ख) में प्रयुक्त "अन्यथा कब्जे से विलग हुआ" पद पर विचार किया। यह मत व्यक्त किया गया :—

"निस्संदेह, 'कब्जे से विलग हुआ' पद, जैसा कि ऊपर वर्णित मामलों में अभिनिर्धारित किया गया है, विधिक कब्जे से विलग होने की पूर्व कल्पना करता है। जैसा कि हम समझते हैं, कब्जे से विलग होने से उन व्यक्तियों से भिन्न व्यक्तियों को कब्जा देना

1 1970 आर० सी० आर० 349.
2 1969 आर० सी० आर० 38.
3 1966 सी० एल० जे० 361.
4 1972 आर० सी० आर० 74.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिप्रेत है, जिन्हें पट्टे द्वारा कब्जा दिया गया है और "कब्जे से विलग होना" किराएदार द्वारा ही होना चाहिए। अन्य व्यक्तियों द्वारा उपयोग मात्र कब्जे से विलग होना नहीं है, जब तक कि किराएदार स्वयं विधिक कब्जा बनाए रखता है या, दूसरे शब्दों में, किराएदार द्वारा, स्वयं को न केवल वास्तविक कब्जे से बल्कि कब्जे के अधिकार से भी निर्निहित करके किसी अन्य व्यक्ति में कब्जा निहित किया ही जाना चाहिए। जब तक किराएदार अपने अतिथि से कब्जे का दावा करने का अधिकार बनाए रखता है, जो उसे किसी किराए या अन्य प्रतिफल का संदाय नहीं करता है, तब तक यह कहना संभव नहीं होगा कि किराएदार कब्जे से विलग हो गया है, यद्यपि अतिथि के ठहरने की अवधि के दौरान उसे किराएदारी वाले सम्पूर्ण परिसर या उसके किसी भाग का अनन्य उपयोग दे दिया गया है। यदि किराएदार को किसी भी समय अपने अतिथि के कब्जे में विघ्न डालने का अधिकार प्राप्त है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह किराएदारी वाले परिसर के कब्जे से विलग हो गया है। मात्र यह तथ्य कि स्वयं किराएदार का किराएदारी वाले परिसर पर वास्तविक कब्जा नहीं है, किसी भी अवधि के लिए परिसर से विलग होने की कोटि में नहीं आएगा, जब तक उसकी अनुपस्थिति के दौरान किराएदार को परिसर में वापस जाने और उस पर कब्जा करने का अधिकार प्राप्त है। उत्सर्जित सम्पूर्ण परिसर या उसके किसी भाग को उपयोग में लाने का विशेषाधिकार या अनुज्ञप्ति मात्र, जिस विशेषाधिकार या अनुज्ञप्ति को किसी भी समय किराएदार को स्वेच्छा से समाप्त किया जा सकता है, "कब्जे से विलग होना" की कोटि में नहीं आएगी। कब्जे से विलग होने के खण्ड के लागू किए जाने के लिए कब्जे के अधिकार से निर्निहित होना या उसको परित्याग करना आवश्यक है।"

सोहनलाल बनाम अपर जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर[1] वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने, उप-किराएदारी के प्रश्न पर विचार करते समय, यह राय व्यक्त की कि पक्षकारों का आशय

---

[1] 1981 (2) आर० सी० जे० 513.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ही वास्तविक कसौटी है और यदि सम्पत्ति में कोई हित अर्जित किया गया है तो वह पट्टा है और यह प्रश्न ही मार्गदर्शक तथ्य के रूप में कार्य करता है कि क्या सम्पति में हित के सृजन के पश्चात् सम्पति के किसी भाग पर अनन्य कब्जा संबंधित व्यक्ति को दे दिया गया है।

12. पूर्वोक्त विनिश्चयों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्य व्यक्ति द्वारा उपयोग मात्र कब्जे से विलग होना नहीं है, जब तक कि किराएदार, जिसे परिसर किराए पर दिया गया है, कानूनी कब्जा बनाए रखता है। यदि किराएदार पट्टाकृत परिसर को इस तथ्य के बावजूद अपने नियंत्रण में बनाए रखता है कि उसने किसी अन्य व्यक्ति को उसका उपयोग करने की अनुज्ञा दे दी है, यह नहीं कहा जा सकता है कि वह कब्जे से विलग हो गया है। यदि किराएदार को किसी भी समय उपयोग करने वाले व्यक्ति के कब्जे में विघ्न डालने का अधिकार प्राप्त है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह परिसर के कब्जे से विलग हो गया है। किराएदार द्वारा, स्वयं को न केवल वास्तविक कब्जे से बल्कि कब्जे के अधिकार से भी निर्निहित करके, किसी अन्य व्यक्ति में कब्जा निहित किया ही जाना चाहिए।

13. इस स्थल पर प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउन्सेल, श्री एन० पी० गुप्त की इस दलील पर विचार करना आवश्यक है कि लिखित कथन और प्रतिवादी की ओर से दिए गए साक्ष्य को देखते हुए, यह साबित करने का भार प्रतिवादी पर था कि वह कब्जे से विलग नहीं हुआ है क्योंकि उसने ऐसे कतिपय तथ्य स्वीकार किए हैं, जिनका कब्जे से विलग होने के प्रश्न से संबंध है और इस प्रकार उस आरम्भिक भार का, जो वादी पर था, वहन हो गया था और वह प्रतिवादी पर आ गया था। तथा वह यह साबित करके उस भार का उन्मोचन करने में असफल रहा कि वह विवादग्रस्त मकान के कब्जे से विलग नहीं हुआ है।

14. आबू बनाम चक्किल[1] वाले मामले में न्या० (तत्समय) वी० आर० कृष्ण अय्यर ने यह मत व्यक्त किया :—

> "अपरंच कानून के अधीन बेदखली के आधार को साबित करने का भार मकानमालिक पर है, न कि ऐसे आधारों को विफल करने या उनका खण्डन करने के लिए किराएदार

---
[1] 1970 आर० सी० आर० 212.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर। मैं पूर्णतः इस बात से सहमत हूं कि जब तक मकानमालिक ऐसा आधार साबित नहीं करता है, उसके पक्ष में कब्जे का आदेश नहीं दिया जा सकता है। किन्तु किसी तथ्य के सबूत की रीति साक्ष्य अधिनियम पर या, किसी भी हालत में, उसमें सन्निविष्ट सिद्धान्तों पर भी निर्भर होती है। यद्यपि पट्टा-धृति को उप-किराए पर देने या उसके अन्तरण को साबित करने का आरम्भिक भार मकानमालिक पर होता है, किन्तु जब एक बार न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि कब्जे का अन्तरण हुआ है, तो भार बदल कर किराएदार पर जा सकता है और किराएदार को, जिसकी विशेष जानकारी में उस रीति को स्पष्ट करने वाले तथ्य हैं, जिसमें ऐसा कब्जा अन्तरित किया गया है, उसके पश्चात् भार वहन करना होगा।"

15. अब्दुल अजीज बनाम **मुहम्मद याकूब**[1] वाले मामले में विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया :—

"मकानमालिक सदा ही अपने किराएदार और उप-पट्टेदारों (उप-किराएदारों) के बीच करारों के संबंध में परव्यक्ति होता है और साधारणतः उसे आवश्यक अनुमान द्वारा उप-किराएदारी सिद्ध करने के लिए उपस्थायी परिस्थितियों का अवलम्ब लेना होता है। बहुत कम मामलों में ही ऐसा होता है कि मकानमालिक की सम्मति के बिना, चाहे वह पट्टा विलेख के रूप में हो या उन साक्षियों के परिसाक्ष्य के रूप में हो, जिनकी उपस्थिति में उप-पट्टा सर्जित किया गया है, उप-किराएदारी का प्रत्यक्ष साक्ष्य मकानमालिक के हाथ में आ सकता है।"

धर्मचन्द बनाम **कस्तूरीलाल**[2] वाला मामला ईस्ट पंजाब अर्बन रेंट रेस्ट्रिक्शन ऐक्ट (पूर्वी पंजाब नगरीय भाटक निर्बन्धन अधिनियम), 1949 की धारा 13 के अधीन था, जिसमें मकानमालिक ने परिसर को उप-पट्टे (उप-किराए) पर देने के आधार पर किराएदार की बेदखली के लिए आवेदन किया। यह अभिनिर्धारित किया गया कि मकानमालिक

---

[1] 1971 आर० सी० जे० 492.

[2] 1977 (2) आर० सी० जे० 276.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को सबद्ध समय पर वर्तमान परिस्थितियों द्वारा यह दर्शित करना होगा कि किराएदार ने पट्टाकृत परिसर किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में खाली कर दिया है और उस अन्य व्यक्ति का उस पर अनन्य कब्जा है। उसके पश्चात् यह साबित करने का भार किराएदार पर आ जाता है कि उप-किराएदार का कब्जा किस हैसियत में उस परिसर पर है। अधिनियम की धारा 13 (1) की भाषा से यह दर्शित होता है कि न्यायालय का यह समाधान करने का कार्य मकानमालिक का है कि उसमें वर्णित एक या अधिक आधारों को साबित कर दिया गया है जिससे कि वह बेदखली की डिक्री के लिए हकदार हो सके।

16. अब हम "अन्यथा कब्जे से विलग होना" पद से संबंधित, पक्षकारों के अभिवचनों पर विचार करेंगे।

17. वादपत्र के पैरा 3(2) में, वादी ने यह अभिकथन किया है कि किराएदार ने अपने भाई त्रिलोकीनाथ को परिसर का कब्जा दे दिया है और उसके भाई को कब्जे का यह परिदान विधि के विरुद्ध और करार के विरुद्ध है और चूंकि वह उसकी सम्मति के बिना दिया गया है, अतः वह अन्य व्यक्तियों को कब्जा देकर स्वयं उससे विलग होने की कोटि में आता है। उसके उत्तर में प्रतिवादी ने यह कथन किया है कि वह किसी भी व्यक्ति को अपने परिसर का कब्जा देकर स्वयं उसके किसी भी भाग से विलग नहीं हुआ है, अपने भाई त्रिलोकीनाथ को तो कब्जा देने का कोई प्रश्न ही नहीं है और यह कि स्थानान्तरण के संबंध में, उसने उसके बच्चों की शिक्षा-सुविधा के लिए मकान किराए पर लिया था, जहां वे रहते हैं। इसके समर्थन में वादी ने साक्ष्य प्रस्तुत किया और प्रतिरक्षा में उसने यह कथन किया है कि प्रतिवादी ने त्रिलोकीनाथ को तारीख 1/2 फरवरी, 1968 को प्रश्नगत मकान को अपने अधिभोग में लेने की अनुज्ञा दे दी थी और वह जून, 1968 तक वहां रहा था; यह कि उसके बच्चे प्रश्नगत मकान में रहे; यह कि त्रिलोकीनाथ के जाने के पश्चात् प्रतिवादी के पुत्र तारीख 1/2 जुलाई को आए और उसकी पत्नी तारीख 10/11 जुलाई, 1968 को आई।

18. वादी साक्षी 2 भागीरथ ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रतिवादी बीकानेर के बाहर स्टेशन मास्टर था और उसकी पत्नी तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसके बच्चे समय-समय पर उसके पास आया करते थे और उसने गत 5–6 वर्षों से मकान में ताला नहीं देखा है और कम से कम कोई व्यक्ति तो उस मकान के अन्दर अवश्य ही रहता है। उसका कथन तारीख 23 सितम्बर, 1969 को अभिलिखित किया गया। वादी साक्षी 3 कस्तूरा का कथन तारीख 23 सितम्बर, 1969 को अभिलिखित किया गया। उसने यह स्वीकार किया है कि प्रतिवादी गत 2–3 वर्षों तक बीकानेर के बाहर रहा था और उसके बच्चे वहां रहते थे; वह सिवाय ग्रीष्मावकश के, यह नहीं जानता है कि बच्चे उसके साथ रहे थे या नहीं।

19. वादी साक्षी 4 हरि राम प्रश्नगत मकान के अन्दर नहीं गया है। वादी साक्षी 5 सत्य नारायण ने यह स्वीकार किया है कि सुसंगत समय पर एक कमरा प्रतिवादी के बच्चों के कब्जे में था।

20. प्रतिवादी साक्षी 1 श्री राम ने यह कथन किया है कि वह कब्जे से विलग नहीं हुआ है या उसने त्रिलोकीनाथ (उसका भाई) को अपने मकान का कोई भी भाग उप-किराए पर नहीं दिया है। बच्चों की देखभाल करने के उद्देश्य से उसके भाई और उसकी मां उस मकान में रहते थे, अन्यथा वे उसके पिता के साथ रहते हैं। उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसका भाई त्रिलोकीनाथ लगभग 1–1/2 मास तक मकान में रहा था। प्रतिवादी ने प्रतिवादी साक्षी 2 के रूप में त्रिलोकीनाथ की परीक्षा की है। उसने यह कथन किया है कि वह मकान में प्रतिवादी के उप-किराएदार के रूप में नहीं रहा था और वह लगभग 1–1/2 मास तक उस मकान में रहा और वह मकान उसके कब्जे में था और सामान्यतया उसके बच्चे लालगढ़ में रहते थे, किन्तु वे मकान में आया करते थे। प्रतिवादी की वस्तुएं (घरेलू सामान) उस मकान में रखी रहती थीं। पूर्वोक्त अभिवचनों और वादी तथा प्रतिवादी के साक्ष्य को देखते हुए, क्या यह कहा जा सकता है कि प्रतिवादी अधिनियम की धारा 13(ङ) के अर्थान्तर्गत मकान के कब्जे से विलग हो गया है?

21. यह साबित कर दिया गया है कि प्रतिवादी की वस्तुएं (घरेलू सामान) मकान में थीं। मकान का नियंत्रण प्रतिवादी के हाथ में था, क्योंकि बच्चे वहां रहा करते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादी ने स्वयं को मकान के कब्जे से निर्निहित कर लिया है और कब्जे का अधिकार प्रतिवादी के भाई त्रिलोकीनाथ का नहीं था। इन परिस्थितियों में, विद्वान् जिला न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की कि प्रतिवादी ने किराए-दारी के निबन्धन का भंग किया था, जब वह लगभग 1–1/2 मास तक वादी की सम्मति और अनुज्ञा के बिना प्रश्नगत मकान के कब्जे से विलग रहा। हम इस संबंध में विद्वान् जिला न्यायाधीश के निष्कर्ष से असहमति व्यक्त करते हैं और उसका कारण यह है कि यह निष्कर्ष अधिनियम की धारा 13(1)(क) के अधीन "अन्यथा कब्जे से विलग हुआ" के आवश्यक तत्वों की उपेक्षा करके निकाला गया है। चूंकि विद्वान् जिला न्यायाधीश ने इस प्रश्न पर गलत ढंग से विचार किया और स्वयं को दिग्भ्रान्त हो जाने दिया, अतः हमारी यह राय है कि उस साक्ष्य के आधार पर, जो वादी द्वारा दिया गया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादी उस मकान के कब्जे से विलग हो गया है, जो उसे किराए पर दिया गया था जिससे कि उसे बेदखल करने के लिए वादी को हकदार बनाया जा सके।

22. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउन्सेल श्री एन० पी० गुप्त ने यह दलील दी कि वादी को द्वितीय अपील में खण्ड न्यायपीठ द्वारा अपने वादपत्र में संशोधन करने की मंजूरी दे दी गई है, अतः उप-किराएदारी के अभिवाक् पर विचारण न्यायालय द्वारा नए सिरे से जांच किए जाने की आवश्यकता है। मूल वादपत्र में वादी ने यह पक्षकथन किया कि प्रतिवादी अपने भाई त्रिलोकीनाथ को परिसर का कब्जा देकर "अन्यथा कब्जे से विलग" हो गया है, जिसे हमने अस्वीकार कर दिया है और हमने यह अभिनिर्धारित किया है (कारण ऊपर दे दिए गए हैं) कि प्रश्नगत मकान का नियंत्रण प्रतिवादी के हाथ में था और त्रिलोकी-नाथ में कब्जा निहित नहीं किया गया था। इस मामले में, कब्जे से विलग होने के प्रश्न पर विचार करते समय, हमने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि त्रिलोकीनाथ का न तो अनन्य कब्जा था और न उसका सम्पूर्ण परिसर या उसके किसी भाग पर कोई नियंत्रण ही था। इन परिस्थितियों में, परिसर को उप-किराएदारी पर देने के प्रश्न का कोई महत्व नहीं है। हमारे लिए उप-किराएदारी के अभिवाक् को सम्मिलित करने वाले विवाद्यक को विरचित करने और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पक्षकारों को अपनी-अपनी दलीलों के समर्थन में साक्ष्य देने के लिए उन्हें अनुज्ञात करने के पश्चात् मामले को प्रतिप्रेषित करना या इस प्रश्न पर अधीनस्थ न्यायालयों से निष्कर्ष की अपेक्षा करना आवश्यक नहीं है। अतः श्री एन० पी० गुप्त की दलील अस्वीकार की जाती है।

23. अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या वादी मकान-मालिक ने व्यतिक्रम के आधार पर प्रतिवादी को बेदखल करने के अपने अधिकार को अधित्यजित कर दिया, जब उसने अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन आवेदन के चलने योग्य होने के तथ्य और उस पर किए गए आदेश की वैधता को चुनौती नहीं दी।

24. इससे "अधित्यजन" पद पर विचार करना आवश्यक हो गया है।

25. **वामन श्रीनिवास** बनाम **आर० बी० एण्ड कंपनी**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अधित्यजन ऐसे अधिकार का परित्याग है, जिसे अधित्यजित करने के लिए सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है और अधित्यजन, जब तक कि वह निर्मुक्ति की कोटि में नहीं आता है, कुछ भी नहीं है। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि अधित्यजन से किसी अधिकार पर बल न देने का आशय ही द्योतित होता है, उससे अधिक कुछ नहीं और उसका अनुमान उपमति से किया जा सकता है या वह विवक्षित भी हो सकता है। इस संबंध में यह मत भी व्यक्त किया गया कि अवैधता को अधित्यजित करने का करार लोकनीति के आधार पर शून्य है और वह अप्रवर्तनीय होगा।

26. **विश्वेश्वर नाथ** बनाम **आय-कर आयुक्त**[2] वाले मामले में न्या० एस० के० दास ने "अधित्यजन" के संबंध में निम्नलिखित मत व्यक्त किया:—

> "यह कहा गया है कि विधि में 'अधित्यजन' परेशानी में डालने वाला शब्द है। उसका सामान्यतया स्वीकृत अर्थ यह है कि 'अधित्यजन' गठित करने के लिए किसी ज्ञात अधिकार

---

[1] ए० आई० आर० 1959 एस० सी० 689.

[2] ए० आई० आर० 1959 एस० सी० 149.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का साशय त्याग या किसी ज्ञात, विद्यमान विधिक अधिकार का स्वैच्छिक त्याग या परित्याग होना चाहिए या ऐसा आचरण होना चाहिए, जिससे किसी ज्ञात अधिकार या विशेषाधिकार के त्याग का अनुमान निकालना उचित हो। अधित्यजन विबन्ध से इस अर्थ में भिन्न है कि वह संविदागत है और किसी अधिकार को छोड़ने (निर्मुक्त करने) या उसका प्राख्यान न करने का करार है, जब कि विबन्ध साक्ष्य का नियम है।"

आसन होटल्स ऑफ इंडिया लि० बनाम **सरदार रणजीत सिंह**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अधित्यजन में किसी ज्ञात अधिकार अथवा वचन का स्वैच्छिक त्याग अथवा किसी कार्य पालन से अभिव्यक्त या विवक्षित छूट विवक्षित है।

27. **एम० पी० शुगर मिल्स** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में यह अधिकथित किया गया :—

> 'अधित्यजन' से किसी अधिकार का परित्याग अभिप्रेत है और वह अभिव्यक्त हो सकता है या उसकी विवक्षा आचरण से की जा सकती है, किन्तु उसकी आधारभूत अध्यपेक्षा यह है कि वह सज्ञान एवं साशय कार्य होना चाहिए।"

उक्त मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि तब तक कोई भी अधित्यजन नहीं हो सकता है जब तक कि उस व्यक्ति को, जिसके बारे में यह कहा गया है कि उसने अधित्यजन कर दिया है, उसके अधिकार के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं दे दी जाती है और वह ऐसे अधिकार की पूरी जानकारी रखते हुए साशय उसका परित्याग नहीं करता है।

28. अधित्यजन के आवश्यक तत्वों को ध्यान में रखते हुए हमसे यह अवधारित करने की अपेक्षा की जाती है कि क्या अधिनियम की धारा 63 (4) के अपबन्धों का अनुपालन न किए जाने के कारण अधित्यजन का अभिवचन किया जा सकता है और उसे प्रभावी बनाया जा सकता है। **जोध राज वाले मामले**[3] में न्या० (तत्समय)

---

[1] 1968 (2) एस० सी० जे० 441.
[2] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 621.
[3] 1970 आर० एल० डब्ल्यू० 170.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सी० एम० लोढ़ा ने अधिनियम की धारा 13(4) पर विचार किया है। उक्त मामले में उन्होंने **मैरीटाइम इलैक्ट्रिक कं० जनरल गैरिवंस लि०**[1] वाले मामले पर विचार किया, जिसमें विबन्ध के प्रश्न पर विचार किया गया। **मैरीटाइम इलैक्ट्रिक कं० वाले**[1] उक्त मामले में यह मत व्यक्त किया गया :—

> "पब्लिक यूटीलिटीज ऐक्ट की धाराएं, जिन पर यहां आपत्ति उठाई गई है, जनता के एक वर्ग के फायदे के लिए अधिनियमित धाराएं हैं, अर्थात् सामान्य अर्थ में लोक नीति के आधारों पर। ऐसे मामले में—और माननीय न्यायाधीशों का उन कानूनों के संबंध में कोई राय व्यक्त करने का इरादा नहीं है, जो इस प्रवर्ग के अन्तर्गत नहीं हैं—जहां जैसे कि यहां, कानून द्वारा एक निश्चित प्रकार का कर्तव्य अधिरोपित किया गया है, जो किसी औपचारिकता (अरूपिकता) के पालन द्वारा परिहार्य नहीं है, उसी कार्य को करने के लिए, जिसे वादी करना चाहता है, प्रतिवादी के लिए उसे निवारित करने के लिए विबन्ध का वाक् करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। परिस्थितियों के परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकलना ही चाहिए कि विबन्ध केवल साक्ष्य का एक नियम ही है, जिस का अवलम्ब कतिपय विशेष परिस्थितियों में वाद के किसी पक्षकार द्वारा लिया जा सकता है; अतः ऐसे कानून का पालन करने की किसी बाध्यता से वादी को निर्मुक्त करने के लिए ऐसे मामले में उसका फायदा नहीं लिया जा सकता है और न उसके द्वारा प्रतिवादी को उसकी ओर से इस प्रकार की कानूनी बाध्यता से बचने के लिए समर्थ ही बनाया जा सकता है। यह बात तात्त्विक नहीं है कि वाद चलाने वाले पक्षकार के लिए बाध्यता दुर्भर है या नहीं। विधि का पालन करना प्रत्येक पक्षकार का कर्तव्य है।"

प्रिवी कौंसिल के पूर्वोक्त निर्णय के आधार पर विद्वान् न्यायाधीश ने **जोध राज वाले मामले**[2] में यह मत व्यक्त किया :—

> "अतः मेरा यह मत है कि प्रतिवादी अधिनियम की धारा 13(4) के कानूनी उपबंध का अनुपालन न किए जाने के

---
1 ए० आई० आर० 1937 प्रिवी कौंसिल 114.

1970 आर० एल० डब्ल्यू० 170

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विरुद्ध अधित्यजन या विबन्ध का सफलतापूर्वक अभिवचन नहीं कर सकता है। प्रतिवादी पर अगले मास की 15 तारीख तक, मासानुमास किराए का संदाय करने की कानूनी बाध्यता थी, यदि वह अधिनियम की धारा 13(4) और (7) का फायदा लेना चाहता था और चूंकि वह ऐसा करने में असफल रहा, अतः उसे अधिनियम की धारा 13(6) द्वारा उपबंधित परिणाम भुगतने ही होंगे।"

बुन्दू वाले मामले[1] में यह प्रश्न उद्भूत हुआ था कि क्या मकानमालिक उस फायदे का अधित्यजन कर सकता है, जो उसे अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन प्रोद्भूत हुआ है। यह अभिनिर्धारित किया गया कि अधिनियम के केवल उन उपबंधों के ही, जिनके द्वारा किराएदार को संरक्षण प्रदान किया गया है, उसके द्वारा अधित्यजित किए जाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है और अधिनियम के वे उपबंध, जिनके द्वारा मकानमालिक को फायदा दिया गया है, पश्चात्कथित द्वारा अधित्यजित किए जा सकते हैं। **बुन्दू वाले मामले**[1] में मु० न्या० जगत नारायण ने **जोध राज वाले मामले**[2] में अपनाए गए मत से सहमति व्यक्त नहीं की। उन्होंने **लच्छू मल बनाम राधे श्याम**[3] वाले मामले का अवलम्ब लिया।

29. "समपहरण का अधित्यजन" पद को सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम (1882 का अधिनियम सं० 4) की धारा 112 में परिभाषित किया गया है। सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 112 के प्रथम परन्तुक में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि इससे पूर्व कि सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 112 का अवलम्ब लिया जाए, यह अवश्य ही दर्शित किया जाना चाहिए कि पट्टाकर्ता के भंग की सूचना या जानकारी मिली है, जिसके परिणामस्वरूप समपहरण हुआ है। सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 112 में सन्निहित सिद्धान्त इस दलील पर विचार किए जाने के लिए उपयोगी हैं, जो हमारे समक्ष दी गई है।

---

[1] 1972 आर० एल० डब्ल्यू० 672.
[2] 1970 आर० एल० डब्ल्यू० 170.
[3] 1971 (1) एस० सी० सी० 619.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

30. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउन्सेल ने यह तर्क दिया है कि जहां तक अधिनियम की धारा 13(4) का अनुपालन न किये जाने का संबंध है, 'अधित्यजन' का प्रश्न इस कारण उद्भूत नहीं होता है कि धारा 13 द्वारा मकानमालिक को कोई अधिकार प्रदत्त नहीं किया गया है। उनके अनुसार, मकानमालिक की ओर से कोई भी कार्यवाही इस कारण अपेक्षित नहीं है कि धारा 13(4) के अनुपालन के परिणामों का धारा 13(6) में उपबंध किया गया है। अर्थात् बेदखली के विरुद्ध प्रतिरक्षा के अभिवाक् का अभिखण्डन ।

31. अधिनियम की धारा 13(4) और 13(6) सुसंगत समय पर इस प्रकार थीं :—

*"(4) उपधारा (1) के खण्ड (क) में वर्णित आधार पर बेदखली के वाद में, चाहे वह उक्त उपधारा में निर्दिष्ट अन्य आधारों में से किसी आधार के साथ हो या उसके बिना हो, किराएदार सुनवाई के प्रथम दिन या ऐसी तारीख को या उससे पूर्व जो न्यायालय द्वारा, उसके समक्ष किए गए आवेदन पर, इस निमित्त नियत की जाए, या दो मास से अनधिक ऐसे समय के भीतर, जो न्यायालय द्वारा बढ़ाया जाए, किराए की उस दर पर, जिस पर उसका अन्तिम बार संदाय किया गया था, उस अवधि के लिए, जिसके लिए किराएदार ने व्यतिक्रम किया हो, जिस अवधि के अन्तर्गत उस मास से पूर्ववती मास के अन्त तक उसकी पश्चातवर्ती अवधि भी सम्मिलित है, जिसमें निक्षेप या संदाय किया जाता है,

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :—

"(4). In a suit for eviction on the ground set forth in clause (a) of sub-section (1), with or without any of the other grounds referred to in that sub-section, the tenant shall, on the first day of hearing or on or before such date as the court may, on the application made to it, fix in this behalf, or within such time, not exceeding two months, as may be extended by the Court, deposit in court or pay to the landlord an amount calculated at the rate of rent at which it was last paid, for the period, for which the tenant may have made default including the period subsequent thereto upto the end of the month previous to that in which the deposit or payment is made together with

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संगणित रकम को ऐसी तारीख से, जब ऐसी कोई रकम संदेय थी, निक्षेप की तारीख तक 6 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से संगणित, ऐसी रकम पर व्याज सहित, न्यायालय में जमा करेगा या मकानमालिक को उसका संदाय करेगा और उसके पश्चात् उस दर पर किराए के समतुल्य राशि का हर मास निक्षेप करता रहेगा या संदाय करता रहेगा।

*   *   *   *   *

(6) यदि कोई किराएदार उसमें विनिर्दिष्ट तारीख को या समय के भीतर उपधारा (4) या उपधारा (5) में वर्णित रकम का निक्षेप करने या उसका संदाय करने में असफल रहता है, तो न्यायालय बेदखली के विरुद्ध प्रतिरक्षा के अभिवाक् के अभिखण्डन का आदेश करेगा और वाद की सुनवाई हेतु आगे कार्यवाही करने के लिए अग्रसर होगा।"

32. बेदखली के विरुद्ध प्रतिरक्षा के अभिवाक् के अभिखण्डन के पश्चात् विधि का फायदा उपलब्ध हो जाता है, जिसे मकानमालिक अधित्यजित कर सकता है। इस तर्क में कोई बल नहीं है और इसलिए उसे अस्वीकार किया जाता है।

33. इस स्थल पर हम अधिनियम की धारा 19 ख के संबंध में श्री एन० पी० गुप्त की इस दलील पर भी विचार करना उचित समझते हैं कि 'अधित्यजन' नहीं हो सकता है।

---

interest on such amount calculated at the rate of six per-cent per annum from the date when any such amount was payable upto the date of deposit and shall thereafter continue to deposit or pay, month by month a sum equivalent to the rent at that rate.

x   x   x   x   x

(6) If a tenant fails to deposit or pay any amount referred to in sub-section (4) or sub-section (5), on the date or within the time specified therein, the court shall order the defence against eviction to be struck out and shall proceed with the hearing of the suit."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिनियम की धारा 19घ इस प्रकार है:—

*"19-घ. व्यतिक्रम का अधित्यजन—जब परिसर के कब्जे के वापस लिए जाने के लिए न्यायालय में कोई कार्यवाही लम्बित नहीं हो, तो मकानमालिक द्वारा किराएदार से किराए के संदाय में व्यतिक्रम की अवधि की बाबत किराया स्वीकार किए जाने का तथ्य ऐसे व्यतिक्रम के अधित्यजन के रूप में प्रवर्तित होगा।"

धारा 19-घ के अनुसार, किराए के संदाय में व्यतिक्रम की अवधि की बाबत मकानमालिक द्वारा किराया स्वीकार किए जाने का तथ्य अधित्यजन के रूप में प्रवर्तित होगा, बशर्ते कि न्यायालय में कोई कार्यवाही लम्बित न हो। प्रत्यर्थी के विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि जब कोई कार्यवाही लम्बित है, 'अधित्यजन' नहीं हो सकता है। हमारी राय में, यह सही दृष्टिकोण नहीं है।

34. धारा 19-क किराएदार द्वारा किराए के निक्षेप के संबंध में है। उपधारा (1) के अनुसार, प्रत्येक किराएदार संविदा द्वारा नियत समय के भीतर या ऐसी संविदा के अभाव में, उस मास से, जिसके लिए किराया संदेय है, अगले मास की 15 तारीख तक किराए का संदाय करेगा। धारा 19-घ में केवल यह कहा गया कि उस स्थिति में अधित्यजन होगा यदि किराए के संदाय के संबंध में व्यतिक्रम होता है और यदि उसके द्वारा किराए के संदाय में व्यतिक्रम की अवधि के लिए मकानमालिक द्वारा किराया स्वीकार कर लिया जाता है, बशर्ते कि कोई कार्यवाही लम्बित नहीं है। धारा 19-घ के आधार पर, हम प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउन्सेल की इस दलील से सहमत होने में असमर्थ हैं कि इससे उनकी इस दलील का समर्थन होता है कि मकानमालिक द्वारा कोई अधित्यजन नहीं हो सकता है।

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है:—

"19-D. **Waiver of default.**—When there is no proceeding pending in the court for the recovery of possession of the premises, the acceptance of rent, in respect of the period of default in payment of rent, by the landlord from the tenant shall operate as a waiver of such default."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

35. विधि के फायदे का अधित्यजन लोकनीति के भी विरुद्ध नहीं है। संविदा अधिनियम की धारा 23 के प्रति निर्देश आवश्यक है, जो इस प्रकार है :—

> "23. कौन-से प्रतिफल और उद्देश्य विधिपूर्ण हैं और कौन-से नहीं—करार का प्रतिफल या उद्देश्य विधिपूर्ण है, सिवाय जबकि—वह विधि द्वारा निषिद्ध हो; अथवा
>
> वह ऐसी प्रकृति का हो कि यदि वह अनुज्ञात किया जाए तो वह किसी विधि के उपबंधों को विफल कर देगा; अथवा वह कपट-पूर्ण हो; अथवा
>
> उसमें किसी अन्य के शरीर या सम्पत्ति को क्षति अन्तर्वलित या विवक्षित हो; अथवा
>
> न्यायालय उसे अनैतिक या लोकनीति के विरुद्ध माने। इन दशाओं में से हर एक में करार का प्रतिफल या उद्देश्य विधि-विरुद्ध कहलाता है। हर एक करार, जिसका उद्देश्य या प्रतिफल विधिविरुद्ध हो, शून्य है।"

लोकनीति का सिद्धांत यह है कि कोई भी न्यायालय ऐसे व्यक्ति को सहायता प्रदान नहीं करेगा, जो अपने वादहेतुक को किसी अनैतिक या अवैध कार्य पर आधारित करता है। यदि वादहेतुक किसी अधम कार्य से या देश की विधि के अतिलंघन से उद्भूत हुआ प्रतीत होता है, तो न्यायालय यह कहता है कि वादी को सहायता प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं है। मकानमालिक, अपनी वैयक्तिक हैसियत में, अधिनियम की धारा 13(4) के अनुपालन से अभिमुक्ति प्रदान कर सकता है और यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा करने से लोक अधिकार या लोकनीति का उल्लघंन होगा। **लक्छूमल वाले मामले**[1] में यह विनिर्णय किया गया :—

> "साधारण सिद्धांत यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को किसी ऐसी विधि या नियम के फायदे को अधित्यजित करने या अधित्यजित करने के लिए सहमत होने का अधिकार प्राप्त है, जो उसी के उसकी प्राइवेट हैसियत में फायदे और संरक्षण के लिए बनाई गई हो और जिससे अभिमुक्ति किसी लोक अधिकार या लोकनीति का उल्लंघन किए बिना प्रदान की जा सकती है।"

[1] 1971 (1) एस० सी० सी० 619.

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हम में से एक न्यायाधीश (न्या० एस० के० मल लोढ़ा) ने **केवलचन्द बनाम सोनामल**[1] और **रत्नलाल बनाम रामलाल**[2] वाले मामलों में इस प्रश्न पर विचार किया है, हमारी राय में, **जोध राज वाले मामले**[3] में अपनाया गया यह दृष्टिकोण कि प्रतिवादी द्वारा अधिनियम की धारा 13(4) का अनुपालन न किए जाने के विरुद्ध अधित्यजन या विबन्ध का अभिवचन नहीं किया जा सकता है, सही नहीं है। **बुन्दू वाले मामले**[4] में अपनाया गया यह दृष्टिकोण, जिसका **जगन्नाथ बनाम जानीराम**[5] वाले मामले में अनुसरण किया गया, सही है कि मकानमालिक उस फ़ायदे को अधित्यजित कर सकता है, जो अधिनियम की धारा 13(4) का अनुपालन न किए जाने के कारण उसे उद्भूत हो। **जोध राज वाले मामले**[3] में अपनाया गया यह विपरीत मत कि धारा 13(4) का अनुपालन न किए जाने के कारण मकानमालिक को प्रोद्भूत होने वाले फायदे को अधित्यजित नहीं किया जा सकता है, उलटा जा रहा है। हम यह अभिनिर्धारित करते हैं, कि मकानमालिक विधि के फायदे को अधित्यजित कर सकता है, जो अनन्यतः उसके फायदे के लिए हैं, क्योंकि उससे किसी लोक नीति का उल्लघंन नहीं होता है।

36. यह पता करने के लिए कि क्या उस अधिकार का 'अधित्यजन' या परित्याग हुआ है, जो मकानमालिक को धारा 13(4) के उपबन्धों का अनुपालन न किए जाने के कारण प्रतिवादी द्वारा कारित भंग से प्रोद्भूत हुआ है, यह अवधारित करना आवश्यक है कि क्या, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, वादी के अधिकार का साशय त्याग या परित्याग हुआ है, क्योंकि अधित्यजन शुद्धतः विधि का प्रश्न नहीं है। यह विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न है और 'अधित्यजन' शब्द के अर्थ को ध्यान में रखते हुए, इस प्रश्न पर न्यायिक विवेकबुद्धि का प्रयोग करने के पश्चात् ही यह निष्कर्ष निकाला जाना है कि वादी ने विधि के उस फायदे या लाभ का अधित्यजन या परित्याग कर दिया है, अथवा नहीं, जो, अधिनियम की धारा 13(4) का अनुपालन न किए जाने के कारण उसे उपलब्ध है।

---

[1] 1981 आर० एल० डब्ल्यू० 77.
[2] 1981 आर० एल० डब्ल्यू० 469.
[3] 1970 आर० एल० डब्ल्यू० 170.
[4] 1972 आर० एल० डब्ल्यू० 672.
[5] 1981 डब्ल्यू० एल० एन० 379.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

37. यहां यह स्मरणीय है कि सुनवाई की प्रथम तारीख को, अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसमें अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन रकम के अवधारण के लिए प्रार्थना की गई थी। चूंकि किराए की दर और अवधि के संबंध में कोई विवाद नहीं था, अतः न्यायालय ने 360 रुपए की रकम अवधारित की। यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन रकम पर व्याज भी संगणित किया जाना था। विचारण न्यायालय ने व्याज की रकम संगणित नहीं की। तारीख 27 फरवरी, 1969 तक 360 रुपए की रकम का निक्षेप या संदाय किए जाने का आदेश किया गया। रसीद लेने के पश्चात् तारीख 27 फरवरी, 1969 को रकम का संदाय कर दिया गया। रसीद में यह कहा गया था कि 360 रुपये की राशि प्राप्त की गई है, जिसके लिए रसीद दी जा रही है। विद्वान् मुंसिफ ने, तारीख 14 सितम्बर, 1971 के अपने आदेश में, इस दलील की चर्चा की, जो वादी की ओर से दी गई थी, कि वह आवेदन, जो प्रतिवादी की ओर से फाइल किया गया था, गलत धारणा पर आधारित था और यदि ऐसे आवेदन पर किराए का अवधारण किया जाता है, तो अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन किराए की रकम संदत्त नहीं कही जा सकती है। विद्वान् मुन्सिफ ने यह राय व्यक्त की कि रकम अवधारित कर दी गई थी और वादी ने उसे स्वीकार कर लिया है और रसीद दे दी है इसलिए वादी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन आवेदन के चलने योग्य होने के तथ्य को चुनौती देने से विबंधित है। उनके अनुसार, वादी को रकम स्वीकार नहीं करनी चाहिए थी और बेदखली के विरुद्ध प्रतिरक्षा के अभिवाक् के अभिखण्डन के लिए प्रार्थना करनी चाहिए थी। उसके बजाय, उसने विचारण के लिए वाद में कार्यवाही होने दी और साक्ष्य प्रस्तुत किया गया। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि वह यह कहने के लिए हकदार नहीं है कि बेदखली के विरुद्ध प्रतिरक्षा का अभिवाक् अभिखण्डित किया जाना चाहिए और बेदखली की डिक्री पारित की जानी चाहिए। विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 3 नवम्बर, 1973 के अपने आदेश में यह अभिनिर्धारित किया कि विद्वान् मुंसिफ ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की है कि वादी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन फाइल किए गए आवेदन के चलने योग्य होने या उस पर किए गए आदेश की वैधता को चुनौती देने से विबंधित था। हम यह अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि मकानमालिक विधि का फायदा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधित्यजित कर सकता है, जो उसे अधिनियम की धारा, 13(4) का अनुपालन न किए जाने के कारण उपलब्ध था। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह निष्कर्ष निकाला ही जाना है और वह भी न्यायिक विवेकबुद्धि का प्रयोग करने के पश्चात्। निचले न्यायालयों के लिए ऊपर वर्णित कसौटियों को देखते हुए 'अधित्यजन' के प्रश्न को अवधारित करने का कोई अवसर नहीं था। इन परिस्थितियों में, बेदखली के लिए अधिनियम की धारा 13(4) का अनुपालन न किए जाने के कारण पारित डिक्री कायम नहीं रखी जा सकती है और अधित्यजन के प्रश्न का, इसमें ऊपर व्यक्त किए गए मत को ध्यान में रखते हुए, पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात विधि के अनुसार, नए सिरे से विनिश्चय किए जाने की आवश्यकता है।

38. उपर्युक्त विचार-विमर्श का परिणाम यह है :—

(क) प्रतिवादी प्रश्नगत मकान के कब्जे से विलग नहीं हुआ है जिससे कि वादी को उसे बेदखल करने के लिए हकदार बनाया जा सके;

(ख) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, परिसर को उप-किराए (उप-पट्टे) पर देने के प्रश्न का कोई महत्व नहीं है;

(ग) वादी-मकानमालिक अधिनियम की धारा 13(6) के फायदे को अधित्यजित कर सकता है जो अनन्यतः उसके फायदे के लिए है; और

(घ) 'अधित्यजन' विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न है और उसके संबंध में, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, न्यायिक विवेकबुद्धि का प्रयोग करने के पश्चात् ही कोई निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए।

39. पूर्वोक्त निष्कर्षों को देखते हुए, बेदखली की डिक्री कायम नहीं रखी जा सकती है।

40. परिणामतः अपील मंजूर की जाती है और बीकानेर के विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 3 नवम्बर, 1973 को पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है। मामला इस निदेश के साथ बीकानेर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के विद्वान् जिला न्यायाधीश को प्रतिप्रेषित किया जाता है कि वह अपील की उसकी मूल संख्या पर पुनः ग्रहण करेंगे और अधिनियम धारा 13(4) के अधीन आवेदन के चलने योग्य होने, उस पर किए गए आदेश की, वैधता और वादी मकानमालिक द्वारा रकम लेने के प्रभाव से संबंधित अधित्यजन के प्रश्न का, दोनों पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात् ऊपर व्यक्त किए गए मत को ध्यान में रखते हुए, विनिश्चय करेंगे। किन्तु यह स्पष्ट किया जाता है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश को पक्षकारों का साक्ष्य अभिलिखित करके, (यदि वे ऐसा करना चाहें) अधित्यजन के सीमित प्रश्न पर जांच करने का अधिकार होगा। धारा 13(1) (ङ) के अधीन मासिक किराए के संदाय में व्यतिक्रम के प्रश्न का अधित्यजन के प्रश्न पर निकाले गए निष्कर्ष के आधार पर विनिश्चय किया जाएगा। उसके पश्चात् अपील का, उनके द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के अनुसार, विनिश्चय किया जाएगा। इस अपील के खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जा रहा है।

अपील मंजूर की गई और
मामला प्रतिप्रेषित किया गया।

न०/बह्म

नि० प० 1983 : राजस्थान—411

दिल्ली क्लाथ एंड जनरल मिल्स कं० लि०, कोटा बनाम राजस्थान राज्य बिजली बोर्ड और अन्य (Delhi Cloth and General Mills Co. Ltd., Kota *Vs.* Rajasthan State Electricity Board and others)

तारीख 16 मई, 1983

[न्या एन० एम० कासलीवाल]

1. संविधान, 1950, अनुच्छेद 226—उक्त अनुच्छेद के अधीन उच्च न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलम्ब लेने का अधिकार ऐसी स्थिति में अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है, यदि पक्षकारों के बीच किए गए करारों से संविधान के किसी उपबंध का उल्लंघन होता है या उनसे नैसर्गिक न्याय के किसी सिद्धांत का उल्लंघन होता है या वे विधि के कानूनी उपबंधों के विरुद्ध हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

2. विद्युत् प्रदाय अधिनियम, 1948, धारा 49—ईंधन अधिभार सारतः अतिरिक्त या अधिक भार हैं और उसकी परिधि उसके नाम के कारण सीमित नहीं की जा सकती है। प्रत्येक अधिभार अतिरिक्त है और इस प्रकार वह टैरिफ का भाग है। यदि ईंधन अधिभार की दरें ईंधन समायोजन खंड में अन्तर्विष्ट फार्मूला के अनुसार निकाली जाती हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि बिजली बोर्ड को एक वर्ष के पश्चात् या अधिक से अधिक अगले वर्ष की समाप्ति से पूर्व ईंधन अधिभार की अंतिम दरें निकालने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। फार्मूला के प्रत्येक संघटक को तैयार करने में बोर्ड द्वारा प्रस्तुत विभिन्न आंकड़ों के संबंध में पूर्ण अभिलेख देखना न तो साध्य है और न वह लोक हित में ही है और न पिटीशनरों को ऐसा कोई विधिक अधिकार ही प्राप्त है। अपरंच, फार्मूला तैयार करने में किसी अवैध बाह्य विचारणा को सम्मिलित करने से पूर्ण कार्यवाही अवैध घोषित नहीं की जा सकती है। केवल उस बाह्य विचारणा का अपवर्जन ही पर्याप्त होगा।

बिजली के उत्पादन और प्रदाय के सुव्यवस्थीकरण का उपबंध करने के लिए और विद्युत् विकास के लिए सहायक (उपयोगी) उपाय करने के लिए, संसद् ने बिजली प्रदाय अधिनियम (एतद्पश्चात्-प्रदाय अधिनियम) अधिनियमित किया। प्रदाय अधिनियम की धारा 5 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में, राजस्थान सरकार ने राज्य बिजली बोर्ड गठित किया। प्रदाय अधिनियम की धारा 49 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में, बोर्ड समय-समय पर अपने उपभोक्ताओं को बिजली के प्रदाय के लिए टैरिफ विरचित करता रहा है। मई, 1974 से अप्रैल, 1977 तक और उसके बाद की अवधि के लिए बोर्ड द्वारा जारी किए गए सभी बिलों का संदाय जिनमें ईंधन अधिभार के प्रभार भी सम्मिलित हैं, नियमित रूप से किया गया। बिल-मास जून, 1981 के लिए प्राप्त बिल से यह दर्शित होता है कि ईंधन अधिभार की दर 0.40 से बढ़ा कर 0.63 पी/के डब्ल्यू एच कर दी गई, जिसमें "पुनरीक्षित अनन्तिम दर के अनुसार" टिप्पण अन्तर्विष्ट था। बिल-मास अगस्त, 1981 में भी ऐसा ही टिप्पण अन्तर्विष्ट था। उसने 0.40 पी/के डब्ल्यू एच की दर से अनन्तिम रूप से संदाय किया था, किन्तु उसे बाद में पुनरीक्षित कर दिया गया और पुनरीक्षित दरें अनन्तिम दरें ही थीं, न कि उनसे भिन्न। मई, 1974 से अप्रैल, 1977 तक की अवधि के दौरान जारी किए गए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बिलों में अन्तर्विष्ट इस व्यपदेशन के आधार पर कार्यवाही करते हुए कि उसमें उद्गृहीत ईंधन अधिभार अन्तिम था और आगे कोई समायोजन नहीं किया जा सकता था, पिटीशनर-कम्पनी ने अपनी मूल्य नीति और वित्त नीति विरचित की। आय-कर विवरणियां भी उसी आधार पर प्रस्तुत की गई और वे अब अनन्तिम हो गई हैं। बिल-मास नवम्बर, 1982 के लिए तारीख 12 नवम्बर, 1982 के बिल द्वारा बोर्ड ने, उक्त बिल में विनिर्दिष्ट रीति में दरों के अन्तिम अवधारण के परिणाम-स्वरूप, बिल-मास मई, 1974 से अप्रैल, 1977 तक के लिए ईंधन अधिभार के पुनरीक्षण के कारण 26,65,043 रुपये 48 पैसे की राशि का दावा किया है। पूर्वोक्त रकम का संदाय तारीख 27 नवम्बर, 1982 तक बैंक की मार्फत और तारीख 29 नवम्बर, 1982 तक नकद किया जाना अपेक्षित था और नियत समय से 7 दिन के भीतर बिल का संदाय न किए जाने की दशा में, भारतीय विद्युत् अधिनियम (इण्डियन इलैक्ट्रिसिटी ऐक्ट), 1910 की धारा 24(1) के अधीन बिजली का कनेक्शन काट दिया जाना था। सभी पिटीशनरों को इसी प्रकार के बिल जारी किए गए हैं, जिनमें ईंधन अधिभार की बकाया रकम का दावा किया गया है। चूंकि पिटीशनरों के पास कोई आनुकल्पिक उपाय नहीं रह गया था, अतः उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलम्ब लिया। ईंधन अधिभार के अधिकथित भूतलक्षी पुनरीक्षण के कारण की गई अवैध मांग को ही निम्नलिखित आधारों पर इन रिट पिटीशनों में चुनौती दी गई है, अर्थात् (1) ईंधन अधिभार का उद्ग्रहण स्वयं ईंधन समायोजन खण्ड के विरुद्ध है और उसे देखते हुए वह शक्ति बाह्य है; (2) ईंधन अधिभार के उद्ग्रहण से भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है; (3) बोर्ड की कार्यवाही से नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन होता है; और (4) बोर्ड भूतलक्षी प्रभाव से ईंधन अधिभार उद्गृहीत करने के लिए वचन-विबन्ध के सिद्धान्त के आधार पर विबंधित है।

अभिनिर्धारित—रिट पिटीशन भागतः मंजूर किए गए।

सुसंगत टैरिफ अधिसूचनाओं में अन्तर्विष्ट ईंधन समायोजन खण्ड में यह उपबंध किया गया है कि बोर्ड का विनिश्चय उपभोक्ताओं के लिए अन्तिम और आबद्धकर होगा। ऐसी वस्तुस्थिति में इन रिट पिटीशनों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में उठाए गए विवाद माध्यस्थम खण्ड की परिधि के अन्तर्गत नहीं आ सकते हैं। स्वीकृततः, बोर्ड राजस्थान राज्य में बिजली के प्रदाय के लिए एकाधिकार प्राप्त उपक्रम है और करारों में अन्तर्विष्ट खण्ड में, जिनके लिए उपभोक्ताओं को कोई विकल्प प्राप्त नहीं है, संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलम्ब लेने का अधिकार ऐसी स्थिति में अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है, यदि ऐसे करारों से संविधान के किसी भी उपबंध का उल्लंघन होता है या उनसे नैसर्गिक न्याय के किसी सिद्धान्त का उल्लंघन होता है या वे विधि के कानूनी उपबंधों के विरुद्ध हैं। आक्षेपित कार्यवाही द्वारा बोर्ड ने स्वयं बिजली प्रदाय के कनेक्शनों को काटने की धमकी दी है और इस प्रकार प्रत्यर्थी-बोर्ड द्वारा उठाई गई इस आपत्ति में कोई बल नहीं है कि पिटीशनरों को माध्यस्थम् खण्ड का अवलम्ब लेना चाहिए था और वे बोर्ड की आक्षेपित कार्यवाही को चुनौती देते हुए ये रिट पिटीशन फाइल नहीं कर सकते हैं।(पैरा 12)

जहां तक करार के खण्ड 20 का संबंध है, यह कहना पर्याप्त होगा कि वह भेजे गए बिलों के सही न होने से संबंधित विवादों और मतभेदों के निपटारे के संबंध में है। इस खण्ड के अधीन प्रयुक्त संदर्भ में 'बिल' से केवल करार के खण्ड 18 के अधीन भेजे गए मासिक बिल ही अभिप्रेत हो सकते हैं। चूंकि पिटीशनरों ने बिलों का पहले ही संदाय कर दिया है, अतः ऐसे बिलों के सही न होने के संबंध में कोई विवाद या मतभेद नहीं है। प्रस्तुत रिट पिटीशनों में विवाद ईंधन समायोजन खण्ड के अधीन मांगे गए ईंधन अधिभार की बकाया रकम के संबंध में ही है और यह विवाद किसी भी रीति में, पक्षकारों के बीच किए गए करार के खण्ड 20 के अन्तर्गत नहीं आता है। इस प्रकार प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा उठाई गई इस प्रारम्भिक आपत्ति में भी कोई बल नहीं है। (पैरा 13)।

यदि किसी अवधि के लिए यह मान भी लिया जाता है कि कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, तब भी उससे बोर्ड ऐसे समर्थकारी उपबंध के अधीन ईंधन अधिभार की अन्तिम दर की मांग करने से निर्हकित नहीं हो सकता है। बोर्ड द्वारा अन्तिम आधार पर निकाले गए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ईंधन अधिभार की मांग करने से पिटीशनरों के किसी विधिक या मूल अधिकार का उल्लंघन नहीं होता है। (पैरा 21)

करार के निबन्धनों और टैरिफों में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन पिटीशनर अन्तिम दर पर ईंधन अधिभार का संदाय करने के लिए आबद्ध थे और इस बात का कोई प्रश्न नहीं है कि ईंधन अधिभार प्रभारित करने से किसी भी प्रकार पिटीशनरों के व्यवसाय में अड़चन हो सकती है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि उसके परिणामस्वरूप फायदों में कमी हो सकती है। जहां तक ईंधन अधिभार के उद्ग्रहण का संबंध है, पिटीशनरों ने न तो उसके बारे में कोई विवाद उठाया है और न उसे चुनौती ही दी है। ईंधन अधिभार सारतः अतिरिक्त या अधिक भार है और उसकी परिधि उसके नाम के कारण सीमित नहीं की जा सकती है। प्रत्येक अधिभार अतिरिक्त प्रभार है और इस प्रकार वह टैरिफ का भाग है। इस मामले में समय संविदा के पालन का मर्म नहीं था और यदि वर्ष के अन्त में ईंधन अधिभार को अन्तिम दर न निकालने के लिए ठोस या पर्याप्त कारण दर्शित नहीं किया गया था, तो वह बना रहेगा जब तक कि परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं हो जाता है। किन्तु प्रस्तुत मामलों में यह नहीं कहा जा सकता है कि बोर्ड ने ईंधन समायोजन खण्ड में विनिर्दिष्ट रीति और ढंग में अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं किया था। यह तर्क पिटीशनरों को उस स्थिति में उपलब्ध हो सकता था, यदि ईंधन अधिभार की अन्तिम दरें उक्त खण्ड में अन्तर्विष्ट फार्मूला के अनुसार नहीं निकाली जातीं। अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि बोर्ड को एक वर्ष के पश्चात् या अधिक से अधिक अगले वर्ष की समाप्ति से पूर्व ईंधन अधिभार की अन्तिम दरें निकालने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं थी। (पैरा 22)

फार्मूला के प्रत्येक संघटक को तैयार करने में बोर्ड द्वारा प्रस्तुत विभिन्न आंकड़ों के संबंध में पूर्व अभिलेख देखना न तो समीचीन है और न वह लोक हित में ही है और न पिटीशनरों का ऐसा कोई विधिक अधिकार ही है। इस संबंध में पिटीशनरों को उपलब्ध एकमात्र अधिकार यह आपत्ति करना है कि फार्मूला तैयार करने में कोई भी बाह्य विषय सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। फार्मूला तैयार करने के लिए बोर्ड द्वारा दिए गए विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्याज का तत्त्व भी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्मिलित किया गया है। न तो टैरिफों में ईंधन समायोजन खण्ड के अधीन दिए गए फार्मूला द्वारा बोर्ड को ईंधन अधिभार की अन्तिम दरें निकालते समय किसी प्रकार के ब्याज को सम्मिलित करने के लिए ही सशक्त किया गया है और न प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउन्सेल विधि का ऐसा कोई उपबन्ध या प्राधिकार ही दर्शित करने में समर्थ हुए, जिसके अधीन पिटीशनरों से ऐसे ब्याज का दावा किया जा सकता है। फार्मुला तैयार करने में ब्याज का सम्मिलित किया जाना मात्र एक बाह्य विचारणा है, जो अवैध है और अभिखण्डनीय है। पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल की इस दलील में कोई बल नहीं है कि केवल ब्याज के सम्मिलित किए जाने के तथ्य को देखते हुए ही, बोर्ड द्वारा की गई सम्पूर्ण कार्यवाही अवैध घोषित कर दी जानी चाहिए और केवल इस आधार पर ही सभी अधिसूचनाएं अभिखण्डित कर दी जानी चाहिए। (पैरा 25)

नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त का प्रश्न प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। पिटीशनरों को वैयक्तिक सुनवाई का अवसर देने के लिए न तो किसी विधि के अधीन और न ही टैरिफों में कोई उपबन्ध किया गया है। स्वयं ईंधन समायोजन खण्ड के उपबन्धों में यह उल्लेख किया गया है कि बोर्ड का विनिश्चय उपभोक्ताओं के लिए अन्तिम और आबद्धकर होगा। ऐसे मामले में, जिसमें बोर्ड ऐसे फार्मूला के आधार पर ईंधन अधिभार निकालता है, जो पहले ही टैरिफ में अन्तर्विष्ट है, प्रत्येक उपभोक्ता को पहले ही इस बात की जानकारी रहती है कि वह इस टैरिफ में दिए गए फार्मूला के आधार पर निकाला जाएगा। किन्तु, जब अनेक वर्षों के लिए भूतलक्षी प्रभाव से ऐसी मांग की जाती है और दायित्व कई लाख रुपये तक पहुंच जाता है, तो बोर्ड का यह कर्त्तव्य है कि वह कम से कम फार्मूला के प्रत्येक संघटक की संगणना के लिए आंकड़े दे। उपभोक्ताओं को ऐसी सूचना न देने में न तो लोक नीति का कोई प्रश्न अन्तर्वलित है और न उसमें मर्यादा की ही कोई बात अन्तर्वलित है, यदि उसकी बोर्ड से मांग की जाती है। संविदा की सामान्य विधि के सिद्धान्तों के अधीन भी, यदि कोई क्रेता विक्रेता द्वारा निकाली गई माल की कीमत के विवरण चाहता है, तो वह उसे प्राप्त करने का हकदार है। इन मामलों में भी, जब न्यायालय में संगणनाएं दी गई थीं, यह प्रकट किया गया कि ईंधन अधिभार की अन्तिम दर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निकालने में ब्याज गलत ढंग से प्रभारित किया गया था। इस अनावश्यक मुकदमेबाजी से कदाचित् बचा जा सकता था, यदि उपभोक्ताओं को पहले से ही सूचना दे दी जाती। जो भी हो, नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त के भंग का यह आधार इस न्यायालय के समक्ष बहस के दौरान ईंधन अधिभार की संगणनाएं प्रदत्त कर दिए जाने के पश्चात् समाप्त हो गया है। (पैरा 26)

इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, वचन या साम्या निबन्ध का कोई प्रश्न उद्भूत नहीं होता। प्रत्यर्थी के आचरण के कारण किसी भी रीति में पिटीशनरों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। ईंधन अधिभार का संदाय करने का दायित्व टैरिफों में अन्तर्विष्ट ईंधन समायोजन खण्ड के अधीन उद्भूत होता है और यह प्रश्न ईंधन अधिभार को अन्तिम दरों के निकाले जाने से संबंधित है तथा इस मामले में विबन्ध का कोई प्रश्न उद्भूत नहीं होता है। (पैरा 27)

ईंधन अधिभार की अन्तिम दरें निकालने में ब्याज के तत्त्व को अपवर्जित किया जाना होगा और फार्मुला तैयार करने में ब्याज अपवर्जित करके संगणनाएं नए सिरे से की जानी होंगी। बोर्ड ब्याज की रकम अपवर्जित करने के पश्चात् रकम संगणित करके पिटीशनरों को नए बिल देगा। (पैरा 28)

		पैरा
[1976]	ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 127 : मैसर्स बिसरा स्टोन लाइम कं० लि० **बनाम** उड़ीसा स्टेट इलैक्ट्रिसिटी बोर्ड और एक अन्य (M/s. Bisra Stone Lime Co. Ltd. *Vs.* Orissa State Electricity Board and another);	22
[1970]	[1970] 3 उम० नि० प० 75 = ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1864 : नजीरिया मोटर सर्विस **बनाम** आन्ध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य (Nazeeria Motor Service *Vs.* State of Andhra Pradesh and another);	22
[1963]	ए० आई० आर० 1963 एस०सी० 1405 : एम० सत्यनारायण **बनाम** जी० वेल्लोजी राव और अन्य (M. Satyanarayana *Vs.* G. Velloji Rao and others);	21

का अवलम्ब लिया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1972] [1972] 3 उम० नि० प० नि० सा० 31=ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 2563 : सहायक कलक्टर, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, कलकत्ता बनाम नेशनल टुबैको कम्पनी आफ इण्डिया लि० (Assistant Collector of Central Excise, Calcutta *Vs.* National Tobacco Co. of India Ltd.); 22

[1936] ए० आई० आर० 1936 प्रिवी कौंसिल 253 : नजीर अहमद बनाम किंग एम्परर (Nazir Ahmad *Vs.* King Emperor) 22

से प्रभेद बतलाया गया।

[1983] ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 130 : पी० एस० नकारा और अन्य बनाम भारत संघ (P. S. Nakara and Ors. *Vs.* Union of India); 23

[1981] [1981] 3 उम० नि० प० 935=ए० आई० आर० 1981 एस०सी० 136 : एस०एल० कपूर बनाम जगमोहन और अन्य (S. L. Kapoor *Vs.* Jagamohan & others); 26

[1981] [1981] 2 उम० नि० प० 908=ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1992 : कस्तूरी लाल लक्ष्मी रेड्डी (मैसर्स) बनाम जम्मू कश्मीर राज्य और एक अन्य (M/s. Kasturi Lal Lakshmi Reddy *Vs.* The State of Jammu & Kashmir and another); 23

[1980] [1980] 2 उम० नि० प० 961=ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 1628 : रमण दया राम शेट्टी बनाम भारत का अन्तरराष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण और अन्य (Ramana Dayaram Shetty *Vs.* The International Airport Authority of India and others); 23

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1979] [1979] 1 उम० नि० प० 243=ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 597 : श्रीमती मेनका गांधी बनाम भारत संघ और एक अन्य (Smt. Meneka Gandhi *Vs.* Union of India and another); 23

[1975] [1975] 1 उम० नि० प० 578=ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 460 : सरस्वती इण्डस्ट्रियल सिंडीकेट लि० आदि बनाम भारत संघ (Saraswati Industrial Syndicate Ltd. etc. *Vs.* Union of India); 24

[1972] [1972] 2 उम० नि० प० 541=ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 896 : दाउद अहमद बनाम जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद और अन्य (Daud Ahmad *Vs.* The District Magistrate Allahabad and others); 26

[1970] [1970] 2 उम नि० प० 319=ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 129 : मैसर्स ब्रजलाल मणिलाल एण्ड कं० और एक अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य (M/s Vrajlal Manilal and Co. and another *Vs.* State of Madhya Pradesh and others); 23

[1970] [1970] 2 उम० नि०प० 389=ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 150 : ए० के० केराइपक और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (A. K. Kraipak and others *Vs.* Union of India and others); 26

[1967] ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 1269 : उड़ीसा राज्य बनाम डा० (कु०) बीनामणि देई और अन्य [State of Orissa *Vs.* Dr. (Miss) Binamani Dai and others]; 26

निर्दिष्ट किए गए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आरम्भिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 1982 का सिविल रिट पिटीशन सं० 1862, जिसके साथ 46 अन्य रिट पिटीशन भी सुने गए

संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट पिटीशन।

पिटीशनरों की ओर से ... सर्वश्री पी० आर० मृदुल, एल० एल० शर्मा, के० के० महर्षि, वी० एस० दवे, पारस कुहाद, (श्रीमती) पी० एस० श्राफ, जी० एस० सिंघवी, हेमन्त शर्मा, विनोद त्यागी, अरुण भण्डारी, पाना चन्द जैन, प्रेम असोपा, और ए० के० शर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से ... सर्वश्री के० पाराशरन्, एस० एम० जैन, एच० पी० गुप्त एवं जी० सी० गर्ग

न्या० एन० एम० कासलीवाल :

चूंकि, इन 47 रिट पिटीशनों में, तथ्य और विधि के सामान्य (एक जैसे) प्रश्न अन्तर्वलित हैं, अतः उनका निपटारा एक ही आदेश द्वारा किया जा रहा है।

2. इन मामलों के तथ्यों और उनमें उठाए गए विवादों को समझने के लिए, मैं, 1982 के एकल न्यायपीठ सिविल रिट पिटीशन सं० 1862 में यथा-अन्तर्विष्ट अभिवचनों और उपबंधों के प्रति निर्देश करूंगा। पिटीशनरों का यह पक्षकथन है कि बिजली के उत्पादन और प्रदाय के सुव्यवस्थीकरण का उपबंध करने के लिए और वैद्युत विकास के लिए सहायक (उपयोगी) उपाय करने के लिए, संसद् ने बिजली प्रदाय अधिनियम (इलैक्ट्रिसिटी सप्लाई ऐक्ट) 1948 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'प्रदाय अधिनियम' कहा गया है) अधिनियमित किया। प्रदाय अधिनियम की धारा 5 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में, राजस्थान सरकार ने राज्य बिजली बोर्ड (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'बोर्ड' कहा गया है) गठित किया। प्रदाय अधिनियम की धारा 49 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में, बोर्ड समय-समय पर अपने उपभोक्ताओं को बिजली के प्रदाय के लिए टैरिफ विरचित करता रहा। बोर्ड ने सर्वप्रथम तारीख 18 मार्च, 1964 की अधिसूचना द्वारा साधारण टैरिफ आरम्भ की, जिसमें ईंधन समायोजन खण्ड अन्तर्विष्ट था। इस टैरिफ में तारीख 6 जुलाई, 1966 और 6 अप्रैल, 1969 को उपान्तरण किया गया,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किन्तु ईंधन समायोजन खण्ड में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। टैरिफ में पुन: तारीख 28 मई, 1974 को उपान्तरण किया गया और इस बार ईंधन समायोजन खण्ड में भी उपान्तरण किया गया। उपाबंध 1 तारीख 28 मई, 1974 की अधिसूचना में यथा-अन्तर्विष्ट, ईंधन समायोजन खण्ड के उद्धरण के रूप में फाइल किया गया है। बाद में, तारीख 4 नवम्बर, 1976 की अधिसूचना द्वारा, बोर्ड ने एक नई टैरिफ, अर्थात् बिजली के प्रदाय के लिए टैरिफ, 1976, विरचित की। इस टैरिफ में भी वैसा ही ईंधन समायोजन खण्ड अन्तर्विष्ट था, सिवाय इसके कि भारी जल अधिभार अतिरिक्त रूप से सम्मिलित कर लिया गया। उक्त खण्ड के अधीन, हाई टेंशन टैरिफ शैड्यूल एलपी/एचटी-1 के अधीन प्रति यूनिट दर में ईंधन अधिभार की वार्षिक दर के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता था, जो उसमें विहित फार्मूला के अनुसार निकाली जानी थी। तारीख 4 नवम्बर, 1976 की अधिसूचना में ईंधन समायोजन खण्ड का उद्धरण उपाबद्ध है, जो उपाबंध 2 के रूप में चिह्नित किया गया है। बाद में, तारीख 30 दिसम्बर, 1976 की अधिसूचना द्वारा टैरिफ पुन: उपान्तरित की गई, किन्तु यहां हमारा उससे कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि ईंधन समायोजन खण्ड में कोई भी परिवर्तन नहीं किया गया था। पुन: बिजली के प्रदाय के लिए टैरिफ, 1976 को तारीख 7 जुलाई, 1981 को अधिसूचना द्वारा अधिक्रान्त (अतिष्ठित) कर दिया गया, जिसके द्वारा एक नई टैरिफ, अर्थात् बिजली के प्रदाय के लिए टैरिफ, 1981 विरचित की गई। उक्त टैरिफ में भी बड़े औद्योगिक बिजली (लोड) उपभोक्ताओं के लिए ईंधन समायोजन खण्ड अन्तर्विष्ट है, और ईंधन समायोजन खण्ड की बाबत एकमात्र उपान्तरण बदरपुर थरमल पावर स्टेशन द्वारा बोर्ड को प्रदत्त विद्युत् के संबंध में था। वर्ष 1981 की टैरिफ में अन्तर्विष्ट ईंधन समायोजन खण्ड का उद्धरण उपाबद्ध किया गया है और उपाबंध 3 के रूप में चिह्नित किया गया है।

3. पिटीशनरों का यह पक्षकथन है कि बोर्ड उत्पादन खर्चे में वृद्धि के अनुसार समय-समय पर बिजली के उपभोग के लिए प्रभारों को बराबर पुनरीक्षित करता रहा था, जिसके परिणामस्वरूप श्रम-प्रभारों के खर्च, स्थापन-व्यय आदि में भी वृद्धि हुई। तारीख 6 मार्च, 1982 की अधिसूचना द्वारा बोर्ड ने बिजली के प्रदाय के लिए टैरिफ, 1981 में और संशोधन किया किन्तु यहाँ हमारा उससे कोई प्रयोजन नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पिटीशनरों का यह पक्षकथन है कि बोर्ड ने, चालू दरों पर ईंधन अधिभार उद्गृहीत करने के लिए, बिल-मास मई, 1974 से अप्रैल, 1977 के लिए बिल जारी किए। इन वर्षों के लिए ईंधन अधिभार को उसी स्थिति में पुनरीक्षित किया जा सकता था और तदनुसार समायोजन उसी स्थिति में किए जा सकते थे, यदि अधिभार की अनन्तिम दर और विहित फार्मूला के अनुसार निकाली गई अधिभार की अन्तिम दर के बीच कोई अन्तर होता, किन्तु उक्त शक्ति का प्रयोग प्रत्येक वर्ष के अन्त में ही किया जा सकता था, न कि उसके पश्चात्। चूंकि अनन्तिम रूप से अवधारित अधिभार की वार्षिक दर और सुसंगत वर्ष के पूरा होने के पश्चात् यथा संगणित अधिभार की अन्तिम वार्षिक दर के बीच कोई अन्तर नहीं था, अतः बोर्ड ने वर्ष 1974-77 के लिए ईंधन समायोजन खण्ड के अधीन कोई पुनरीक्षित बिल जारी नहीं किए। मई, 1974 से अप्रैल, 1977 तक और उसके बाद की अवधि के लिए बोर्ड द्वारा जारी किए गए सभी बिलों का, जिनमें ईंधन अधिभार के प्रभार भी सम्मिलित हैं, नियमित रूप से संदाय किया गया। बिलों में यथा-अन्तर्विष्ट ईंधन अधिभार की दरें नीचे वर्णित की जा रही हैं।

फरवरी, 1971 से मार्च, 1972 तक	0.44 पी/कि डब्ल्यू एच
अप्रैल, 1972 से मार्च, 1973 तक	0.56 पी/कि डब्ल्यू एच
अप्रैल, 1973 से मार्च, 1974 तक	0.5 पी/कि डब्ल्यू एच
अप्रैल, 1974 से मार्च, 1975 तक	0.4 पी/कि डब्ल्यू एच
जून, 1981 तक	0.40 पी/कि डब्ल्यू एच
जून, 1981 से	0.63 पी/कि डब्ल्यू एच
अगस्त, 1981 से	1.00 पी/कि डब्ल्यू एच
जनवरी, 1982 से	2.5 पी/कि डब्ल्यू एच

4. पिटीशनर ने यह अभिकथन किया है कि बिलमास जून, 1981 के लिए प्राप्त बिल से यह दर्शित होता है कि ईंधन अधिभार की दर 0.40 से बढ़ा कर 0.63 पी/कि डब्ल्यू एच कर दी गई, जिसमें "पुनरीक्षित अनन्तिम दर के अनुसार" टिप्पण अन्तर्विष्ट था। बिल मास अगस्त, 1981 में भी ऐसा ही टिप्पण अन्तर्विष्ट था। पिटीशनर कम्पनी के अनुसार, उसने 0.40 पी/कि डब्ल्यू एच की दर से अनन्तिम रूप से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संदाय किया था, किन्तु उसे बाद में पुनरीक्षित कर दिया गया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, और पुनरीक्षित दरें अन्तिम दरें ही थीं, उनसे भिन्न नहीं और उसके पश्चात् इन दरों का आगे पुनरीक्षण टैरिफ या प्रदाय अधिनियम के उपबंधों के अधीन अनुज्ञेय नहीं है।

5. यह अभिकथन भी किया गया है कि मई, 1974 से अप्रैल, 1977 तक की अवधि के दौरान जारी किए गए बिलों में अन्तर्विष्ट इस व्यपदेशन के आधार पर कार्यवाही करते हुए कि उसमें उद्गृहीत ईंधन अधिभार अन्तिम था और आगे कोई समायोजन नहीं किया जा सकता था, पिटीशनर-कम्पनी ने अपनी मूल्य नीति और वित्त-नीति विरचित की। आय-कर विवरणियां भी उसी आधार पर प्रस्तुत की गईं और अब वे अन्तिम हो गई हैं। पिटीशनर का यह पक्षकथन है कि बिल-मास नवम्बर, 1982 के लिए तारीख 12 नवम्बर, 1982 के बिल द्वारा बोर्ड ने, उक्त बिल में विनिर्दिष्ट रीति में दरों के अन्तिम अवधारण के परिणामस्वरूप, बिल-मास मई, 1974 से अप्रैल, 1977 तक के लिए ईंधन अधिभार के पुनरीक्षण के कारण 26,65,043 रुपये 48 पैसे की राशि का दावा किया है। इस रकम के विवरण बिल, उपाबंध 4 के, पृष्ठ भाग में वर्णित किए गए हैं। पूर्वोक्त रकम का संदाय तारीख 27 नवम्बर, 1982 तक चैक की मार्फत और तारीख 29 नवम्बर, 1982 तक नकदी में किया जाना अपेक्षित था और नियत समय से 7 दिन के भीतर बिल का संदाय न किए जाने की दशा में, भारतीय विद्युत अधिनियम (इण्डियन इलैक्ट्रिसिटी ऐक्ट), 1910 की धारा 24(1) के अधीन बिजली का कनैक्शन काट दिया जाना था। सभी पिटीशनरों को इसी प्रकार के बिल जारी किए गए हैं, जिनमें ईंधन अधिभार की बकाया रकम का दावा किया गया है, जिन्हें इन रिट पिटीशनरों में चुनौती दी गई है।

6. पिटीशनरों का यह पक्षकथन भी है कि तारीख 12 नवम्बर, 1982 के बिल में न तो उसमें वर्णित अवधि के लिए ईंधन अधिभार की दरों के पुनरीक्षण की सामग्री को ही प्रकट किया गया था और न उसके पुनरीक्षण के आधार को ही प्रकट किया गया था तथा बिल में अन्तर्विष्ट विवरण पूर्णतः अस्पष्ट और संक्षिप्त था। इस संबंध में पिटीशनरों ने अपने पत्रों द्वारा बोर्ड से ईंधन अधिभार के अभिकथित समायोजन की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आधार-सामग्री और संगणना-पत्रक देने के लिए कहा, क्योंकि उसका बिजली के प्रदाय के लिए की गई संविदा के आधार पर दावा किया जा रहा था, किन्तु बोर्ड ने कोई जानकारी नहीं दी। पिटीशनरों के अनुसार, चूंकि उनके पास अन्य कोई आनुकल्पिक उपाय नहीं रह गया था, अतः उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलम्ब लिया। ईंधन अधिभार के अभिकथित भूतलक्षी पुनरीक्षण के कारण की गई अवैध मांग को ही इन रिट पिटीशनों में चुनौती दी गई है।

7. पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल द्वारा लिए गए आधारों और दी गई दलीलों पर विचार करने से पूर्व, प्रत्यर्थियों के पक्षकथन का उल्लेख करना उचित होगा। गुणागुण के आधार पर विवाद्यकों का उत्तर देने के अतिरिक्त, प्रत्यर्थी बोर्ड ने इन रिट पिटीशनरों के चलने योग्य होने के बारे में कतिपय प्रारम्भिक आपत्तियां भी उठाई हैं। यह अभिकथन किया गया है कि प्रस्तुत रिट पिटीशन इस संक्षिप्त आधार पर खारिज कर दिए जाने चाहिए कि वे प्रश्न, जो इन रिट पिटीशनों में उठाए गए हैं, पक्षकारों के बीच किए गए करार से उद्भूत हुए हैं। उक्त करार में एक माध्यस्थम् खण्ड था और करार के खण्ड 30 के अधीन यह उपबंध किया गया था कि करार से या उसके संबंध में उद्भूत होने वाले किसी विषय के संबंध में प्रदायकर्ता और उपभोक्ताओं के बीच किसी भी समय कोई विवाद या मतभेद होने की दशा में, ऐसा विवाद या मतभेद मध्यस्थों को निर्देशित किया जाएगा। इस प्रकार पिटीशनरों द्वारा उठाए गए प्रश्न करार के खण्ड 30 में अन्तर्विष्ट माध्यस्थम् खण्ड के अन्तर्गत आते हैं। यदि पिटीशनरों को कोई शिकायत थी, तो वे करार के पूर्वोक्त खण्ड 30 के अधीन उपबंधित उपाय का अवलम्ब ले सकते थे और उन्हें इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलम्ब लेने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।

8. यह अभिकथन भी किया गया है कि उपर उठाई गई आपत्ति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह भी निवेदन किया गया है कि करार के खण्ड 20 के अनुसार, करार के निबन्धनों के अधीन दिए गए किसी बिल या बिलों की शुद्धता के संबंध में कोई विवाद या मतभेद होने की दशा में, उपभोक्ता 7 दिन की अवधि के भीतर ऐसे बिल या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बिलों का संदाय करने के लिए आबद्ध था और किसी प्रस्थापित संदाय का समायोजन उसे विवाद या मतभेद के निपटारे के पश्चात् अगले बिलों में दिया जाएगा। पिटीशनरों को, करार के अनुसार, उन्हें दिए गए बिल का संदाय करना था और उसके पश्चात् विवाद उठाना था। चूंकि प्रस्तुत मामले में पिटीशनर बिलों का संदाय करने में असफल रहे हैं, अतः वे, संदाय किए बिना, इस न्यायालय का अवलम्ब लेने के हकदार नहीं हैं।

9. यह अभिकथन भी किया गया है कि पिटीशनर के न तो किसी मूल अधिकार और न किसी सांविधानिक या अन्य प्रकार के अधिकार का ही उल्लंघन किया गया है और इस प्रकार उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता के प्रयोग के लिए कोई मामला साबित नहीं किया है। यह अभिकथन भी किया गया है कि पिटीशनर का ईंधन अधिभार के संदाय का दायित्व पक्षकारों के बीच किए गए करार के निबन्धनों और शर्तों से उद्भूत हुआ था और उसमें ऐसा उपबंध था, जिसके द्वारा बोर्ड को टैरिफ शैड्यूल में कोई भी परिवर्तन (फेरफार) करने के लिए समर्थ बनाया गया था। पिटीशनरों को टैरिफों में अन्तर्विष्ट ईंधन समायोजन खण्ड की जानकारी थी और वे अधिभार का संदाय करने के लिए सहमत हो गए थे, जैसे और जब उक्त खण्ड में अन्तर्विष्ट फार्मूला के अनुसार अन्तिम दरें निकाली जाएं। अब चूंकि बोर्ड ने फार्मूला तैयार कर लिया है और ईंधन अधिभार की अन्तिम दरें अन्तिम रूप से अवधारित कर ली हैं और उनका संदाय करने के लिए बिल भेज दिए हैं, अतः पिटीशनरों ने करार के अधीन अपनी संविदाजन्य बाध्यताओं से बचने के प्रयास में, ये रिट पिटीशन फाइल किए हैं। टैरिफ में दर्शित ईंधन समायोजन खण्ड सहित, उसके उपबंध और माप मान संविदा के निबन्धन हो गए हैं और इन्हीं निबन्धनों पर पिटीशनरों को वैद्युत ऊर्जा का प्रदाय किया गया। इस प्रकार यह निवेदन किया गया है कि संविदाजन्य बाध्यताओं को अधिक्षेपित करने के लिए रिट पिटीशन समुचित अभ्युपाय नहीं है, विशेष रूप से उस समय जब कि पिटीशनरों ने प्रत्यर्थी से वैद्युत ऊर्जा प्राप्त करके और उसे उपयोग में लाकर संविदा का पूरा फायदा उठाया है।

10. यह अभिकथन भी किया गया है कि बोर्ड द्वारा टैरिफ दरें प्रदाय अधिनियम की धारा 49 के अधीन अपनी शक्तियों के प्रयोग में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विरचित की गई हैं। दरों का नियतन नीति का मामला है। यह शक्ति प्रकृति में पूर्णतः कार्यपालक है। बोर्ड विभिन्न लोगों को उसके द्वारा बेचे गए माल (यहां बिजली) की दरें नियत करने के लिए हकदार है और वह उसकी दरें नियत करने के लिए सक्षम है। अन्तिम दरों के अवधारित किए जाने के पश्चात् ईंधन अधिभार की बकाया रकम की मांग करके, बोर्ड शेष रकम की ही मांग कर रहा है, जिसके लिए माल उपभोक्ताओं को बेचा गया था। करार के अधीन पिटीशनर ईंधन अधिभार की शेष रकम का संदाय करने के लिए सहमत हो गए थे, जैसे और जब बोर्ड द्वारा उसकी संगणना की जाए। ईंधन अधिभार की अन्तिम दरों के नियत किए जाने की प्रक्रिया में किसी विधि, नियम या विनियम का किसी प्रकार का उल्लंघन या भंग अन्तर्वलित नहीं है और न इन रिट पिटीशनों में पिटीशनरों द्वारा ऐसा कोई उल्लंघन या भंग दर्शित ही किया गया है। यह बोर्ड द्वारा पिटीशनरों को प्रदत्त माल, अर्थात् वैद्युत ऊर्जा की कीमत की शेष रकम के रूप में, पक्षकारों के बीच संविदा के अधीन देय रकम को वसूल करने के अधिकार को प्रवृत्त कराने का ही मामला था। ऐसे मामलों में, अनुच्छेद 226 के अधीन इस उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अवलम्ब समुचित अध्युपाय नहीं है।

11. यह अभिकथन भी किया गया है कि पिटीशनरों ने चुनौती का जो मुख्य आधार लिया है वह यह है कि बोर्ड से यह अपेक्षित था कि वह प्रत्येक वर्ष के अन्त में ईंधन अधिभार की अन्तिम दर नियत करता और चूंकि वह अनेक वर्षों तक ऐसा करने में असफल रहा, अतः पिटीशनरों से प्रभारित अनन्तिम दरें स्वतः अन्तिम दरें हो गईं और तत्पश्चात् बोर्ड ईंधन अधिभार की अन्तिम दरें अवधारित नहीं कर सकता था। इस संबंध में यह निवेदन किया गया है कि उपर्युक्त दलील ईंधन समायोजन खण्ड के उपबंधों के गलत निर्वचन और/या उनकी बाबत मिथ्या धारणा पर आधारित है। प्रत्येक वर्ष के अन्त में ईंधन अधिभार की अन्तिम दरें नियत करना बोर्ड के लिए वर्ष की समाप्ति के पश्चात् दरें अवधारित करने हेतु समर्थकारी उपबंध था। दरें प्रत्येक वर्ष के लिए अलग-अलग नियत की जानी होती हैं। किन्तु यह खण्ड कोई सीमा खण्ड नहीं था और उसमें ऐसी कोई बाहरी सीमाएं अधिकथित नहीं की गई थीं, जिनके भीतर बोर्ड से ईंधन अधिभार की अन्तिम दरें नियत करने की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपेक्षा की गई थी । दरों का इंधन समायोजन खण्ड में अन्तर्विष्ट फार्मूले के अनुसार नियत किया जाना अपेक्षित था और ईंधन अधिभार की अन्तिम दर निकालने के लिए आवश्यक संघटक तत्त्वों में से एक तत्त्व इस प्रकार था :—

*"सी-1 : बोर्ड द्वारा खरीदी गई थोक बिजली पर राजस्थान परमाणु शक्ति परियोजना द्वारा उद्गृहीत प्रति यूनिट पैसे में ईंधन अधिभार ।

सी-1 : राजस्थान परमाणु शक्ति केन्द्र में उपयोग में लाए गए ईंधन और भारी जल की दर में फेरफार (परिवर्तन) के कारण प्रति यूनिट पैसे में ईंधन और भारी जल अधिभार ।"

वर्ष 1981 तक सी-1 पर दिए गए आंकड़े बोर्ड को उपलब्ध नहीं थे और इस प्रकार ईंधन समायोजन खण्ड के अनुसार फार्मूला तैयार करना और दर नियत करना उसके नियंत्रण से परे था । जैसे ही बोर्ड फार्मूला तैयार करने की स्थिति में आया, उसने अन्तिम दरें विरचित कीं और उपभोक्ताओं को तुरन्त ही बिल भेजे । इस प्रकार ईंधन समायोजन खण्ड के अनुसार अन्तिम दरें नियत करने में बोर्ड की ओर से कोई उपेक्षा या निष्क्रियता दर्शित नहीं की गई ।

12. मैं प्रत्यर्थियों द्वारा उठाई गई प्रारम्भिक आपत्तियों के आधार पर इन रिट पिटीशनों को अस्वीकार करने का कोई आधार या विधिमान्य औचित्य नहीं देखता । पिटीशनर द्वारा उठाए गए प्रश्नों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वे पूर्णतः संविदाजन्य बाध्यताओं से उद्भूत हुए हैं । इन मामलों में उद्भूत होने वाले प्रश्न विभिन्न अधिसूचनाओं के अधीन अन्तर्विष्ट ईंधन समायोजन खण्ड के अधीन ईंधन अधिभार प्रभारित किए जाने के संबंध में हैं । पिटीशनरों ने प्रत्यर्थी-बोर्ड के ईंधन अधिभार

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :—

"C-1 : Fuel surcharge in paise per unit levied by the Rajasthan Atomic Power Project on the bulk purchased by the Board.

C-1 : The fuel and heavy water surcharge in paise per unit due to the variation in the rate of fuel and heavy water consumed at the Rajasthan Atomic Power Station."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की दरें पुनरीक्षित करने और भूतलक्षी प्रभाव से उन्हें उद्गृहीत करने के अधिकार को ही चुनौती दी है। सुसंगत टैरिफ अधिसूचनाओं में अन्तर्विष्ट ईंधन समायोजन खण्ड में यह उपबंध किया गया है कि बोर्ड का विनिश्चय उपभोक्ताओं के लिए अन्तिम और आबद्धकर होगा। ऐसी वस्तुस्थिति में इन रिट पिटीशनों में उठाए गए विवाद माध्यस्थम् खण्ड की परिधि के अन्तर्गत नहीं आ सकते हैं। स्वीकृततः, बोर्ड राजस्थान राज्य में बिजली के प्रदाय के लिए एकाधिकार उपक्रम है और करारों में अन्तर्विष्ट खण्ड में, जिनके लिए उपभोक्ताओं को कोई विकल्प प्राप्त नहीं है, संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण अधिकारिता के प्रयोग में इस न्यायालय का अवलम्ब लेने का अधिकार ऐसी स्थिति में अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है यदि ऐसे करारों से संविधान के किसी भी उपबंध का उल्लंघन होता है या उनसे नैसर्गिक न्याय के किसी सिद्धान्त का उल्लंघन होता है या वे विधि के कानूनी उपबंधों के विरुद्ध हैं। आक्षेपित कार्यवाही द्वारा बोर्ड ने स्वयं बिजली प्रदाय के कनैक्शनों को काटने की धमकी दी है और इस प्रकार मैं प्रत्यर्थी-बोर्ड द्वारा उठाई गई इस आपत्ति में कोई बल नहीं पाता हूं कि पिटीशनरों को माध्यस्थम् खण्ड का अवलम्ब लेना चाहिए था और वे बोर्ड की आक्षेपित कार्यवाही को चुनौती देते हुए ये रिट पिटीशन फाइल नहीं कर सकते हैं।

13. जहां तक करार के खण्ड 20 का संबंध है, यह कहना पर्याप्त होगा कि वह भेजे गए बिलों के सही न होने से संबंधित विवादों और मतभेदों के निपटारे के संबंध में है। इस खण्ड के अधीन प्रयुक्त संदर्भ में 'बिल' से केवल करार के खण्ड 18 के अधीन भेजे गए मासिक बिल ही अभिप्रेत हो सकते हैं। चूंकि पिटीशनरों ने बिलों का पहले ही संदाय कर दिया है, अतः ऐसे बिलों के सही न होने के संबंध में कोई विवाद या मतभेद नहीं है। प्रस्तुत रिट पिटीशन में विवाद ईंधन समायोजन खण्ड के अधीन मांगे गए ईंधन अधिभार की बकाया रकम के संबंध में ही है और यह विवाद किसी भी रीति में, पक्षकारों के बीच किए गए करार के खण्ड 20 के अन्तर्गत नहीं आता है। इस प्रकार मैं प्रत्यर्थी-बोर्ड द्वारा उठाई गई इस प्रारम्भिक आपत्ति में भी कोई बल नहीं पाता हूं। अब मैं इन मामलों में पिटीशनरों द्वारा उठाए गए विवादों का गुणागुण के आधार पर विनिश्चय करूंगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

14. पिटीशनर के विद्वान् काउन्सेल द्वारा दिए गए तर्कों को समुचित रूप से समझने के लिए कुछ और तथ्यों और ईंधन समायोजन खंड के सुसंगत उपबंधों का उल्लेख करना उचित होगा। तारीख 26 मई, 1974 की अधिसूचना में अन्तर्विष्ट प्रथम ईंधन समायोजन खंड में यह अधिकथित किया गया है :—

*"ईंधन समायोजन खंड--हाई टेंशन टैरिफ शैडयूल एल० पी०/एच० टी०-1 और डीएल/आरटी-2 के अधीन बेची गई यूनिट की दर ईंधन अधिभार की वार्षिक दर के अनुसार अलग-अलग होगी, जो निम्नलिखित फार्मूला के अनुसार निकाली जाएगी—

$$\frac{\text{ए}_1 \times \text{ए}_2 + \text{बी}_1 \times \text{बी}_2 + \text{सी}_1 \times \text{सी}_2}{(\text{ए}_2 + \text{बी}_2 + \text{सी}_2 + \text{बी}) \times 0.85}$$

जिसमें –

ए$_1$—से राजस्थान में थर्मल पावर हाउसों में निकाली गई प्रति यूनिट ईंधन अधिभार की दर;

ए$_2$—से राजस्थान में थरमल पावर हाउसों द्वारा उत्पादित बिजली की यूनिटें ;

बी$_1$—से सतपुड़ा थरमल स्टेशन के लिए निकाली गई प्रति यूनिट ईंधन अधिभार की दर;

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :

"Fuel Adjustment clauses:— The rate per unit sold under the High Tension Tariff schedules LP/HT-1 and DL/RT-2 shall be varied according to the annual rate of fuel surcharge, which shall be worked out as per the following formula :—

$$\frac{A_1 \times A_2 + B_1 \times B_2 + C_1 \times C_2}{(A_2 + B_2 + C_2 + B) \times 0.85}$$

Where —

A1—Rate of fuel surcharge per unit worked out at thermal power houses in Rajasthan.

A2—Units generated by thermal power houses in Rajasthan.

B1—Rate of fuel surcharge per unit worked out for Satpura thermal station.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बी 2—से सतपुड़ा थरमल स्टेशन से बोर्ड के शेयर के अनुसार उत्पादित यूनिटें;

सी 1—से बोर्ड द्वारा थोक क्रय पर राजस्थान परमाणु शक्ति परियोजना द्वारा उदगृहीत प्रति यूनिट पैसे में ईंधन अधिभार;

सी 2—राजस्थान परमाणु शक्ति परियोजना से बोर्ड द्वारा खरीदी गई यूनिटें;

घ—से जल विद्युत् स्रोतों से राजस्थान में प्राप्त यूनिटें, अभिप्रेत हैं ।"

इस अधिसूचना में अन्तर्विष्ट अन्य उपबंध, जो हमारे विचारार्थ सुसंगत हैं, इस प्रकार हैं—

*"प्रत्येक वर्ष के अन्त में, बोर्ड उपर्युक्त फार्मुला के अनुसार ईंधन अधिभार की दर निकालेगा और इस प्रकार निकाली गई ईंधन अधिभार की प्रति यूनिट दर संबंधित वर्ष के दौरान एचटी टैरिफ पर बेची गई यूनिटों के लिए लागू होगी। इसमें बोर्ड का विनिश्चय उपभोक्ता के लिए अन्तिम और आबद्धकर होगा ।

चालू अवधि के लिए अनन्तिम दर पूर्वतन अवधि के लिए नियत दर के अनुसार प्रभारित की जाएगी और अन्तिम समायोजन

B2—Units generated against Board's share from Satpura thermal station.

C1—Fuel surcharge in paise per unit levied by the Rajasthan Atomic Power Project on the bulk purchase by the Board.

C2—Units purchase by the Board from Rajasthan Atomic Power Project.

D—Units received in Rajasthan from the hydel Sources."

*"At the end of each year, the Board shall work out the rate of fuel surcharge as per the above formula and the rate per unit of fuel surcharge so worked out shall be made applicable for the units sold at HT Tariff during the respective year. In this the decision of the Board will be final and binding on the consumer. The provisional rate shall

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.
के समय किया जाएगा, जब ईंधन अधिभार की अन्तिम दर निकाली जाये।"

15. एक अन्य अधिसूचना तारीख 4 नवम्बर, 1976 की है, जिसमें भी तारीख 28 मई, 1974 की अधिसूचना में यथा अन्तर्विष्ट ईंधन अधिभार की वार्षिक दर निकालने के लिए वैसा ही फार्मूला अन्तर्विष्ट है। उसमें एकमात्र अन्तर, जो हमारे प्रयोजन के लिए सुसंगत है, सी-1 संघटक में किया गया था, जो इस प्रकार है :—

*"सी 1—राजस्थान परमाणु शक्ति केन्द्र में उपयोग में लाई गई ईंधन और भारी जल की दर में परिवर्तन के कारण प्रति यूनिट पैसे में ईंधन और भारी जल अधिभार।"

16. तृतीय अधिसूचना तारीख 7 जुलाई, 1981 की है, जिसमें सी 1 संघटक इस प्रकार है :—

**"सी 1—राजस्थान परमाणु शक्ति केन्द्र में उपयोग में लाए गए भारी जल और ईंधन की दर में परिवर्तन के कारण प्रति यूनिट पैसे में भारी जल और ईंधन अधिभार, जैसा कि राजस्थान परमाणु शक्ति केन्द्र के प्राधिकारियों द्वारा उदगृहति किया जाए।"

बोर्ड ने तारीख 27 अक्तूबर, 1975 के अपने आदेश के अनुसार वर्ष 1973-74 के लिए, "बिजली के प्रदाय के लिए टैरिफ, 1964" में अन्तर्विष्ट ईंधन समायोजन खंड के अनुसार, ईंधन अधिभार की अन्तिम दर इस प्रकार अधिसूचित की —

1. बिल-मास मई, 1973 से अक्तूबर, 1973 तक
0.62 पैसे/यूनिट

2. बिल-मास नवम्बर, 1973 से अप्रैल, 1974 तक
0.40 पैसे/यूनिट

---

be charged for the current period according to the rate for the previous period and final adjustment shall be made when the final rate of fuel surcharge is worked out."

*"C1—The fuel and heavy water surcharge in paise per unit due to variation in the rate of fuel and heavy water consumed at the Rajasthan Atomic Power Station."

**"C1—Heavy water and fuel surcharge in paise per unit as may be levied by the RAPS authorities due to variation in the rate of heavy water and fuel consumed at the RAPS."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपर्युक्त आदेश में यह विनिर्दिष्ट रूप से वर्णित किया गया है कि बिल-मास मई, 1974 से आगे के लिए ईंधन अधिभार की दर अन्तिम आंकड़े निकाले जाने तक अनन्तिम आधार पर प्रति यूनिट 40 पैसे की दर से प्रभार्य होगी। 1964 का टैरिफ बिल-मास जून, 1974 तक लागू रही। नई टैरिफ, 1974 बिल-मास जुलाई, 1974 से प्रवृत्त हुई और बिल-मास नवम्बर, 1976 तक लागू रही। उसके बाद पुनः बोर्ड ने अपनी टैरिफ पुनरीक्षित की और "बिजली के प्रदाय के लिए टैरिफ, 1976" विरचित की, जो बिल-मास दिसम्बर, 1976 से प्रवृत्त हुई। इन टैरिफों में तारीख 30 दिसम्बर, 1978 को अधिसूचना के अनुसार संशोधन किए गए और वे बिल-मास जुलाई, 1981 तक प्रवृत्त रही। ये टैरिफें पुनः बिल-मास अगस्त, 1981 से पुनरीक्षित की गई जब "बिजली के प्रदाय के लिए टैरिफ-1981,, टैरिफ तारीख 7 जुलाई, 1981 की अधिसूचना द्वारा प्रवृत्त की गई, जिसे बाद में तारीख 5 मार्च, 1982 को संशोधित किया गया और उसे बिल-मास अप्रैल, 1982 से लागू किया गया। इन सभी टैरिफों में बोर्ड को टैरिफों में अन्तर्विष्ट फार्मूला के अनुसार ईंधन अधिभार की दर को अन्तिम रूप देने हेतु समर्थ बनाने के लिए ईंधन समायोजन खंड अन्तर्विष्ट था।

17. प्रत्यर्थी-बोर्ड का यह पक्षकथन है कि वह ईंधन समायोजन खंड के अनुसार बड़े औद्योगिक उपभोक्ताओं पर उद्ग्रहणीय ईंधन अधिभार की अन्तिम दर को अन्तिम रूप दे सकता था, जब उसे फार्मूला के संघटक सी1 से संबंधित आँकड़े हस्तगत हो गए थे। उपर्युक्त आँकड़े प्राप्त करने के पश्चात्, बोर्ड ने ईंधन अधिभार की अन्तिम दर अन्तर्विष्ट करने वाली निम्नलिखित अधिसूचनाएं जारी कीं :—

1. अधिसूचना सं० आरएसईबी/सीओएमएमएल/एफएसी/74-75/डी० 1819 तारीख 27 मई, 1981.

2. अधिसूचना सं० आरएसईबी/डीसीओ/एफएसी/75-76/डी० 2218 तारीख 7 अगस्त, 1982.

3. अधिसूचना सं० आरएसईबी/डीसीओ/77-78/डी० 3265 तारीख 30 अक्तूबर 1982.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपर्युक्त अधिसूचनाओं की सत्य प्रतियां उत्तर के साथ उपाबद्ध की गई हैं और उपाबंध आर/2 से उपाबंध आर/4 के रूप में चिह्नित की गई हैं। बोर्ड के अनुसार, वह दर, जिस पर राजस्थान परमाणु शक्ति परियोजना द्वारा ईंधन अधिभार उद्गृहीत किया जाना था, बोर्ड को उपलब्ध नहीं थी। अतः राजस्थान परमाणु शक्ति परियोजना ने बोर्ड को प्रदत्त की जाने वाली परमाणु शक्ति के लिए लागू की जाने वाली टैरिफों के लिए अक्तूबर, 1974 में केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण को कतिपय प्रस्थापनाएं भेजीं। उक्त प्रस्थापनाएं बोर्ड द्वारा सेवित उपभोक्ताओं के हित में नहीं थीं क्योंकि उससे उन पर उद्ग्रहण का भारी बोझ पड़ जाता और इस प्रकार बोर्ड ने आपत्ति की और केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण को उन्हें पुनरीक्षित करने के लिए अभ्योदन दिया। जब केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण मामले के संबंध में बातचीत और विचार-विमर्श कर रहा था, उसी बीच राजस्थान परमाणु शक्ति परियोजना ने जुलाई, 1975 में और बाद में अक्तूबर, 1976 में परमाणु शक्ति के प्रदाय की दर में वृद्धि करनी चाही। राजस्थान परमाणु शक्ति परियोजना दिसम्बर, 1974 में भूतलक्षी प्रभाव से दर बढाना चाहती थी। जनवरी, 1977 में परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा एक अधिसूचना जारी की गई, किन्तु बोर्ड ने उस पर आपत्ति की। जब मामले की बाबत बातचीत और विचार-विमर्श चल रहा था, उसी बीच बोर्ड ने 1976 की टैरिफ विरचित की और फार्मूला के संघटक सी-1 में परिवर्तन कर दिया गया, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। 1976 की टैरिफ में यथा-अन्तर्विष्ट यह फार्मूला भी लागू (कार्यान्वित) नहीं किया जा सका, क्योंकि बोर्ड को परमाणु शक्ति उत्पादित करने में राजस्थान परमाणु-शक्ति परियोजना द्वारा उपयोग में लाए गए ईंधन और भारी जल की दरें प्राप्त नहीं हो सकीं। अन्ततः राजस्थान परमाणु शक्ति परियोजना ने लम्बी बातचीत और विचार-विमर्श के पश्चात् मई, 1980 और अगस्त, 1980 में की गई बैठकों में मामले का समाधान किया। इस विनिश्चय के आधार पर कार्य करते हुए, बोर्ड ने तारीख 17 मई, 1981 को अधिसूचना जारी की, किन्तु चूंकि उक्त विनिश्चय भारत सरकार द्वारा प्ररूपिकतः अधिसूचित नहीं किया गया, अतः बोर्ड ने प्ररूपिक अधिसूचना के लिए प्रतीक्षा करना उचित समझा और भारत सरकार की तारीख 1 जून, 1982 की अधिसूचना के पश्चात् आगे अधिसूचनाएं जारी कीं। उसके तुरन्त पश्चात् बोर्ड ने विभिन्न टैरिफों के अन्तर्विष्ट ईंधन समायोजन खंडों के अनुसार ईंधन अधिभार की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्तिम दरों के अवधारण के लिए कार्यवाही आरम्भ की और अपनी बैठकों में उन टैरिफों के अनुमोदित कर देने के पश्चात् उसने ऊपर वर्णित आवश्यक अधिसूचनाएं जारी कीं। इस प्रकार ईंधन अधिभार की अन्तिम दरें अवधारित करने में हुआ विलम्ब इस तथ्य के कारण हुआ था कि ईंधन अधिभार की अन्तिम दरें अवधारित करने का फार्मूला तब तक तैयार नहीं किया जा सका, जब तक कि महत्वपूर्ण संघटक सी-1 के आंकड़े बोर्ड को उपलब्ध नहीं करा दिए गए। बोर्ड ने पैरा 15 में अपने उत्तर में ईंधन अधिभार की अन्तिम दरों की संगणना करने में हुए विलम्ब के विवरण भी दिए हैं।

18. श्री पी० आर० मृदुल ने जिन्होंने पिटीशनरों की ओर से मुख्य बहस की, निम्नलिखित शीर्षों के अधीन अपनी दलीलें दी हैं :—

1. ईंधन अधिभार का उद्ग्रहण स्वयं ईंधन समायोजन खंड के विरुद्ध और उसकी शक्ति से बाहर है।

2. ईंधन अधिभार के उद्ग्रहण से भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है।

3. बोर्ड की कार्यवाही से नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होता है।

4. बोर्ड भूतलक्षी प्रभाव से ईंधन अधिभार उद्गृहीत करने के लिए वचन-विबन्ध के सिद्धांत के आधार पर विबंधित है।

19. जहां तक प्रथम मुद्दे का संबंध है, यह दलील दी गई कि स्वयं ईंधन समायोजन खण्ड के अनुसार यह उपबंध किया गया था कि "प्रत्येक वर्ष के अन्त में" बोर्ड उपर्युक्त फार्मूला के अनुसार ईंधन अधिभार की दर निकालेगा और इस प्रकार निकाली गई ईंधन अधिभार को प्रत्येक यूनिट के लिए दर संबंधित वर्ष के दौरान एचटी टैरिफ की दर पर बेची गई यूनिटों के लिए लागू होगी। इस प्रकार यह निवेदन किया गया है कि अधिकतम अवधि एक वर्ष थी और किसी भी स्थिति में, उसमें अधिक से अधिक अगले वर्ष की समाप्ति से पूर्व युक्तियुक्त रूप से वृद्धि की जा सकती थी। स्वयं ईंधन समायोजन खण्ड में अन्तर्विष्ट इस परिसीमा द्वारा प्रत्येक वर्ष के अन्त तक या अधिक से अधिक ऐसी युक्तियुक्त अवधि तक, जो किसी भी प्रकार उस वर्ष के अगले वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए जिसमें ईंधन अधिभार की दर निकाली जानी थी, शक्ति के प्रयोग पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नियंत्रण अधिरोपित किया गया था। यह निवेदन किया गया कि यदि किसी कार्य को करने के लिए कोई विशिष्ट रीति या ढंग विहित किया जाता है, तो वह कार्य उसी रीति में किया जाना चाहिए, अन्यथा किया ही नहीं जाना चाहिए। इस संबंध में **नजीर अहमद बनाम किंग एम्परर**[1] **और सहायक आय-कर कलक्टर बनाम नेशनल टोबको कम्पनी आफ इण्डिया लि०**[2] वाले मामलों का अवलम्ब लिया गया है। यह तर्क भी दिया गया कि इस संबंध में बोर्ड द्वारा किए गए इस अभिवाक् से कि यह एक समर्थकारी उपबंध है, बोर्ड को 7 या 8 वर्ष के पश्चात ईंधन अधिभार की दर निकालने का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता है और ऐसा करना बोर्ड की शक्ति का अयुक्तियुक्त और घोर दुरुपयोग होगा। बोर्ड को दी गई उपर्युक्त शक्ति का अर्थान्वयन बोर्ड पर अधिरोपित लोक बाध्यता और कर्तव्य को ध्यान में रखते हुए ही किया जाना चाहिए और उसे अयुक्तियुक्त अवधि तक बढ़ाए जाने के लिए अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए। इस संबंध में यह निवेदन भी किया गया कि स्वयं बोर्ड के कथनानुसार उसके ज्ञापन की तारीख 30 जनवरी, 1979 को अस्वीकार कर दिया गया और उसके पश्चात् अक्तूबर, 1982 तक प्रतीक्षा के लिए कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया गया, जब आक्षेपित बिल भेजा गया था। यह निवेदन भी किया गया है कि किसी भी दशा में, प्रत्यर्थी ने अपने उत्तर में अगस्त, 1980 के पश्चात् वाली अवधि के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है। प्रत्यर्थी ने विलम्ब को स्पष्ट करने के लिए कोई पत्र-व्यवहार या दस्तावेज फाइल नहीं किए हैं और इस प्रकार बोर्ड के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए।

20. विद्वान् महासालीसिटर ने उत्तर में यह दलील दी कि संविदा का मर्म समय नहीं था। बोर्ड ऐसे कारणों से, जो उसके नियंत्रण से परे थे, प्रत्येक वर्ष की समाप्ति में ईंधन अधिभार की दर नहीं निकाल सका। यदि एक वर्ष के लिए विधिमान्य और पर्याप्त हेतुक था, तो वह हेतुक तब तक बना रहेगा जब तक कि परिसीमा द्वारा वर्जित न हो जाए। बोर्ड पिटीशनरों को पहले ही दे दी गई बिजली के प्रदाय के लिए ईंधन अधिभार की मांग कर रहा था और ईंधन समायोजन खंड के अधीन दिए

---

[1] ए० आई० आर० 1936 प्रिवी कौंसिल 253.

[2] [1972] 3 उम० नि० प० नि० सा० 31=ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 2563.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गए अधिकार के आधार पर, बोर्ड बिजली की कीमत प्राप्त करने के लिए हकदार था, जब कभी भी ईंधन अधिभार की अन्तिम दर निकाली जाए। ईंधन समायोजन खण्ड के किसी उपबंध या पिटीशनरों के किसी विधिक या मूल अधिकार का उल्लंघन नहीं हुआ था, क्योंकि उनसे उन्हें बेचे गए माल (बिजली) के विक्रय की कीमत का संदाय करने के लिए ही कहा गया था। यह निवेदन किया गया कि जब तक राजस्थान परमाणु शक्ति परियोजना द्वारा संघटक सी-1 की जानकारी नहीं दे दी गई, ईंधन अधिभार की वार्षिक दर निकालने के फार्मूला की संगणना नहीं की जा सकी। विद्वान् महासालीसिटर ने यह निवेदन भी किया कि पक्षकारों के बीच करार का निष्पादन होने के समय तक यह माना जाना चाहिए कि वह कानूनी उपबंधों के अधीन किया गया है, किन्तु ऐसी संविदा को कार्यान्वित करने की रीति या ढंग की बाबत उद्भूत होने वाले मतभेद संविदा को सामान्य विधि की परिधि के अन्तर्गत आते हैं और ऐसे प्रश्नों में से किसी भी प्रश्न पर इस प्रकार विचार नहीं किया जा सकता है कि उससे भारत के संविधान के किसी उपबंध का उल्लंघन होता है। राजस्थान राज्य बिजली बोर्ड पब्लिक सैक्टर के अधीन एक उपक्रम है और उसकी दक्षता और कार्यकरण को प्राइवेट सैक्टर उपक्रम की दक्षता और कार्यकरण से बराबरी नहीं की जा सकती है। राजस्थान परमाणु शक्ति परियोजना भारत संघ के नियंत्रणाधीन थी और बोर्ड का उस पर कोई नियंत्रण नहीं था। पिटीशनर पूर्वतन वर्ष की दर के अनुसार अनन्तिम आधार पर ईंधन अधिभार का संदाय कर रहे थे और यह करार किया गया था कि अन्तिम समायोजन उस समय किया जाएगा जब ईंधन अधिभार की अन्तिम दर निकाल ली जाएगी।

21. मैंने दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेलों द्वारा दिए गए तर्कों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है। पिटीशनरों पर प्रभारित ईंधन अधिभार की अनन्तिम दरें विद्युत-ऊर्जा उत्पादन-लागत पर आधारित नहीं थीं, बल्कि वे पूर्वतन अवधि के लिए नियत दरों के अनुसार अनन्तिम आधार पर ही प्रभारित की जा रही थीं। इस तथ्य से यह स्पष्ट होगा कि तारीख 1 अक्तूबर, 1973 से तारीख 31 मार्च, 1974 तक की अवधि के लिए ईंधन अधिभार की अनन्तिम दरें प्रतियूनिट 40 पैसे नियत की गईं और यही दर ईंधन अधिभार की अनन्तिम दर के रूप में पश्चात्वर्ती बिलों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में प्रभारित की जा रही थी। जब कभी ईंधन अधिभार का अनन्तिम आधार पर उल्लेख किया गया, सुसंगत टैरिफों में यह स्पष्ट कर दिया गया कि वह समायोजन के अधीन होगी, जब अन्तिम आंकड़े निकाल लिए जाएंगे। भी टैरिफों में समायोजन खण्ड है, जिसके अनुसार बोर्ड से प्रत्येक वर्ष के अन्त में ईंधन अधिभार की दर निकालने की अपेक्षा की गई है किन्तु यह भी अधिकथित किया गया है कि चालू अवधि के लिए पूर्वतन वर्ष की दर के अनुसार अनन्तिम दर प्रभारित की जाएगी और अन्तिम समायोजन उस समय किया जाएगा जब अधिभार की वार्षिक दर निकालने के लिए वर्णित फार्मूला के अनुसार ईंधन अधिभार की अन्तिम दर निकाल ली जाए। सुसंगत अवधि के बिलों में वर्णित ईंधन अधिभार की दरों के परिशीलन से यह बात संदेह से परे स्पष्ट हो जाती है कि वह बिल-मास 1 अप्रैल 1974 से 31 मार्च, 1980 तक प्रति यूनिट 40 पैसे की दर से प्रभारित किया गया था। प्रति यूनिट 40 पैसे की यह दर इस कारण प्रभारित की गई कि यह 31 मार्च, 1974 को समाप्त होने वाले मास के लिए ईंधन अधिभार की अन्तिम दर थी। पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल की इस दलील में कोई बल नहीं है कि यह दर अन्तिम मानी जानी चाहिए, न कि अन्तिम। यद्यपि अनन्तिम आधार पर ईंधन अधिभार की दर तारीख 1 अक्तूबर, 1973 से तारीख 31 मार्च, 1974 तक की अवधि के लिए 65 पैसे थी, किन्तु वह अन्तिम आधार पर 40 पैसे निकाली गई। चार्ट, उपाबंध आर/5 से, जिसमें अनन्तिम और अन्तिम आधार पर ईंधन अधिभार की दर का उल्लेख किया गया है, यह दर्शित होता है कि तारीख 1 अप्रैल, 1974 से तारीख 31 मार्च, 1980 तक की अवधि के लिए विभिन्न दरें अन्तिम आधार पर निकाली गई थीं। इससे यह भी दर्शित होता है कि यद्यपि अन्तिम ईंधन अधिभार की दर तारीख 1 अप्रैल, 1977 से तारीख 31 मार्च, 1978 तक की अवधि के लिए 2.35 पैसे निकाली गई, वह तारीख, 1 अप्रैल, 1978 से तारीख 31 मार्च 1979 तक की अवधि के लिए घटा कर 1.92 कर दी गई। जहां तक प्रत्येक वर्ष के अन्त में ईंधन अधिभार की दर निकालने के उपबंध का संबंध है, कल्पना की किसी भी उड़ान द्वारा यह आज्ञापक नहीं कही जा सकती है। यह एक समर्थकारी उपबंध है, जिसके द्वारा बोर्ड को प्रत्येक वर्ष के अन्त में दर निकालने की शक्ति प्रदत्त की गई है। ईंधन अधिभार की दर निकालने के लिए अधिकतम अवधि अधिकथित करने का कोई उपबंध नहीं है। पूर्वतन अवधि के लिए नियत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दर के अनुसार अनन्तिम आधार पर ईंधन अधिभार की दर निकालने के लिए स्पष्ट उपबंध है और अन्तिम समायोजन उस स्थिति में अनुज्ञेय बनाया गया है, जब ईंधन अधिभार की अन्तिम दर निकाल ली जाए। बोर्ड ने अपने उत्तर में, अन्तिम दर निकालने में हुए विलम्ब के लिए स्पष्टतः औचित्य सिद्ध किया है। विलम्ब के लिए दिए गए इस औचित्य का विनिश्चय युक्तियुक्त आधार को ध्यान में रखते हुए किया जाना है। यदि किसी अवधि के लिए यह मान भी लिया जाता है कि कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, तब भी उससे बोर्ड ऐसे समर्थकारी उपबंध के अधीन ईंधन अधिभार की अन्तिम दर की मांग करने से निर्हकित नहीं हो सकता है। बोर्ड द्वारा अन्तिम आधार पर निकाले गए ईंधन अधिभार की मांग करने से पिटीशनरों के किसी विधिक या मूल अधिकार का उल्लंघन नहीं होता है। **एस० सत्यनारायण बनाम जी० वेल्लोंजी राव और अन्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया :–

> "श्री लक्ष्मैया ने न्यायालय के विवेकाधिकार की परिधि को परिभाषित करने के लिए अनेक आंग्ल विनिश्चय प्रोद्धृत किए। उनके प्रति निर्देश करने से पूर्व, विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष के संदर्भ में दोनों पद्धतियों--आंग्ल और भारतीय पद्धतियों—के बीच आधारभूत अन्तर जानना आवश्यक है। इंग्लैंड में विनिर्दिष्ट पालन का अनुतोष साम्या के क्षेत्र से संबंध रखता है। भारत में कानूनी विधि के क्षेत्र से। इंग्लैंड में उक्त अनुतोष के लिए वाद संस्थित करने के लिए परिसीमा की कोई अवधि नहीं है और इसलिए विलम्ब मात्र--परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए समयांतर—अनुतोष देने से इनकार करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता किंतु भारत में विलम्ब मात्र उक्त अनुतोष को देने से इंकार करने के लिए आधार होगा, क्योंकि कानून में परिसीमा की अवधि विहित की गई है। यदि वाद समय के अन्दर फाइल किया गया है, तो विलम्ब विधि द्वारा मंजूरी प्राप्त है; यदि वह नियत समय के पश्चात् फाइल किया जाता है, तो वाद समय द्वारा वर्जित वाद के रूप में खारिज कर दिया जाएगा; साम्या का प्रश्न किसी भी स्थिति में उद्भूत नहीं होगा।"

---

[1] ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1405.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

22. करार के निबंधनों और टैरिफों में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन पिटीशनर अंतिम दर पर ईंधन अधिभार का संदाय करने के लिए आबद्ध थे और इस बात का कोई प्रश्न नहीं है कि ईंधन अधिभार प्रभारित करने से किसी भी प्रकार पिटीशनरों के व्यवसाय में अड़चन हो सकती है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि उसके परिणामस्वरूप फायदों में कमी हो सकती है। **नजरिया मोटर सर्विस बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा व्यक्त किए गए निम्नलिखित मत से मेरे कथन का समर्थन होता है :—

> "यह संविधान के अनुच्छेद 19(1) (छ) के अधीन चुनौती का निपटारा करने के लिए भी पर्याप्त है। हम इस संबंध में उच्च न्यायालय के निष्कर्ष के प्रति संक्षेप में निर्देश करना उचित समझते हैं, जो उसके समक्ष फाइल किए गए शपथपत्रों पर विचार किए जाने के पश्चात् निकाला गया था। यह निष्कर्ष निकाला गया है कि ऐसी कोई सामग्री नहीं है, जिससे यह निष्कर्ष निकालना आवश्यक हो कि आक्षेपित विधिमान्यकरण-अधिनियम द्वारा अनुज्ञात किराए और भाड़े के अधिभार में वृद्धि से व्यापार में अड़चन गठित होगी। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि उसके परिणामस्वरूप फायदों में कमी होगी। इस उपधारणा के आधार पर भी कि फायदे कम हो जाएंगे या उनमें अत्यधिक कमी आ जाएगी, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि अनुच्छेद 19(1) (छ) का किसी प्रकार उल्लंघन हुआ है।"

जहां तक ईंधन अधिभार के उद्ग्रहण का संबंध है, पिटीशनरों ने न तो उसके बारे में कोई विवाद उठाया है और न उसे चुनौती ही दी है। ईंधन अधिभार सारतः अतिरिक्त या अधिक भार है और उसकी परिधि उसके नाम के कारण सीमित नहीं की जा सकती है। प्रत्येक अधिभार अतिरिक्त प्रभार है और इस प्रकार वह टैरिफ का भाग है। उच्चतम न्यायालय ने **मैसर्स बिसरा स्टोन लाइम कं० लि० बनाम उड़ीसा**

---

[1] [1970] 3 उम० नि० प० 75 = ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 1864.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्टेट इलैक्ट्रिसिटी बोर्ड और एक अन्य[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया :—

> " 'अधिभार' शब्द अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है, किन्तु व्युत्पत्ति की दृष्टि से, अधिभार से, अन्य बातों के साथ-साथ, अतिरिक्त या अधिक प्रभार या संदाय अभिप्रेत है। (देखें शार्टर आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी)। इस प्रकार अधिभार ऊपर से जोड़ा गया प्रभार है, अर्थात् प्रायिक या चालू देयों के अतिरिक्त प्रभार। अतः, यद्यपि प्रस्तुत मामले में वह अधिभार के रूप में है, सारतः वह टैरिफ की नियत दरों के अतिरिक्त प्रभार है। अतः नाम के कारण स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आता है।"

मैं इस संबंध में विद्वान् महासालीसिटर की इस दलील में बल पाता हूं कि इस मामले में समय संविदा के पालन का मर्म नहीं था और यदि वर्ष के अन्त में ईंधन अधिभार की अंतिम दर न निकालने के लिए ठोस या पर्याप्त कारण दर्शित किया गया था, तो वह बना रहेगा जब तक कि वह परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं हो जाता है। नजीर अहमद बनाम किंग एम्परर और सहायक कलक्टर[2]; केन्द्रीय उत्पादशुल्क, कलकत्ता बनाम नेशनल टोबैको कम्पनी आफ इंडिया लि०[3] वाले मामलों में जो श्री मृदुल द्वारा प्रोद्धृत किए गए हैं, प्रतिपादित सिद्धांतों के बारे में किसी प्रकार की शंका नहीं हो सकती है। किंतु प्रस्तुत मामलों में यह नहीं कहा जा सकता है कि बोर्ड ने ईंधन समायोजन खंड में विनिर्दिष्ट रीति और ढंग में अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं किया गया था। यह तर्क पिटीशनरों को उस स्थिति में उपलब्ध हो सकता है यदि ईंधन अधिभार की अंतिम दरें उक्त खंड में अन्तर्विष्ट फार्मूला के अनुसार नहीं निकाली जातीं। अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि बोर्ड को एक वर्ष के पश्चात् या अधिक से अधिक अगले वर्ष की समाप्ति से पूर्व ईंधन अधिभार की अंतिम दरें निकालने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं थी।

23. अगले मुद्दे पर श्री मृदुल ने यह दलील दी कि बोर्ड की कार्यवाही से संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है। इस संबंध में यह

---

[1] ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 127.

[2] ए० आई० आर० 1936 प्रिवी कौंसिल 253.

[3] [1972] 3 उम०नि०प०नि०सा० 31 = ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 2563.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निवेदन किया गया था कि आक्षेपित बिल में न तो उसमें वर्णित अवधि के लिए ईंधन अधिभार की दरों के पुनरीक्षण की सामग्री को और न उसके आधार को ही प्रकट किया गया था। बिल में अन्तर्विष्ट विवरण पूर्णतः अस्पष्ट और संक्षिप्त था। यद्यपि पिटीशनरों की ओर से लिखे गए पत्रों द्वारा बोर्ड से ईंधन अधिभार के अभिकथित समायोजन की तारीख और संगणना-पत्रक देने की अपेक्षा की गई थी, तथापि बोर्ड ने अपेक्षित जानकारी प्रस्तुत नहीं की। यह दलील भी दी गई है कि बोर्ड द्वारा अवधारित दरें, यदि कोई हों, सुसंगत सामग्री पर आधारित नहीं थीं और न ही बोर्ड ने अधिभार की अंतिम दरें अवधारित करते समय अपनी विवेक-बुद्धि का ही प्रयोग किया। यह निवेदन भी किया गया है कि टैरिफ विरचित करने के समय ईंधन का खर्चा पहले से ही टैरिफ के अधीन विहित ऊर्जा प्रभारों के अन्तर्गत आता है। इस संबंध में यह निवेदन भी किया गया कि ईंधन अधिभार की रकम उपगत व्यय ही थी और वह अनन्यतः कंपनी के कारबार के लिए ही थी और इस प्रकार वह केवल सुसंगत लेखा-वर्ष के दौरान आय-कर की संगणना के लिए प्रभार्य लाभों के विरुद्ध कटौती के लिए अनुज्ञेय थी। चूंकि वर्ष 1974 से 1977 के लिए पिटीशनर-कंपनी की बाबत आय-कर निर्धारण को काफी पहले ही अंतिम रूप दिया जा चुका है और यदि अब उससे पूर्वोक्त अवधि के लिए ईंधन अधिभार का संदाय करने की अपेक्षा की जाती है, तो वह चालू लेखा-वर्ष के दौरान अनुज्ञेय व्यय के रूप में उसका दावा करने में समर्थ नहीं होगी। यह निवेदन भी किया गया है कि वित्तीय वर्ष 1976-77 से ईंधन अधिभार की अंतिम दर में इतनी अधिक वृद्धि मनमानी और अधिकारिता रहित है। तारीख 7 अगस्त, 1982 की अधिसूचना में उक्त वृद्धि का कोई आधार नहीं दिया गया है। प्रत्यर्थी-बोर्ड कानूनी निकाय है और इस प्रकार वह अपने उपभोक्ताओं को अतिरिक्त प्रभार का ऐसा आधार प्रकट करने की बाध्यता के अधीन है। श्री मृदुल ने यह तर्क भी दिया कि हर हालत में, ऐसी सामग्री न्यायालय के समक्ष दर्शित की जानी चाहिए थी प्रत्यर्थी बोर्ड ने अपने उत्तर में भी कोई तथ्य या सामग्री प्रकट नहीं की है और न्यायालय के समक्ष ऐसी संपूर्ण सामग्री प्रकट करने का भार प्रत्यर्थी पर था। इस संबंध में मैसर्स ब्रजलाल मणिलाल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एंड कं० और एक अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य[1], श्रीमती मेनका गांधी बनाम भारत संघ और एक अन्य[2], रमन दयाराम शेट्टी बनाम इंटरनेशनल एयरपोर्ट अथारिटी आफ इण्डिया और अन्य[3], मैसर्स कस्तूरी लाल लक्ष्मी रेड्डी आदि बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य और एक अन्य[4] और पी० एस० नकारा और अन्य बनाम भारत संघ[5] वाले मामलों का अवलम्ब लिया गया है।

24. दूसरी ओर महासालीसिटर ने यह दलील दी कि संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन मामला साबित करने का भार पिटीशनर पर था। यह दलील दी गई कि ईंधन अधिभार की दर निकालने का आधार टैरिफों में पहले से ही अन्तर्विष्ट था और बोर्ड द्वारा मनमाने ढंग से कार्यवाही करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। उत्तर में यह स्पष्ट रूप से कथन किया गया है कि बिलों में, प्रत्येक के सामने दर्शित विभिन्न अवधियों के लिए ईंधन अधिभार की अंतिम दर और पिटीशनरों द्वारा ऐसी अवधि के लिए संदेय रकम अन्तर्विष्ट थी। बोर्ड अपने उपभोक्ताओं को ऐसी बातों का आधार या विवरण देने की किसी बाध्यता के अधीन नहीं था जो ईंधन अधिभार की अंतिम दर निकालने के फार्मूला को संघटक थीं। प्रस्तुत मामले में अंतिम दरों की संगणना फार्मूला के अनुसार की गई है और खर्चे के तत्त्व को सम्यक् रूप से ध्यान में रखा गया है। अधिसूचना में संगणना के आधार का अन्तर्विष्ट किया जाना आवश्यक नहीं है। उक्त फार्मूला सुसंगत टैरिफ में पहले से ही उपलब्ध है और उसके अधिसूचना में पुनः दिए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। उपभोक्ता विभिन्न कीमतों और खर्चों तथा अन्य बातों की विशिष्टियां जानने के हकदार नहीं हैं, जो बोर्ड को अपनी टैरिफों को अंतिम रूप देने के लिए समर्थ बनाती हैं। यदि बोर्ड से अपने उपभोक्ताओं को यह विवरण प्रकट करने की अपेक्षा की जाती है तो इससे उनका काम बहुत भारी हो जाएगा और उसके लिए अपने असंख्य उपभोक्ताओं के

---

[1] [1970] 2 उम० नि० प० 319 = ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 129.

[2] [1979] 13 म० नि० प० 243 = ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 597.

[3] [1980] 23 म० नि० प० 961 = ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 1628.

[4] [1981] 23 म० नि० प० 908 = ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1992.

[5] ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 130.

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रश्नों का उत्तर देना असंभव हो जाएगा। करार और ईंधन समायोजन खंड में भी यह उपबंध किया गया है कि दरों को अंतिम रूप दिए जाने के मामले में बोर्ड का विनिश्चय उपभोक्ताओं के लिए अंतिम और आबद्धकर होगा। यह भी निवेदन किया गया कि यह ईंधन अधिभार की दरों के पुनरीक्षण का मामला नहीं था बल्कि प्रभारों को सुसंगत अवधि के लिए टैरिफ में प्रचलित ईंधन समायोजन खंड के लिए फार्मूला के अनुसार अंतिम रूप दिया गया था। पिटीशनरों ने अब तक अन्तिम दरों के आधार पर संदाय किया था और अब उनसे अंतिम आधार पर की गई संगणनाओं के आधार पर अन्तर का संदाय करने के लिए कहा गया है। टैरिफों का विरचित किया जाना और टैरिफों के अनुसार धन की मांग पूर्णतः कार्यपालक कृत्य था और पिटीशनर उस पर आपत्ति नहीं उठा सकते हैं। जैसा कि **मैसर्स कस्तूरी लाल लक्ष्मी रेड्डी आदि बनाम जम्मू कश्मीर राज्य**[1] वाले मामले में अधिकथित है, यह निवेदन भी किया गया कि अधिक से अधिक विधि द्वारा केवल दो सीमाएं अधिकथित हैं, जो इस निमित्त बोर्ड के विवेकाधिकार को नियंत्रित करती हैं। प्रथम सीमा उन निबंधनों के संबंध में है, जिन पर अनुग्रह दिया जा सकता है और दूसरी सीमा ऐसे व्यक्तियों के संबंध में है, जो ऐसे अनुग्रह को प्राप्त करने वाले हों। प्रस्तुत मामले में, बोर्ड ने इन दो सीमाओं का किसी प्रकार उल्लंघन नहीं किया है। पिटीशनरों का यह पक्षकथन नहीं है कि ईंधन समायोजन खंड के विभिन्न निबंधन अधिकथित करने में या फार्मूला तैयार करने में व्यक्तियों के संबंध में किसी प्रकार का भेदभाव (विभेद) बरता गया है। इस संबंध में **सरस्वती इण्डस्ट्रियल सिंडीकेट लि० आदि बनाम भारत संघ**[2] वाले मामले में व्यक्त किए गए निम्नलिखित मत का अवलम्ब लिया गया है :—

> "पिटीशनरों ने कीमत-नियतन को इस आधार पर चुनौती नहीं दी कि कीमतों के नियत किए जाने से पूर्व न्यायिककल्प प्रक्रिया अपनाई जानी थी, भले ही ऐसे कीमत-नियतन से प्रत्येक कारखाना प्रभावित होता हो (जैसा कि होगा ही)। कीमत-नियतन

---

[1] [1981] 2 उम० नि. प० 908 = ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1992.
[2] [1975] 2 उम० नि० प० 576 = ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 460.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकृति में विधायी अभ्युपाय है, यद्यपि वह रिपोर्ट या अन्य सामग्री में उपलब्ध वस्तुपरक मापदण्ड पर आधारित हो सकता है। अतः उससे यह परिवाद उद्भूत नहीं हो सकता है कि कीमत नियत करने में नैसर्गिक न्याय के नियम का अनुसरण नहीं किया गया है। फिर भी, अपनाया गया मापदण्ड युक्तियुक्त होना चाहिए। इस बात का निर्णय करने के प्रयोजन के लिए कि शक्ति से परे कार्य किया गया है या उसका 'मनमाना' प्रयोग किया गया है, युक्तियुक्तता वस्तुतः ऐसी बातों, जिन्हें शक्ति का प्रयोग करते समय ध्यान में रखा जाता है, तथा उक्त शक्ति के प्रयोग के प्रयोजन के बीच युक्तियुक्त संबंध का प्रदर्शन है। यह बात इस न्यायालय द्वारा अपीलार्थी श्री मीनाक्षी मिल्स लि० बनाम भारत संघ [1974] 1 एस० सी० सी० 468=(ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 366); पानीपत कोआपरेटिव शुगर मिल्स बनाम भारत संघ, [1973] 2 एस० सी० आर० 660=(ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 537) में प्रोद्धृत दोनों मामलों में स्पष्ट की गई।"

25. मेरी राय में पिटीशनरों द्वारा उठाए गए विवाद का अब अधिक महत्त्व नहीं है, क्योंकि बहस के दौरान तारीख 8 अप्रैल, 1983 को पिटीशनरों की ओर से इस आशय का आवेदन प्रस्तुत किया गया था कि प्रत्यर्थियों को कतिपय दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए निदेश दिया जाए। उक्त आवेदन के उत्तर में बोर्ड ने ईंधन अधिभार की संगणनाएं फाइल कीं, जिनमें फार्मूला में अन्तर्विष्ट प्रत्येक संघटक की रकम के विवरण दिए गए हैं। इन संगणनाओं की एक प्रति पिटीशनरों के विद्वान् काउंसेल को भी दी गई। अन्य सभी मुद्दों पर बहस तारीख 8 अप्रैल, 1983 को समाप्त हुई और पिटीशनरों के विद्वान् काउंसेल ने बोर्ड द्वारा यथा-प्रस्तुत ईंधन अधिभार की संगणनाओं पर तर्क देने के लिए समय मांगा। तारीख 13 अप्रैल, 1983 को मामले की पुनः सुनवाई की गई और पिटीशनरों के विद्वान् काउंसेल ने संगणनाओं में एकमात्र यह गलती उपदर्शित की कि ब्याज के तत्त्व को ईंधन अधिभार को अंतिम दरें निकालने के लिए गत ढंग से सम्मिलित और संगणित किया गया था। तारीख 13 अप्रैल, 1983 को और आगे निदेश दिए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसके लिए इस न्यायालय ने यह निदेश दिया था कि उसका निपटारा इन मामलों के अंतिम विनिश्चय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के साथ ही किया जाएगा। तारीख 13 अप्रैल, 1983 को फाइल किए गए आवेदन में यह प्रार्थना की गई है कि बोर्ड को, उसके द्वारा दिए गए आंकड़ों की संगणना के पूर्ण अभिलेख और विवरण प्रस्तुत करने के लिए निदेश दिया जाना चाहिए। मैं बोर्ड को, पिटीशनरों द्वारा सत्यापन हेतु, उसके द्वारा प्रस्तुत आंकड़ों की संगणना के पूर्ण अभिलेख और विवरण प्रस्तुत करने के लिए निदेश देने का कोई औचित्य नहीं देखता। फार्मूला के प्रत्येक संघटक को तैयार करने में बोर्ड द्वारा प्रस्तुत विभिन्न आंकड़ों के संबंध में पूर्ण अभिलेख देखना न तो समीचीन है और न वह लोक हित में ही है और न पिटीशनरों का ऐसा कोई विधिक अधिकार ही है। इस संबंध में पिटीशनरों को उपलब्ध एकमात्र अधिकार यह आपत्ति करना है कि फार्मूला तैयार करने में कोई भी बाह्य-विषय सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। फार्मूला तैयार करने के लिए बोर्ड द्वारा दिए गए विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्याज का तत्व भी सम्मिलित किया गया है। न तो टैरिफों में ईंधन समायोजन खंड के अधीन दिए गए फार्मूला द्वारा बोर्ड को ईंधन अधिभार की अंतिम दरें निकालते समय किसी प्रकार के ब्याज को सम्मिलित करने के लिए सशक्त किया गया है, और न प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल विधि का ऐसा कोई उपबंध या प्राधिकार ही दर्शित करने में समर्थ हुए, जिसके अधीन पिटीशनरों से ऐसे ब्याज का दावा किया जा सकता है। फार्मूला तैयार करने में ब्याज सम्मिलित किया जाना मात्र एक बाह्य विचारणा है, जो अवैध है और अभिखंडनीय है। मैं पिटीशनरों के विद्वान् काउंसेल की इस दलील में कोई बल नहीं पाता कि केवल ब्याज के सम्मिलित किए जाने के तथ्य को देखते हुए ही, बोर्ड द्वारा की गई संपूर्ण कार्यवाही अवैध घोषित कर दी जानी चाहिए और केवल इस आधार पर ही सभी अधिसूचनाएं अभिखंडित कर दी जानी चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन उठाए गए इस मुद्दे का ऊपर उपदर्शित रीति में विनिश्चय किया जा रहा है।

26. इसके पश्चात् श्री मृदुल ने यह निवेदन किया कि सामग्री प्रस्तुत न करने में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ है, जिसके आधार पर ईंधन अधिभार की दर में पुनरीक्षण किया गया था। यह निवेदन भी किया गया कि बोर्ड कानूनी निकाय है और ईंधन अधिभार अवधारित करने में वह कानूनी कृत्य का पालन कर रहा था और इस प्रकार वह वैयक्तिक सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए आबद्ध था। ऐसा करना उस स्थिति

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में तो और भी आवश्यक था जब ईंधन अधिभार की मांग भूतलक्षी प्रभाव से अर्थात् सन् 1974 से की गई। यह निवेदन किया गया कि बोर्ड की ओर से इस अभिवाक् के आधार पर इस अधिकार का दावा करना गलत था कि उपभोक्ताओं की संख्या अत्यधिक थी। स्वयं बोर्ड के ही कथन के अनुसार, ऐसे बड़े औद्योगिक उपभोक्ताओं की संख्या, जो हाई टेंशन सप्लाई प्राप्त कर रहे थे, लगभग 450 थी और ऐसी परिस्थितियों में सुनवाई या कम से कम अभ्यावेदनों पर विचार किए जाने के लिए अवसर अवश्य ही दिया जाना चाहिए था। इस संबंध में **उड़ीसा राज्य बनाम डा० (कु०) बीनापाणि देई और अन्य**[1] **ए० के० क्रेपाइयक और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य,**[2] **दाउद अहमद बनाम जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद और अन्य**[3] और **एस० एल० कपूर बनाम जगमोहन और अन्य**[4] वाले मामलों का अवलम्ब लिया गया है। मेरी राय में, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का प्रश्न प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। पिटीशनरों को वैयक्तिक सुनवाई का अवसर देने के लिए न तो किसी विधि के अधीन और न ही टैरिफों में कोई उपबंध किया गया है स्वयं ईंधन समायोजन खंड के उपबंधों में यह उल्लेख किया गया है कि बोर्ड का विनिश्चय उपभोक्ताओं के लिए अंतिम और आबद्धकर होगा। ऐसे मामलों में, जिसमें बोर्ड ऐसे फार्मूला के आधार पर ईंधन अधिभार निकालता है, जो पहले ही टैरिफ में अन्तर्विष्ट है, प्रत्येक उपभोक्ता को पहले ही इस बात की जानकारी रहती है कि वह इस टैरिफ में दिए गए फार्मूला के आधार पर निकाला जाएगा। किंतु, जब अनेक वर्षों के लिए भूतलक्षी प्रभाव से ऐसी मांग की जाती है और दायित्व कई लाख रुपये तक पहुंच जाता है, तो बोर्ड का यह कर्त्तव्य है कि वह कम से कम फार्मूला के प्रत्येक संघटक को संगणना के लिए आंकड़े दे। उपभोक्ताओं को ऐसी सूचना न देने में न तो लोक नीति का कोई प्रश्न

---

[1] ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 1269.

[2] [1970] 2 उम० नि० प० 389=ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 150.

[3] [1972] 23 म० नि० प० 541=ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 896.

[4] [1981] 3 उम० नि० प० 935=ए० आई० आर० 1981 एस० सी० 136.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्तर्वलित है और न उसमें मर्यादा की ही कोई बात अन्तर्वलित है, यदि उसकी बोर्ड से मांग की जाती है। संविदा की सामान्य विधि के सिद्धांतों के अधीन भी, यदि कोई क्रेता विक्रेता द्वारा निकाली गई माल की कीमत के विवरण चाहता है, तो वह उसे प्राप्त करने का हकदार है। इन मामलों में भी, जब न्यायालय में संगणनाएं दी गई थीं, यह प्रकट किया गया कि ईंधन अधिभार की अंतिम दर निकालने में ब्याज गलत ढंग से प्रभारित किया गया था। इस अनावश्यक मुकदमेबाजी से कदाचित बचा जा सकता था, यदि उपभोक्ताओं को पहले से ही सूचना दे दी जाती। जो भी हो, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के भंग का यह आधार इस न्यायालय के समक्ष बहस के दौरान ईंधन अधिभार की संगणनाएं प्रदत्त कर दिए जाने के पश्चात् समाप्त हो गया है।

27. अन्त में, पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल ने यह तर्क दिया कि अब बोर्ड वचन और साम्या विबन्ध के सिद्धान्तों के अधीन, ईंधन समा-जन खण्ड के अधीन अपनी शक्तियों के तात्पर्यित प्रयोग में किसी अति-रिक्त ईंधन अधिभार को उद्गृहीत करने से विबंधित है। यद्यपि यह तर्क दिया गया था, किन्तु उसे तार्किक परिणति के प्रक्रम तक पहुंचाने के लिए, उस पर आगे जोर नहीं दिया गया। इस मामले के तथ्यों और परि-स्थितियों को देखते हुए, वचन या साम्या विबन्ध का कोई प्रश्न उद्भूत नहीं होता। प्रत्यर्थी के आचरण के कारण किसी भी रीति में पिटीशनरों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। ईंधन अधिभार का संदाय करने का दायित्व टैरिफों में अन्तर्विष्ट ईंधन समायोजन खण्ड के अधीन उद्भूत होता है और यह प्रश्न ईंधन अधिभार की अन्तिम दरों के निकाले जाने से संबंधित है तथा इस मामले में विबन्ध का कोई प्रश्न उद्भूत नहीं होता है। मैंने इस तर्क का, अस्वीकार करने के प्रयोजन से ही, उल्लेख किया है अन्यथा इस पर श्री मृदुल ने भी गम्भीरतापूर्वक जोर नहीं दिया था।

28. परिणामतः, ये रिट पिटीशन भागतः मंजूर किए जाते हैं। ईंधन अधिभार की अन्तिम दरें निकालने में ब्याज के तत्त्व को अपवर्जित किया जाना होगा और फार्मूला तैयार करने में ब्याज अपवर्णित करके संगणनाएं नए सिरे से की जानी होंगी। बोर्ड ब्याज की रकम अपवर्जित करने के पश्चात् रकम संगणित करके पिटीशनरों को नए बिल देगा। इन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रिट पिटीशनों के लम्बित रहने के दौरान, रोक आवेदनों पर पारित आदेशों के आधार पर कुछ पिटीशनरों ने बैंक गारंटियां फाइल की हैं; कुछ मामलों में पिटीशनरों ने चेक द्वारा या नकद संदाय करने का अभिकथन किया है। बोर्ड रकमों की संगणना करेगा और आज से एक मास के भीतर नए बिल देगा और इस अवधि के लिए पिटीशनर अपनी बैंक गारंटियां वापस लेने में समर्थ नहीं होंगे। यदि एक मास की पूर्वोक्त अवधि के अन्दर नए बिल नहीं दिए जाते हैं, तो पिटीशनर अपनी बैंक गारंटियां वापस लेने के लिए स्वतंत्र होंगे। पिटीशनरों द्वारा चेक से या नकद या बैंक गारंटियों द्वारा संदत्त रकमों का, ब्याज की रकम अपवर्जित करके, नए सिरे से संगणित रकमों में समायोजन किया जाएगा। यदि बोर्ड ने कोई रकम अधिक प्राप्त की है, तो उसका प्रतिदाय कर दिया जाएगा या समायोजन कर दिया जाएगा। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे।

रिट पिटीशन भागतः मंजूर किए गए।

न०/ब्रह्म

नि० प० 1983 : राजस्थान—448

राज्य बनाम मूलचन्द
(State *Vs* Moolchand)

तारीख 20 मई, 1983

[न्या० गुमान मल लोढ़ा]

राजस्थान कृषि उपज विपणन अधिनियम, 1961, धारा 4 सपठित धारा 14—धारा 4 तथा धारा 14 के संहत पुनर्विलोकन से यह दर्शित होता है कि जब धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी कर दी जाए और किसी क्षेत्र को मंडी क्षेत्र घोषित कर दिया जाए, तो अधिनियम की धारा 14 के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त किए बिना किसी कृषि उपज का क्रय अथवा विक्रय नहीं किया जा सकता—धारा 4 की उपधारा (2) का स्पष्टीकरण केवल कृषि उपज के उत्पादक को छूट प्रदान करता है न कि किसी अन्य को।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपिटीशनर-प्रत्यर्थी का अभियोजन राजस्थान कृषि उपज अधिनियम की धारा 4 (2) के उल्लंघन के आधार पर उसकी धारा 28 (1) के अधीन कृषि उपज मंडी समिति के सचिव द्वारा किया गया। इस संबंध में कोई विवाद नहीं था कि प्रत्यर्थी संबद्ध बाजार क्षेत्र में कपासिया का कारबार कर रहा था। इस संबंध में भी कोई विवाद नहीं था कि कपासिया कृषि उपज है। किंतु अभियुक्त द्वारा यह दलील दी गई कि वह राजस्थान के बाहर से कपासिया खरीदा करता था और संबद्ध बाजार क्षेत्र में तो वह कपासिया को फुटकर रूप में मात्र बेचा करता था। यह भी दलील दी गई कि कपासिया संबद्ध बाजार क्षेत्र के कृषकों द्वारा नहीं उपजाई जाती।

विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया कि राजस्थान कृषि उपज विपणन अधिनियम की धारा 4 (2) का स्पष्टीकरण अनुज्ञप्ति प्राप्त किए बिना फुटकर विक्रय अनुज्ञात करता है। राज्य द्वारा अपील पर,

अभिनिर्धारित—अपील मंजूर की गई।

राजस्थान कृषि उपज विपणन अधिनियम की धारा 4 तथा धारा 14 के संहत पुनर्विलोकन से यह दर्शित होता है कि जब धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी कर दी जाए और किसी क्षेत्र को मंडी क्षेत्र घोषित कर दिया जाए तो अधिनियम की धारा 14 के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त किए बिना किसी कृषि उपज का क्रय अथवा विक्रय नहीं किया जा सकता। धारा 4 की उपधारा (2) का स्पष्टीकरण केवल कृषिक उपज के उत्पादक को छूट प्रदान करता है न कि किसी अन्य को। ऐसे छूट का लाभ उठाने के लिए ये अपेक्षाएं आज्ञापक हैं:—(1) छूट का दावा करने वाला व्यक्ति उत्पादक होना चाहिए, (2) स्वयं उत्पादक विक्रेता हो। चाहिए, (3) क्रेता ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जो उसे स्वयं अपने निजी प्राइवेट उपयोग के लिए खरीदे अथवा वह उसे फुटकर विक्रय के रूप में खरीदे। प्रस्तुत मामले में अभियुक्त न तो स्वयं उत्पादक है, न ही उसका यह दावा है कि वह ऐसी उपज का उत्पादक के रूप में विक्रेता है। चूंकि प्रथम पूर्वापेक्षित शर्त ही पूरी नहीं होती, अतः स्पष्टीकरण लागू नहीं हो सकता। अन्यथा भी यह पिटीशनर अभियुक्त का पक्षकथन नहीं है कि उसने कपासिया का क्रय अपने निजी प्राइवेट उपयोग के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिए किया था। इसके विपरीत उसने अपने कथन में यह कहा है कि उसने इसे थोक मंडी में खरीदा था और उसके द्वारा किया गया क्रय थोक है।

पैरा

[1974] 1974 आर० एल० डब्ल्यू० 263: मैसर्स कुन्दन मल बस्ती मल **बनाम** राजस्थान राज्य (M/s. Kundan Mal Basti Mal *Vs.* the State of Rajasthan); और 12

[1962] ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 1517: मोहम्मद भादी खुदा बख्श **बनाम** गुजरात राज्य; (Mohd. Bhadi Khudabaksh *Vs.* the State of Gujarat); से **प्रभेद** बताया गया। 15

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : एकल न्यायपीठ दाण्डिक अपील सं० 1978 की 485, जिसके साथ एकल न्यायपीठ दाण्डिक अपील सं० 1978 की 476, 478, 479 और 477 की भी सुनवाई की गई।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 478 (1) के अधीन पाली के मुन्सिफ तथा न्यायिक मजिस्ट्रेट श्री किशोरी लाल माथुर के तारीख 22-9-78 के निर्णय के विरुद्ध अपीलें।

अपीलार्थी की ओर से ...श्री ए० के० माथुर, अपर महाधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से ...कोई नहीं

न्या० गुमान मल लोढ़ा :

चूंकि उपर्युक्त पांचों अपीलें एक ही प्रकार की हैं, अतः उनका निपटारा एक ही सामान्य निर्णय द्वारा किया जा रहा है। दृष्टांतात्मक मामले के रूप में 1978 की अपील सं० 485 के तथ्य यहां दिए जा रहे हैं:—

2. अपिटीशनर-प्रत्यर्थी का अभियोजन राजस्थान कृषि उपज विपणन अधिनियम की धारा 4(2) के उल्लंघन के आधार पर उसकी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धारा 28(1) के अधीन पाली की कृषि उपज मंडी समिति लिमिटेड के सचिव द्वारा किया गया। इस सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी पाली कृषि उपज मंडी समिति के बाजार क्षेत्र में कपासिया का कारबार कर रहा था। इस सम्बन्ध में भी कोई विवाद नहीं है कि कपासिया कृषि उपज है, किन्तु अभियुक्त द्वारा यह दलील दी गई कि वह राजस्थान के बाहर से कपासिया खरीदा करता था और वह पाली में तो उस कपासिये को फुटकर माल बेचा करता था। यह दलील दी गई कि कपासिया पाली के कृषकों द्वारा नहीं उपजाई जाती।

3. विचारण न्यायालय ने विचारण समाप्त होने के पश्चात् अभियुक्त को इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया कि राजस्थान कृषि उपज विपणन अधिनियम की धारा 4 (2) का स्पष्टीकरण अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त किए बिना फुटकर विक्रय अनुज्ञात करता है। विचारण न्यायालय ने माननीय उच्चतम न्यायालय के ए० आई० आर० 1962 एस० सी० पृष्ठ 1424 में प्रतिवेदित विनिश्चय के पैरा सं० 15 तथा 19 जो पृष्ठ 1517 पर है तथा पृष्ठ 1520 के पैरा 2 तथा पृष्ठ 1521 के पैरा 4 का अवलम्ब लेते हुए तथा इस न्यायालय के प्रतिवेदित विनिश्चय[1] के पैरा 10 में व्यक्त मतों का भी अवलम्ब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि कपासिया के फुटकर विक्रय के लिए अनुज्ञप्ति प्राप्त करना आवश्यक नहीं था। अतः अभियोजन सफल नहीं हो सकता।

4. अभियुक्त की ओर से तामील के बावजूद भी कोई उपस्थित नहीं हुआ है। अतः अपील की सुनवाई अभिलेख पर विचार करते हुए तथा राज्य के अधिवक्ता श्री ए० के० माथुर को सुन कर की गई।

5. यद्यपि कि शुरू में यह मामला अत्यंत तुच्छ एवम् अमहत्वपूर्ण प्रकृति का प्रतीत होता है, किन्तु इसमें विधि का अत्यंत गम्भीर एवम् महत्वपूर्ण प्रश्न उठा है, जिससे सम्पूर्ण राजस्थान में कृषि उपज मंडी समितियों का कार्यकरण प्रभावित होता है और साथ ही इन कृषि उपज मंडी समितियों के बाजार क्षेत्र में कार्यरत व्यापारियों के दायित्व का प्रश्न भी इस मामले में उठा है।

[1] 1974 राजस्थान ला वीकली पृष्ठ 263.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

6. धारा 4 (2) का स्पष्टीकरण इस प्रकार है:—

*"उपधारा (2) की कोई बात किसी कृषिक उपज के क्रय या विक्रय को उस दशा में लागू नहीं होगी, यदि ऐसी उपज का उत्पादक उसका विक्रेता हो तथा क्रेता ऐसा व्यक्ति हो, जो ऐसी उपज अपने निजी प्राइवेट उपयोग के लिए क्रय करता हो अथवा यदि ऐसी उपज ऐसे क्रेता को फुटकर विक्रय के रूप में बेची जाती हो।"

1961 के अधिनियम की धारा 14 अनुज्ञप्ति जारी करने की अपेक्षा करती है, जो इस प्रकार है:—

**"अनुज्ञप्ति जारी करने की मंडी समिति की शक्ति:—जहां धारा 9 की उपधारा (2) के खण्ड (ख) के अधीन कोई मंडी स्थापित कि जाती है, वहां मंडी समिति नियमों तथा उप-विधियों के अनुसार व्यापारियों, दलालों भारतोलकों, मापकों, सर्वेक्षकों, भांडागारपालकों और अन्य व्यक्तियों को मंडी क्षेत्र के भीतर कार्य करने हेतु विहित फीस के संदाय पर अनुज्ञप्तियां जारी कर सकती है तथा ऐसी अनुज्ञप्तियों का नवीकरण कर सकती है।"

7. धारा 4 तथा धारा 14 के संहत पुनर्विलोकन से यह दर्शित होता है कि जब धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी कर दी जाए और

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है:—

"Nothing in sub-sec. (2), shall apply to purchase or sale of any agricultural produce if the producer of such produce is himself its seller and the purchaser is a person who purchases such produce for his own private use or if such produce is sold to such purchaser by way of a retail sale."

**"Power of market committee to issue lincences—Where a market is established under clause (b) of sub-section (2) of section 9, the market committee may issue and renew licences in accordance with the rules and bye-laws, to traders, brokers, weighmen, measurers, surveyors warehousemen and other person to operate in the market area on payment of the prescribed fees."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किसी क्षेत्र को मंडी क्षेत्र घोषित कर दिया जाए तो अधिनियम की धारा 14 के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त किए बिना किसी कृषिक उपज का क्रय अथवा विक्रय नहीं किया जा सकता। धारा 4 की उपधारा (2) का स्पष्टीकरण केवल कृषिक उपज के उत्पादक को छूट प्रदान करता है न कि किसी अन्य को। ऐसी छूट का लाभ उठाने के लिए निम्नलिखित अपेक्षाएं आज्ञापक हैं :—

"(1) छूट का दावा करने वाला व्यक्ति उत्पादक होना चाहिए।

(2) स्वयं उत्पादक विक्रेता होना चाहिए।

(3) क्रेता ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जो उसे स्वयं अपने निजी प्राइवेट उपयोग के लिए खरीदे अथवा वह उसे फुटकर विक्रय के रूप में खरीदे।"

8. प्रस्तुत मामले में अभियुक्त न तो स्वयं उत्पादक है न ही उसका यह दावा है कि वह ऐसी उपज का उत्पादक के रूप में विक्रेता है। चूंकि प्रथम पूर्वापेक्षित शर्त ही पूरी नहीं होती, अतः स्पष्टीकरण लागू नहीं हो सकता। अन्यथा भी यह पिटीशनर अभियुक्त का पक्षकथन नहीं है कि उसने कपासिया का क्रय अपने निजी प्राइवेट अभियुक्त के लिए किया था। इसके विपरीत उसने अपने कथन में यह कहा है कि उसने इसे थोक मंडी में खरीदा था और उसके द्वारा किया गया क्रय थोक है।

9. यह आश्चर्य की बात है कि मजिस्ट्रेट ने इस स्पष्टीकरण का गलत निर्वचन करते हुए अभियुक्त को फायदा दिया। न तो अभियुक्त ने यह दावा किया था कि वह कपासिया का उत्पादक है और न ही उसने यह दावा किया था कि उसने उसे अपने प्राइवेट उपयोग के लिए खरीदा था और न ही उसने यह दावा किया है कि उसने उसे फुटकर विक्रय के रूप में खरीदा है।

10. अतः मेरा विचार है कि अभियुक्त की दोषमुक्ति 1961 के अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (2) के स्पष्टीकरण के गलत निर्वचन पर आधारित है।

11. अब इस बात की परीक्षा की जानी है कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा अवलम्बित दोनों विनिश्चय दोषमुक्ति प्राप्त करने में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.
अभियुक्त की किसी प्रकार सहायता कर सकते हैं, क्योंकि सम्बद्ध मजिस्ट्रेट ने इन विनिश्चयों से ऐसी सहायता ली है।

12. पहले मैं **मैसर्स कुन्दन मल बस्तीमल बनाम राजस्थान राज्य**[1] के मामले में दिए गए विनिश्चय की परीक्षा करूंगा। इस विनिश्चय का पैरा 10 इस प्रकार है :—

"बिनौले बिना ओटी कपास के अंग हो सकते हैं, किन्तु ज्योंही उन्हें बिना ओटी गई कपास से अलग कर दिया जाता है, तो विनिश्चय के प्रयोजन के लिए वह एक भिन्न पण्य बन जाती है, यद्यपि कि रासायनिक रूप से वह पूर्ववत ही बनी रहती है। अपरंच, महत्वपूर्ण बात यह है कि कोई पण्य मंडी में ही मंडी यार्ड में खरीदा या बेचा जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि उसे मंडी क्षेत्र में उपजाया जाए। यदि ऐसा होता, तो इस प्राख्यान के आधार पर विधि का सरलतया अपवंचन किया जा सकता कि कोई पण्य-विशेष किसी विशिष्ट मंडी क्षेत्र में नहीं उपजाया जाता। अतः यह इस दलील में कोई सार नहीं है कि विनियमित किया जाने वाला पण्य मंडी क्षेत्र में उपजाया भी जाना चाहिए। यह हो सकता है कि पिटीशनर पण्य को गुजरात से लाये। किन्तु यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त आंकड़े नहीं हैं कि उसे माल में हक उनके राजस्थान से बाहर रहते हुए ही प्राप्त हो गया है और उसने उन्हें पाली में नहीं खरीदा है। ये सभी प्रश्न तथ्य के प्रश्न हैं, जिनकी परीक्षा इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए सुविधापूर्वक नहीं की जा सकती।"

13. यह समझना कठिन है कि उपर्युक्त मताभिव्यक्ति अभियुक्त की सहायता किस प्रकार करती है। माननीय न्या० कान सिंह ने, जैसे कि वे उस समय थे, यह अभिनिर्धारित किया है कि यह आवश्यक नहीं है कि पण्य मंडी क्षेत्र में उपजाया जाए। अपरंच, यह भी महत्वपूर्ण है कि माननीय न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि पण्य गुजरात से खरीदा जा सकता है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं होगा कि व्यापारी ने इसमें हक गुजरात में प्राप्त किया न कि राजस्थान में।

---

[1] 1974 आर० एल० डब्ल्यू० 263.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

14. अपरंच, महत्वपूर्ण बात तो यह है कि व्यवहारी का पण्य के सम्बन्ध में व्यवहार मंडी क्षेत्र में उसे खरीदकर या बेचकर या दोनों ही कार्य करके करना चाहिए। प्रस्तुत मामले में, यह स्वीकृत स्थिति है कि अभियुक्त उसे मंडी क्षेत्र में बेचता है। अतः ऐसा करने के लिए उसे अनुज्ञप्ति की अपेक्षा होगी। मेरा सुविचारित मत यह है कि **कुन्दन मल बस्ती मल के मामले**[1] में अधिकथित सिद्धान्त अभियोजन का समर्थन करता है, न कि अभियुक्त का।

15. अब इस बात की परीक्षा करना उचित होगा कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा अवलम्बित **मोहम्मद भादी खुदा बक्श बनाम गुजरात राज्य**[2] में अधिकथित सिद्धांत दोषमुक्ति को न्यायोचित ठहराते हैं। उपर्युक्त विनिश्चय में अधिसूचना की विधिमान्यता को चुनौती इस आधार पर दी गई थी कि वह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है। अधिसूचना में प्रभार्य अधिकतम फीस उपबंधित की गई थी। ए क्लास तथा बी क्लास व्यापारियों की अनुज्ञप्तियों का उपबन्ध करने वाली उपविधियों को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वे संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 19 की उल्लंघनकारी हैं। कतिपय अन्य उपबन्धों को भी शक्ति-बाह्य होने के आधार पर चुनौती दी गई थी। उपर्युक्त विनिश्चय के पैरा 15 में इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि क्या अधिनियम अविधिमान्य है और उस संदर्भ में यह मत अभिव्यक्त किया गया कि अधिनियम द्वारा फुटकर व्यापार को नियंत्रित नहीं किया गया है। मताभिव्यक्ति अधिनियम, नियमों आदि के विशेष उपबन्धों तक सीमित था।

16. प्रस्तुत मामले में, स्वयं पिटीशनर ने यह स्वीकार किया है कि वह कपासिया का क्रय थोक में करता है और फिर से फुटकर बेचता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह निर्विवादित है कि पिटीशनर, जहां तक खरीदने का सम्बन्ध है, थोक व्यापारी है और उसके द्वारा कपासिया मंडी क्षेत्र में थोक क्रय के रूप में लाई जाती है।

17. न तो पैरा 15 न पैरा 19 न ही पैरा 2 या 4 किसी भी प्रकार यह अधिकथित करते हैं कि कोई व्यवहारी, जो माल मंडी क्षेत्र में थोक में खरीदता है, चाहे खरीद उस क्षेत्र में की जाए या उसके बाहर

---

[1] 1974 आर० एल० डब्ल्यू० 263.

[2] ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 1517.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से की जाए, किन्तु जब वह उस माल को विक्रय के प्रयोजन के लिए मंडी क्षेत्र में लाता है तो वह अधिनियम के उपबंधों द्वारा शासित नहीं होता और उसे अनुज्ञप्ति लेने की आवश्यकता नहीं है।

18. मंडी फीस प्रभारित करने का प्रश्न अनुज्ञप्ति लेने के प्रश्न के साथ मिलाया नहीं जाना चाहिए, क्योंकि अनुज्ञप्ति लेना अनेक प्रयोजनों के लिए आशयित हो सकता है, जिनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि अधिनियम का कृषकों को उचित मूल्य सुनिश्चित करने का उद्देश्य पूरा हो जाए और ऐसा मंडी क्षेत्र में क्रय और विक्रय को मंडी समिति के अधिकरण की मार्फत एक सीमित सीमा तक और विविध अभिलेखों के रखने पर जोर देकर किया जा सकता है। उपर्युक्त को दृष्टि में रखते हुए मेरा यह विचार है कि अभियुक्त की दोषमुक्ति कायम नहीं रखी जा सकती और अपास्त की जानी चाहिए।

19. उपर्युक्त विचार-विमर्श का परिणाम यह है कि विचारण न्यायालय के निर्णय, जिनके द्वारा राजस्थान कृषिक उपज विपणन अधिनियम, 1961 की धारा 28 (1) के अधीन उपर्युक्त पांच अभियुक्तों को, जो अधिनियम की धारा 4(2) तथा 17 के उल्लंघन के लिए अभियोजित किए गए थे, दोषमुक्त कर दिया गया है, निम्नलिखित पांचों अपीलों में अपास्त किए जाते हैं और निम्नलिखित पांचों अपीलों में अभियुक्त प्रत्यर्थियों को अधिनियम की धारा 4(2) तथा 17 के उल्लंघन के लिए उसकी धारा 28 (1) के अधीन अपराध कारित करने के आधार पर सिद्धदोष किया जाता है:—

1. 1978 की एकल न्यायपीठ दाण्डिक अपील सं० 485—राजस्थान राज्य **बनाम** मूल चंद

2. 1978 की एकल न्यायपीठ दाण्डिक अपील सं० 476—राजस्थान राज्य **बनाम** पारसमल

3. 1978 की एकल न्यायपीठ दाण्डिक अपील सं० 478—राजस्थान राज्य **बनाम** सुकन राज

4. 1978 की एकल न्यायपीठ दाण्डिक अपील सं० 479—राजस्थान राज्य **बनाम** सांसमल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

5. 1978 की एकल न्यायपीठ दाण्डिक अपील सं० 477—
राजस्थान राज्य **बनाम** शांतिलाल

उपर्युक्त अपीलों में से प्रत्येक अभियुक्त प्रत्यर्थी को 1,000 रुपये के जुर्माने से दंडित किया जाता है और जुर्माने का संदाय करने में व्यतिक्रम की दशा में एक मास के कारावास से दंडित किया जाता है । जुर्माना आज से तीन मास की अवधि के भीतर जमा करा दिया जाना चाहिए ।

20. चूंकि अभियुक्त-प्रत्यर्थी अनुपस्थित हैं और उनकी ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है, अतः विचारण न्यायालय अभियुक्तों को सूचित करेगा और उनसे जुर्माने के संदाय की मांग करेगा। परिणामस्वरूप पांचों अपीलें उपर्युक्त रूप में मंजूर की जाती हैं ।

व्रह्म अपील मंजूर की गई।

नि० प० 1983 : राजस्थान—457

मैसर्स नव भारत राइस एंड जनरल मिल्स ब० राजस्थान राज्य और अन्य
(M/s. Naw Bharat Rice & General Mills *Vs.* State of Rajasthan & others)

तारीख 18 जुलाई, 1983
[न्या० एस० के० मल लोढ़ा और न्या० (कुमारी) के० भटनागर]

1. आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955, धारा 2 और 3 सहपठित संविधान, 1950 अनुच्छेद 19(1) (छ)—संविधान में अन्तर्विष्ट नीति निदेशक तत्वों का लक्ष्य समतावादी समाज की स्थापना है, जिससे संविधान के ढांचे के अन्तर्गत कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सके। यदि अधिरोपित निर्बन्धन राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के अनुरूप हैं तो वे कायम रखे जाने होंगे, क्योंकि वे लोकहित में और स्पष्टतः युक्तियुक्त हैं। युक्तियुक्त निर्बन्धनों को विभेदकारी नहीं माना जा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

2. संविधान, 1950, अनुच्छेद 19(1)(छ) सहपठित आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955, धारा 2 और 3–संविधान में अन्तर्विष्ट नीति निदेशक तत्वों का लक्ष्य समतावादी समाज की स्थापना है, जिससे संविधान के ढांचे के अन्तर्गत कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सके। यदि अधिरोपित निर्बन्धन राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के अनुरूप हैं, तो वे कायम रखे जाने होंगे, क्योंकि वे लोकहित में और स्पष्टतः युक्तियुक्त हैं। युक्तियुक्त निर्बन्धनों को विभेदकारी नहीं माना जा सकता है।

पिटीशनर भागीदारी फर्म है। पिटीशनर द्वारा धान की कुटाई का कार्य करने के लिए एक चावल मिल खोला गया। उसने धान-कुटाई उद्योग (विनियमन) अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त की। राजस्थान चावल उपाप्ति (उद्ग्रहण) आदेश, 1982 के प्रवृत्त होने के पश्चात्, पिटीशनर से राज्य सरकार को 50% उद्ग्रहण देने की अपेक्षा की गई है और इस उद्ग्रहण का परिदान देने के पश्चात् वह शेष 50% चावल बाजार में बेचने के लिए हकदार है। अधिसूचना सं० एफ० 17 (iii) ख vi/विधि/80 राजस्थान राजपत्र, असाधारण, में तारीख 24 दिसम्बर, 1982 को प्रकाशित की गई। उक्त अधिसूचना के अधीन, जो राजस्थान व्यापार वस्तु (अनुज्ञापन और नियंत्रण) आदेश, 1980 के खण्ड 18 के अधीन दी गई शक्तियों के प्रयोग में जारी की गई थी, यह उपबंध किया गया है कि थोक विक्रेता और चावल मिल का मालिक, एक समय में, उसमें विनिर्दिष्ट मात्रा से अधिक मात्रा स्टाक में नहीं रख सकता है। यह सीमा नगरीय (नगरपालिक) क्षेत्र के लिए 1000 क्विंटल और ग्रामीण (पंचायत) क्षेत्र के लिए 500 क्विंटल दर्शित की गई। यह अधिसूचना तारीख 31 दिसम्बर, 1982 से प्रभावी बनाई गई। जिला चावल मिलमालिक एसोसिएशन ने राजस्थान के जयपुर स्थित खाद्य आयुक्त के समक्ष एक अभ्यावेदन किया, जिसमें यह प्रार्थना की गई कि चावल मिलमालिकों को अधिसूचना से छूट प्रदान की जाए, जिसमें चावल मिल के मालिकों के लिए स्टाक की सीमाएं विहित की गई हैं। राज्य सरकार और खाद्य आयुक्त की ओर से कोई भी उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। पिटीशनर ने पूर्वोक्त अधिसूचना को, चुनौती देते हुए रिट पिटीशन फाइल किया। विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट पिटीशन संक्षेपतः खारिज कर दिया। अतः पिटीशनर ने यह विशेष अपील फाइल की है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित—अपील खारिज की गई।

अधिसूचना से यह स्पष्ट है कि चावल की कुटाई की मात्रा के संबंध में कोई निर्बन्धन अधिरोपित नहीं किया गया है। थोक क्रेताओं और चावल मिल के मालिकों द्वारा चावल के भण्डारण के लिए स्टाक की सीमा नियत की गई है तथा उस सीमा का अधिसूचना (प्रदर्श 3) में उपबंध किया गया है। भण्डारण के प्रयोजन के लिए स्टाक की सीमा नियत करने का विनिर्माण के प्रयोजन के लिए या उत्पादन के प्रयोजन के लिए सीमा नियत करने के रूप में अर्थ नहीं लगाया जा सकता है। पिटीशनर कम्पनी धान की कुटाई के पश्चात् चावल बेचती है और उसका कारबार चावल बेचने का है, जो एक व्यापार-वस्तु है और इसलिए वह आदेश के खण्ड 2(ङ) के अर्थान्तर्गत व्यापारी है। अतः इस दलील में कोई बल नहीं है कि पिटीशनर कम्पनी आदेश के खण्ड 2(ङ) में यथा-परिभाषित व्यापारी नहीं है। अधिसूचना (प्रदर्श 3) उसे लागू होती है क्योंकि वह व्यापारी के रूप में चावल के विक्रय या विक्रयार्थ भण्डारण के प्रयोजन के लिए धान की कुटाई का कारबार करती है। (पैरा 12)

अधिसूचना, जिसमें चावल की उस अधिकतम मात्रा का उपबंध किया गया है, जिसे चावल मिल का मालिक, जो व्यापारी है, किसी एक समय पर अपने कब्जाधीन रख सकता है, चावल की जमाखोरी रोकने के लिए आशयित है। यह युक्तियुक्त निर्बन्धन है। इस प्रकार अधिसूचना को विभेदकारी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि उसके अन्तर्गत चीनी, गुड़ और खण्डसारी का विनिर्माता नहीं आता है।

संविधान में अन्तर्दिष्ट नीति निदेशक तत्वों का लक्ष्य समतावादी समाज की स्थापना है, जिससे संविधान के ढांचे के अन्तर्गत कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सके। यदि अधिरोपित निर्बन्धन राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के अनुरूप हैं, तो वे कायम रखे जाने होंगे, क्योंकि वे लोक-हित में और स्पष्टतः युक्तियुक्त हैं। युक्तियुक्त निर्बन्धनों को विभेदकारी नहीं माना जा सकता है। (पैरा 14)

		पैरा
[1982]	ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 291 : मैसर्स कृष्ण लाल प्रवीण कुमार **बनाम** राजस्थान राज्य (M/s. Krishan Lal Praveen Kumar *Vs.* State of Rajasthan) ;	14

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1981] ए० आई० आर० 1981 एस० सी० 873 : मैसर्स लक्ष्मी खण्डसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (M/s. Laxmi Khndsari *Vs.* State of U.P.) का अवलम्ब लिया गया। 14

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1983 की सिविल विशेष अपील सं० 52.

विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध अपील।

अपीलार्थी की ओर से ... श्री एस० एन० शर्मा

राज्य की ओर से ... श्री एच० एन० कल्ला, सरकारी अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्या० एस० के० मल लोढ़ा ने दिया।

न्या० लोढ़ा :

अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल और विद्वान् सरकारी अधिवक्ता को तारीख 18 जुलाई, 1983 को सुनने के पश्चात् हमने यह निष्कर्ष निकाला कि इस अपील में कोई तत्व नहीं है और वह तदनुसार खारिज कर दी गई। हमने यह आदेश किया था कि आदेश के समर्थन में कारण बाद में अभिलिखित किए जाएंगे।

2. हमने जो निष्कर्ष निकाला था उसके समर्थन में अब हम कारण वर्णित करने के लिए अग्रसर होते हैं।

3. अपीलार्थी ने, जो संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट पिटीशन में पिटीशनर था, राजस्थान उच्च न्यायालय अध्यादेश (राजस्थान हाई कोर्ट आर्डीनेंस), 1949 की धारा 18 के अधीन यह अपील फाइल की है, जिसमें इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 20 जनवरी, 1983 के आदेश की शुद्धता को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा उन्होंने 1983 के खण्ड न्यायपीठ सिविल रिट पिटीशन सं० 176 को आरम्भ में ही खारिज कर दिया था।

4. अपीलार्थी को इसमें इसके पश्चात् 'पिटीशनर' कहा जाएगा और प्रत्यर्थी राजस्थान राज्य और भारत संघ को क्रमशः 'विरोधी पक्षकार सं० 1 और 2' कहा जाएगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

5. पिटीशनर मैसर्स नव भारत राइस एण्ड जनरल मिल्स, (इण्डस्ट्रीयल एरिया, हनुमानगढ़ जंक्शन) भागीदारी फर्म है। पिटीशनर द्वारा धान की कुटाई (राइस मिलिंग) का कार्य करने के लिए एक चावल मिल खोला गया। उसने धान-कुटाई उद्योग (विनियमन) अधिनियम [राइस मिलिंग इण्डस्ट्री (रेगुलेशन) ऐक्ट] (1958 का अधिनियम सं० 21) के अधीन अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त की। राजस्थान चावल उपाप्ति (उद्ग्रहण) आदेश [राजस्थान राइस प्रोक्योरमेंट (लेवी) आर्डर], 1982 के प्रवृत्त होने के पश्चात्, पिटीशनर से राज्य सरकार को 50% उद्ग्रहण देने की अपेक्षा की गई है और इस उद्ग्रहण का परिदान देने के पश्चात् वह शेष 50% चावल बाजार में बेचने का हकदार है।

6. अधिसूचना सं० एफ० 17(iii) ख vi/विधि/80 राजस्थान राजपत्र, असाधारण, में तारीख 24 दिसम्बर, 1982 को प्रकाशित की गई। उक्त अधिसूचना के अधीन, जो राजस्थान व्यापार वस्तु (अनुज्ञापन और नियंत्रण) आदेश [राजस्थान ट्रेड आर्टिकल्स (लाइसेंसिंग एण्ड कण्ट्रोल)], 1980 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'आदेश' कहा गया है) के खण्ड 18 के अधीन दी गई शक्तियों के प्रयोग में जारी की गई थी, यह उपबंध किया गया है कि थोक विक्रेता और चावल मिल का मालिक, एक समय में, उसमें विनिर्दिष्ट मात्रा से अधिक मात्रा स्टाक में नहीं रख सकता है। यह सीमा नगरीय (नगरपालिक) क्षेत्र के लिए 1,000 क्विंटल और ग्रामीण (पंचायत) क्षेत्र के लिए 500 क्विंटल दर्शित की गई। यह अधिसूचना तारीख 31 दिसम्बर, 1982 से प्रभावी बनाई गई। जिला चावल-मिलमालिक एसोसिएशन (डिस्ट्रिक्ट राइस मिलर्स एसोसिएशन) ने तारीख 31 दिसम्बर, 1982 को राजस्थान के जयपुर स्थित खाद्य आयुक्त के समक्ष एक अभ्यावेदन किया, जिसमें यह प्रार्थना की गई कि चावल मिलमालिकों को उस अधिसूचना से छूट प्रदान की जाए, जिसमें चावल मिल के मालिकों के लिए स्टाक की सीमाएं विहित की गई हैं। राज्य सरकार और खाद्य आयुक्त की ओर से कोई भी उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। पिटीशनर ने पूर्वोक्त अधिसूचना को, जिसे प्रदर्श 3 के रूप में चिह्नित किया गया है, चुनौती देते हुए, तारीख 18 जनवरी, 1983 को रिट पिटीशन फाइल किया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

7. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 20 जनवरी, 1983 के अपने आदेश द्वारा रिट पिटीशन संक्षेपतः खारिज कर दिया। अतः पिटीशनर ने यह विशेष अपील फाइल की, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है।

8. विरोधी पक्षकारों को हेतुक दर्शित करने की सूचना जारी किए जाने का आदेश किया गया। तारीख 6 जुलाई, 1983 को पिटीशनर के विद्वान् काउन्सेल श्री एस० एन० शर्मा ने यह बताया कि भारत संघ को प्रोफार्मा पार्टी प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाया गया है और उसका कारण यह है कि अधिसूचना, प्रदर्श 3 केन्द्रीय सरकार की सहमति के पश्चात् ही जारी की गई है। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि अपील के अन्तिम निपटारे के लिए भारत संघ आवश्यक पक्षकार नहीं है, क्योंकि अधिसूचना (प्रदर्श 3) राज्य सरकार द्वारा जारी की गई है। विद्वान् सरकारी अधिवक्ता श्री एच० एन० कल्ला ने इस तथ्य का खण्डन नहीं किया। उस दिन, अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल श्री एस० एन० शर्मा ने यह कहा कि इस विशेष अपील का ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही अन्तिम रूप से निपटारा कर दिया जाए। चूंकि विद्वान् सरकारी अधिवक्ता श्री कल्ला को कोई आपत्ति नहीं थी, अतः हमने यह आदेश किया कि विशेष अपील का ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही अन्तिम रूप से निपटारा कर दिया जाएगा। विद्वान् सरकारी अधिवक्ता ने रिट पिटीशन का विरोध करते हुए, तारीख 14 जुलाई, 1983 को उत्तर फाइल किया।

9. हमने अपील के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल श्री एस० एन० शर्मा और विद्वान् सरकारी अधिवक्ता श्री एच० एन० कल्ला को सुन लिया है।

10. श्री एस० एन० शर्मा ने यह दलील दी कि पिटीशनर कम्पनी चावल की 'विनिर्माता' है और इसलिए वह आदेश के अधीन यथा-परिभाषित 'व्यापारी' की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आती है, क्योंकि 'विनिर्माता' व्यापारी नहीं है और स्टाक की बाबत कोई भी निर्बन्धन अधिरोपित नहीं किया जा सकता था, क्योंकि ऐसा करने का अर्थ उत्पादन पर निर्बन्धन अधिरोपित करना होगा। इसके पश्चात् उन्होंने यह दलील दी कि यदि पिटीशनर कम्पनी को, जो धान की कुटाई का कार्य कर रही है, आदेश द्वारा यथा परिकल्पित व्यापारी माना जाता है, तो यह विभेदक कार्यवाही होगी, क्योंकि ऐसा कोई भी निर्बन्धन अधिरोपित नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया जा सकता था क्योंकि चीनी, खण्डसारी और अन्य खाद्य पदार्थों के विनिर्माताओं को छूट प्रदान की गई है। विद्वान् सरकारी अधिवक्ता श्री एच० एन० कल्ला ने अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल द्वारा दी गई दोनों दलीलों का जोरदार विरोध किया।

11. अतः सर्वप्रथम विचारार्थ यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या पिटीशनर कम्पनी जो धान की कुटाई का कार्य करती है, आदेश के खण्ड 2(ग) में यथा परिभाषित 'व्यापारी' है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उक्त आदेश भारत सरकार के कृषि और सिंचाई मंत्रालय (खाद्य विभाग) के आदेशों, जो सा० का० नि० सं० 452(ई), तारीख 25 अक्तूबर, 1972, सा० का० नि० सं० 168(ई), तारीख 13 मार्च, 1973 और सा० का० नि० सं० 809, तारीख 9 जून, 1978 के अधीन प्रकाशित किए गए थे और भारत सरकार के उद्योग और नागरिक पूर्ति मंत्रालय (नागरिक पूर्ति और सहयोग विभाग) के आदेशों, के साथ पठित, जो का० आ० 681(ई) और का० आ० 682(ई) तारीख 28 नवम्बर, 1974 के अधीन प्रकाशित किए गए थे, भारत सरकार के आवश्यक वस्तु अधिनियम, (1955 का केन्द्रीय अधिनियम सं० 10) की धारा 3 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में और केन्द्रीय सरकार की पूर्व सहमति से किया गया था।

12. आवश्यक वस्तु अधिनियम (1955 का अधिनियम सं० 10) (संक्षेप में जिसे 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 3, जहां तक वह इस मामले के प्रयोजन के लिए तात्विक है, इस प्रकार है:—

"3. आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, प्रदाय, वितरण, आदि का नियंत्रण करने की शक्तियां:—

(1) यदि केन्द्रीय सरकार की यह राय हो कि किसी आवश्यक वस्तु के प्रदाय को बनाए रखने या बढ़ाने के लिए या उसका साम्यिक वितरण और उचित कीमतों पर उसकी उपलभ्यता सुनिश्चित करने के लिए अथवा भारत की रक्षा के लिए या सैनिक संक्रियाओं के दक्ष संचालन के लिए किसी आवश्यक वस्तु की प्राप्ति के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह आदेश द्वारा उसके उत्पादन, प्रदाय और वितरण तथा उसमें व्यापार और वाणिज्य के विनियमन या प्रतिषेध के लिए उपबन्ध कर सकेगी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(2) उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले विना तदधीन किए गए आदेश द्वारा निम्नलिखित का उपबंध किया जा सकेगा :—

* * * *

* * * *

* * * *

(घ) किसी आवश्यक वस्तु के भण्डारकरण, परिवहन, वितरण, व्ययन, अर्जन, प्रयोग या खपत का अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञापत्रों द्वारा या अन्यथा विनियमन।"

आदेश के खण्ड 2(ङ) में व्यवहारी पद को इस प्रकार परिभाषित किया गया है :—

*"'व्यवहारी' पद से राष्ट्रीय और राज्य-स्तरीय विधिक सहकारी सोसाइटी से भिन्न सहकारी सोसाइटी, फर्म या व्यक्तियों का संगम अभिप्रेत है, जो किसी व्यापार-वस्तु के क्रय, विक्रय या विक्रयार्थ भण्डारण के कार्य में रत है, भले ही वह ऐसे किसी अन्य कारबार के साथ कर रहा हो या अन्यथा, और उसके अन्तर्गत उसका प्रतिनिधि या अभिकर्ता भी आता है किन्तु उसमें निम्नलिखित सम्मिलित नहीं हैं—

(i) ऐसा व्यक्ति जो किसी धृति के अधीन या किसी भी हैसियत में कृषि भूमि धारित किए हुए है या उसका ऐसी

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :—

" 'Dealer' means a person, a firm, an association of persons or a Cooperative Society other than a National and State level Cocpertive Society engaged in the business of purchases sale or storage for sale of any trade article whether or not in conjunciion with any other business and includes his representative or agent but does not include :—

(i) a person who holds or is in possession of agriculture land under any tenure or any capacity and on

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कृषि भूमि पर कब्जा है और जिस पर वह खाद्यान्न, तिलहन या दाल को उगाता है या उगा चुका है;

(ii) चीनी, गुड़ और खण्डसारी का विनिर्माता;

(iii) दालों और खाद्य तेलों का उत्पादक।"

धारा 2(फ) में 'व्यापार वस्तु' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि उससे अनुसूची I या अनुसूची II में वर्णित वस्तु अभिप्रेत है। अनुसूची I का पैरा 'क' खाद्यान्न के संबंध में है। 'चावल' का उल्लेख मद सं० 6 पर है। 'थोक विक्रेता' धारा 2(ब) में ऐसे व्यापारी के रूप में परिभाषित है, जो अन्य व्यापारियों या थोक उपभोक्ताओं को अनुसूची I में वर्णित एक या अधिक व्यापार वस्तुएं बेचता है। पिटीशनर कम्पनी धान की कुटाई का कार्य करती है। उसके पश्चात् वह उसे बेचती है। यहां यह उल्लेखनीय है कि अनुसूची I के पैरा 'ङ' में, जो अन्य वस्तुओं के संबंध में है, चीनी, गुड़, खण्डसारी और मिट्टी के तेल तथा कोयले को व्यापार वस्तुओं के रूप में वर्णित किया गया है। धारा 2(ङ) में व्यापारी की परिभाषा में, चीनी गुड़ और खण्डसारी का विनिर्माता सम्मिलित नहीं है। अधिसूचना (प्रदर्श 3) में नगरीय (नगरपालिक) क्षेत्र और ग्रामीण (पंचायत) क्षेत्र में स्टाक की सीमाएं विहित की गई हैं। अधिसूचना से यह स्पष्ट है कि चावल की कुटाई की मात्रा के संबंध में कोई निर्बन्धन अधिरोपित नहीं किया गया है। थोक विक्रेताओं और चावल मिल के मालिकों द्वारा चावल के भण्डारण के लिए स्टाक की सीमा नियत की गई है तथा उस सीमा का अधिसूचना (प्रदर्श 3) में उपबंध किया गया है। हमारे सुविचारित मत के अनुसार, भण्डारण के प्रयोजन के लिए स्टाक की सीमा नियत करने का विनिर्माण के प्रयोजन के लिए या उत्पादन के प्रयोजन के लिए सीमा नियत करने के रूप में अर्थ नहीं लगाया जा सकता है। पिटीशनर कम्पनी धान की कुटाई के पश्चात् चावल बेचती है और उसका कारबार चावल बेचने का है, जो एक व्यापार-वस्तु है और इसलिए वह आदेश के खण्ड 2(ङ) के अर्थान्तर्गत

---

which he raises or has raised crop of foodgrains oilseeds or whole pulses;

(ii) a manufacturer of sugar, gur and khandsari;

(iii) a producer of pulses and edible oils."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्यापारी है। इन कारणों से हम अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल की इस दलील से सहमत होने में असमर्थ हैं कि पिटीशनर-कम्पनी आदेश के खण्ड 2(ङ) में यथा-परिभाषित व्यापारी नहीं हैं। अधिसूचना (प्रदर्श 3) उसे लागू होती है क्योंकि वह व्यापारी के रूप में चावल के विक्रय या विक्रयार्थ भण्डारण के प्रयोजन के लिए धान की कुटाई का कारबार करती है। अतः प्रथम दलील अस्वीकार की जाती है।

13. द्वितीय दलील पर विचार करने से पूर्व आदेश के खण्ड 18 का परिशोलन करना उचित होगा, जो इस प्रकार है :—

*"**व्यापार वस्तुओं के कब्जे पर निर्बन्धन** :—

कोई भी व्यक्ति—

(i) केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए आदेश के अधीन; या

(ii) समय-समय पर राजपत्र में अधिसूचना जारी करके, केन्द्रीय सरकार की पूर्व सहमति से राज्य सरकार द्वारा;

नियत की गई सीमा से अधिक, अनसूची I और अनुसूची II में वर्णित किसी भी व्यापार वस्तु को किसी भी समय भंडार में नहीं रखेगा या उसे अपने कब्जे में नहीं रखेगा।"

14. अब हम द्वितीय दलील पर आते हैं, जो विभेद के संबंध में है। इस संबध में हम **मैसर्स कृष्ण लाल प्रवीण कुमार** बनाम राजस्थान

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :—

"*Restriction on possession of trade articles* :—

No person shall either by himself store or have in his possession at any time any trade article mentioned in Schedule I and Schedule II in quantity exceeding the limits fixed.

(i) under an order issued by the Central Government; or

(ii) by the State Government with prior concurrence of the Central Government by issuing a notification in Official Gazette, from time to time."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.
राज्य[1] वाले मामले के प्रति निर्देश करना उचित समझते हैं, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया है—

"खण्ड 18 के अधीन अधिसूचना, जिसमें गेहूं की उस अधिकतम मात्रा का उपबंध किया गया है, जो किसी व्यापारी द्वारा किसी एक समय पर कब्जे में रखी जा सकती है, स्पष्टतः खाद्यान्न की जमाखोरी रोकने के लिए आशयित है और वह निश्चित रूप से संविधान के अनुच्छेद 19(6) के अर्थान्तर्गत युक्तियुक्त निर्बन्धन है।"

संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) द्वारा प्रदत्त अधिकार पर युक्तियुक्त निर्बन्धनों की बावत **मैसर्स लक्ष्मी खण्डसारी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया :—

"यह प्रश्न कि युक्तियुक्त निर्बन्धन क्या हैं, सहज ही मामले की प्रकृति और परिस्थितियों, कानून के स्वरूप तथा उस उद्देश्य पर निर्भर करेगा, जो वह प्राप्त करना चाहता है, तथा विद्यमान परिस्थितियों, दूर की जाने वाली बुराई की सीमा और नागरिक के अधिकारों पर अधिरोपित अवरोध या निर्बन्धन की प्रकृति पर भी निर्भर करेगा। ऐसा कोई अनमनीय नियम अधिकथित करना कठिन है, जो सामान्य रूप से सब के लिए लागू किया जा सकता हो किन्तु उस न्यायालय ने बराबर यह अभिनिर्धारित किया है कि ऐसे निर्बन्धन अधिरोपित करते समय राज्य को, नागरिकों के अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित करके सामाजिक नियंत्रण की कोटि में आने वाला वस्तुपरक मापदण्ड अपनाना चाहिए, जहां स्थिति की अनिवार्यता ऐसी अपेक्षा करे। यह स्पष्ट है कि सामाजिक नियंत्रण अपनाते समय उन प्राथमिक विचारणाओं में से, जिन्हें न्यायालय महत्त्व देगा, एक यह है कि संविधान में अन्तर्विष्ट नीति निदेशक तत्वों का लक्ष्य समतावादी समाज की स्थापना है, जिससे कि संविधान के ढांचे के अन्तर्गत कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सके, अतः इस प्रश्न पर विचार करते समय इन सिद्धान्तों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि

1. ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 291.
2. ए० आई० आर० 1981 एस० सी० 873.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

> निर्बन्धन युक्तियुक्त हैं या नहीं। यदि अधिरोपित निर्बन्धन राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के अनुरूप प्रतीत होते हैं, तो उन्हें कायम रखा जाना होगा, क्योंकि वे लोक हित में और स्पष्टतः युक्तियुक्त होंगे।"

पूर्वोक्त दोनों विनिश्चयों में अधिकथित सिद्धान्त प्रस्तुत मामले को पूर्णतः लागू होते हैं। अधिसूचना (प्रदर्श 3), जिसमें चावल की उस अधिकतम मात्रा का उपबंध किया गया है, जिसे चावल मिल का मालिक किसी एक समय पर अपने कब्जाधीन रख सकता है, जो, जैसा कि ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है, व्यापारी है, चावल की जमाखोरी रोकने के लिए आशयित है। यह युक्तियुक्त निर्बन्धन है इस प्रकार अधिसूचना को विभेदकारी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि उसके अन्तर्गत चीनी, गुड़ और खण्डसारी का विनिर्माता नहीं आता है। द्वितीय दलील भी अस्वीकार की जाती है।

15. विद्वान् सरकारी अधिवक्ता, श्री एच० एन० कल्ला ने यह दलील दी कि पिटीशनर-कम्पनी ने आदेश के अधीन व्यापारी के रूप में अनुज्ञप्ति प्राप्त कर ली है, अतः जब उसने रिट पिटीशन फाइल कर दिया है तो उसे यह दलील देने की छूट नहीं मिल सकती है कि पिटीशनर आदेश के खंड 2(ङ) में यथा परिभाषित व्यापारी नहीं है। उनके अनुसार, पिटीशनर-कम्पनी यह आपत्ति करने से विवर्जित है कि आदेश उसे लागू नहीं होता है।

16. इस निष्कर्ष को देखते हुए कि पिटीशनर-कम्पनी आदेश के खण्ड 2(ङ) में यथा-परिभाषित व्यापारी है, हम इस दलील पर और अधिक विचार करना उचित नहीं समझते हैं।

17. हमारे विचार के लिए कोई अन्य मुद्दा नहीं उठाया गया है।

18. इस अपील में कोई बल नहीं है और तद्नुसार उसे खारिज किया जाता है।

अपील खारिज की गई।

न०/ब्रह्म

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नि० प० 1983 : राजस्थान-469

रूपा और अन्य बनाम कांजी और अन्य

(Roopa and others *Vs.* Kanji and others)

तारीख 20 जुलाई, 1983

[न्या० एस० के० मल लोढ़ा]

1. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 22, नियम 9, सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963—धारा 5—पुनरीक्षण न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय के विवेकाधिकारजन्य आदेश में हस्तक्षेप उस दशा में अवश्य करेगा, जब उसका प्रयोग विधि के सुस्थिर सिद्धांतों की अवज्ञा में किया जाए—परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अर्थान्तर्गत पर्याप्त हेतुक वह होता है जो संबद्ध पक्षकार की शक्ति में न हो एवं वह उसकी उपेक्षा, अकर्मण्यता अथवा असद्भाव का प्रतिफल न हो।

2. परिसीमा अधिनियम, 1963—धारा 5, सपठित सिविल प्रक्रिया, संहिता, 1908—आदेश 22, नियम 9—पुनरीक्षण न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय के विवेकाधिकारजन्य आदेश में हस्तक्षेप उस दशा में अवश्य करेगा जब उसका प्रयोग विधि के सुस्थिर सिद्धांतों की अवज्ञा में किया जाए—परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अर्थान्तर्गत पर्याप्त हेतुक वह होता है जो संबद्ध पक्षकार की शक्ति में न हो एवं वह उसकी उपेक्षा, अकर्मण्यता अथवा असद्भाव का प्रतिफल न हो।

पिटीशनर-वादियों ने प्रतिवादी-विरोधी पक्षकारों के विरुद्ध बन्धक मोचन के लिए वाद फाइल किया था। उस वाद में विचारण न्यायालय ने 3 मार्च, 1975 को डिक्री दे दी। प्रतिवादियों की अपील अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा 20-9-1979 को मंजूर कर ली गई और वादियों का वाद खारिज कर दिया गया। वादियों ने उच्च न्यायालय में द्वितीय अपील की। जब प्रत्यर्थियों को समन जारी किए गए तो प्रत्यर्थी सं० 3 अम्बावा के समन के संबंध में यह रिपोर्ट दी गई कि उसकी मृत्यु हो गई थी। अम्बावा की मृत्यु की तारीख के संबंध में कुछ संविवाद उठा और तब इस न्यायालय ने यह निदेश दिया कि अपर सिविल न्यायाधीश इस संबंध में जांच करें। विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश की रिपोर्ट प्राप्त होने पर इस न्यायालय ने अपने 9-7-1981 के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आदेश द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि अम्बावा की मृत्यु 20-10-78 को हो गई थी और चूंकि उसके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने हेतु आवेदन इस न्यायालय के समक्ष 1-1/2 वर्ष के पश्चात किया गया था इसलिए उसके विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाया जाना अनुज्ञात नहीं किया गया और जहां तक अम्बावा का संबंध है, अपील का उपशमन हो गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उस प्रक्रम पर मामला ग्रहण के प्रक्रम पर ही था। इसके पश्चात् यह आदेश किया गया कि मामला ग्रहणार्थ प्रस्तुत किया जाए। यह भी प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थियों ने, जिन्होंने अम्बावा की मत्यु की तारीख के संबंध में विवाद किया था, इस न्यायालय के 9-7-1981 के आदेश के पुनर्विलोकनहेतु आवेदन दिया, जिसमें यह अभिकथन किया कि अम्बावा की मृत्यु की तारीख 25-10-1978 नहीं थी, बल्कि वह 1979 की कोई तारीख थी। किन्तु यह आवेदन इस न्यायालय के तारीख 6-11-1981 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। तब यह मामला इस न्यायालय के समक्ष 20-11-1981 को पुन: आया। प्रत्यर्थियों के विद्‌वान् काउंसेल ने इस न्यायालय के समक्ष यह कथन किया कि चूंकि अम्बावा की मृत्यु उसी समय हो चुकी थी जब कि मामला प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष लंबित था, अतः उस न्यायालय की डिक्री इस आधार पर शून्य थी कि अम्बावा के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर नहीं लाया गया था। अतः डिक्री अपास्त कर दी जाए और मामला अवर अपील न्यायालय के समक्ष वापस भेज दिया जाए तथा उस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी को यह इजाजत दी जाए कि वह उपशमन अपास्त कराने हेतु कार्यवाही करे। तदनुसार इस न्यायालय ने विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश की डिक्री को अपास्त कर दिया और मामले को उसे इस निदेश के साथ वापस भेज दिया कि वह अपील का विनिश्चय विधि के अनुसार पुन: करे। और प्रत्यर्थियों को इस बात की इजाजत थी कि कि वह उपशमन को, यदि कोई हो, उस न्यायालय के समक्ष अपास्त कराने के लिए समुचित कार्यवाही कर सकें। यह भी निदेश दिया गया कि पक्षकार उदयपुर के अपर सिविल न्यायाधीश के समक्ष 4-1-1982 को उपस्थित होंगे। इस आदेश के अनुसरण में विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश के समक्ष मामला 4-1-1982 को आया। पक्षकार उस दिन उस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और स्थगन की प्रार्थना की। तब मामले में 25-1-1982 तारीख दी गई। 25-1-1982 को भी अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने विद्वान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपर सिविल न्यायाधीश से इस बात के लिए समय की प्रार्थना की कि वह उपशमन को अपास्त कराने हेतु आवेदन कर सके। मामला 12-2-1982 के लिए स्थगित कर दिया गया। उस तारीख पर उपशमन को अपास्त करने हेतु आवेदन फाइल किया गया। साथ ही मेड़ा द्वारा शपथपत्र भी फाइल किया गया, जिसमें यह अभिकथन किया गया कि अम्बावा की मत्यु 1979 में किसी समय हुई थी। किंतु चूंकि अपीलार्थियों का काउन्सेल सुनवाई की हर तारीख पर उनकी उपस्थिति नहीं चाहता था, अतः वे उसे अम्बावा की मत्यु के संबंध में समय के भीतर सूचना नहीं दे पाए और इसलिए विधिक, प्रतिनिधियों का अभिलेख पर लाने हेतु आवेदन समयानुसार नहीं दिया जा सका। यह प्रार्थना की गई कि उपशमन अपास्त कर दिया जाए और विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर ले लिया जाए। विधिक प्रतिनिधियों के नाम आवेदन के पैरा 2 में दिए गए थे। आवेदन का विरोध प्रत्यर्थियों द्वारा किया गया। पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश ने अपने 23-8-1983 के आदेश द्वारा 12-2-1982 के आवेदन को मंजूर कर लिया और उपशमन अपास्त कर दिया। उसने यह भी निदेश दिया कि विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर ले लिया जाए। इसी आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत पुनरीक्षण आवेदन वादियों द्वारा फाइल किया गया है।

अभिनिर्धारित —पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया

यह सही है कि पुनरीक्षण न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय के आदेश में न्यायोचित रूप से हस्तक्षेप नहीं कर सकता, विशेषतः ऐसी दशा में जब कि अधीनस्थ न्यायालय को यह विवेकाधिकार प्राप्त हो। किंतु यह बात भी समान रूप से सही है कि जब उस विवेकाधिकार का प्रयोग विधि के सुस्थिर सिद्धान्तों की अवज्ञा करते हुए किया जाए और न्यायालय ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करे जो उसमें निहित न हो तो यह न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप निश्चित रूप से करेगा। प्रस्तुत मामले में विद्वान्, अपर सिविल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की सावधानीपूर्वक परीक्षा से स्पष्टतः यह दर्शित होता है कि इस न्यायालय द्वारा पारित प्रतिप्रेषण आदेश के, जिसमें यह निदेश दिया गया था कि विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश के समक्ष अपीलार्थी उपशमन अपास्त कराने हेतु स्वतंत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होगा, पश्चात् विलंब के प्रश्न पर विचार करने में विद्वान् न्यायाधीश पूर्णतः असफल रहे हैं। इस प्रश्न के संबंध में कोई विवाद नहीं है कि अम्बावा की मृत्यु 25-10-1978 को हुई थी। और विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश के समक्ष उसकी अपील इस तारीख से 3 मास के पश्चात् स्वतः उपशांत हो गई थी, क्योंकि उसके विधिक प्रतिनिधि अभिलेख पर नहीं लाए गए थे। उपशमन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के नियम 9 के अधीन आवेदन पर, जो उपशमन से 60 दिन के भीतर किया जाना था, अपास्त किया जा सकता था। स्वीकृतः सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के नियम 9 के अधीन आवेदन उस अवधि के भीतर नहीं किया गया था और यही कारण है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 का आश्रय लिया गया था। अब परिसीमा अधिनियम की धारा 5 की सहायता तभी ली जा सकती है, यदि विलंब के लिए पर्याप्त हेतुक हो। अब यह प्रश्न उठता है कि पर्याप्त हेतुक का अर्थ क्या है। पर्याप्त हेतुक का सामान्य अर्थ यह है कि वह ऐसा हेतुक हो, जो संबद्ध पक्षकार की शक्ति के भीतर न हो और वह उसकी उपेक्षा, अकर्मण्यता अथवा सद्भाव की कमी का परिणाम न हो यह सही है कि 'पर्याप्त हेतुक' पद का अर्थान्वयन उदारतापूर्वक किया जाना चाहिए। 'पर्याप्त हेतुक' शब्दों का वास्तविक अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे तात्विक न्याय हो सके। आवेदक को अपनी उपेक्षा, अकर्मण्यता या सद्भाव के अभाव का लाभ नहीं मिल सकता। अतः विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश के लिए यह लाजिमी था कि वह पर्याप्त हेतुक के प्रश्न पर विचार करता और ऐसा हेतुक ऐसा होना चाहिए, जो उनके समक्ष अपीलार्थियों को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के नियम 9 के अधीन आवेदन उस समय तक प्रस्तुत करने से अपीलार्थी को निवारित करता जबकि वस्तुतः उसने आवेदन प्रस्तुत किया था।

पैरा

[1969] ए० आई० आर० 1969 एस० सी० 575 : शकुंतला देवी **बनाम** कुन्तल कुमारी (Shakuntla Devi *Vs.* Kuntal Kumari) 2

[1968] ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 222 : सरपंच लोनांड ग्राम पंचायत **बनाम** रामगिरि गोस्वामी (sarpanch Lonand village Punchayat vs. Ramgiri Goswamy); 2

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1964] ए० आई० आर० 1964 एस० सी० 215 : भारत संघ **बनाम** रामचरण (Union of India *Vs.* Ramcharan); 2

[1962] ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 361 : रामलाल **बनाम** रीवा कोल फील्ड लि० (Ramlal *Vs.* Riva Coal Field Ltd.) 2

का **अवलंब** लिया गया ।

[1983] 1983 अनरिपोर्टेड जजमैंट (ए० सी० 313) : भगवान स्वरूप **बनाम** मूलचंद (Bhagwan Swarup *Vs.* Moolchand) 2

से **प्रभेद** बताया गया ।

पुनरीक्षण (सिविल) अधिकारिता : 1982 का एकल न्यायपीठ सिविल पुनरीक्षण सं० 338.

1975 की सिविल अपील सं० 68 में उदयपुर के अपर सिविल न्यायाधीश श्री ए० के० शर्मा के तारीख 23-8-1982 के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण ।

पिटीशनरों की ओर से ... श्री एन० पी० गुप्त

पिटीशनरेतर पक्षकारों की ओर से ... श्री एन० एन० माथुर

न्या० एस० के० मल लोढ़ा :

प्रस्तुत पुनरीक्षण आवेदन वादियों की ओर से किया गया है और यह इन परिस्थितियों में उद्भूत हुआ है। वादियों ने प्रतिवादियों के विरुद्ध बंधक मोचन के लिए वाद फाइल किया था। उस वाद में विचारण न्यायालय ने 3 मार्च, 1975 को डिक्री दे दी। प्रतिवादियों ने अपील की, जो उदयपुर के विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश द्वारा 20-9-1979 को मंजूर कर ली गई। परिणामस्वरूप वादियों का वाद खारिज कर दिया गया। तथापि वादियों ने इस न्यायालय में द्वितीय अपील की। जब प्रत्यर्थियों को समन जारी किए गए, तो प्रत्यर्थी सं० 3 अम्बावा के समन के सम्बन्ध में यह रिपोर्ट दी गई कि उसकी मृत्यु हो गई थी। अम्बावा की मृत्यु की तारीख के सम्बन्ध में कुछ संविवाद उठा और तब इस न्यायालय ने यह निदेश दिया कि अपर सिविल न्यायाधीश इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संबंध में जांच करें। विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश की रिपोर्ट प्राप्त होने पर इस न्यायालय ने अपने 9-7-1981 के आदेश द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि अम्बावा की मृत्यु 20-10-78 को हो गई थी और चूंकि उसके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने हेतु आवेदन इस न्यायालय के समक्ष डेढ़ वर्ष के पश्चात् किया गया था, इसलिए उसके विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाया जाना अनुज्ञात नहीं किया गया और जहां तक अम्बावा का सम्बन्ध है, अपील का उपशमन हो गया। यहां यह उल्लेखनीय है कि उस प्रक्रम पर मामला ग्रहण के प्रक्रम पर ही था। इसके पश्चात् यह आदेश किया गया कि मामला ग्रहणार्थ प्रस्तुत किया जाए। यह भी प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थियों ने, जिन्होंने अम्बावा की मृत्यु की तारीख के सम्बन्ध में विवाद किया था, इस न्यायालय के 9-7-1981 के आदेश के पुनर्विलोकन हेतु आवेदन दिया, जिसमें यह अभिकथन किया कि अम्बावा की मृत्यु की तारीख 25-10-1978 नहीं थी बल्कि वह 1979 की कोई तारीख थी। किन्तु यह आवेदन इस न्यायालय के तारीख 6-11-1981 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। तब यह मामला इस न्यायालय के समक्ष 20-11-1981 को पुनः आया। प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउन्सेल ने इस न्यायालय के समक्ष यह कथन किया कि चूंकि अम्बावा की मृत्यु उसी समय हो चुकी थी जब कि मामला प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष लम्बित था, अतः उस न्यायालय की डिक्री इस आधार पर शून्य थी कि अम्बावा के विधिक के प्रतिनिधियों को अभिलेख पर नहीं लाया गया था। अतः डिक्री अपास्त कर दी जाए और मामला अवर अपील न्यायालय के समक्ष वापस भेज दिया जाए तथा उस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी को यह इजाजत दी जाए कि वह उपशमन अपास्त कराने हेतु कार्यवाही करे। तदनुसार इस न्यायालय ने विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश की डिक्री को अपास्त कर दिया और मामले को उसे इस निदेश के साथ वापस भेज दिया कि वह अपील का विनिश्चय विधि के अनुसार पुनः करे और प्रत्यर्थियों को इस बात की इजाजत थी कि वह उपशमन को, यदि कोई हो, उस न्यायालय के समक्ष अपास्त कराने के लिए समुचित कार्यवाही कर सकें। यह भी निदेश दिया गया कि पक्षकार उदयपुर के अपर सिविल न्यायाधीश के समक्ष 4-1-1982 को उपस्थित होंगे। इस आदेश के अनुसरण में उदयपुर के विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश के समक्ष मामला 4-1-1982 को आया। पक्षकार उस दिन उस न्यायालय

के समक्ष उपस्थित हुए और स्थगन की प्रार्थना की। तब मामले में 25-1-1982 तारीख दी गई। 25-1-1982 को भी अपीलार्थियों के विद्वान् काउन्सेल ने विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश से इस बात के लिए समय की प्रार्थना की कि वह उपशमन को अपास्त कराने हेतु आवेदन कर सके। मामला 12-2-1982 के लिए स्थगित कर दिया गया। उस तारीख पर उपशमन को अपास्त करने हेतु आवेदन फाइल किया गया। साथ ही भेड़ा द्वारा शपथ पत्र भी फाइल किया गया, जिसमें यह अभिकथन किया गया कि अम्बावा की मृत्यु 1979 में किसी समय हुई थी। किन्तु चूंकि अपीलार्थियों का काउन्सेल सुनवाई की हर तारीख पर उनकी उपस्थिति नहीं चाहता था, अतः वे उस अम्बावा की मृत्यु के सम्बन्ध में समय के भीतर सूचना नहीं दे पाये और इसलिए विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने हेतु आवेदन समयानुसार नहीं दिया जा सका। यह प्रार्थना की गई कि उपशमन अपास्त कर दिया जाए और विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर ले लिया जाए। विधिक प्रतिनिधियों के नाम आवेदन के पैरा 2 में दिए गए थे। आवेदन का विरोध प्रत्यर्थियों द्वारा किया गया। पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश ने अपने 23-8-1983 के आदेश द्वारा 12-2-1982 के आवेदन को मंजूर कर लिया और उपशमन अपास्त कर दिया। उसने यह भी निदेश दिया कि विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर ले लिया जाए। इसी आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत पुनरीक्षण आवेदन वादियों द्वारा फाइल किया गया है।

2. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेलों को सुन लिया है और अभिलेख का अनुशीलन कर लिया है। पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल ने यह आग्रह किया है कि चूंकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के नियम 9 के अधीन आवेदन फाइल करने में हुए विलम्ब के लिए कोई पर्याप्त हेतुक साबित नहीं किया गया है और न ही सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के नियम 9 के अधीन आवेदन के लिए परिसीमा अवधि के अवसान के पश्चात् हुए विलम्ब के लिए ही कोई पर्याप्त हेतुक दर्शित किया गया है और उसके पिटीशनरेतर पक्षकारों द्वारा साबित किए जाने की तो बात ही क्या ? अतः विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश को उपशमन अपास्त करने हेतु विलम्ब उपमर्शित करने की कोई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिकारिता नहीं थी। इस संदर्भ में **रामलाल** बनाम **रीवा कोल फील्ड लिमिटेड**[1], **भारत संघ** बनाम **रामचरण**[2] **सरपंच लोनान्ड ग्राम पंचायत** बनाम **रामगरि गोस्वामी**[3] तथा **शकुन्तला देवी** बनाम **कुन्तल कुमारी**[4] को अवलम्ब लिया है। उन्होंने यह भी दलील दी कि किसी भी दशा में यह अभिनिर्धारित करना होगा कि चूंकि प्रस्तुत पिटीशनरेतर पक्षकारों से उनके विद्वान् काउन्सेल द्वारा यह अपेक्षा नहीं की गई थी कि वे सुनवाई की हर तारीख पर विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित हों अतः वे अम्बावा की मृत्यु के सम्बन्ध में अपने काउन्सेल को सूचित नहीं कर पायें और इसलिए विहित सीमा के भीतर विधिक प्रतिनिधियों के प्रतिस्थापन के लिए आवेदन न फाइल करने के लिए पर्याप्त हेतुक था, किन्तु उस विलम्ब के लिए तो बिल्कुल ही कोई स्पष्टीकरण नहीं है जो इस न्यायालय के उस आदेश के बाद हुए, जिसके द्वारा इस न्यायालय ने 20-11-1981 को मामले को विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश को प्रतिप्रेषित कर दिया था। दूसरी ओर पिटीशनरेतर पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि प्रथमतः जब विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश ने विलम्ब माफ करने और उपशमन अपास्त करने में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग कर दिया है तो इस न्यायालय को अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उस विवेकाधिकार में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और न ही यह न्यायालय ऐसा हस्तक्षेप कर सकता है और द्वितीयतः उपशमन अपास्त करके विधिक प्रतिनिधियों के प्रतिस्थापन में हुए विलम्ब के मामले में उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना होता है। इस संदर्भ में उन्होंने **भगवान स्वरूप** बनाम **मूल चंद**[5] का अवलम्ब लिया।

3. मैंने परस्पर विरोधी दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार कर लिया है। यह सही है कि पुनरीक्षण न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय के आदेश में न्यायोचित रूप से हस्तक्षेप नहीं कर सकता, विशेषतः ऐसी दशा में जब कि अधीनस्थ न्यायालय को यह विवेकाधिकार प्राप्त हो किन्तु यह बात भी समान रूप से सही है कि जब उस विवेकाधिकार का प्रयोग विधि के सुस्थिर

---

1. ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 361.
2. ए० आई० आर० 1964 एस० सी० 215.
3. ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 222.
4. ए० आई० आर० 1969 एस० सी० 575.
5. 1983 अनरिपोर्टिड जजमैंट एस० सी० 313.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिद्धान्तों की अवज्ञा करते हुए किया जाए और न्यायालय ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करे जो उसमें निहित न हो तो यह न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप निश्चित रूप से करेगा। प्रस्तुत मामले में, विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की सावधानीपूर्वक परीक्षा से स्पष्टतः यह दर्शित होता है कि इस न्यायालय द्वारा पारित प्रतिप्रेषण आदेश के जिसमें यह निदेश दिया गया था कि विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश के समक्ष अपीलार्थी उपशमन अपास्त कराने हेतु स्वतंत्र होगा, पश्चात विलम्ब के प्रश्न पर विचार करने में विद्वान न्यायाधीश पूर्णतः असफल रहे हैं। इस प्रश्न के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है कि अम्बावा की मृत्यु 25-10-1978 को हुई थी। और विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश के समक्ष उसकी अपील इस तारीख से 3 मास के पश्चात स्वतः उपशांत हो गई थी क्योंकि उसके विधिक प्रतिनिधि अभिलेख पर नहीं लाए गए थे। उपशमन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के नियम 9 के अधीन आवेदन पर, जो उपशमन से 60 दिन के भीतर किया जाना था, अपास्त किया जा सकता था। स्वीकृततः सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के नियम 9 के अधीन आवेदन उस अवधि के भीतर नहीं किया गया था और यही कारण है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 का आश्रय लिया गया था। अब परिसीमा अधिनियम की धारा 5 की सहायता तभी ली जा सकती है यदि विलम्ब के लिए पर्याप्त हेतुक हो। अब यह प्रश्न उठता है कि पर्याप्त हेतुक का अर्थ क्या है। पर्याप्त हेतुक का सामान्य अर्थ यह है कि वह ऐसा हेतुक हो, जो सम्बद्ध पक्षकार की शक्ति के भीतर नहीं था और वह उसकी उपेक्षा अकर्मण्यता अथवा सदभाव की कमी के कारण नहीं था। यह सही है कि 'पर्याप्त हेतुक' पद का अर्थान्वियन उदारतापूर्वक किया जाना चाहिए, किन्तु जैसा कि **सरपंच, लोनान्ड राम पंचायत**[1] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है 'पर्याप्त हेतुक' शब्दों का वास्तविक अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे तात्विक न्याय हो सके आवेदक को अपनी उपेक्षा अकर्मण्यता या सदभाव के अभाव का लाभ नही मिल सकता। अत: विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश के लिए यह लाजिमी था कि वह पर्याप्त हेतुक के प्रश्न पर विचार करता और ऐसा हेतुक ऐसा होना चाहिए, जो उनके समक्ष अपीलार्थी को सिविल

1. ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 222.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के नियम 9 के अधीन आवेदन उस समय तक प्रस्तुत करने से अपीलार्थी को निवारित करता जब कि वस्तुतः उसने आवेदन प्रस्तुत किया था। भारत संघ[1] के मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :—

"यदि संबद्ध वाद उस कारण उपशांत हो गया हो कि अपीलार्थी ने मृत पक्षकार के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने हेतु समय के भीतर समुचित कार्यवाही नहीं की थी और जब कि उपशमन अपास्त करने हेतु उसका आवेदन इस कारण मंजूर नहीं किया जाता है कि वह न्यायालय का यह समाधान करने में असफल रहा है कि मृतक के विधिक प्रतिनिधियों को समय के भीतर पक्षकार बनाने के लिए तथा उपशमन को समय के भीतर अपास्त कराने हेतु आवेदन न करने का पर्याप्त कारण था तो न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन अपनी अंतर्निहित शक्तियों का आश्रय मृत प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाने हेतु नहीं करना चाहिए।"

इसी प्रकार, **राम लाल के मामले**[2] में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया :—

"धारा 5 का अर्थान्वयन करने में दो महत्वपूर्ण विचारणाओं को ध्यान में रखना सुसंगत है। पहली विचारणा यह है कि अपील करने के लिए विहित परिसीमा अवधि के अवसान से डिक्रीदार के पक्ष में यह अधिकार उत्पन्न हो जाता है कि वह डिक्री को पक्षकारों के बीच आबद्धकर मान ले। दूसरे शब्दों में, जब विहित परिसीमा अवधि समाप्त हो जाती है तो परिसीमा अवधि के अधीन डिक्रीदार को यह सुविधा अभिप्राप्त हो जाती है कि वह डिक्री को चुनौती से परे मान ले और इस विधिक अधिकार में, जो समय के व्यपगत होने के आधार पर डिक्रीदार को प्राप्त हो जाता है, साधारणतया हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। दूसरी विचारणा, जिसकी परीक्षा नहीं की जा सकती यह है कि यदि विलम्ब माफ करने के लिए पर्याप्त हेतुक दर्शित कर दिया जाता है तो न्यायालय को यह विवेकाधिकार दिया गया है कि वह विलम्ब माफ कर दे और अपील ग्रहण करले।

[1] ए० आई० आर० 1964 एस० सी० 215.
[2] ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 361.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह विवेकाधिकार न्यायालय को विमर्शित रूप में प्रदत्त किया गया है ताकि इस निमित्त न्यायिक शक्ति और विवेकाधिकार का प्रयोग तात्विक न्याय को अग्रसर करने हेतु किया जाए। जैसा कि मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा **कृष्ण बनाम चतप्पन** (आई० एल० आर० 13 मद्रास 269) में मत व्यक्त किया गया है कि धारा 5 न्यायालय को ऐसा अधिकार देती है, जिसका अधिकारिता के संबंध में प्रयोग उस प्रकार किया जाना चाहिए जिस प्रकार न्यायिक शक्ति और विवेकाधिकार का प्रयोग सुविदित सिद्धांतों के आधार पर किया जाता है, यदि अपीलार्थी से हुई कोई उपेक्षा अकर्मण्यता या सद्भाव का अभाव नहीं है तो 'पर्याप्त हेतुक' शब्दों का इस प्रकार उदार अर्थान्वयन किया जाना चाहिए कि तात्विक न्याय हो सके।"

"तथापि इस बात पर बल देना आवश्यक है कि पर्याप्त हेतुक दर्शित कर देने के पश्चात् भी कोई पक्षकार प्रश्नगत विलम्ब की माफी के लिए अधिकारतः हकदार नहीं है। पर्याप्त हेतुक का साबित करना धारा 5 द्वारा न्यायालय में निहित वैवेकिक अधिकारिता के प्रयोग की पुरोभाव्य शर्त है। यदि पर्याप्त हेतुक साबित नहीं किया जाता तो और आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। विलम्ब माफ करने हेतु आवेदन केवल इस आधार पर ही खारिज कर दिया जाएगा। यदि पर्याप्त हेतुक दर्शित कर दिया जाता है तब न्यायालय इस बात की जांच करेगा कि क्या उसे अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए विलम्ब माफ करना चाहिए। विषय का यह पक्ष सभी सुसंगत तथ्यों पर विचार करना स्वाभाविक बना देता है और इस प्रक्रम पर पक्षकार की तत्परता या उसके सद्भाव पर विचार किया जाना होता है। किंतु जब पर्याप्त हेतुक दर्शित कर दिया जाता है तो वैवेकिक शक्ति का प्रयोग करते समय जांच की परिधि स्वभावतः ही केवल ऐसे तथ्यों तक सीमित होगी, जिन्हें न्यायालय सुसंगत समझे। यह ऐसी जांच को न्यायोचित नहीं बना सकती कि पक्षकार उसे प्राप्त संपूर्ण अवधि तक निष्क्रिय क्यों बैठा रहा। इस संदर्भ में यह भी इंगित किया जा सकता है कि जब न्यायालय परिसीमा अधिनियम के अधीन आवेदन पर विचार कर रहा हो तो सद्भाव तथा सम्यक् तत्परता की विचारणाएं सदैव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ही तात्विक एवम् सुसंगत होंगी। ऐसे आवेदनों पर विचार करते समय न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह धारा 5 तथा 14 के उपबंधों के समग्र प्रभाव पर विचार करे। अतः मेरी राय में उन विचारणाओं का आश्रय, जो धारा 14 के उपबंधों द्वारा अभिव्यक्तः तात्विक और सुसंगत बना दी गई हैं, ऐसे आवेदनों पर विचार करते समय, जिनका विनिश्चय धारा 14 के प्रति निर्देश किए बिना धारा 5 के अधीन ही किया जाना है, उसी सीमा तक और उसी रीति में नहीं लिया जा सकता। प्रस्तुत मामले में यह अभिनिर्धारित करने में कोई कठिनाई नहीं है कि विवेकाधिकार का प्रयोग अपीलार्थी के पक्ष में किया जाना चाहिए, क्योंकि इस सामान्य आलोचना के अतिरिक्त कि अपीलार्थी ने परिसीमा अवधि के दौरान तत्परता नहीं बरती, उसके विरुद्ध कोई और तथ्य नहीं प्रस्तुत किया गया है। वस्तुतः, जैसा कि हमने पहले ही इंगित किया है, विद्वान् न्यायिक आयुक्त ने विलम्ब माफ करने हेतु अपीलार्थी के आवेदन को मात्र इस आधार पर खारिज कर दिया था कि अपीलार्थी का यह कर्त्तव्य था कि वह विहित अवधि के भीतर शीघ्रताशीघ्र अपील फाइल करता और यह हमारे विचार में विधिमान्य आधार नहीं है।"

4. अतः, यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि जब तक कि विलम्ब के लिए पर्याप्त हेतुक दर्शित नहीं कर दिया जाता विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश को परिसीमा अधिनियम की धारा 5 की सहायता से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के नियम 9 के अधीन उपशमन को अपास्त करने की कोई अधिकारिता नहीं थी। वस्तुतः विद्वान् अपर सिविल न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया है कि विलम्ब के लिए उनके समक्ष अपीलार्थी द्वारा दर्शित हेतुक पर्याप्त था। किंतु इस निष्कर्ष पर पहुंचने में वे उस विलम्ब को ध्यान में रखने में पूर्णतः असफल रहे हैं जो इस न्यायालय द्वारा प्रतिप्रेषण आदेश के पश्चात् और आवेदन फाइल करने की तारीख तक हुआ है। उन्होंने मात्र पर्याप्त हेतुक को ध्यान में रखा है, जो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 के नियम 9 के अधीन आवेदन उस समय तक न फाइल करने के लिए दर्शित किया गया था जब तक कि प्रथम बार में मामला उनके समक्ष लंबित था। अर्थात् यह कि चूंकि अपीलार्थी के काउंसेल ने यह कहा था कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[इस नियमावली की प्रथम अनुसूची में यथानिर्दिष्ट रायल्टी का संदाय किए जाने पर हिमाचल प्रदेश की सीमाओं के भीतर की किसी पट्टे पर न दी गई भूमि से खनिज की उस मात्रा के खनन के लिये फार्म 'जे' में परमिट अनुदत्त कर सकेगा जो एक परमिट के अधीन विनिर्दिष्ट की जाने वाली मात्रा से अधिक नहीं होगी :

परन्तु निदेशक लिखित में किन्हीं कारणों को अभिलिखित करके ऐसे परमिटों को अनुदत्त करने से इंकार कर सकेगा ।

(ii) खनन-परमिटों के अनुदान पर निर्बन्धन—किसी ऐसे व्यक्ति को, जो भारतीय राष्ट्रिक नहीं है, छह महीने से अधिक अवधि का परमिट नहीं दिया जाएगा ।"

अल्पावधि परमिट नियम 2(1) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :—

**" 'अल्पावधि परमिट' से उसमें विनिर्दिष्ट अवधि तक खनिज की निश्चित मात्रा के निष्कर्षण के लिये निदेशक द्वारा अनुदत्त परमिट अभिप्रेत है ।"

नियम 2(ङ) के अधीन "निदेशक" से उद्योग निदेशक हिमाचल प्रदेश अभिप्रेत है ।

16. अल्पावधि परमिट के लिये आवेदन नियम 25 के अधीन फाइल किया जाता है और परमिट नियम 26 में उल्लिखित शर्तों पर

---

by him in this behalf may grant permit in form 'J' form any specified land not leased to anybody within the limits of the Himachal Pradesh for any minor mineral not exceeding the quantity as may be specified under any one permit on payment of such royalty as shown in the First Schedule to these rules :

Provided that the Director may refuse to grant such permits for reasons to be recorded in writing.

(ii) Restrictions on grant of mining permits :—No mining permit shall be granted to a person who is not an Indian National for a period of more than six months."

**" 'short term permit' means a permit granted by the Director to extract a certatin quanity of mineral for the period specified in the permit."

6 M of Law/84—25

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मंजूर किया जा सकता है। उन शर्तों, जिनके अध्यधीन परमिट मंजूर किया जाता है, में से किसी शर्त के भंग होने की स्थिति में नियम 27 के अधीन निदेशक या अधिकारी परमिट जारी करने वाला प्राधिकारी इसे रद्द कर सकेगा। परमिट के रद्दकरण पर वह भूमि जिसपर पड़ा खदानित खनिज, जिससे उसका निष्कर्षण किया गया है, सरकार की आत्यंतिक सम्पत्ति बन जायेगी।

17. पिटीशनरों को शिमला में ढल्ली-शोधी मार्ग पर अवस्थित एक विशेष भूमि-खण्ड से गौण खनिजों को विनिर्दिष्ट मात्रा के निष्कर्षण के लिए समय-समय पर अल्पावधि परमिट मंजूर किए जाते रहे थे। सरकार के अभिलेखों से यह दर्शित होता है कि सरकार को यह जानकारी मिली थी कि इस मार्गस्थल पर की जा रही प्रेषण संक्रियाओं के कारण इसे बुरी तरह से नुकसान पहुंचा है। सरकार ने विभिन्न तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् अगस्त, 1981 में यह विनिश्चित किया था कि शिमला-कालका राजमार्ग और संजौली-शोधी मार्ग पर कार्यरत सभी पत्थर-पेषणियां, जो सड़क तथा भूमि, दोनों को, नुकसान पहुंचा रही हैं तत्काल हटा दी जाएं। यह भी पता चला था कि कुछ अवैध निष्कर्षण किया जा रहा था। 18 सितम्बर, 1981 को एक बैठक आयोजित की गई जिसमें यह विनिश्चित किया गया था कि राष्ट्रीय व राज्य राजमार्गों, तथा शिमला जिले के ढल्ली-बट्टा कुफ्फार मार्ग के निकट पत्थर-पेषणियों तथा खनिज-खनन के लिये कोई अल्पावधि परमिट अनुदत न किया जाए। इस विनिश्चय के परिणामस्वरूप पिटीशनरों को उद्योग निदेशक द्वारा अल्पावधि परमिट मंजूर नहीं किया गया था और उनके आवेदनों को लम्बित रखा गया था। पिटीशनरों ने इन रिट पिटीशनों को फाइल किया जिनमें सरकार के निर्णय को चुनौती दी गई है क्योंकि अल्पावधि परमिटों की मंजूरी के लिये आवेदनों को विनिश्चित नहीं किया गया था।

18. रिट पिटीशनों के लम्बित रहने के दौरान प्रत्यर्थियों को पिटीशनरों के अल्पावधि परमिटों के मंजूर करने से संबद्ध आवेदनों का विनिश्चय करने का निदेश दिया गया था। अन्ततः प्रत्यर्थियों ने 18 मार्च, 1983 को (अर्थात् रिट पिटीशनों के लंबित रहने के दौरान) पिटीशनरों के आवेदनों को नामंजूर कर दिया और नामंजूरी के कारणों को अभिलिखित किया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

19. अभिलेखों से दर्शित होता है कि हिमाचल प्रदेश राज्य के सहायक भू-वैज्ञानिक ने विभिन्न स्थलों का निरीक्षण करने के बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। उसने यह रिपोर्ट दी कि ढल्ली-शोधी मार्ग को पेषणियों (क्रशर्स) के कारण नुकसान पहुंचा था। उसने रिपोर्ट में यह भी कथन किया कि खदान-संक्रियाएं व्यवस्थित ढंग से नहीं की गई थीं और अत्यन्त प्रवण ढाल (स्टीप स्लोप्स) छोड़ दिए गए थे जिनमें से अधिकांश तो पूर्ण रूप से लम्बवत् होने के कारण खदान-संक्रिया के लिये खतरनाक थे।

20. हिमाचल प्रदेश, लोक निर्माण विभाग, शिमला प्रभाग के कार्य-पालक इंजीनियर ने भी अपनी रिपोर्ट 31 दिसम्बर, 1982 को दी (उपाबंध आर-ए)। उसने यह कथन किया कि लोक सुरक्षा के वृहत हित को ध्यान में रखते हुए इन स्थलों से पेषणियां हटा दी जाएं तथा मार्ग की दशा दयनीय है। उसने यह भी कथन किया कि मार्ग अक्सर अवरुद्ध रखा जाता है, तथा उसके धरातल पर मलवा इकट्ठा कर दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप मार्ग संकीर्ण हो जाता है और उसके इस भाग से वाहनों का गुजरना कठिन और असुरक्षित हो जाता है।

21. निदेशक ने अपने तारीख 18 मार्च, 1983 के आदेश में पिटीशनरों के अल्पावधि परमिटों के अनुदान संबंधी आवेदनों को नामंजूर करने के निम्नलिखित कारण बताए :—

> "ढल्ली-शोधी मार्ग पर खनन-संक्रियाएं चालू रखना लोक हित में नहीं है क्योंकि उसके कारण मार्ग को नुकसान पहुंचता है और पारिस्थितिक असंतुलन पैदा होता है और कार्ड रोड, जिस पर पहले ही काफी भीड़भाड़ रहती है, से यातायात के पथांतर में रुकावट पड़ती है।"

22. ये कार्यवाहियां न्यायिककल्प कार्यवाहियों की प्रकृति की हैं। अतः यदि प्रत्यर्थियों की कार्रवाई मनमानी, नावाजिब, अयुक्तियुक्त अथवा विभेदकारी है तो वह इस रूप में अभिलिखित की जानी चाहिए। मेरे इस मत का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समर्थन रमण दयाराम शेट्टी बनाम भारत का अंतर्राष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण और अन्य[1] वाल मामले में व्यक्त विचारों से होता है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था :—

"आजकल सरकार एक कल्याणकारी राज्य है, विशेष सेवाओं की नियामक और दाता है तथा अनेक प्रसुविधाओं को देने वाली है, जिसके अंतर्गत नौकरी, संविदा, अनुज्ञप्ति कोटा, खनिज-अधिकार आदि शामिल हैं। सरकार सम्पदा, धन संविदाएं, सेवाएं, कोटे और अनुज्ञप्तियां देती है। सरकार द्वारा दी जाने वाली बहुमूल्य सेवाओं के अनेक रूप हैं। किन्तु उन सबकी एक ही विशेषता है वे दृढ़तापूर्वक सम्पदा के पारम्परिक रूपों का स्थान ले रही है। ये मूल्यवान सेवाएं अनेक प्रकार की हैं जो कि सरकार के संबंध से उद्भूत होती हैं। इनमें सामाजिक सुरक्षा, प्रसुविधाएं, राजनीतिक पीड़ितों के लियें नकद अनुदान और राजकीय तथा स्थानीय कल्याण की सम्पूर्ण स्कीम शामिल है। इसके अतिरिक्त राज्य तथा केन्द्रीय सरकारों में तथा स्थानीय प्राधिकरणों में हजारों लोगों को तियोजित किया जाता है। अनेक प्रकार के कारबारों या कार्यों में लगने से पहले अनुज्ञप्ति लेना आवश्यक होता है। अनुज्ञप्तियां देने की शक्ति से अभिप्रेत है उन्हें वापस लेने की शक्ति और इसके फल-स्वरूप सरकार को या सरकार के अभिकर्ताओं को अनेक लोगों के जीवन पर नियंत्रण मिलता है। अनेक व्यक्तियों और अनेकानेक कारबारों में से अधिकांश सरकारी संविदाओं के रूप में बख्शीश (लारजैस) पाते हैं। इन संविदाओं से प्राय: सहायकी परिलक्षित होती है। इनमें हानि उठाना प्राय: असंभव है और अनेक उद्यम प्रधानत: सरकार के साथ कारबार करने के लिये लगाए जाते हैं। सरकार का स्वामित्व और नियंत्रण खनन के लिये और अन्य प्रयोजनों के लिये मूल्यवान सैंकड़ों एकड़ सार्वजनिक भूमि पर होता है। ये प्रसाधन पट्टे या अनुज्ञप्ति के रूप में प्राइवेट निगमों और व्यक्तियों द्वारा उपयोग के लिये उपलभ्य होते हैं।"

---

[1] [1980] 2 उम० नि० प० 961=ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 1628.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह मत भी व्यक्त किया गया है :—

"सरकार का विवेकाधिकार असीमित नहीं माना गया है क्योंकि सरकार अपने मनमाने विवेकाधिकार से या स्वेच्छया ठेके न तो दे सकती है और न ही वापस ले सकती है।"

यह मत भी व्यक्त किया गया है :—

"सरकार को यह कहने की इजाजत नहीं दी जा सकती कि वह उन्हीं लोगों को नौकरी देगी या ठेके देगी या कोटे या अनुज्ञप्तियां जारी करेगी जिनके बाल भूरे हैं या जो किसी विशेष राजनीतिक दल के हैं या किसी विशेष धर्म को मानने वाले हैं। जब सरकार ठेके देने के विषय में कार्रवाई करती है तब भी वह सरकार ही होती है और वह मनमाने रूप से कार्रवाई नहीं कर सकती। इसकी स्थिति वह नहीं होती जो किसी प्राइवेट व्यक्ति की होती है।"

इसी निर्णय के पैरा 12 में यह अभिनिर्धारित किया गया है :—

"अतः विधि यह होगी कि जहां सरकार जनता के साथ संव्यवहार करती है, चाहे वह नौकरियां देना हो या संविदा करना हो, या कोटे या अनुज्ञप्तियां देना हो या अन्य प्रकार की बख्शीश (लार्जेस) देनी हो, वह अपनी इच्छानुसार और मनमाने ढंग से कार्य नहीं कर सकती और किसी प्राइवेट व्यक्ति की भांति अपनी पसन्द के किसी व्यक्ति के साथ संव्यवहार नहीं कर सकती अपितु उसकी कार्रवाई ऐसे मापदण्ड या नियमों के अनुरूप होनी चाहिए जो मनमाने, अतार्किक या असंगत न हो। बख्शीश देने के मामले में, जिसके अंतर्गत नौकरियां, ठेके, कोटे, अनुज्ञप्तियां, आदि देना शामिल है, सरकार की शक्ति या विवेकाधिकार तर्कसंगत, सुसंगत या अविभेदकारी मापदण्ड या नियम से सीमित और परिमित होनी चाहिए और यदि सरकार किसी विशेष मामले या मामलों में ऐसे मापदण्ड या सिद्धांत से हटती है तो सरकार की कार्रवाई अवैध घोषित कर दी जाएगी जब तक कि वह यह दर्शित न करे कि विचलन मनमाना नहीं था अपितु किसी विधिमान्य सिद्धांत पर आधारित था जो कि अपने आप में अतर्कसंगत, अयुक्तियुक्त या विभेदकारी नहीं था।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसी प्रकार **मै० कस्तूरी लाल लक्ष्मी रेड्डी और अन्य बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां कार्रवाई मनमानी रहस्यपूर्ण अथवा असद्भावपूर्ण प्रतीत होती है वहां न्यायालय हस्तक्षेप करने के लिये आबद्ध होता है और प्रशासनिक कार्रवाई युक्तियुक्त तथा लोकहित में होनी चाहिए।

23. यह साबित है कि हिमाचल प्रदेश राज्य ने सितम्बर, 1981 में आयोजित एक बैठक में यह नीति विषयक विनिश्चय किया था कि अल्पावधि परमिट अनुदत्त न किए जाएं। पिटीशनरों के काउन्सेल ने यह तर्क दिया कि इसके शिकार पिटीशनर ही बने हैं और प्रत्यर्थियों की उन्हें अल्पावधि परमिट न देने की कार्रवाई विभेदकारी है। पिटीशन के पैरा 13(ग) में कुछ व्यक्तियों के नामों का उल्लेख करके यह अभिकथित किया है कि उन्हें नीति विषयक विनिश्चय के बावजूद परमिट मंजूर किए गए हैं। प्रत्यर्थियों ने इस प्रकथन का अपने उत्तर में विनिर्दिष्ट रूप से प्रत्याख्यान नहीं किया है। उन्होंने केवल यह कथन किया है कि किसी भी ठेकेदार के प्रति पक्षपात नहीं किया गया है और जब भी सक्षम प्राधिकारी यह महसूस करेगा, कि लोकहित में कार्रवाई करनी आवश्यक है, तो आवश्यक कार्रवाई की जाएगी। तथापि, प्रत्यर्थियों के काउन्सेल ने बहस के दौरान यह तर्क प्रस्तुत किया कि ढल्ली-शोधी मार्ग पर किसी भी व्यक्ति को परमिट नहीं दिए गए थे। यदि यही वस्तुस्थिति है तो पिटीशनरों को इस आधार पर कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता है कि पिटीशन के पैरा 13(ग) में उल्लिखित व्यक्तियों को अन्य मार्गों पर परमिट दिए गए हैं। जिन व्यक्तियों को अन्य मार्ग पर परमिट दिए गए हैं उनकी अवस्थिति पिटीशनरों जैसी नहीं है। भेदभाव साबित करने के लिये पिटीशनरों को यह साबित करना होगा कि जिन व्यक्तियों को परमिट दिए गए हैं उनकी अवस्थिति भी पिटीशनरों जैसी है। पिटीशनर मेरी जानकारी में ऐसा एक भी मामला नहीं ला सके और यह दर्शित नहीं कर सके कि ढल्ली-शोधी मार्ग पर किसी व्यक्ति (व्यक्तियों) को कोई परमिट दिया गया था। इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि सरकार की कार्रवाई विभेदकारी है।

---

[1] [1981] 2 उम० नि० प० 908=1980 (IV) एस० सी० सी० 1.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

24. सरकार को अल्पावधि परमिट अनुदत्त करने का अधिकार नियमावली के नियम 24(1) के अधीन प्रदान किया गया है । निदेशक लिखित में अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से ऐसे किसी परमिट को अनुदत्त करने से इंकार कर सकेगा । किसी ऐसे व्यक्ति को छह महीने से अधिक अवधि के परमिट अनुदत्त करने पर भी प्रतिबंध लगाया गया है जो भारतीय राष्ट्रिक नहीं हैं। इस प्रकार नियम 24 में स्पष्ट रूप से यह उपबंध किया गया है कि निदेशक अथवा उसकी ओर से प्राधिकृत किसी ऐसे अधिकारी को अल्पावधि परमिट अनुदत्त करने का प्राधिकार है परन्तु यदि परमिट देने से इंकार किया जाता है तो निदेशक अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से उसको अनुदत्त करने से इंकार कर सकेगा । प्रस्तुत मामले में निदेशक ने परमिट अनुदत्त करने से इंकार करने के कारणों को अभिलिखित किया है और फाइलों का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि ये कारण सहायक राज्य भू-वैज्ञानिक तथा हिमाचल प्रदेश के लोक निर्माण विभाग के कार्यपालक इंजीनियर की रिपोर्ट पर आधारित है । यह देखना इस न्यायालय का कर्तव्य नहीं है कि भू-वैज्ञानिक अथवा कार्यपालक इंजीनियर की रिपोर्ट को स्वीकार करने में निदेशक का दृष्टिकोण सही रहा है अथवा नहीं । निदेशक का परमिट देने अथवा देने से इंकार करने में अपने विवेक का ल इस्तेमाकरने का प्राधिकार है और यदि उसने फाइल में विद्यमान तथ्यों पर बिचार करने के बाद परमिट देने अथवा न देने का ऐसा विनिश्चय किया है, जिसके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह बेतुका है अथवा किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, तो न्यायालय उसके विनिश्चय में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है । निदेशक का यह विनिश्चय अनुचित अथवा अयुक्तियुक्ति अथवा मनमाना विनिश्चय नहीं कहा जा सकता ।

25. पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल ने **मैसर्स द्वारका प्रसाद लक्ष्मीनारायण** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले का अवलम्ब लिया । इस निर्णय में पिटीशनर कानपुर में कोयले के खुदरा विक्रेता का कारबार कर रहे थे । 14 फरवरी, 1953 को जिला अधिकारियों ने कोयला, कोक आदि की कीमतें कम और नियत करने वाला आदेश पारित कर दिया । इस कार्यपालिक आदेश को संविधान के अनुच्छेद 14 और

[1] ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 224.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

19 का अतिक्रमणकारी बता कर चुनौती दी गई। राज्य सरकार ने इस आदेश को वापिस ले लिया क्योंकि इसे विधायी मंजूरी नहीं मिली थी। इसके पश्चात् राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा 4 के अधीन जारी किए गए भारत सरकार के अधिसूचित आदेश के साथ पठित एसेंशियल सप्लाइज ऐक्ट, 1946 की धारा 3(2) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए 10 जुलाई, 1953 को अधिसूचना द्वारा "उत्तर प्रदेश कोयला नियंत्रण आदेश" के नाम से एक आदेश प्रख्यापित किया। पिटीशनरों ने उत्तर प्रदेश कोयला नियंत्रण आदेश को इस आधार पर चुनौती दी कि उसके उपबंध अनुज्ञापन प्राधिकारी अथवा राज्य कोयला नियंत्रक को अनुज्ञप्तियों के मंजूर करने अथवा प्रतिसंहरण, कोयले की कीमतों के नियतन और व्यापारियों पर शर्तों के अधिरोपण के मामले में निरंकुश और अनियंत्रित विवेकाधिकार प्रदान करते हैं, और संबंधित अधिकारी अपने विकल्प पर इन मनमानी शक्तियों का प्रत्यायोजन अपनी पसन्द के व्यक्तियों को नहीं कर सकते। यह मत व्यक्त किया गया :—

> "कार्यपालक अधिकारी को साधारणतः उपलभ्य वस्तुओं के व्यापार अथवा कारबार के विनियमन के मामले में मनमानी और अनियंत्रित शक्तियां प्रदान करने वाली विधि अथवा आदेश अयुक्तियुक्त ही माना जाएगा। जैसा कि इस न्यायालय ने चिन्तामान राव **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य [ए० आई० आर० 1951 एस०सी० 118(ए)] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि 'युक्तियुक्त निर्बन्धन' पदावली का अर्थ यह है कि किसी अधिकार के उपभोग में किसी व्यक्ति पर अधिरोपित परिसीमा मनमानी अथवा लोकहित में अपेक्षित परिसीमा से अधिक नहीं होनी चाहिए। जो विधान अधिकार का मनमाने तौर पर अथवा अत्यधिक रूप से अतिक्रमण करता है उसे युक्तियुक्तता के गुण वाला नहीं कहा जा सकता और जब तक वह संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन प्रत्याभूत स्वतन्त्रता और अनुच्छेद 19 के खंड (6) द्वारा अनुमत सामाजिक नियंत्रण में उचित संतुलन स्थापित करने में सक्षम न हो उसके बारे में यही माना जाना चाहिए कि उसमें युक्तियुक्तता का अभाव है।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उत्तर प्रदेश कोयला नियंत्रण आदेश का खंड 4(3) शून्य था क्योंकि वह व्यापार और कारबार की स्वतन्त्रता पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करता था। खंड 4(3) को शून्य ठहराने के कारण ये थे कि राज्य कोयला नियंत्रक को अपनी कार्रवाई के कारणों को अभिलिखित करने के पश्चात् किसी अनुज्ञप्ति को मंजूर करने या मंजूर करने से इंकार करने, उसका नवीकरण करने या नवीकरण करने से इंकार करने, उसका निलम्बन, प्रतिसंहरण, रद्दकरण अथवा उसमें उपान्तरण करने की पूर्ण शक्ति थी। वह इन शक्तियों का प्रत्यायोजन अपनी पसन्द के किसी भी व्यक्ति को कर सकता था। इन विषयों के बारे में किसी प्रकार के नियम अथवा मार्गदर्शक सिद्धान्त जारी नहीं किए गए थे : कोई भी उच्चतर प्राधिकारी कारणों के औचित्य की न तो जांच कर सकता था और न ही अधीनस्थ के विनिश्चय का पुनरीक्षण अथवा पुनर्विलोकन कर सकता था। अतः कारणों का अभिलिखित करना अनुज्ञापन प्राधिकारी का केवल व्यक्तिपरक समाधान था और उसका उद्देश्य व्यथित व्यक्ति को कोई उपचार प्रदान करना नहीं था। इस मामले के तथ्य प्रभेदनीय हैं क्योंकि प्रस्तुत मामले में पिटीशनरों को अधिनियम की धारा 30 के अधीन पुनरीक्षण का उपचार उपलभ्य है, जो इस प्रकार है :—

> "30. केन्द्रीय सरकार की पुनरीक्षण की शक्ति—केन्द्रीय सरकार स्वप्रेरणा से अथवा किसी व्यथित पक्षकार द्वारा विहित समय के भीतर किए गए आवेदन पर किसी ऐसे आदेश का पुनरीक्षण कर सकेगी जो राज्य सरकार ने या अन्य प्राधिकारी ने उसे इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में दिया हो।"

अतः यह नहीं कहा जा सकता कि निदेशक के पास अल्पावधि परमिट मंजूर करने अथवा न करने का आत्यंतिक अधिकार है और नियमावली का नियम 24 शून्य नहीं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थियों द्वारा पेश किए गए अभिलेखों से स्पष्टतः यह दर्शित होता है कि पिटीशनरों के आवेदन जनता के व्यापक लोक हितों को ध्यान में रख कर नामंजूर किए गए थे।

26. यह भी तर्क दिया गया है कि निदेशक के आदेश के विरुद्ध अपील का कोई उपबन्ध नहीं है और अपील का उपबन्ध केवल नियम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.
47 में पट्टों के लिए किया गया है। यह सच है कि निदेशक के आदेश के विरुद्ध अपील का कोई उपबन्ध नहीं है परन्तु केन्द्रीय सरकार अधिनियम की धारा 30 के अधीन उसका पुनरीक्षण कर सकती है। किसी भी दशा में यह तर्क सारवान नहीं है क्योंकि अपील, आदि द्वारा उपचार उपलभ्य होने के बावजूद यह न्यायालय अपनी असाधारण शक्तियों के अधीन ऐसे आदेश की यथार्थता अथवा विधिमान्यता की जांच करने के लिए सक्षम है।

27. आगे तर्क यह है कि पिटीशनर खनिजों में अपने अधिकार से वंचित नहीं किए जा सकते क्योंकि उस भूमि पर, जिससे खनिजों का खनन किया जाना है, उनके संबंधियों का स्वामित्व है और इस तर्क के लिए संविधान के अनुच्छेद 300-क का अवलम्ब लिया गया है। पिटीशनरों के विद्वान् काउंन्सेल का यह तर्क इस तथ्य को देखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता कि पिटीशनरों अथवा स्वामियों को उनकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया गया है और अधिनियम में केवल खानों के विनियमन और खनिजों के विकास की प्रक्रिया उपबंधित की गई है। इसके अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 300-क में केवल यह उपबंध किया गया है कि किसी भी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति से विधि के प्राधिकार के बिना वंचित नहीं किया जा सकता।

28. एक अन्य तर्क यह दिया गया है कि अल्पावधि परमिटों को मंजूर करने से इन्कार संबंधी आदेश को पारित करने से पूर्व पिटीशनरों को सुने जाने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए था। यह तर्क दिया गया है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की अवज्ञा की अवज्ञा की गई है। यह तर्क मंजूर नहीं किया जा सकता। पिटीशनरों को सुने जाने का अधिकार तभी होगा जब उनके पास ऐसा कोई अधिकार हो और वह छीन लिया गया हो। यदि पिटीशनरों को अल्पावधि परमिट मंजूर किया जाता है और शर्तों में से किसी शर्त के अतिक्रमण के लिए उसे रद्द किया जाना है तो उस मामले में पिटीशनर यह दावा कर सकते हैं कि उन्हें सुने जाने का अधिकार है क्योंकि किसी नियत अवधि अथवा खदानित की जाने वाली सामग्री की नियत मात्रा के लिए किसी अल्पावधि परमिट के मंजूर करने के कारणों से उनमें ऐसा अधिकार निहित हो जाता है। प्रस्तुत रिट पिटीशनों में पिटीशनर आवेदक मात्र थे और उनके आवेदन निदेशक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वारा अभिलिखित कारणों से कभी मंजूर नहीं किए गए थे, अतः नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिलंघन नहीं हुआ है।

29. मेरे समक्ष किसी अन्य मुद्दे पर जोर नहीं दिया गया है।

30. उपर्युक्त चर्चा के परिणामस्वरूप प्रस्तुत रिट पिटीशन खर्चे की बाबत किसी आदेश के बिना खारिज किए जाते हैं।

रिट पिटीशन खारिज किए गए।

अशोक/चन्द्र

नि० प० 1983 : हिमाचल प्रदेश—131

श्री बी० एन० घिल्डियाल बनाम भारत संघ और अन्य

(Shri B.N. Ghildyal *vs.* Union of India and others)

तारीख 30 मई, 1983

[मु० न्या० वी० डी० मिश्र और न्या० टी० आर० हांडा]

संविधान 1950—अनुच्छेद 226—अपीलार्थी का संघ लोक सेवा आयोग द्वारा हिमाचल प्रदेश वन सेवा वर्ग II के लिए चयन किया जाना और उस सेवा में स्थानापन्न रूप से नियुक्त किया जाना—बाद में भारतीय वन सेवा वर्ग I में सीधी भर्ती के कोटे के लिए संघ लोक सेवा आयोग द्वारा अपीलार्थी सहित हिमाचल प्रदेश वन सेवा वर्ग II के अधिकारियों का साक्षात्कार किया जाना और अपीलार्थी के बैच के साथियों का चयन किया जाना—अपीलार्थी द्वारा अपने चयनित न किए जाने के बारे में सरकार को अभ्यावेदन किया जाना और हिमाचल प्रदेश के उप-राज्यपाल द्वारा उनका नामंजूर किया जाना—विलम्ब और गफलत के कारण 13 वर्ष के पश्चात् अपीलार्थी द्वारा न्यायालय का द्वार खटखटाना—किसी विधि या नियम के अधीन प्राधिकारियों को अभ्यावेदनों को करने के लिए कोई उपबंध न होना विशेषतः जब ऐसे प्राधिकारी अनुतोष मंजूर करने के लिए सक्षम नहीं हैं—ऐसे अभ्यावेदनों को फाइल करने के लिए स्पष्टीकरण का दिया जाना—विलम्ब और गफलत को न्यायालय द्वारा माफ न किया जाना—अभ्यावेदनों का बार-बार किया जाना विलम्ब का स्पष्टीकरण नहीं होगा और न्यायालय विलंबित और पुराने दावों पर विचार नहीं करेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

2. संविधान, 1950—अनुच्छेद 16 सपठित केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 1965 का नियम 23 (iv)—अपील–सीधी भर्ती के रूप में लोक सेवा आयोग द्वारा वर्ग I पद पर चयन न किया जाना–सरकार को कोई अपील न होना–उक्त नियम 23 (iv) के अधीन प्रोन्नति के मामले में अधिक्रमण के विरुद्ध अपील का उपबंध किया गया है और ऐसी अपील केवल उसी दशा में कायम रखी जा सकेगी जब अपीलार्थी को प्रोन्नति कोटे से वर्ग I में प्रोन्नति के बारे में विचार किया जाता और उसके कनिष्ठ उसका अधिक्रमण करते।

इस अपील में मुख्य विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया रिट पिटीशन विलम्ब और गफलत के दोष से ग्रस्त था और क्या वह विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा सही रूप से खारिज किया गया था।

अभिनिर्धारित—अपील खारिज की गई।

यह स्पष्ट है कि भारतीय वन सेवा के प्रारम्भिक गठन के समय भर्ती की तारीख अर्थात् 1 अक्तूबर, 1966 को यथा विद्यमान स्थिति के अनुसार पिटीशनर की ज्येष्ठता सुसंगत नियमों के अनुसार ठीक ही नियत की गई थी। यद्यपि पिटीशनर ने अपने रिट पिटीशन में भारतीय वन सेवा में अपनी उस ज्येष्ठता को चुनौती दी है जो उसे इस सेवा के प्रारम्भिक गठन के समय आबंटित की गई थी, परन्तु वस्तुतः उसकी शिकायत वर्ष 1962 में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा उसका चयन न किए जाने के बारे में है। पिटीशनर को अपने बैच के साथियों के साथ अपना चयन न होने को चुनौती देने की छूट नहीं है तथा उसे भारतीय वन सेवा में उसके लिए समनुदेशित ज्येष्ठता को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं होगा। यहां पर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि अपीलार्थी ने अपने इस दावे के बावजूद, कि उसने राज्य सरकार को 40 से अधिक अभ्यावेदन किए थे, ऐसे किसी भी अभ्यावेदन की प्रतिलिपि प्रस्तुत करने की परवाह नहीं की। इस प्रक्रम पर उल्लेखनीय एक अन्य बात यह है कि यद्यपि अपीलार्थी के अभ्यावेदन 1966 में तत्कालीन हिमाचल प्रदेश संघ राज्य क्षेत्र के उपराज्यपाल ने, जो कि दिसम्बर, 1966 में उसके प्रशासक थे, नामंजूर कर दिए थे और उसे नामंजूरी की सूचना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्यक् रूप से दे दी गई थी तो भी उसने इस तथ्य को छिपा लिया और इस नामंजूरी के बावजूद दृढ़तापूर्वक यही कथन करता रहा कि 1962 में अपना चयन न होने के तत्काल बाद उसने जो अभ्यावेदन किए थे वे अब भी सरकार के विचाराधीन थे। तथापि अपीलार्थी के अपने रिट पिटीशन में तथ्यों के ऐसे छिपाव की न्यायालय इस समय कोई अवेक्षा नहीं कर रहा है। अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल के इस तर्क में न्यायालय की राय में कोई गुणागुण नहीं है कि उसने न्यायालय की शरण लेने में विलम्ब करने के बारे में सफलतापूर्वक स्पष्टीकरण दे दिया है। अपीलार्थी ने 1962 में कारित अपनी शिकायत के उपचार के लिए न्यायालय की शरण लेने में 12 वर्ष से अधिक का विलम्ब किया है जो स्वीकृततः लम्बा विलम्ब है। न्यायालय की निश्चयात्मक राय यह है कि वह यह स्पष्ट करने में विफल रहा है कि वह इस सारी अवधि के दौरान क्यों, प्रतीक्षा करता रहा था। यदि न्यायालय यह धारणा भी कर ले कि अपीलार्थी ने आयोग द्वारा 1962 में अपना चयन न किए जाने के विरुद्ध सरकार को अभ्यावेदन करने में तत्परता से काम लिया था तो भी न्यायालय पुनः यही कहेंगे कि उसके बारे में उनके समक्ष ऐसा साक्ष्य नहीं है जिससे अभ्यावेदनों के किए जाने में हुए विलम्ब का स्पष्टीकरण होता हो। इससे पूर्व कि किसी अभ्यावेदन का किया जाना और उसका सक्षम प्राधिकारी के समक्ष लम्बित होना न्यायालय की शरण लेने में हुए विलम्ब का स्पष्टीकारक आधार माना जाए, यह दर्शाना परमावश्यक है कि वैसा कोई अभ्यावेदन विधि अथवा सुसंगत नियमों के अधीन किया भी जा सकता था। किसी अभ्यावेदन का किया जाना अथवा उसके संबंध में बार-बार ऐसे अभ्यावेदनों का किया जाना, जिनकी परिकल्पना विधि अथवा नियमों में नहीं की गई है, न्यायालय की शरण लेने में हुए विलम्ब के स्पष्टीकरण के लिए सुसंगत कारण उस स्थिति में अधिक विशेष रूप से नहीं होगा जब वह प्राधिकारी, जिसे अभ्यावेदन किया गया है, अभ्यावेदन में मांगा गया अनुतोष प्रदान करने के लिए सक्षम न हो। प्रस्तुत मामले में स्वीकृततः अपीलार्थी की शिकायत सीधी भर्ती के कोटे के लिए आरक्षित वर्ग I पद पर आयोग द्वारा उसका चयन न किए जाने के विरुद्ध थी। अपीलार्थी का विद्वान् काउन्सेल न्यायालय के समक्ष कोई भी ऐसा कानून अथवा नियम प्रस्तुत नहीं कर सका जो किसी अभ्यर्थी को ऐसे पद पर साधिकार चुने जाने का हकदार बनाता हो अथवा जिसमें किसी विशेष अभ्यर्थी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का नियुक्ति के लिए चयन करने अथवा न करने के आयोग के विनिश्चय के विरुद्ध राज्य सरकार को अभ्यावेदन करने का उपबन्ध हो। आयोग ऐसा शक्तिशाली स्वतन्त्र निकाय है जिसका गठन लोक नियुक्तियों के के लिए अभ्यर्थियों का चयन करने के लिए किया गया है, अतः यही कहना तर्कपूर्ण है कि कोई भी कार्यपालक प्राधिकारी, आयोग के विनिश्चय के बारे में की गई अपील की सुनवाई नहीं कर सकता चाहे वह कितना ही शक्ति सम्पन्न क्यों न हो। आयोग लोक नियुक्तियों के लिए अभ्यर्थियों के चयन की बाबत अपनी राय कायम करने का निश्चित रूप से हकदार है और यदि ऐसे मामलों के बारे में आयोग के विनिश्चय पर तनिक भी पुनर्विचार किया जा सकता है तो ऐसा वह स्वयं कर सकता है। अपीलार्थी ने अपना चयन न किए जाने से संबंधित शिकायत के बारे में आयोग के समक्ष कोई अभ्यावेदन नहीं किया। उसने केवल राज्य सरकार को अभ्यावेदन किया जो आयोग के विनिश्चय को निष्प्रभावी बनाने के लिए सक्षम नहीं थी। प्रस्तुत मामले को इस पहलू की दृष्टि से देखने पर यही कहा जा सकता है कि उसका अभ्यावेदन करना, यदि उसने कोई अभ्यावेदन किया था, उसकी एक व्यर्थ की मेहनत थी और ऐसे किसी अभ्यावेदन का लम्बित रहना निश्चित रूप से एक ऐसा सुसंगत कारण नहीं था जो उसकी ओर से न्यायालय की शरण लेने में हुए विलम्ब का स्पष्टीकरण कर सकता था। यदि न्यायालय तर्क की दृष्टि से यह धारणा भी कर ले कि आयोग द्वारा वर्ग I पद पर अपीलार्थी का चयन न किए जाने के विरुद्ध सरकार के प्रशासनिक पक्ष को अभ्यावेदन किया जा सकता था तो सरकार ने उसका अभ्यावेदन 1967 में नामंजूर कर दिया था और उसे नामंजूरी की सूचना भेज दी थी। उसका अभ्यावेदन राज्य के प्रमुख अर्थात् उपराज्यपाल के स्तर पर नामंजूर किया गया था। अपीलार्थी के अभ्यावेदन जैसे अभ्यावेदनों को नामंजूर करने वाले उपराज्यपाल के आदेश के विरुद्ध अपील अथवा पुनर्विलोकन के लिए विधि अथवा नियमों में कोई उपबन्ध नहीं है। बहरहाल, अपीलार्थी ने सरकार को किए गए अपने अभ्यावेदनों में सब मिलाकर जो दावा किया था वह यह था कि उसकी वर्ग II सेवा से वर्ग I में प्रोन्नति भूतलक्षी रूप से तारीख 28-8-1962 अर्थात् उस तारीख से की जाए जिसको उसी के बैच के उसके साथी वर्ग I सेवा में आयोग के माध्यम से सीधी भर्ती वाले अभ्यर्थियों के रूप में नियुक्त किए गए थे। न तो रिट पिटीशन में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कोई ऐसा प्रकथन किया गया है और न ही बहस के दौरान न्यायालय के समक्ष ऐसी कोई सामग्री रखी गई है जिससे यह दर्शित हो सकता हो कि वर्ग I सेवा के प्रोन्नति कोटे में कोई पद रिक्त था जिस पर अपीलार्थी की प्रोन्नति की जा सकती थी। यदि प्रोन्नति कोटे में ऐसी कोई रिक्ति नहीं थी तो अपीलार्थी द्वारा अपने अभ्यावेदन में किया गया दावा असम्भव चीज की मांग करने जैसा ही था। न तो वह यह दावा करने का हकदार था और न ही सरकार इसे स्वीकार करने के लिए सक्षम थी। अतः रिट पिटीशन फाइल करने में अगस्त, 1962 से मई 1975 तक की सम्पूर्ण अवधि का, और हर स्थिति में दिसम्बर, 1967 से मई, 1975 तक का विलम्ब इन दोनों दृष्टिकोणों से अस्पष्टीकृत रह जाता है। प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी का दावा वर्ग II सेवा से वर्ग I सेवा में भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति का है। अपीलार्थी का यह दावा मंजूर नहीं किया जा सकता था क्योंकि प्रोन्नति कोटे में कोई पद नहीं था जिस पर अपीलार्थी की प्रोन्नति की जा सकती थी। यह तथ्य अपीलार्थी की जानकारी में था और इसलिए उसके पास यह मानने का कोई कारण नहीं था कि उसके दावे पर विचार किया जा सकता था अथवा उसे न्यूनाधिक रूप से स्वीकार किया जा सकता था। संक्षेप में न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि अपीलार्थी की मुख्य रूप से शिकायत उसका सीधी भर्ती वाले अभ्यर्थी के रूप में वर्ग I सेवा में नियुक्ति के लिए अगस्त, 1962 में आयोग द्वारा चयन न किए जाने के विरुद्ध है तथा उसने लगभग 13 वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद मई, 1975 में रिट पिटीशन फाइल करने तक कभी कोई शिकायत नहीं की थी। अपीलार्थी ने सरकार को समय-समय पर जो अभ्यावेदन किए थे उनमें उसने केवल यही याचना की थी कि उसकी वर्ग I पद पर प्रोन्नति की जाए जिससे स्पष्ट रूप से प्रोन्नत व्यक्तियों के लिए नियत कोटे में प्रोन्नति, जो सीधी भर्ती के रूप में नियुक्ति से भिन्न है, अभिप्रेत थी। अपीलार्थी को इस बात की जानकारी थी कि वर्ग I सेवा में प्रोन्नति कोटे का कोई पद उपलब्ध नहीं था और इसलिए उसकी प्रोन्नति नहीं की जा सकती थी। अतः उसका बार-बार अभ्यावेदन करना एक निरर्थक प्रयास था जिससे विलम्ब का स्पष्टीकरण नहीं होगा और उस स्थिति में तो और भी नहीं होगा जब उसके ऐसे अभ्यावेदन 1967 में तत्कालीन उपराज्यपाल ने, जो कि प्रशासन मुख थे, नामंजूर कर दिए थे। यह नियम, कि न्यायालयों को विलम्बित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्रौर पुराने दावों पर विचार नहीं करना चाहिए, कोई कानूनी नियम न होने के बावजूद विवेकाधिकार के उचित प्रयोग पर श्राधारित एक व्यवहारिक नियम है श्रौर इस नियम को श्रपीलार्थी के मामले पर लागू करने पर यही कहा जा सकता है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने उसका रिट पिटीशन सही रूप से खारिज किया था। (पैरा 13, 20, 21, 23, 24, 25 श्रौर 27)

न्यायालय का भारत सरकार के इस विनिश्चय के बारे में कोई विवाद नहीं है कि नियम 23 (iv) में प्रोन्नति के मामले में श्रधिक्रमण के विरुद्ध श्रपील का उपबन्ध किया गया है। परन्तु, श्रपीलार्थी का मामला प्रोन्नति के मामले में श्रधिक्रमण का नहीं था। जैसा कि ऊपर मत व्यक्त किया जा चुका है कि श्रायोग ने श्रपीलार्थी का वर्ग I पद के लिए साक्षात्कार सीधी भर्ती वाले श्रभ्यर्थी के रूप में चयन के लिए किया था न कि वर्ग II से वर्ग I में प्रोन्नति के लिए। ऐसी श्रपील केवल उसी दशा में कायम रखी जा सकती थी जब श्रपीलार्थी की प्रोन्नति कोटे से वर्ग I में प्रोन्नति के बारे में विचार किया जाता श्रौर उसके कनिष्ठ उसका श्रधिक्रमण करते। क्योंकि श्रपीलार्थी का प्रोन्नति के मामले में श्रधिक्रमण नहीं किया गया था इसलिए उसके मामले को नियम 23(iv) के उपबन्ध लागू नहीं होते। (पैरा 22)

पैरा

[1979] 1979(1) एस०एल०श्रार० 351 : मैनेजर गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस श्रौर एक श्रन्य **बनाम** डी०बी० बैल्लिपा (The Manager, Govt. Branch Press and Another *Vs.* D.B. Bellipa); 22

[1978] 1978(2) एस०एल०श्रार० 681: श्री सुभाष चन्द्र श्रौर श्रन्य **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य श्रौर श्रन्य (Shri Subhash Chander and others *Vs.* The State of H.P. and others); 25

[1974] [1974] 1.उम०नि०प० पृष्ठ 370–372 = 1974 (1) एस०एल०श्रार० 470 : राम चन्द्र शंकर देवधर श्रौर श्रन्य **बनाम** महाराष्ट्र राज्य श्रौर श्रन्य (Ramchandra Shankar Deodhar and others *Vs.* The State of Maharashtra and others) 26

निर्दिष्ट किए गए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिविल अपीली अधिकारिता : 1978 की लैटर्स पेटेंट अपील संख्या 21.

विद्वान एकल न्यायाधीश के तारीख 31 जुलाई, 1978 के आदेश के विरुद्ध लैटर्स पेटेंट अपील

अपीलार्थी की ओर से ... श्री हरी मोहन शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से ... सर्वश्री पी०ए० शर्मा अधिवक्ता, एम० एस० चन्देल, सहायक महाधिवक्ता और कुमारी कमलेश शर्मा अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्या० टी० आर० हांडा ने दिया ।

न्या० हांडा :

यह लैटर्स पेटेंट अपील इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 31 जुलाई, 1978 के उस आदेश के विरुद्ध की गई है जिसमें अपीलार्थी-पिटीशनर का रिट पिटीशन इस संक्षिप्त आधार पर खारिज कर दिया गया था कि वह विलम्ब और गफलत के दोष से ग्रस्त था।

2. अपीलार्थी श्री बी० एन० घिल्डयाल का संघ लोक सेवा आयोग (संक्षेप में संलोसेआ) द्वारा वर्ष 1956 में हि० प्र० वन सेवा वर्ग II (संक्षेप में हिप्रवसे वर्ग II) के लिए चयन किया गया था। इसके बाद भारतीय वन महाविद्यालय, देहरादून में 'त्रिवार्षिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (1956-59)' पूरा करने के बाद 1 अक्तूबर, 1958 से उसे हि० प्र० वन सेवा वर्ग II में स्थानापन्न रूप से नियुक्त किया गया था। श्री घिल्डयाल के दो अन्य साथी सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी भी जो उन्हीं के बैच के थे, हि० प्र० वन सेवा वर्ग II में 1 अक्तूबर, 1958 से इसी प्रकार स्थानापन्न रूप से नियुक्त किए गए थे। परन्तु इन दोनों अधिकारियों को प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में इनके बेहतर कार्य निष्पादन के कारण अपीलार्थी से ज्येष्ठ रैंक प्रदान किए गए थे।

3. वर्ष 1962 में हि० प्र० वन सेवा वर्ग I, जो स्पष्ट रूप से हिप्रवसे वर्ग II से वरिष्ठ सेवा है, के संवर्ग में कुछ रिक्तियां हुई। उस समय इस वर्ग I की सेवा के 75% में नियुक्ति सीधी भर्ती द्वारा और 25% पद प्रोन्नति द्वारा भरे जाते थे। वर्ष 1962 में इस वर्ग I सेवा की सभी रिक्तियां सीधी भर्ती के कोटे से संबद्ध थीं। यह बात वन विभाग द्वारा हमारे निरीक्षण के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिए पेश की गई फाइल संख्या फार० 45-33/58-III (ई) में विद्यमान तारीख 22 मई, 1962 के पत्र सं० फार० 12-339/58-III (ई) से प्रकट होती है। इस पत्र की एक प्रति उपाबंध 'एक्स-1' के रूप में इस अभिलेख में शामिल की गई है।

4. पूर्वोक्त वर्ग I के पदों पर नियुक्ति के लिए अभ्यर्थियों के चयन हेतु संघ लोक सेवा आयोग द्वारा 16-8-1962 को साक्षात्कार किया गया। अपीलार्थी तथा हिप्रवसे वर्ग II के कुछ अन्य अधिकारी तथा कुछ अन्य बाह्य व्यक्ति इस साक्षात्कार में उपस्थित हुए। इसके बाद हिमाचल प्रदेश संघ राज्य क्षेत्र के तत्कालीन उपराज्यपाल ने संघ लोक सेवा आयोग की सिफारिश पर अपने तारीख 20 सितम्बर, 1962 के आदेश उपाबंध (ई) द्वारा निम्नलिखित अधिकारियों को हि० प्र० वन सेवा वर्ग I में नियुक्त कर दिया :—

1. श्री आर० एस० गुजराल
2. श्री अनुपम कुमार मुकर्जी
3. श्री वेद प्रकाश मोहन—प्रत्यर्थी सं० 6
4. श्री प्रकाश चन्द शर्मा—प्रत्यर्थी सं० 7

इनमें से प्रथम दो अधिकारी, जैसा कि बताया जा चुका है, अपीलार्थी के ही बैच के थे यद्यपि हि० प्र० वन सेवा वर्ग II में उन्हें उससे ज्येष्ठ रैंक प्रदान किए गए थे। अन्य दो अधिकारी, अर्थात् सर्वश्री वी० पी० मोहन और पी० सी० शर्मा भारतीय वन महाविद्यालय देहरादून के 1957-60 के बैच के थे। वे भी हि० प्र० वन सेवा वर्ग II के सदस्य थे परन्तु वे इस सेवा में अपीलार्थी कनिष्ठ थे। पूर्वोक्त साक्षात्कार के परिणामस्वरूप संघ लोक सेवा आयोग ने प्रत्यर्थी सं० 9, जो एक बाह्य व्यक्ति था, और प्रत्यर्थी सं० 10, जो हि० प्र० वन सेवा वर्ग II का सदस्य था, का नियुक्ति के लिए अनुमोदन कर दिया। ये दोनों व्यक्ति बाद में हि० प्र० वन सेवा वर्ग I में अधिष्ठापित किए गए। हि० प्र० वन सेवा वर्ग I में पूर्वोक्त व्यक्तियों के चयन का परिणाम यह हुआ कि सभी प्रत्यर्थी सं० 6, 7, 9 और 10 राज्य सेवा में रैंक में अपीलार्थी से ज्येष्ठ हो गए यद्यपि इस चयन से पूर्व सभी प्रत्यर्थी सं० 6, 7 और 10 उससे कनिष्ठ थे।

5. भारतीय वन सेवा (संक्षेप में भा० व० से०) के नाम से अभिहित एक नई अखिल भारतीय सेवा का अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के उपबंधों के अधीन 1 जुलाई, 1966 से गठन किया गया। किंतु इस सेवा में प्रारंभिक भर्ती 1 अक्तूबर, 1966 से की गई थी। अपीलार्थी इस नयी सेवा के कनिष्ठ वेतनमान में 1 अक्तूबर, 1966 अर्थात् प्रारंभिक भरती की तारीख, से नियुक्त किया गया था। उसकी इस संवर्ग में 1 अक्तूबर, 1967 से पुष्टि की गई थी। (उपाबंध 'पी' देखें)। इसके बाद 1 जनवरी, 1969 से उसकी प्रोन्नति भारतीय वन सेवा के ज्येष्ठ वेतनमान में कर दी गई। (उपाबंध 'ओ' देखें)

6. प्रत्यर्थी सं० 1 ने उपाबंध 'क्यू'—तारीख 18-11-1972 के कार्यालय ज्ञापन द्वारा) हिमाचल प्रदेश संघ राज्य क्षेत्र के भारतीय वन सेवा संवर्ग में उसके प्रारंभिक गठन के समय नियुक्त अधिकारियों की एक संयुक्त ज्येष्ठता सूची जारी की। इस ज्येष्ठता सूची में अपीलार्थी को, उसकी भारतीय वन सेवा में नियुक्ति का वर्ष 1965 आबंटित किया गया था जब कि उसके ही बैच के सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी को, उनकी सेवा में नियुक्ति का वर्ष 1962 1/2 आबंटित किया गया था। इसके परिणामस्वरूप ज्येष्ठता सूची में सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी के नाम क्रम सं० 37 और 38 पर दर्शाए गए थे जब कि अपीलार्थी का नाम क्रम सं० 62 पर दर्शाया गया था। प्रत्यर्थी सं० 6 से 26 के नाम क्रमशः क्रम सं० 27 से 47 पर दर्शाए गए थे। अपीलार्थी जिसे इन सभी प्रत्यर्थियों से कनिष्ठ रैंक प्रदान किया गया था अपनी ज्येष्ठता और भारतीय वन सेवा में उसे आबंटित नियुक्ति के वर्ष से संतुष्ट नहीं था। अतः उसने 26 मई, 1975 को निम्नलिखित प्रार्थना करते हुए अपना रिट पिटीशन फाइल किया जिससे यह अपील उद्भूत हुई है :—

"(क) कि कोई उचित रिट, निदेश अथवा आदेश जारी किया जाए तथा प्रत्यर्थी सं० 1 से 3 द्वारा तैयार की गई पदक्रम सूची अपास्त की जाए और प्रत्यर्थी सं० 1 से 3 को एक ऐसी पदक्रम सूची तैयार करने का निदेश दिया जाए जिसमें पिटीशनर की ज्येष्ठता भारतीय वन सेवा में उसके प्रारंभिक गठन के समय उसे आबंटित वर्ष के मुकाबले 28 अगस्त, 1962 से पुनःस्थापित की गई हो और उसका नाम उसके वर्ष 1956–59 के भारतीय वन महाविद्यालय पाठ्यक्रम के बैच के हिमाचल प्रदेश में सेवारत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.
साथियों सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी के नीचे रखा गया हो ।

(ख) कि प्रत्यर्थी सं० 1 से 3 को यह निदेश दिया जाए कि वे उसे भारतीय वन सेवा में नियुक्ति का वर्ष 1962 1/2 आबंटित करें जो कि सेवा की एक सी नियमावली और शर्तों के अधीन चयनित उसके बैच के साथियों, सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी को आबंटित किया गया है ।"

अपीलार्थी ने जिन अनुतोषों के प्रदान किए जाने का दावा किया था उनके समर्थन में उसने अपने पिटीशन में यह कथन किया था कि उसकी वर्ष 1960-61 और 1961-62 की चरित्र-पंजियों में कुछ प्रतिकूल टिप्पणियां समाविष्ट कर दी गई थीं। परन्तु वे प्रतिकूल टिप्पणियां उसे कभी संप्रेषित नहीं की गई थीं । प्रतिकूल टिप्पणियों वाली उसकी चरित्र-पंजी अगस्त, 1962 में वर्ग I के पद के लिए चयन हेतु साक्षात्कार के समय संघ लोक सेवा आयोग को उपलब्ध कराई गई थीं । उसकी चरित्र-पंजी में उस समय विद्यमान प्रतिकूल टिप्पणियों से प्रभावित होकर संघ लोक सेवा आयोग ने वर्ग I के पद के लिए चयन से उसका नाम अपवर्जित रखा था। उन टिप्पणियों के सर्वथा अनौचित्यपूर्ण होने के कारण सक्षम प्राधिकारी ने उन्हें स्वप्रेरणा से अंशतः वर्ष 1964 में और अंशतः 1971 में चरित्र पंजी से निकाल दिया था। सर्वथा उचित यही होता कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा उन प्रतिकूल टिप्पणियों के चरित्र-पंजी से निकाल दिए जाने के पश्चात् अपीलार्थी के हि० प्र० वन सेवा वर्ग I में चयन के मामले पर नए सिरे से विचार किया जाता । तथापि, ऐसा नहीं किया गया।

7. अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन है कि जब से संघ लोक सेवा आयोग ने वर्ग I के पद पर उसका चयन नहीं किया था वह तभी से हिमाचल प्रदेश सरकार को यह अभ्यावेदन करता रहा था कि वह भूतलक्षी प्रभाव से अर्थात् 20 सितम्बर, 1962 से, जो कि उसके बैच के उसके साथियों सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी की उक्त सेवा में नियुक्ति की तारीख है, उसके वर्ग I के पद पर प्रोन्नति के दावे पर विचार करे । 15 जनवरी, 1975 को अपीलार्थी को यह सूचना दी गई कि उसके मामले में बहुत जान है और राज्य सरकार उस पर सक्रियतापूर्वक विचार कर रही है । अपीलार्थी को ऐसी सूचना (उपाबंध 'के'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वारा) भेजी गई थी परन्तु, राज्य सरकार ने उपाबंध 'के' की इस संसूचना के बावजूद अपीलार्थी के अभ्यावेदनों पर कोई कार्रवाई नहीं की।

8. प्रत्यर्थियों की ओर से किया गया प्रारंभिक आक्षेप यह था कि पिटीशनर विलम्ब और गफलत का दोषी था क्योंकि उसने वर्ष 1962 में किए उए चयन के प्रति आपत्ति उठाई थी और इसलिए वह संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन न्यायालय से अपनी वैवेकिक अधिकारिता का प्रयोग करने की याचना करने का हकदार नहीं था। जैसा कि ऊपर कथन किया गया है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस प्रारंभिक आक्षेप, जो कि एक अपर्याप्त आधार है, से सहमत होकर पिटीशनर का रिट पिटीशन खारिज कर दिया।

9. अतः इस लैटर्स पेटेंट अपील से हमारे विचारार्थ उद्भूत होने वाला संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया रिट पिटीशन विलम्ब और गफलत के दोष से ग्रस्त था और वह विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा सही रूप से खारिज किया गया है?

10. अब इस मामले के तथ्यों से, जिनके बारे में कोई संविवाद नहीं है, यह स्पष्ट होता है कि पिटीशनर भारतीय वन महाविद्यालय, देहरादून में अपना पाठ्यक्रम पूरा करने के पश्चात् अपने बैच के साथियों, सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी के साथ 1 अक्तूबर, 1958 से हि० प्र० वन सेवा वर्ग II में स्थानापन्न रूप से नियुक्त किया गया था। इसके बाद वर्ष 1962 में सर्वश्री गुजराल और मुकर्जी वर्ग I सेवा में उस सेवा के लिए नियत सीधी भर्ती के कोटे में संघ लोक सेवा आयोग के माध्यम से नियुक्त कर दिए गए थे। साथ ही प्रत्यर्थी सं० 6 श्री वी० पी० मोहन, प्रत्यर्थी सं० 7 श्री पी० सी० शर्मा, प्रत्यर्थी सं० 9 श्री एम० एस० एल० वैद्य और प्रत्यर्थी सं० 10 श्री पी० एन० टिकू भी वर्ग I सेवा में सीधी भर्ती के कोटे में नियुक्त किए गए थे परन्तु इनमें से तीन प्रत्यर्थी अर्थात् सर्वश्री वी० पी० मोहन (प्रत्यर्थी सं० 6), पी० सी० शर्मा (प्रत्यर्थी सं० 7) और पी० एन० टिकू (प्रत्यर्थी सं० 10) वर्ग I सेवा में नियुक्ति से पूर्व हि० प्र० वन सेवा वर्ग II में पिटीशनर से कनिष्ठ थे। वर्ग I में नियुक्ति के कारण वे वर्ष 1962 में पिटीशनर से ज्येष्ठ हो गए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

11. भारतीय वन सेवा का गठन 1 जुलाई, 1966 को हुआ था। इस सेवा में भारतीय वन सेवा (प्रारंभिक भर्ती) विनियम, 1966 के निबंधनों के अनुसार प्रारंभिक भर्ती 1 अक्टूबर, 1966 से की गई थी। पिटीशनर, प्रत्यर्थी सं० 6 से 26 तथा सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी भी इस नवीनतः गठित भारतीय वन सेवा में इसके प्रारंभिक गठन के समय नियुक्त किए गए थे। उनकी पारस्परिक ज्येष्ठता भारतीय वन सेवा (ज्येष्ठता का विनियमन) नियमावली, 1968 के अधीन नियत की गई थी। ज्येष्ठता के प्रयोजनों के लिए इन नियमों का नियम 3 "आवंटन के वर्ष के समनुदेशन से संबद्ध है। इस नियम के सुसंगत उपबंध सारांशतः इस प्रकार है :—

*"3. आवंटन के वर्ष का समनुदेशन .—

(1) प्रत्येक अधिकारी के लिए इस नियम में इसके पश्चात् अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार आवंटन का वर्ष समनुदेशित किया जाएगा।

(2) सेवा में नियुक्त किसी अधिकारी का आवंटन का वर्ष—

(क) * * * * * *

(ख) जहां कोई अधिकारी सेवा में उसके प्रारंभिक गठन के समय भर्ती नियमों के नियम 4 के उपनियम (1) के अनुसार

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :

"3. Assignment of year of allotment.—

(1) Every officer shall be assigned a year of allotment in accordance with provisions hereinafter contained in this rule.

(2) The year of allotment of an officer appointed to the Service shall be—

(a) * * * * *

(b) Where an officer is appointed to the Service at its initial constitution in accordance with sub-rule (1) of rule 4 of the Recruitment Rules, such year will be determined

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नियुक्त किया जाएगा वहां ऐसे वर्ष का वधारण निम्नलिखित सूत्र के अनुसार किया जाएगा :--

आवंटन का वर्ष = 1966—(एन$_1$+एन$_2$ का 1/2) इस सूत्र में —

एन$_1$ राज्य-संवर्ग में सम्मिलित किसी ज्येष्ठ वेतन मान के पद के समकक्ष अथवा उच्चतर पद पर 1 जुलाई, 1966 तक निरंतर सेवा के पूर्ण वर्षों का व्यपदेशन करता है परन्तु अधिकारी की अपनी राजपत्रित सेवा के पहले आठ वर्षों के दौरान की गई कोई ऐसी सेवा इस प्रयोजन के लिए निकाल दी जाएगी।

एन$_2$, एन$_1$ में सम्मिलित सेवा के वर्षों को निकाल कर 1 जुलाई, 1966 तक की गई निरंतर राजपत्रित सेवा के पूर्ण वर्षों का व्यपदेशन करता है।

एन$_1$ अथवा एन$_2$ के प्रयोजनार्थ निरंतर सेवा की अवधि की संगणना करते समय कोई ऐसी अवधि हिसाब में नहीं ली जाएंगी जिसके दौरान किसी अधिकारी ने वन अनुसंधान संस्थान और महाविद्यालय, देहरादून में किसी डिप्लोमा-पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण लिया होगा अथवा किसी अन्य संस्था में इस प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुमोदित किसी समकक्ष पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त किया होगा :

---

in accordance with the following formula :—Year of allotment = 1966 minus (N_1 plus half of N_2) wherein —

N_1 represents completed years of continuous service upto 1st July, 1966 in a post equivalent to or above a senior scale post included in the State Cadre, provided that any such Service rendered during the first eight years of gazetted service of the officer shall be excluded for this purpose.

N_2 represents completed years of continuous gazetted service upto 1st July, 1966 excluding that included in N_1. In computing the period of continuous service for purposes of N_1 and N_2 any period during which an officer has undertaken training in a diploma course in the Forest Research Institute and College, Dehradun or equivalent course in any other institution which training is approved by the Central Government for this purpose, shall not be taken into account:

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परन्तु....................:

परन्तु यह भी कि किसी अधिकारी का इस प्रकार संगणित आबंटन का वर्ष उस वर्ष तक सीमित कर दिया जाएगा जो भारतीय वन सेवा में, उसके प्रारंभिक गठन के समय, उसके राज्य वन सेवा में आसन्न ज्येष्ठ अधिकारी को मिला होगा।"

*"4. अधिकारियों की ज्येष्ठता.--अधिकारियों की पारस्परिक ज्येष्ठता इस नियम में इसके पश्चात् अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार अवधारित की जाएगी।

* * * *

(3) किसी राज्य वन सेवा के ऐसे अधिकारी जो सेवा में भर्ती नियमों के नियम 4 के उप नियम (1) के अनुसार नियुक्त किए गए हैं और जिन्हें इस सेवा में वही वर्ष आबंटित किया गया है, राज्य वन सेवा में उनकी विद्यमान पारस्परिक ज्येष्ठता को अस्तव्यस्त किए बिना श्रेणीबद्ध किए जाएंगे।"

12. पिटीशनर और प्रत्यर्थी सं० 6 से 26 की भांति भारतीय वन सेवा के सभी सदस्यों के लिए, जो सेवा में उसके प्रारंभिक गठन के समय भर्ती किए गए थे, आबंटन वर्ष उद्धृत नियम 3 निबंधनों के अनुसार समनुदेशित किए गए थे। सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी,

---

Provided that ....:

Provided further that the year of allotment of an officer so arrived at shall be limited to the year which his immediate senior in the State Forest Service who is appointed to the Indian Forest Service at its initial constitation obtains."

**"4. Seniority of Officers.—The seniority of officers *interse* shall be determined in accordance with the provisions hereinafter contained in this rule.

* * * * * *

(3) Officers belonging to a Staet Forest Service who are appointed to the Service in accordance with sub-rule (1) of rule 4 of the Recruitment Rules and allotted the same year shall be graced without disturbing their existing *inter-se* seniority in the State Forest Service."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जो भारतीय वन महाविद्यालय, देहरादून (1956—59 का पाठ्यक्रम) में पिटीशनर के ही बैच के थे, और जो 1 अक्तूबर, 1958 को हि० प्र० वन सेवा वर्ग II में पिटीशनर के साथ ही नियुक्त किए गए थे, उन दोनों के लिए आबटन का वर्ष 1962 1/2 समनुदेशित किया गया था। ऐसा उनकी राज्य की राजपत्रित सेवा में निरंतर सेवा के आधार पर किया गया था। सामान्यत: पिटीशनर के लिए भी आबंटन का वही वर्ष समनुदेशित किया जाना चाहिए था परन्तु ऐसा नहीं किया गया। कारण स्पष्ट है। भारतीय वन महाविद्यालय के 1957-60 के बैच का श्री वी० पी० मोहन, प्रत्यर्थी सं० 6, प्रारंभ में हिमाचल प्रदेश वन सेवा वर्ग II में पिटीशनर से कनिष्ठ था और बाद में वर्ष 1962 में सीधी भर्ती के परिणामस्वरूप वह वर्ग I की सेवा में चयनित और नियुक्त कर लिया गया। अत: वह राज्य सेवा में पिटीशनर से ज्येष्ठ हो गया। श्री वी० पी० मोहन के लिए पूर्वोक्त नियम 3 के निबंधनों के अनुसार आबंटन का वर्ष 1965 समनुदेशित किया गया और इसलिए पिटीशनर के लिए उससे पहले का कोई वर्ष समनुदेशित नहीं किया जा सका। यही कारण था कि पिटीशनर के लिए भी आबंटन का वर्ष 1965 समनुदेशित किया गया क्योंकि श्री वी० पी० मोहन और पिटीशनर की पारस्परिक ज्येष्ठता कायम रखनी थी।

13. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय वन सेवा के प्रारंभिक गठन के समय भर्ती की तारीख अर्थात् 1 अक्तूबर, 1966 को यथाविद्यमान स्थिति के अनुसार पिटीशनर की ज्येष्ठता सुसंगत नियमों के अनुसार ठीक ही नियत की गई थी। यद्यपि पिटीशनर ने अपने रिट पिटीशन में भारतीय वन सेवा में अपनी उस ज्येष्ठता को चुनौती दी है जो उसे इस सेवा के प्रारंभिक गठन के समय आबंटित की गई थी। परन्तु वस्तुत: उसकी शिकायत वर्ष 1962 में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा उसका चयन न किए जाने के बारे में है। पिटीशनर को, जैसा कि पहले ही मत व्यक्त किया जा चुका है, अपने बैच के सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी के साथ अपना चयन न होने को चुनौती देने की छूट नहीं है तथा उसे भारतीय वन सेवा में उसके लिए समनुदेशित ज्येष्ठता को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं होगा। पिटीशनर ने अपने रिट पिटीशन में वस्तुत: यह दावा किया है कि प्रत्यर्थी सं० 1 से 3 को पहले तैयार की गई पदक्रम सूची को अपास्त करने तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

फिर से ऐसी पदक्रम सूची तैयार करने का निदेश दिया जाए जिसमें उसकी ज्येष्ठता भारतीय वन सेवा के प्रारंभिक गठन के समय के आबंटन-वर्ष के मुकाबले 28 अगस्त, 1962 से दर्शाई गई हो और उसे उसके भारतीय वन महाविद्यालय के वर्ष 1956-59 के बैच के साथियों सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी से नीचे रखा गया हो।

14. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी ने अपने रिट पिटीशन में वर्ष 1962 में अपना चयन वर्ग I पद पर न किए जाने के बारे में शिकायत की थी। उसने 1975 में रिट पिटीशन फाइल किया और इस प्रकार वह 13 वर्ष बीत जाने के पश्चात् फाइल किया गया था। पिटीशनर का मामला यह है कि जब से संघ लोक सेवा आयोग ने उसका वर्ग I पद पर चयन नहीं किया था वह तभी से लगातार हिमाचल प्रदेश सरकार को यह अभ्यावेदन करता रहा था कि वह भूतलक्षी प्रभाव, अर्थात् सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी, जो उसी के बैच के थे, की नियुक्ति की तारीख, अर्थात् 28 अगस्त, 1962, से वर्ग I पद पर उसकी प्रोन्नति के दावे पर विचार करे। पिटीशनर के अनुसार उसके इस मामले में, जैसी कि उसे 15 जनवरी, 1975 को उपाबंध 'क' द्वारा सूचना मिली थी, अब भी जान थी।

15. उपाबंध (एक्स-1) के निर्देश से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि लोक सेवा आयोग ने वर्ष 1962 में वर्ग I पदों के लिए जो भर्ती की थी, उसने वह उस संवर्ग के लिए नियत प्रोन्नति-कोटे से भिन्न सीधी भर्ती के कोटे में से की थी। पिटीशनर तथा प्रत्यर्थी सं० 6, 7, 9 और 10 तथा सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी, सभी के सभी, सीधी भर्ती के कोटे के लिए आरक्षित वर्ग I पदों पर नियुक्ति के लिए चयन हेतु संघ लोक सेवा आयोग के समक्ष उपस्थित हुए थे। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा किसी उम्मीदवार के चयन न किए जाने के विरुद्ध किसी भी नियम के अधीन कोई अभ्यावेदन नहीं किया जा सकता। पिटीशनर ने अपने पिटीशन में यह प्रकथन तो किया था कि उसने संघ लोक सेवा आयोग द्वारा वर्ग I पद पर उसका चयन न किए जाने के विरुद्ध हिमाचल प्रदेश सरकार को अनेक अभ्यावेदन किए थे परन्तु उसने अपने रिट पिटीशन के साथ ऐसे एक भी अभ्यावेदन की प्रति फाइल नहीं की। हम निश्चित रूप से यह मानने में असमर्थ रहे कि ऐसा अभ्यावेदन किस प्रकार किया गया हो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सकता है । अतः हमने यह देखने के लिए सुसंगत विभागीय अभिलेख मंगाया कि क्या पिटीशनर ने ऐसा कोई अभ्यावेदन किया था और यदि हां तो किन आधारों पर। सुसंगत अभिलेख की छानबीन करके हम इस विषय के बारे में पिटीशनर का प्रथम अभ्यावेदन फाइल सं० फारे० 45-33/56-III (ई) में तलाश कर सके । यह अभ्यावेदन तारीख 23 फरवरी, 1966 का है और पूर्वोक्त फाइल में इस पर पृष्ठ सं० 30-31 पड़ी हैं । इस अभ्यावेदन का अंतिम पैरा सुसंगत है और इस प्रकार उद्धृत किया जा सकता है :--

> "अन्त में मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप ऐसी परिशमन-कारी परिस्थितियों, जिनका उल्लेख मैंने ऊपर किया है, और मेरे पिछले अभ्यावेदनों, को ध्यान में रखते हुए मुझे वर्ग I में प्रोन्नति प्रदान करने वाले आदेश उस तारीख से पारित करने की कृपा करें जिसको मेरे साथियों की प्रोन्नति की गई थी, जिससे कि मुझे भारतीय वन सेवा में प्रवेश पाने का उचित अवसर मिल सके और साथ ही अपने भारतीय वन सेवा के वर्ष 1956-59 के वैच के साथी श्री मुकर्जी के नीचे रखकर इस सेवा में मेरी ज्येष्ठता कायम रखी जाए।"

हमें पिटीशनर का इसके बाद का कोई अभ्यावेदन देखने को नहीं मिला। पिटीशनर ने बाद में अपने तारीख 23 फरवरी, 1966 के अभ्यावेदन के संबंध में कुछ अनुस्मारक भी भेजे थे। पिटीशनर का यह अभ्यावेदन हिमाचल प्रदेश के तत्कालीन उपराज्यपाल ने नामंजूर कर दिया था और उसे नामंजूरी की संसूचना 11 दिसंबर, 1967 को भेज दी गई थी। नामंजूरी की संसूचना संप्रेषित करने वाला पत्र इस प्रकार है:--

"सं० फारे०-45-33/56-III (ई०I)
हिमाचल प्रदेश सरकार
(वन विभाग)

तारीख 11-12-1967, शिमला-4

प्रेषक

हिमाचल प्रदेश सरकार का सचिव (वन)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सेवा में,

श्री बी० एन० घिल्डियाल,
ज्येष्ठ वनविज्ञान अनुदेशक,
नेपाल वन विज्ञान संस्थान,
डाकघर हठौडा, नेपाल

विषय : हिमाचल प्रदेश वन सेवा वर्ग I में भूतलक्षी प्रोन्नति के बारे में प्रार्थना ।

ज्ञापन :

आपके तारीख 16 जून, 1967 के पत्र से संबंधित पत्राचार के सन्दर्भ में ।

2. मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि हिमाचल प्रदेश के प्रशासक (उपराज्यपाल) ने आपके तारीख 23 फरवरी, 1966 के अभ्यावेदन में वर्णित आपकी 29 अगस्त, 1962 से हिमाचल प्रदेश वन सेवा वर्ग I में प्रोन्नति की जाने की प्रार्थना ध्यानपूर्वक विचार करके नामंजूर कर दी है ।

हस्ताक्षर

हिमाचल प्रदेश सरकार के सचिव (वन)"

16. इसके पश्चात् अपीलार्थी ने 25 जून 1969 को यह दावा करते हुए नया अभ्यावेदन किया कि उसकी वर्ग I सेवा में भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति की जाए । उसका यह अभ्यावेदन, जो नीचे उद्धृत किया जा रहा है, कार्यालय फाइल सं० फारे० 45-33/56-III (ई) में पृष्ठ 231 पर है :—

"सं० 368 तारीख 25-6-1969

सेवा में,

मुख्य वन संरक्षक,
हिमाचल प्रदेश, शिमला-4
तारीख जून, 1969, रोहरू

विषय : हि० प्र० वन सेवा वर्ग I में भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति के बारे में प्रार्थना ।

महोदय,

उपर्युक्त विषय पर मुख्य वन संरक्षक, हिमाचल प्रदेश के तारीख 12 नवम्बर, 1968 के पत्र सं० फारे० 45-33/56-III

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ई०-1) की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए मेरा अनुरोध है कि आप उस सूचना को भेजने की कृपा करें जिसके लिए मैंने अपने तारीख 6 जुलाई, 1968 के पत्र सं० 756 में प्रार्थना की है।

2. दस्तावेज के निरीक्षण के दौरान अम्बाला के एस० पी० ई० द्वारा मुझे उपलभ्य कराई गई, परन्तु जांच के दौरान दिल्ली के जांच अधिकारी द्वारा प्रदर्शित किए जाने के लिए नामंजूर की गई फाइल सं० फारे० III-2/61(ए) एमएस०सं० 143/65(3) का परिशीलन करने से यह स्पष्ट है कि संघ लोक सेवा आयोग, दिल्ली में मेरे साक्षात्कार से पूर्व मेरी चरित्र पंजी में वृक्षों के अवैध रूप से गिराए जाने के संबंध में टिप्पणियां थीं। पूर्वोक्त फाइल में रिपोर्ट के अंतिम पैरे की भाषा इस प्रकार है :—

'श्री रैना ने अभिकथन किया है कि मैंने उससे श्री घिल्डि-याल की चरित्र पंजी सुधारने का अनुरोध किया था। अभिकथन मिथ्या और भद्दा है। श्री विल्डियाल की चरित्र पंजी नीचे रखी है। मैंने वृक्षों के अवैध रूप से गिराए जाने के संबंध में उक्त चरित्र पंजी में स्वयं उल्लेख करते हुए यह कहा था कि इस मामले में जांच की जा रही है और इसके बारे में आज ही राय व्यक्त करना सम्भव नहीं है। उपराज्यपाल ने उक्त चरित्र पंजी का 6 अगस्त, 1962 को परिशीलन किया था।'

ह०/- भु० व० सं० हि० प्र०

3. श्री रैना ने 13 फरवरी, 1963 को मंडी में एस० पी० ई० के समक्ष किए गए कथन में यह कहा है कि मुख्य वन संरक्षक हिमाचल प्रदेश ने उससे मेरी चरित्र पंजी जो उसने चम्बा सर्किल का कार्यभार सौंपने के तीन महीने पश्चात् अभिलिखित की थी सुधारने का अनुरोध किया था।

4. मुख्य वन संरक्षक, हिमाचल प्रदेश की पूर्वोक्त टिप्पणियों का परिशीलन हिमाचल प्रदेश के उपराज्यपाल द्वारा 6 अगस्त, 1962 को किया गया था और मेरा साक्षात्कार संघ लोक सेवा आयोग ने तारीख 16 अगस्त, 1962 को, अर्थात् उपराज्यपाल द्वारा परिशीलन के 10 दिन पश्चात् किया था। संघ लोक सेवा आयोग ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेरे साथियों, सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी तथा कनिष्ठों का चयन कर लिया जब कि संघ लोक सेवा आयोग ने पूर्वोक्त टिप्पणियों को गम्भीर मानते हुए मेरा चयन नहीं किया। पूर्वोक्त टिप्पणियां मुझे कभी भी संसूचित नहीं की गई थीं।

5. जांच अधिकारी और आयोग तथा भारत के राष्ट्रपति की रिपोर्टें प्रकट हो गई हैं और मुझे हिल्सा के वृक्ष अवैध रूप से गिराने के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया गया है। अतः मुख्य वन संरक्षक और श्री रैना की प्रतिकूल टिप्पणियों का मामले से कोई संबंध नहीं है। उपर्युक्त बातों और 1962 से अब तक किए गए 50 से अधिक अभ्यावेदनों को दृष्टिगत रखते हुए यह अनुरोध है कि मेरे मामले पर पुनर्विचार करके भूतलक्षी प्रभाव से वर्ग I सेवा में मेरी प्रोन्नति के आदेश यथाशीघ्र पारित करने की कृपा करें।

भवदीय,

ह०/- 24-6-1969

(बी० एन० घिल्डियाल)

प्रभागीय वन अधिकारी,

कार्यकारी योजना प्रभाग

रोहरू"

17. यह स्पष्ट है कि इस अभ्यावेदन में उपर्युक्त विषय के बारे में अपीलार्थी के किसी पूर्वतर अभ्यावेदन का और उसकी नामंजूरी का, जैसा कि तारीख 11 दिसम्बर, 1967 के पत्र (जिसे ऊपर पुनः उद्धृत किया गया है) द्वारा उसे सूचित किया गया है, कोई संदर्भ नहीं है। अपीलार्थी का तारीख 6 जुलाई 1968 का पत्र सं० 756 जिसका संदर्भ उसके तारीख 25 जून, 1979 के अभ्यावेदन, (जिसे पुनः उद्धृत किया गया है), के पैरा 1 में दिया गया है, एक अलग विषय के बारे में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। यह पत्र पूर्वोक्त फाइल में पृष्ठ 227 पर है और इसकी भाषा निम्नलिखित है :—

"सं० 756 तारीख 6 जुलाई, 1968, रोहरू

सेवा में

सचिव (वन),
हिमाचल प्रदेश सरकार,
शिमला-4

वन संरक्षक, कार्यकारी योजना प्रभाग, शिमला-1 के माध्यम से

विषय :—हिमाचल प्रदेश वन सेवा वर्ग I में भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति हेतु अनुरोध।

महोदय,

उपर्युक्त विषय पर तारीख 28-8-1962 से अब तक के मेरे 40 से अधिक अभ्यावेदनों के उत्तर में मुझे मेरे नेपाल के पते पर भेजे गए आपके तारीख 11-12-1967 के ज्ञापन सं० फारे० 45-33/56-III (ई०1) की ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हुए मेरा आपसे यह अनुरोध है कि आप मुझे इस बारे में सूचित करें कि क्या 15-8-1962 को संघ लोक सेवा आयोग द्वारा वर्ग I पद के लिए मेरे साक्षात्कार से पूर्व मेरी चरित्र पंजी में प्रतिकूल टिप्पणियां विद्यमान थीं ? मैं इन तथ्यों का उल्लेख अपने तारीख 16-4-67 के अभ्यावेदन के पृष्ठ 5 और 6 पर कर चुका हूं।

यह भी सूचित करने की कृपा करें कि क्या पूर्वोक्त टिप्पणियां अब भी मेरी चरित्र पंजी में विद्यमान हैं ?

भवदीय,
ह०/- 3-7-1968
(बी० एन० घिल्डियाल)
प्रभागीय वन अधिकारी—
कार्यकारी योजना प्रभाग, रोहरू (हि० प्र०)"

18. अपीलार्थी ने अपने तारीख 25 जून, 1969 के अभ्यावेदन के संबंध में कुछ अनुस्मारक अवश्य भेजे थे और तत्पश्चात् नए अभ्यावेदन भी किए थे किन्तु वे सभी व्यावहारिक रूप से एक ही प्रकार के थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उसे राज्य सरकार से तारीख 15 जनवरी, 1975 के पत्र (उपाबंध 'के') के सिवाय कोई उत्तर नहीं मिला।

19. हमने ऊपर सुसंगत तथ्यों का वर्णन किया है क्योंकि उन्हीं को ध्यान में रखकर हम इस अपील में उठाए गए प्रश्न, अर्थात् क्या अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया रिट पिटीशन विलम्ब और गफलत के दोष से ग्रस्त था और मात्र इस आधार पर न्यायालय द्वारा विचार किए जाने योग्य नहीं था, के पक्ष और विपक्ष में दिए गए तर्कों का मूल्यांकन कर सकते हैं।

20. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री हरिमोहन शर्मा ने यह तर्क दिया था कि अपीलार्थी ने न्यायालय की शरण में जाने में अपनी ओर से कोई ऐसा विलम्ब नहीं किया था जिसके बारे में वह स्पष्टीकरण नहीं दे सकता था और इसलिए उसके पिटीशन को उसके विलम्ब और गफलत के कारण वर्जित बताकर फेंक देने में विद्वान् एकल न्यायाधीश का कोई न्यायौचित्य नहीं था। इस बात को देखते हुए, कि अपीलार्थी ने वर्ष 1975 में रिट पिटीशन फाइल किया था, विद्वान् कांउसेल इस बात से सहमत थे कि अपीलार्थी की मुख्य शिकायत अगस्त 1962 में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा वर्ग I पद पर उसका चयन न किए जाने के बारे में थी। परन्तु उसका तर्क यह था कि अपीलार्थी ने इस बिलम्ब के बारे में सफलतापूर्वक स्पष्टीकरण दिया था और उसने अगस्त 1962 में श्रेणी I की सेवा में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा चयन के तत्काल बाद अपना चयन न किए जाने के विरुद्ध राज्य सरकार को अभ्यावेदन कर दिया था। उस अभ्यावेदन के बाद 40 से अधिक अनुस्मारक भेजे/अभ्यावेदन किए गए थे। राज्य सरकार अपीलार्थी के मामले पर 1975 में ठीक उस दिन तक सक्रिय रूप से विचार करती रही थी जिस दिन उसने अपना रिट पिटीशन फाइल किया था। इस तर्क के समर्थन में उपाबंध 'के' का अवलम्ब लिया गया। विद्वान् काउंसेल ने तर्क दिया कि इन परिस्थितियों में अपीलार्थी विलम्ब और गफलत का दोषी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि उसका अपने अभ्यावेदनों के बारे में राज्य सरकार के निर्णय की प्रतीक्षा करना और यह धारणा करना, कि उसकी शिकायत राज्य सरकार के स्तर पर ही दूर हो जाएगी तथा उसे न्यायालय की शरण में नहीं जाना पड़ेगा न्यायोचित था। इस संबंध में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हम अपीलार्थी के उस एकमात्र प्रकथन की ओर इंगित करना चाहेंगे जो उसने अगस्त, 1962 में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा अपना चयन न किए जाने के विरुद्ध अपने अनेक अभ्यावेदनों के संबंध में अपने रिट पिटीशन के पैरा 11 में किया है जो निम्नलिखित है :—

> "11. कि जब से पिटीशनर का वर्ग I के लिए दावा खारिज किया गया है वह तभी से लगातार हिमाचल प्रदेश सरकार को इस बारे में अभ्यावेदन करता रहा है कि वह वर्ग I पद पर भूतलक्षी प्रस्ताव से, अर्थात् 28-8-1962 से जो कि उसके साथियों सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी के चयन की तारीख है प्रोन्नति के उसके दावे पर विचार करे। पिटीशनर को 15 जनवरी, 1975 को यह सूचना मिली कि उसके मामले में बहुत जान है और सरकार उस पर सक्रिय रूप से विचार कर रही है। उक्त संसूचना की सत्य प्रतिलिपि, जिस पर उपाबंध 'के' अंकित किया गया है, इस रिट पिटीशन के साथ संलग्न है।"

यहां पर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि अपीलार्थी ने अपने इस दावे के बावजूद, कि उसने राज्य सरकार को 40 से अधिक अभ्यावेदन किए थे, ऐसे किसी भी अभ्यावेदन की प्रतिलिपि प्रस्तुत करने की परवाह नहीं की। इस प्रक्रम पर उल्लेखनीय एक अन्य बात यह है कि यद्यपि अपीलार्थी के अभ्यावेदन 1966 में तत्कालीन हिमाचल प्रदेश संघ राज्य क्षेत्र के उपराज्यपाल ने, जो कि दिसम्बर 1966 में उसके प्रशासक थे, नामंजूर कर दिए थे और और उसे नामंजूरी की सूचना सम्यक रूप से दे दी थी तो भी उसने इस तथ्य को छिपा लिया और इस नामंजूरी के बावजूद दृढ़तापूर्वक यही कथन करता रहा कि 1962 में अपना चयन न होने के तत्काल बाद उसने जो अभ्यावेदन किए थे वे अब भी सरकार के विचाराधीन थे। तथापि अपीलार्थी के अपने रिट पिटीशन में तथ्यों के ऐसे छिपाव की हम इस समय कोई अवेक्षा नहीं कर रहे हैं।

21. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल के इस तर्क में हमारी राय में कोई गुणागुण नहीं है कि उसने न्यायालय की शरण लेने में विलम्ब करने के बारे में सफलतापूर्वक स्पष्टीकरण दे दिया है। अपीलार्थी ने 1962 में उत्पन्न अपनी शिकायत के उपचार के लिए न्यायालय की शरण लेने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में 12 वर्ष से अधिक का विलम्ब किया है जो स्वीकृततः लम्बा विलम्ब है । हमारी निश्चयात्मक राय यह है कि वह यह स्पष्ट करने में विफल रहा है कि वह इस सारी अवधि के दौरान क्यों प्रतीक्षा करता रहा था । यदि हम यह धारणा भी कर लें कि अपीलार्थी ने आयोग द्वारा 1962 में अपना चयन न किए जाने के विरुद्ध सरकार को अभ्यावेदन करने में तत्परता से काम लिया था तो हम पुन: यही कहेंगे कि उसके बारे में हमारे समक्ष ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे अभ्यावेदनों के किए जाने में हुए विलम्ब का स्पष्टीकरण होता हो। इससे पूर्व कि किसी अभ्यावेदन का किया जाना और उसका सक्षम प्राधिकारी के समक्ष लम्बित होना न्यायालय की शरण लेने में हुए विलम्ब का स्पष्टीकारक आधार माना जाए, यह दर्शाना परमावश्यक है कि वैसा कोई अभ्यावेदन विधि अथवा सुसंगत नियमों के अधीन किया जा सकता था । किसी अभ्यावेदन का किया जाना अथवा उसके संबंध में बार-बार ऐसे अभ्यावेदनों का किया जाना जिनकी परिकल्पना विधि अथवा नियमों में नहीं की गई है, न्यायालय की शरण लेने में हुए विलम्ब के स्पष्टीकरण के लिए सुसंगत कारक उस स्थिति में अधिक विशेष रूप से नहीं होगा जब वह प्राधिकारी, जिसे अभ्यावेदन किया गया है, अभ्यावेदन में मांगा गया अनुतोष प्रदान करने के लिए सक्षम न हो । प्रस्तुत मामले में स्वीकृततः अपीलार्थी की शिकायत संधी ...र्ती के कोटे के लिए आरक्षित वर्ग I पद पर आयोग द्वारा उसका चयन न किए जाने के विरुद्ध थी । अपीलार्थी का विद्वान काउंसेल हमारे समक्ष कोई भी ऐसा कानून अथवा नियम प्रस्तुत नहीं कर सका जो किसी अभ्यर्थी को ऐसे पद पर साधिकार चुने जाने का हकदार बनाता हो अथवा जिसमें किसी विशेष अभ्यर्थी का नियुक्ति के लिए चयन करने अथवा न करने के आयोग के विनिश्चय के विरुद्ध राज्य सरकार को अभ्यावेदन करने का उपबंध हो । दूसरी ओर, आयोग ऐसा शक्तिशाली स्वतंत्र निकाय है जिसका गठन लोक नियुक्तियों के लिए अभ्यर्थियों का चयन करने के लिए किया गया है अतः यही कहना तर्कपूर्ण है कि कोई भी कार्यपालक प्राधिकारी आयोग के विनिश्चय के बारे में की गई अपील की सुनवाई नहीं कर सकता चाहे वह कितना ही शक्ति सम्पन्न क्यों न हो । आयोग लोक नियुक्तियों के लिए अभ्यर्थियों के चयन की बाबत अपनी राय कायम करने का निश्चित रूप से हकदार है और यदि ऐसे मामलों के बारे में आयोग के विनिश्चय पर तनिक भी पुनर्विचार किया जा सकता है तो ऐसा वह स्वयं कर सकता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। अपीलार्थी ने अपना चयन न किए जाने से संबंधित शिकायत के बारे में आयोग के समक्ष कोई अभ्यावेदन नहीं किया। उसने केवल राज्य सरकार को अभ्यावेदन किया जो आयोग के विनिश्चय को निष्प्रभावी बनाने के लिए सक्षम नहीं थी। अपीलार्थी के मामले को इस पहलू की दृष्टि से देखने पर यही कहा जा सकता है कि उसका अभ्यावेदन करना, यदि उसने कोई अभ्यावेदन किया था, उसकी एक व्यर्थ की मेहनत थी और ऐसे किसी अभ्यावेदन का लम्बित रहना निश्चित रूप से एक ऐसा सुसंगत कारक नहीं था जो उसकी ओर से न्यायालय की शरण लेने में हुए विलम्ब का स्पष्टीकरण कर सकता था।

22. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया कि अपीलार्थी अपना चयन न किए जाने के विरुद्ध केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण नियंत्रण और अपील) नियम, 1965 के नियम 23(IV) के अधीन अभ्यावेदन कर सकता था। यह नियम निम्नलिखित है :—

*"23. कोई सरकारी कर्मचारी नियम 22 के उपबंधों के अध्यधीन निम्नलिखित सभी आदेशों अथवा उनमें से किन्हीं के विरुद्ध अपील कर सकता है, यथा :—

* * * * *

(iv) किसी ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील कर सकता है जो

(क) उसे नियमों अथवा करार द्वारा विनियमित उसके वेतन भत्तों पेंशन अथवा अन्य सेवा शर्तों से उसके लिए अहितकर रूप से वंचित करता हो अथवा उनमें परिवर्तन करता हो अथवा

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :

"23. Subject to the provisions of Rule 22, a Government servant may prefer an appeal against all or any of the following orders namely :—

* * * *

(iv) any order which.—

(a) denies or varies to his disadvantage his pay, allowance, pension or other conditions of serivce as regulated by rules or by agreement; or

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ख) ऐसे किसी नियम अथवा करार के उपबंधों का उसके लिए अहितकर रूप से निर्वचन करता हो ।"

अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल का तर्क यह था कि अपीलार्थी के कनिष्ठों को अधिमान प्रदान करके वर्ग I सेवा में चयन और नियुक्ति करना अपीलार्थी की सेवा-शर्तों में परिवर्तन की कोटि में आता था और इसलिए उसका चयन न किए जाने के विरुद्ध सरकार को ऊपर उद्धृत नियम के अधीन अपील की जा सकती थी । विद्वान् काउंसेल के अनुसार उपर्युक्त नियम में प्रयुक्त निबंधन 'सेवा शर्तें' व्यापक है जिसमें वेतन, वेतनवृद्धियों, छुट्टी उपदान, पेंशन, अधिवर्षिता की आयु, नियोजन के पर्यवसान तथा **पदोन्नति** से भी संबंधित उपबंध सम्मिलित हैं । इस निबंधन के "सेवा शर्तें" निर्वचन के समर्थन में उसने **मैनेजर, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, और एक अन्य** बनाम **डी० बी० बेलियप्पा**[1] वाले मामले का अवलम्ब लिया । उसने हमारा ध्यान भारत सरकार के इन अनुदेशों की ओर भी आकर्षित किया जिनमें यह अधिकथित किया गया है कि प्रोन्नति के मामले में अधिक्रमण के विरुद्ध अपील ऊपर उद्धृत नियम 23(iv) के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आती है हमारा भारत सरकार के इस विनिश्चय के साथ कोई विवाद नहीं है कि नियम 23(iv) में प्रोन्नति के मामले में अधिक्रमण के विरुद्ध अपील का उपबंध किया गया है । परन्तु, अपीलार्थी का मामला प्रोन्नति के मामले में अधिक्रमण का नहीं था । जैसा कि ऊपर मत व्यक्त किया जा चुका है कि आयोग ने अपीलार्थी का वर्ग I पद के लिए साक्षात्कार सीधी भर्ती वाले अभ्यर्थी के रूप में चयन के लिए किया था न कि वर्ग II से वर्ग I में प्रोन्नति के लिए । ऐसी अपील केवल उसी दशा में कायम रखी जा सकती थी जब अपीलार्थी की प्रोन्नति कोटे से वर्ग I में प्रोन्नति के बारे में विचार किया जाता और उसके कनिष्ठ उसका अधिक्रमण करते । क्योंकि अपीलार्थी का प्रोन्नति के मामले में

(b) interprets to his disadvantage the provisions of any such rule or agreement."

1. 1979 (1) एस० एल० आर० 351.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिक्रमण नहीं किया गया था इसलिए उसके मामले को नियम 23(iv) के उपवन्ध लागू नहीं होते ।

23. यदि हम तर्क की दृष्टि से यह धारणा कर भी लें कि आयोग द्वारा वर्ग I पद पर अपीलार्थी का चयन न किये जाने के विरुद्ध सरकार के प्रशासनिक पक्ष को अभ्यावेदन किया जा सकता था तो सरकार ने उसका अभ्यावेदन 1967 में नामंजूर कर दिया था और उसे नामंजूरी की सूचना भेज दी थी [तारीख 11-12-1967 का पत्र (पूर्वकथित) देखें] । उसका अभ्यावेदन राज्य के प्रमुख, अर्थात् उप राज्यपाल, के स्तर पर नामंजूर किया गया था । अपीलार्थी के अभ्यावेदन जैसे अभ्यावदनों को नामंजूर करने वाले उपराज्यपाल के आदेश के विरुद्ध अपील अथवा पुनर्विलोकन के लिए विधि अथवा नियमों में कोई उपबन्ध नहीं है ।

24. बहरहाल, अपीलार्थी ने सरकार को किए गए अपने अभ्यावेदनों में सब मिलाकर जो दावा किया था वह यह था कि उसकी वर्ग II सेवा से वर्ग I में प्रोन्नति भूतलक्षी प्रभाव से तारीख 28-8-1962 अर्थात् उस तारीख से की जाए जिसको उसी के बैच के उसके साथी सर्वश्री आर० एस० गुजराल और ए० के० मुकर्जी वर्ग I सेवा में आयोग के माध्यम से सीधी भर्ती वाले अभ्यर्थियों के रूप में नियुक्त किए गए थे। न तो रिट पिटीशन में कोई ऐसा प्रकथन किया गया है और न ही बहस के दौरान हमारे समक्ष ऐसी कोई सामग्री रखी गई है जिससे यह दर्शित हो सकता हो कि वर्ग I सेवा के प्रोन्नति-कोटे में कोई पद रिक्त था जिस पर अपीलार्थी की प्रोन्नति की जा सकती थी। यदि प्रोन्नति-कोटे में ऐसी कोई रिक्ति नहीं थी तो अपीलार्थी द्वारा अपने अभ्यावेदन में किया गया दावा असम्भव चीज की मांग करने जैसा ही था । न तो वह यह दावा करने का हकदार था और न ही सरकार इसे स्वीकार करने के लिए सक्षम थी । अत: रिट पिटीशन फाइल करने में अगस्त 1962 से मई 1975 तक की सम्पूर्ण अवधि का, और हर स्थिति में दिसम्बर, 1967 से मई, 1975 तक का विलम्ब इन दोनों दृष्टिकोणों से अस्पष्टीकृत रह जाता है ।

25. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने **श्री सुभाष चन्द्र और अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय

1. 1978 (1) एस० एल० आर० 681.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की खंड न्यायपीठ के विनिश्चय की नज़ीर का अवलम्ब लेते हुए यह तर्क दिया कि यद्यपि अपीलार्थी ने 1969 में अभ्यावेदन किए थे और उसके बाद उन्हें करने में उसे बहुत विलम्ब हुआ था तो भी संबंधित प्राधिकारियों ने उनके बारे में यह माना था कि उन पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए जैसा कि उसे सूचित किया गया था (उपाबंध 'के' देखें) तो विलम्ब, यदि कोई है, के मामले को, इस दृष्टि से देखने पर यह माना जाना चाहिए कि सरकार ने उसे माफ कर दिया था। हमारे विचार से उपर्युक्त नज़ीर इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होती। वह मामला ज्येष्ठता के नियतन से संबंधित था और अभ्यावेदन पर विचार करने वाले प्राधिकारी उसे निपटाने के लिए सक्षम थे। प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी का दावा वर्ग II सेवा से वर्ग I सेवा में भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति का है। अपीलार्थी का यह दावा मंजूर नहीं किया जा सकता था क्योंकि प्रोन्नति कोटे में कोई पद नहीं था जिस पर अपीलार्थी की प्रोन्नति की जा सकती थी। यह तथ्य अपीलार्थी की जानकारी में था और इसलिए उसके पास यह मानने का कोई कारण नहीं था कि उसके दावे पर विचार किया जा सकता था अथवा उसे न्यूनाधिक रूप से स्वीकार किया जा सकता था।

26. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल का अनुकल्पी तर्क यह है कि अपीलार्थी की ओर से न्यायालय की शरण लेने में भले ही अस्पष्टीकृत विलम्ब हुआ था तो भी ऐसा विलम्ब विद्वान् एकल न्यायाधीश के लिए अपीलार्थी के रिट पिटीशन पर विचार करने से इंकार करने का पर्याप्त अथवा विधिमान्य कारण नहीं था। अपने इस तर्क के समर्थन में विद्वान् काउंसेल ने **रामचन्द्र शंकर देवधर और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत का अवलम्ब लिया। हमने रामचन्द्र वाले उपरोक्त मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्तियों द्वारा दिए गए निर्णय का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया है। हमारी राय में इस निर्णय में कहीं भी यह अधिकथित नहीं किया गया है कि न्यायालय विलम्बित और पुराने दावे पर विचार करने से इंकार नहीं कर सकते। भले ही विलम्ब का समाधानप्रद रूप से स्पष्टीकरण न दिया गया हो। यह सच है कि रामचन्द्र वाले उपरोक्त मामले

[1] [1974] 1 उम० नि० प० पृ० 370-372=1974 (1) एस० एल० आर० 470.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में पिटीशनरों ने 1959 में विरचित नियमों की शक्तिमत्ता को संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन वर्ष 1969 में रिट पिटीशन फाइल करके चुनौती दी थी और उच्चतम न्यायालय ने उसे ग्रहण नहीं किया था। परन्तु उच्चतम न्यायालय ने उस मामले पर उसके इन विशेष तथ्यों के आधार पर विचार किया था कि स्वयं राज्य सरकार के प्रभागीय आयुक्त और राजस्व सचिव जैसे प्राधिकारियों ने पिटीशनरों को यह बताया था कि उन पर 1959 के नियम लागू नहीं थे। वर्ष 1968 में महाराष्ट्र राज्य सरकार ने एक अन्य मामले में यह आधार लिया था कि 1959 में विरचित नियम इन सब पिटीशनरों पर समान रूप से लागू होने वाले नियम थे और तथाकथित पिटीशनरों को इस तथ्य की जानकारी थी कि 1959 के नियम उन पर भी लागू होते थे तथा उच्च न्यायालय ने इस कथन को स्वीकार कर लिया था। पिटीशनरों ने इसके पश्चात् उच्चतम न्यायालय में अपना पिटीशन फाइल करके उन नियमों को चुनौती देने में कोई विलम्ब नहीं किया। उस मामले की सम्पूर्ण तथ्यात्मक और विधिक स्थिति का वर्णन पूर्वोक्त रिपोर्ट के पैरा 10 में किया गया है जिसे नीचे उद्धृत करना लाभप्रद हो सकता है :—

> "10. प्रत्यर्थियों की ओर से किया गया प्रथम प्रारम्भिक आक्षेप यह था कि पिटीशनर पिटीशन को अतिविलम्ब से फाइल करने के दोषी थे। मामलतदारों/तहसीलदारों के खण्ड काडर तारीख 1 नवम्बर, 1956 वाले सरकारी संकल्प द्वारा उसी तारीख को सर्जित किए गए थे और खण्ड चयन सूचियों के आधार पर डिप्टी कलक्टरों के पदों पर प्रोन्नति करने की प्रक्रिया जो कि मामलतदारों/तहसीलदारों के खण्ड काडरों के सर्जन का एक आवश्यक परिणाम थी, कई वर्षों से प्रवृत्त थी और किसी भी दशा में 7 अप्रैल, 1961 से तो ऐसा किया ही जा रहा था और 30 जुलाई वाले नियम भी उनके अधिनियमन की तारीख से ही प्रवृत्त कर दिए गए थे, तब भी पिटीशनरों ने 14 जुलाई, 1969 तक अपना पिटीशन फाइल नहीं किया। परिवाद के हेतुक के उद्भूत होने के पश्चात् यह पिटीशन फाइल करने में दस-बारह वर्षों से अधिक का विलम्ब हुआ है और प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि यह विलम्ब संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन किए गए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पिटीशन में पिटीशनरों को कोई अनुतोष प्राप्त करने के हक से वंचित करने के लिए पर्याप्त है। हम नहीं समझते कि यह दलील हमें प्रभावित करेगी। प्रथमतः यह याद रखना होगा कि कोई ऐसा नियम जो यह कहे कि न्यायालय विलम्बित और पुराने दावों की जांच नहीं कर सकता कानूनी नियम नहीं है अपितु विवेकाधिकार के युक्तिसंगत और उचित प्रयोग पर आधारित प्रथा संबंधी नियम है और ऐसा कोई अनुलंघनीय नियम नहीं है कि जब भी कभी विलम्ब हो, न्यायालय को पिटीशन ग्रहण करने से आवश्यक रूप से इन्कार कर देना चाहिए। प्रत्येक मामला अपने तथ्यों पर निर्भर करता है। यह प्रश्न तो, जैसा कि मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्ला ने तिलक चन्द मोती चन्द बनाम एच० आर० मुंशी, [(1969) 2 एस० सी० आर० 824] वाले मामले में कहा है, 'प्रत्येक मामले का अनुसरण करने के न्यायालय के विवेकाधिकार का है। कोई निम्नसीमा या उच्चतर सीमा नहीं है······यह सब तो इस बात पर निर्भर करेगा कि मूल अधिकारों का कैसा उल्लंघन हुआ है और कैसे उपचार का दावा किया गया है तथा विलम्ब कैसे हुआ।' इस मामले में पिटीशनरों को औरंगाबाद प्रभाग के आयुक्त द्वारा उसके तारीख 18 अक्तूबर, 1960 वाले पत्र द्वारा तथा राजस्व विभाग के तत्कालीन सचिव द्वारा जनवरी, 1961 में यह सूचित किया गया कि पुनर्गठित मुम्बई राज्य में डिप्टी कलक्टरों के पदों पर भर्ती के नियम अभी तक एकीकृत नहीं किए गए हैं और यह कि पिटीशनर भूतपूर्व हैदराबाद राज्य के नियमों द्वारा शासित होते रहे हैं तथा 30 जुलाई, 1959 वाले नियम उन्हें लागू नहीं होते हैं। अतः पिटीशनरों का इस धारणा पर अग्रसर होना न्यायोचित था कि डिप्टी कलक्टरों के पदों पर भर्ती के कोई एकीकृत नियम नहीं हैं और राज्य सरकार द्वारा की जाने वाली प्रोन्नतियां केवल अनन्तिम हैं जिन्हें एकीकृत भर्ती नियम बन जाने के पश्चात् नियमित किया जाएगा। जब कपूर के मामले में मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा पिटीशन का विनिश्चय किया गया केवल तभी पिटीशनरों को यह बात ज्ञात हुई कि उस पिटीशन में राज्य सरकार का यह मामला था और वह मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया कि 30 जुलाई, 1959

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हिन्दी में प्रामाणिक विधि साहित्य

भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व

लेखक—डॉ० प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी

इस पुस्तक में संविधान के तत्वों का अत्यन्त सरल और बोधगम्य भाषा में विवेचन किया गया है। पुस्तक में संविधान से सम्बन्धित अद्यतन सामग्री का तथा उससे सम्बन्धित निर्णयों का भी समावेश किया गया है। यह पुस्तक विधि तथा राजनीति शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए और सभी ऐसे व्यक्तियों के लिए उपयोगी है जो संविधान का गहन अध्ययन करना चाहते हैं।

मूल्य : 36.50 रुपए

चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान

लेखक—डॉ० सी०के० पारिख

अनुवादक—डॉ० नरेन्द्र कुमार पटोरिया

मूल पुस्तक "मेडिकल ज्यूरिस्प्रूडेंस एण्ड टाक्सिकोलाजी" को संसार भर में इस विषय की पाठ्य पुस्तक के रूप में मान्यता मिली है। हिन्दी संस्करण भी प्रत्येक दृष्टि से अद्वितीय और अभूतपूर्व है। विषय को समझने के लिए 278 आकृतियां और रेखाचित्र दिए गए हैं। चिकित्सा न्यायशास्त्र से सम्बन्धित सिद्धान्तों को उपयोगी बनाने के लिए इसमें पर्याप्त मात्रा में निर्णयज विधि (केस लॉ) शामिल की गई है। यह पुस्तक विधि तथा आयुर्विज्ञान के छात्रों, पुलिस अधिकारियों, वकीलों तथा न्यायाधीशों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

मूल्य: 70.00 रुपए

श्रम विधि

लेखक—श्री गौरीकृष्ण अरोड़ा

इस पुस्तक में श्रम विधि से सम्बन्धित पांच अधिनियमों की धारा-क्रम में समीक्षा की गई है। छह अधिनियमों की संक्षिप्त व्याख्या की गई है। आवश्यकतानुसार निर्णयों का भी उल्लेख किया गया है। इस प्रकार यह पुस्तक अपने विषय की "सम्पूर्ण" पुस्तक है। श्रम विधि के विद्यार्थियों, श्रम अधिकारियों, श्रमिक संघों, कार्मिक अधिकारियों तथा श्रम कल्याण से सम्बद्ध अन्य अधिकारियों आदि के लिए यह पुस्तक निश्चित रूप से उपयोगी है।

मूल्य : 24.20 रुपए